करकंड चरिउ
और
मध्ययुगीन हिन्दी के प्रबन्ध काव्य

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि के लिये स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

करकंड चरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी के प्रबन्ध काव्य

(कथाशिल्प की परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन)

●

डॉ० अपरबल राम

एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

श्री महंथ रामाश्रय दास महाविद्यालय भुडकुडा, गाजीपुर

●

संजय प्रकाशन

बुलानाला, वाराणसी

प्रकाशक
संजय प्रकाशन
बुलानाला, वाराणसी
फोन नं० ५५४१६

प्रथम संस्करण १९७८

मूल्य
पचास रुपये

मुद्रक
हिमालया कम्पोजिंग वर्क्स
भूतभैरव, वाराणसी

माननीय शिक्षा मंत्री

श्री कालीचरण जी

को

सादर समर्पित

भूमिका

भारतीय कथा साहित्य की परम्परा अत्यधिक समृद्ध है। पौराणिक आख्यानो और उपाख्यानो के अतिरिक्त लोककथाओ की जैसी प्रचुर पूँजी भारतीय संस्कृति के पास है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। अनेक भारतीय लोककथायें यूरोप तथा दूसरे देशो तक मध्ययुग के पूर्व ही पहुँच चुकी थीं, और इन्होने वहाँ के लोक कथा साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया, यह आज सर्वविदित है। लोक कथाओ की व्याख्या सांस्कृतिक नृतत्व विज्ञान और यूँग के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के आधार पर कर आधुनिक विद्वानो ने इनमे आदिम मानव की मनोभावनाओ के बीज ढूँढे हैं। इन लोक कथाओ के घटनाचक्र और पात्र चयन की विशेष शैली रही है और इनमे रोमाचक अभिप्रायो या मोटिफो का प्रयोग प्राय सर्वत्र देखा जाता है, जैसे मनुष्य की बोली मे बोलने वाले पशु-पक्षी, परियाँ और राक्षस जैसे अतिमानवीय पात्र, उडन खटोले या काठ के घोडे आदि। इसके अतिरिक्त अनेक लोक कथाओं का घटना प्रवाह भी आकस्मिक घटनाओ की उपस्थिति के अभिप्राय से युक्त मिलता है, जैसे समुद्र मे जहाज का टूट जाना, नायक-नायिका का तख्तो के सहारे विपरीत दिशाओ मे बहते हुए बच जाना, किन्ही दैवी शक्तियो द्वारा या अन्य किसी प्रकार से उनका पुनर्मिलन, मृत नायक या नायिका को शिव-पार्वती अथवा किसी योगी के द्वारा अचानक उपस्थित होकर फिर से जिला देना, आदि। विद्वानो ने भारतीय लोककथाओ मे पाई जाने वाली इन कथानक रूढ़ियो या अभिप्रायो का विस्तार से अध्ययन किया है।

पौराणिक ब्राह्मण धर्म बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म ने अपने धर्मोपदेश के लिये इन लोक कथाओ मे से कई का उपयोग किया है। पुराणो के उपाख्यान, बौद्ध जातक कथायें और जैन चरित काव्यो की कथायें इसके प्रमाण हैं। यह परम्परा मध्ययुग के हिन्दी सूफी काव्यो और अन्य प्रेमाख्यानक काव्यो को भी प्राप्त हुई है जिन्हें हम मूलत दो कोटियो मे विभक्त कर सकते हैं—एक वे काव्य जिनका लक्ष्य सैद्धातिक या धार्मिक उपदेश की व्यंजना रहा है, और दूसरे वे काव्य जिनका लक्ष्य पाठक का मनोरंजन मात्र है। जहाँ हिन्दी सूफी काव्य लोक कथाओं के रूप मे प्रचलित लौकिक प्रेम की कथाओं को लेकर उनके माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की सूफी दार्शनिक सिद्धातो के अनुसार व्यंजना करना चाहते हैं, वहाँ माधवानल कामकदला जैसे अनेक मध्ययुगीन प्रेमाख्यानक काव्य ऐसे हैं जिनमे ऐसी कोई दार्शनिक व्यंजना कवि का प्रधान लक्ष्य नहीं रही है। इस भेद के बावजूद कथा काव्य की दृष्टि से इन दोनो कोटि के प्रेमाख्यान

काव्यो में यह समानता है कि इनमे घटना चक्र की जो परिपाटी पायी जाती है और काव्य रूढ़ियों या अभिप्रायों का जो विनियोग मिलता है उनका स्रोत एक ही है और यह स्रोत पुराण साहित्य, प्राकृत कथा साहित्य जैसे वृहत्कथा, और अपभ्रंश चरित साहित्य में भी प्रवाहित मिलता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में इस परम्परा के उन स्रोतों को ढूंढ़ने का प्रयास किया गया है, जो मध्ययुगीन हिन्दी से पूर्व अपभ्रंश कथा साहित्य मे भी विद्यमान थे और इसके लिये मध्ययुगीन हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों के साथ तुलना के लिये जिस कृति करकंड चरिउ को लिया गया है वह समस्त अपभ्रंश कथा साहित्य मे कथा चक्र और अभिप्रायो की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध रचना है, जिसमें इन लोक कथा तत्वो की विविधता दिखाई पडती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायो में विभक्त है, जिसमे शोध विषय से सम्बद्ध सभी पक्षो का सम्यक् अध्ययन किया गया है। हिन्दी मे चरित काव्यो के कथा शिल्प और कथानक रूढ़ियो के अध्ययन की अभी भी अत्यधिक गुंजायश है और इस दृष्टि से डॉ० अपरबल राम का यह कार्य महत्वपूर्ण है कि यह हिन्दी प्रबन्ध काव्यो के अध्ययन मे एक सशक्त कड़ी जोड़ता है। शोधकर्ता ने अपने विषय से सम्बद्ध सभी सामग्री का अध्ययन कर समुचित निष्कर्ष निकाले हैं। उनका यह शोध प्रबन्ध अब प्रकाशित हो रहा है। मुझे पूरी आशा है कि मध्ययुगीन प्रबन्ध काव्यो के अध्येताओ के लिये यह ग्रंथ नि:संदेह उपयोगी होगा।

भोलाशंकर व्यास
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

दीपावली
३१ अक्टूबर, १९७८ ई०

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबन्ध मे करकंड चरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। करकंड चरिउ का उल्लेख अधिकांश विद्वानों ने अपने प्रबन्धों में किया है। इस दृष्टि से कुछ लोगों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। डा० नामवर सिंह ने 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग' में करकंडचरिउ पर बहुत ही संक्षेप में प्रकाश डाला है। डा० रामसिंह तोमर ने अपने प्रबन्ध 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव' में करकंडचरिउ पर विचार किया है। अपभ्रंश एवं हिन्दी के तुलनात्मक अध्ययन के लिये यह ग्रन्थ विशेष उपयोगी है। डा० हरिवंश कोछड़ ने भी अपने प्रबन्ध 'अपभ्रंश साहित्य' मे करकंड चरिउ पर प्रकाश डाला है। डा० देवेन्द्र कुमार जैन ने अपने प्रबन्ध 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य' मे करकंडचरिउ पर विचार किया है। यह ग्रंथ भी अपभ्रंश साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डा० अम्बादत्त पंत ने 'अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति' मे करकंड चरिउ पर प्रकाश डाला है। किन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय उपर्युक्त सभी विद्वानो के विषयों से सर्वथा भिन्न है। इसमे करकंडचरिउ के कथा-शिल्प एवं कथानक-रूढ़ियो की दृष्टि से पहले-पहल यहाँ विचार हुआ है। इस दृष्टि से यह प्रबन्ध सर्वथा नवीन है।

मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों पर विभिन्न विद्वानो ने भिन्न-भिन्न दृष्टियो से विचार किया है। यहाँ पर कुछ लोगो का उल्लेख आवश्यक है। डा० कमल कुलश्रेष्ठ का प्रबन्ध 'हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य' प्रेमाख्यान साहित्य का प्रथम प्रबन्ध है, जिसमे हिन्दी के प्रेमाख्यानो का अध्ययन किया गया है। डा० सरला शुक्ल का प्रबन्ध जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य भी प्रेमाख्यानक काव्यो के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने अपने प्रबन्ध 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य' मे मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो पर विचार किया है। डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय ने अपने प्रबन्ध 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' मे मध्यकालीन प्रबन्ध काव्यो का विवेचन प्रस्तुत किया है। किन्तु उपर्युक्त सभी विद्वानों ने कथा-शिल्प पर कम ध्यान दिया है। इस दृष्टि से डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव का प्रबन्ध 'मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक-रूढ़ियाँ' विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रबन्ध में मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो में प्रयुक्त कथानक-रूढ़ियों का विस्तृत एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। लेकिन यहाँ भी कथा-शिल्प की दृष्टि से विचार नहीं हो पाया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मे करकंडचरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो के कथा-शिल्प एवं कथानक-रूढ़ियों

की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से करकंडुचरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो के तुलनात्मक अध्ययन पर अभी तक विचार नहीं हो पाया था। प्रस्तुत प्रबन्ध इसी दिशा मे एक प्रयास है।

प्रस्तुत प्रबन्ध कुल आठ अध्यायो मे समाप्त हुआ है। पहले अध्याय मे हिन्दी के मध्यकाल का सीमा निर्धारण, इस काल मे लिखे गये प्रबन्ध काव्यो के प्रकार उनकी विशेषता एवं करकंडचरिउ पर अब तक हुए कार्य का विवरण है। दूसरे अध्याय मे इस बात का उल्लेख किया गया है कि अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्य पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत प्रबन्ध काव्यो से कहाँ तक प्रभावित हैं तथा उन्होने उनसे क्या क्या ग्रहण किया है। इसके साथ ही इस अध्याय मे अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यो का विवेचन किया गया है और चरित-काव्य तथा कथा-काव्य के लक्षण भी बतलाये गये हैं। तीसरे अध्याय मे यह दिखलाया गया है कि अपभ्रंश चरित काव्यों मे करकंडचरिउ का क्या स्थान है। चौथे अध्याय में करकंडचरिउ के कथा-शिल्प पर विचार किया गया है। पाँचवें अध्याय में पौराणिक एवं प्रेमाख्यानमूलक प्रबन्ध काव्यो के स्वरूप पर विचार किया गया है और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो तथा करकंड चरिउ का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। छठे अध्याय मे करकंडचरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की कथावस्तु एवं वस्तुयोजना की तुलना की गई है। सातवें अध्याय मे करकंडचरिउ तथा मध्य युगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे प्रयुक्त कथानक-रूढियो का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। आठवें अध्याय मे उपसंहार है। इसमे सारांश रूप मे यह बतलाया गया है कि मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो को ठीक-ठीक समझने के लिये अपभ्रंश चरित काव्यो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है।

प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की प्रेरणा मुझे श्रद्धेय गुरुवर डॉ० भोलाशंकर व्यास प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी से मिली। उन्हीं के निर्देशन मे यह शोध-प्रबन्ध लिखा गया है। उन्होंने महती कृपा के साथ जो अमूल्य मार्ग दर्शन किया है उसके लिये केवल आभार प्रकट करना एक तरह से अक्षम्य अपराध होगा, क्योकि यदि पग-पग पर उनका मार्ग दर्शन न मिला होता तो इस दुस्तर कार्य का पूरा होना कठिन ही नहीं असंभव भी था। डॉ० शिव प्रसाद सिंह के प्रति केवल आभार प्रकट करके मैं उनके ऋण से उऋण नही होना चाहता। डॉ० त्रिभुवन सिंह से बराबर हरेक प्रकार की सहायता एवं सुविधा मिलती रही परन्तु इसके लिये उन्हें किन शब्दो में आभार प्रकट करूँ; समझ मे नहीं आता। डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव रीडर, हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ से भी मुझे हमेशा आवश्यक सुझाव एवं परामर्श मिलता रहा। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। डॉ० बालमुकुन्द एवं रामलोचन यादव के

प्रेरणादायक सुझावों से मुझे बड़ा बल मिलता रहा है, इसलिये इनका स्मरण आ जाना स्वाभाविक ही है।

मैं उत्तर प्रदेश शासन के शिक्षा मंत्रालय के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना कैसे भूल सकता हूँ, जिसने शोध प्रबन्ध की उपादेयता को देखते हुये इसे अविलम्ब प्रकाशित कराने के लिये सरकारी अनुदान की संस्तुति प्रदान की।

अन्त में मैं संजय प्रकाशन के वंशीधर गुप्त, गुलाबदास शाह एवं हिमालया कम्पोजिंग वर्क्स के बैजनाथ यादव के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग से शोध-प्रबन्ध अविलम्ब प्रकाशित हो सका।

दीपावली
३१ अक्टूबर, १९७८ ई०
वाराणसी

—जपरबल राम

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय

विषय-प्रवेश

विषय-प्रवेश

मध्यकाल से हमारा यहाँ अभिप्राय हिन्दी साहित्य के मध्यकाल से है, भारतीय इतिहास के मध्ययुग या मध्यकाल से नहीं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे समूचे हिन्दी साहित्य को आदि, पूर्वमध्य या भक्ति, उत्तरमध्य या रीति और आधुनिक नामक चार कालों मे विभाजित किया है। जिस मध्यकाल को आचार्य शुक्ल ने पूर्वमध्य तथा उत्तरमध्य या भक्ति और रीतिकाल दो भागो मे बाटा है, उसे ही मिश्रबन्धुओं ने पूर्व, प्रौढ तथा अलंकृत नाम से तीन उपविभागों मे विभाजित किया है।[1] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के इतिहास को बीजवपन, अंकुरोद्भव और पत्रोद्गमकाल के नाम से तीन भागो मे विभक्त किया है।[2] द्विवेदी जी का अंकुरोद्भव या मध्यकाल ही शुक्ल जी का पूर्वमध्य तथा उत्तर-मध्य और मिश्रबन्धुओ का पूर्व, प्रौढ एवं अलंकृत काल है। हिन्दी कविताओं पर जहा से संस्कृत भाषा तथा साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडने लगता है वही से महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने सन् १४००-१८५० ई० तक अंकुरोद्भव या मध्यकाल की सीमा को स्वीकार किया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी कविता के जिस काल को अंकुरोद्भव काल कहा है, वास्तव में वह हिन्दी कविता का मध्यकाल ही है। मध्य-काल के प्रारम्भ के विषय मे चाहे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मिश्रबन्धु एवं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी मे भले ही मतैक्य न हो, परन्तु जहा तक मध्यकाल की अन्तिम सीमा का प्रश्न है प्राय: ये सभी विद्वान् पद्माकर एवं द्विजदेव का कविता काल अर्थात् लगभग संवत् १९०० को मध्यकाल का अन्त मानते हैं।[3]।

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने संवत् १३७५ तथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सन् १४०० ई० अर्थात् संवत् १४५७ को हिन्दी-मध्यकाल का आरम्भ माना है। हमारे आलोच्यकाल के प्रथम प्रबन्ध काव्य मुल्ला दाऊद कृत चंदायन का रचनाकाल भी विद्वानों ने सन् १३७९ ई० स्वीकार किया है।[4] यह समय अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल का था, जिसमे हिन्दुओं पर बहुत सख्ती की जा

१—मिश्रबन्धु विनोद 'मिश्रबन्धु'।

२—हिन्दी साहित्य की वर्तमान अवस्था नामक लेख से (आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा १९११ ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वि० में पढ़ा भाषण)।

३—महाकवि मतिराम और मध्यकालीन हिन्दी कविता में अलंकरण-वृति : डा० त्रिभुवन सिंह, पृ० ४९।

४—कुतुबन कृत मृगावती- सं० डा० शिवगोपाल मिश्र, भूमिका, पृ० ३१।

रही थी। वे घोडे पर नही चढ सकते थे और किसी प्रकार की विलास सामग्री का उप-भोग भी नही कर सकते थे।[१] हिन्दू धर्म के प्रति अश्रद्धा होते हुये भी कुछ मुसलमानी हृदयों मे हिन्दू प्रेम-कथा के भाव मौजूद थे। डा० रामकुमार वर्मा भी चंदायन को संवत् १३७५ की साहित्यिक मनोवृत्ति का परिचायक मानते हैं।[२] इन सभी बातो को दृष्टि मे रखते हुये शुक्ल जी द्वारा निर्धारित संवत् १३७५ से लेकर १९०० तक हिन्दी साहित्य का मध्यकाल मानना अधिक उपयुक्त जान पडता है। इस सीमा के अन्तर्गत हमारे सभी आलोच्य प्रबन्ध काव्य (चंदायन, मृगावती, पद्मावती, मधुमालती, राम-चरितमानस, माधवानल कामकंदला, रसरतन, इन्द्रावती, विरह वारीश) आसानी से आ जाते हैं।

पूर्वमध्यकाल को प्रायः सभी विद्वानो ने भक्तिकाल स्वीकार किया है, परन्तु उत्तर-मध्यकाल के सम्बन्ध मे विभिन्न मत हैं। उसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल, मिश्रबन्धुओ ने अलंकृत काल, डॉ० रमाशंकर शुक्ल रसाल ने कलाकाल तथा पं० विश्व-नाथ प्रसाद मिश्र ने शृंगारकाल कहा है। इस नामकरण के औचित्य-अनौचित्य के विषय मे हमे यहाँ कुछ नही कहना है क्योकि हमारा सम्बन्ध तो केवल मध्यकाल की सीमा निर्धारण से है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल तथा रीतिकाल को आचार्य शुक्ल ने क्रम से पूर्वमध्यकाल तथा उत्तरमध्यकाल के नाम से अभिहित किया है। अत. भक्ति तथा रीतिकाल को मिलाकर हिन्दी साहित्य का मध्यकाल कहना अधिक उपयुक्त है।

सातवी शताब्दी के मध्य से उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक के काल को भारतीय इतिहास का मध्यकाल माना जाता है, परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल चौदहवी शताब्दी के मध्य से लेकर उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक स्वीकार किया गया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भारतीय इतिहास के उत्तर मध्यकाल के अन्तर्गत आता है। अतएव इतिहास के मध्यकाल की सामाजिक प्रवृत्तियाँ तथा जीवन दृष्टि ही मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे भी दृष्टिगोचर होती हैं। युग की परिस्थितियो का प्रभाव काव्य के उद्देश्य, प्रवृत्ति, वस्तु-विन्यास, रूप-संघटन तथा शिल्प आदि पर पडता है। इसलिये यहाँ यह देखना आवश्यक है कि मध्यकाल की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितयो ने तत्कालीन प्रबन्ध-काव्यों के रूप-निर्माण मे कितना योग प्रदान किया है और उनकी वस्तु तथा पद्धति को कितना प्रभावित किया है।

१—ए शार्ट हिस्ट्री आव दि मुस्लिम रूल, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० ११२।

२—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०६।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में सामाजिक परिस्थितियाँ प्राचीन भारत की परिस्थितियों से जितनी भी भिन्न हो गयी हों, किन्तु इतना तो मानना हो पड़ेगा कि लोक विश्वासों, रीतिरिवाजो तथा परम्परागत आचारों में अत्यधिक परिवर्तन नहीं हुआ। समाज मे राजा; सामंत, ब्राह्मण, धनी सेठ पुरोहित तथा धर्मगुरूओ का महत्त्व प्राचीन भारत के समान ही था। देवी-देवता, भूत-प्रेत एवं अतिप्राकृतिक शक्तियो में समाज के लोगो का विश्वास पहले जैसा ही बना था। योग, तंत्र तथा जादू-टोने मे लोगो का विश्वास पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया था। गुप्त साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय से तंत्र-साधना का प्रभाव पर्याप्त बढ़ गया था। महायान सम्प्रदाय की वज्रयान शाखा मे वामाचार अपनी अंतिम सीमा पर था। भारत के पूर्वी भागो मे पालवंश के राजाओं के प्रश्रय के कारण इसका प्रभाव क्षेत्र बिहार से आसाम तक फैला था। बौद्धो की वज्रयानी शाखा से ही प्रभावित गोरखनाथ ने योगसाधना प्रधान शैव सम्प्रदाय 'गोरखपन्थ' को स्थापित किया जो वैराग्य तथा अहिंसा मे आस्था रखता हुआ भी यौगिक सिद्धियो के चमत्कार-प्रदर्शन में पीछे नही था। इसी काल मे बंगाल मे शाक्ततंत्र तथा वैष्णवतंत्र का प्रचार भी हुआ।

मुसलमानो के आक्रमण के पश्चात् हिन्दू-धर्म क्रमशः संकीर्ण तथा रूढ़िबद्ध होता गया। गुप्तकाल एवं हर्षकाल की उनकी उदारता और सहानुभूति समाप्त हो गयी तथा अब वह असंख्य जातियो, संप्रदायो और पन्थो मे बँटकर किसी प्रकार आत्मरक्षा के नाम पर जातीय शुद्धि को ही परम उद्देश्य मानने लगा। दसवी शताब्दी तक वैदिक धर्म धीरे-धीरे पौराणिक धर्म मे परिवर्तित हो गया और उस पर स्मृतियो तथा धर्मशास्त्रो का नियंत्रण अधिक होता गया। ब्राह्मण को समाज का अत्यन्त श्रेष्ठ व्यक्ति ही नही, बल्कि 'भूसुर' माना जाने लगा। पुराणो की संख्या बढ़कर अठारह हो गयो तथा देवी-देवताओ के विषय मे विभिन्न तरह के निजन्धरी आख्यान प्रचलित हुये। बौद्ध धर्म सातवी शताब्दी के पश्चात् ही अवनति की ओर जा रहा था। मुसलमानी राज्य स्थापित होने के पश्चात् वह इस देश से लुप्त हो गया, परन्तु उसके अधिकाश विश्वास तथा आचार पूर्वी भारत की निम्न वर्ग की जातियो मे अब भी शेष रह गये। जैन धर्म भी इस काल मे अवतारवाद और योग-मार्ग का सहारा लेकर तथा पौराणिक रास्ते को ग्रहणकर अंध विश्वासो एवं संकीर्ण हो गया। यद्यपि साधारण जनता ने इस मे जैन धर्म को अधिक बढावा नही दिया किन्तु उच्च वर्ग द्वारा उसे प्रश्रय प्राप्त होता रहा।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल के अन्त तक भारतीय समाज को सामान्यत. यही स्थिति रही। लेकिन मुसलमानी राज्य की स्थापना के पश्चात् देश की सामाजिक स्थिति मे किंचित् परिवर्तन भी अवश्य हुआ था। मुसलमानों के सम्पर्क और उनके साथ संघर्ष

के परिणामस्वरूप हिन्दू जाति मे नवीन चेतना विकसित हुई। भक्ति-मार्ग का प्रारम्भ तो यद्यपि मुसलमानो के आगमन से पूर्व ही हो गया था तथा निर्गुण विचारधारा भी वेदान्त दर्शन, बौद्ध धर्म तथा नाथ-सम्प्रदाय मे पहले से विद्यमान थी, परन्तु इस्लाम धर्म के साथ सपर्क के कारण भक्ति तथा ज्ञान के रास्तो को अख्तियार कर हिन्दू धर्म ने अपना फिर सघटन आरम्भ किया। इस प्रकार इस काल मे वैष्णव भक्ति के चार सम्प्रदायो तथा ज्ञान-मार्ग के विभिन्न सम्प्रदायो का उदय हुआ। इन सम्प्रदायो ने एक नवीन आध्यात्मिक तथा धार्मिक आन्दोलन का रूप ग्रहण किया जिसके कारण समाज की गतिहीनता एव जडता बहुत कुछ दूर हुई। मुसलमानो के साथ अनेक सूफी साधक भी भारत मे आये और उन्होने यही रहकर अपनी शिष्य-परम्परा कायम की। कुछ समय के बाद इन सूफियो ने भारतीय लोक जीवन के बहुत स विश्वासो तथा तत्र मत्र की क्रियाओ को ग्रहण कर लिया किन्तु इसके साथ ही उन्होने फारसी प्रेम-पद्धति तथा सूफी मत के आध्यात्मिक एव दार्शनिक सिद्धान्तो का भी यहाँ प्रचार किया। उनके प्रयासो से हिन्दू तथा मुसलमान एक दूसरे के अधिक समीप आये।[1]

भारतीय इतिहास के मध्यकाल को राजनीतिक दृष्टि से सामन्ती वीर युग, सामन्ती साम्राज्य युग और ह्रासोन्मुख सामन्त युग-इन तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है। हर्षवर्धन के पश्चात् भारत मे कोई एक केन्द्रीय सत्ता नही रह गई थी। देश कई छोटे-छोटे राज्यो मे विभक्त हो गया था और उनके शासक व्यक्तिगत सुख-स्वार्थ के लिये आपस मे युद्ध तथा एक दूसरे की कन्याओ का हरण, राज्य विजय एव लूट खसोट किया करते थे। मुसलमानो के आक्रमण तथा राज्य-स्थापना के पश्चात् यह राजनीतिक विघटन और अधिक बढ गया। भारतीय राजाओ ने इन विदेशी आक्रामको का अत्यन्त वीरता से सामना किया, परन्तु राष्ट्रीय भावना तथा जातीय सघटन की कमी के कारण उन्हे पराजय मिला। इस सघर्ष काल मे भारतीय राजाओ तथा सामन्तों ने वीरता एव त्याग के ऐसे कार्य किये जिनके कारण उनमे से अनेक ने ऐतिहासिक व्यक्तित्वो ने निजन्धरी रूप धारण कर लिया। उस समाज मे सघर्ष की बहुलता के कारण वह व्यक्ति अधिक सम्मान का अधिकारी होता था जो वीरता का प्रदर्शन अधिक करता था।

मुगल साम्राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् देश की राजनीतिक स्थिति मे कुछ स्थिरता नजर आई। सम्राट अकबर की कला प्रियता, उसके विद्यानुराग, और उदारवादी दृष्टिकोण ने भारतीय सस्कृति एव कला मे एक अद्भुत मोड उपस्थित किया।[2] मुसलमानो राज्य स्थापित होने के पहले साहित्य तथा सस्कृति को राजाओ

१–हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ० १२२।
२—हिन्दी साहित्य एक परिचय–डा० त्रिभुवन सिंह पृ० १०५।

या धार्मिक संप्रदायों का आश्रय प्राप्त था। मुगल राज्यकाल में छोटे-छोटे राजा या तो समाप्त हो गये या बिल्कुल श्रीहीन। इसलिये संस्कृति तथा साहित्य के विषय मे होने वाले प्रयास भी इस काल में अधिकतर लोकाश्रित अथवा धर्माश्रित हो गये। यह अवश्य है कि मुगल-दरबार और तत्कालीन कुछ हिन्दू राजाओं के दरबार मे भी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्यों को प्रोत्साहन मिलता रहा, परन्तु इन प्रयत्नों में जातीय विश्वास तथा धार्मिक आस्था का अभाव था। ये दरबार मात्र सामन्ती-प्रवृत्तियों के पोषक थे, इसलिये उनके आश्रय मे रचित साहित्यमें भी रूढिबद्धता, विलासप्रियता तथा शास्त्रीयता ही अधिक परिलक्षित होती है। इस तरह हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में साहित्य तथा संस्कृति की मूल विकसनशील धारा राजदरबारों से नहीं, बल्कि लोक जीवन से होकर प्रवाहित होने लगी।

मुगलकाल मे देश की साधारण जनता में पुनर्जागरण का उत्साह था परन्तु उच्चवर्गों मे विलासिता, तथा शृंगारिकता की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियाँ ही अधिक थी। शाहजहाँ के समय मे यह विलासिता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। सम्राट स्वयं मयूर सिंहासन पर बैठता था जो सुवर्ण का बना हुआ था तथा जिसमे अनेक मूल्यवान रत्न सुरुचि और सुन्दर कलात्मकता के साथ जुड़े हुये थे। सर्वत्र एक अजीब गति, एक अजीब अदा दिखलायी पड़ती थी।[1] इसी समय से मुगल साम्राज्य पतन की ओर तीव्र गति से अग्रसर होने लगा। परवर्ती मुगल बादशाहों में विलासिता, शृंगारप्रियता, स्वार्थपरता तथा राज्यलोलुपता की प्रवृत्ति और अधिक बढ़ती गयी। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य की शक्ति पर्याप्त क्षीण हो गई तथा वह विघटित होने लगा। मुगलों के सूबेदार तथा अधीन राजा स्वतंत्र हो गये। किन्तु इस विघटन मे एक बात यह हुई कि मुगल दरबार की विलासिता तथा शृंगारिकता और मुगल सम्राटों के अन्तःपुर की प्रणयलीला, ईर्ष्या-कलह तथा षड्यन्त्रों की सामन्ती प्रवृत्तियाँ इन स्वतंत्र नबाबों तथा राजाओं के यहाँ भी प्रवेश कर गयीं। इस प्रकार प्रत्येक नबाब तथा राजा के दरबारों ने छोटे मुगल दरबार का रूप ले लिया। इन दरबारों में काव्य एवं कला को सामन्ती शौक के रूप में उसी तरह प्रश्रय मिला जिस तरह मुगल दरबार में मिलता था। मुसलमानों के राज्य-स्थापन के पहले भी भारत में साहित्य तथा कला को राज्याश्रय उपलब्ध था और विविध भाषाओं के कवि, आचार्य तथा विभिन्न विषयो के पंडित दरबारों में रहते थे, परन्तु पठानों के राज्यकाल मे यह सम्भव नहीं था क्योंकि पठान बादशाह कट्टर मुसलमान होने के कारण साहित्य तथा कला के विरोधी थे। बाद में अकबर ने साहित्य और कला को पुनः राज्याश्रय प्रदान

१—हिन्दी साहित्य एक परिचय : डा० त्रिभुवन सिंह, पृ० १०६।

किया।[1] जिस प्रकार संस्कृत का रीतिबद्ध साहित्य अधिकतर राज्याश्रय मे निर्मित हुआ था, ठीक उसी प्रकार अकबर के समय से ही दरबारी वातावरण मे शास्त्रीय पद्धति का काव्य पुनः लिखा जाने लगा जो उत्तरमध्यकाल मे राजदरबारो के विलासितापूर्ण शृंगारिक वातावरण मे तीव्र गति से निर्मित होने लगा। इस प्रकार पूर्वमध्यकाल मे साहित्य का जो प्रवाह लोकाश्रित हो गया था, उत्तर मध्यकाल मे वह पुनः राजदरबारो मे चला आया। सामन्ती वातावरण मे पनपने के कारण पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य की तरह इस धारा का काव्य भी रीतिबद्ध, शास्त्रानुगामी तथा शृंगारिक था। वीरकाव्य तथा नीति काव्य भी सामन्ती वातावरण मे लिखा अवश्य गया किन्तु रीतिकाव्य तथा रीतिशास्त्र की अपेक्षा वह गौण था।

उपर्युक्त सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिस्थितियो के संदर्भ मे रचित मध्यकालीन हिन्दी साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि उस काल का सम्पूर्ण हिन्दी काव्य लोकाश्रित तथा राज्याश्रित इन दो परम्पराओ मे निर्मित हुआ है। भारतीय इतिहास के समूचे मध्यकाल मे इन दोनों परम्पराओ की काव्य-धारायें समान रूप से प्रवाहित होती दिखलाई पडती हैं। भारतीय इतिहास के मध्यकाल के पूर्वार्द्ध मे यानी हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के पूर्व के काल मे इन दोनो धाराओ की शक्ति बराबर थी। उस काल मे सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश इन तीनो भाषाओ का साहित्य राज्याश्रित तथा लोकाश्रित दोनो था, लेकिन उन दोनो धाराओ के बीच की दूरी ज्यादा नही थी। राजदरबारो मे विद्वान् पंडितो तथा शास्त्रपरम्परा वाले कवियो के साथ लोक कवियो अर्थात् चारण, भाट आदि को भी सम्मान तथा स्थान प्राप्त होता था और शास्त्र परम्परा के कवि भी यदा-कदा लोकाश्रित काव्य-परम्परा की पद्धतियो का अनुसरण कर काव्य-रचना करते थे। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि तत्कालीन धार्मिक तथा पौराणिक परम्परा को भी लोकाश्रित परम्परा के अन्तर्गत ही रखना चाहिए क्योकि उस काल मे जैन धर्म तथा हिन्दू धर्म दोनो बहुत अधिक लोकोन्मुख हो गये थे। आगे जाकर हिन्दी साहित्य के पूर्वमध्यकाल मे ये दोनो धारायें

१—'पठान शासक भारतीय सस्कृति से अपने कट्टरपन के कारण दूर ही रहे। अकबर की चाहे नीति कुशलता कहिये चाहे उदारता, उसने देश की परंपरागत संस्कृति मे पूरा योग दिया जिससे कला क्षेत्र में फिर से उत्साह का संचार हुआ।'

—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प० सं०, पृ० १८१।

एक दूसरे से दूर हट गयी। युग की परिस्थितियों के कारण जिनकी चर्चा ऊपर की गई है, लोकाश्रित धारा बहुत प्रबल हो गई तथा राज्याश्रित धारा अधिक शास्त्रीय तथा रूढ़िबद्ध होकर मन्द गति से प्रवाहित होती रही। परन्तु उत्तरमध्यकाल मे युग की परिस्थितियो मे परिवर्तन के कारण राज्याश्रित काव्यधारा अधिक प्रबल हो गयी और लोकाश्रित काव्यधारा का प्रवाह मंद हो गया।

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो में भी लोकाश्रित तथा राज्याश्रित ये दो परम्परायें अलग-अलग स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। लोकाश्रित प्रबन्धकाव्यो मे संस्कृत साहित्यशास्त्र के नियमो का अनुसरण न करके लोक-कथाओ, अवदानों तथा निजन्धरी आख्यानो की प्रवृत्ति ग्रहण की गई है। प्रबन्ध-रूढि, वस्तुवर्णन तथा कथा-संघटन, इन सभी दृष्टियों से लोकाश्रित प्रबन्ध काव्य राज्याश्रित प्रबन्ध काव्यों से भिन्न कोटि के हैं। राज्याश्रित प्रबन्ध काव्यो की मुख्य प्रवृत्ति शास्त्रीयता है। उनमे संस्कृत साहित्य द्वारा निर्दिष्ट प्रबन्ध-रूढि, वर्णन-विधि, वस्तुयोजना, अलंकार इत्यादि से सम्बन्धित नियमों का अनुसरण किया गया है। इसी कारण उसमे परिपाटी विहित और अप्रासंगिक वस्तु-वर्णन की अधिकता दिखाई पड़ती है।[१] लोकाश्रित धारा के प्रबन्ध काव्य प्राय लोक जीवन की सादगी तथा सहजता से युक्त हैं, किन्तु राज्याश्रित धारा के प्रबन्ध काव्यो मे शास्त्राभ्यास के परिणामस्वरूप वाग्वैदग्ध्य, पाडित्यप्रदर्शन तथा शैलीगत चमत्कारों का बाहुल्य है। उनमे कृत्रिमता तथा आभिजात्य की प्रवृत्ति मुख्यत. पायी जाती है। उद्देश्य की दृष्टि से भी इन दोनो धाराओ के प्रबन्ध काव्यो मे बहुत अधिक भेद दिखलाई पड़ता है। लोकाश्रित धारा के प्रबन्ध काव्यो का उद्देश्य कोई धार्मिक आध्यात्मिक अथवा सामाजिक लोकादर्श उपस्थित करके समाज को ऊंचा उठाने के लिये प्रेरणा देना था अथवा विशुद्ध रूप से रोमाचक कथा कहकर लोगो के मन का अनुरंजन करना। उसके ठीक विपरीत राज्याश्रित धारा के प्रबन्ध काव्यो का उद्देश्य मात्र पाडित्य प्रदर्शन करना अथवा दरबारी वातावरण मे रहने वाले अभिजात रुचि के लोगो को चमत्कृत तथा अनुरंजित कर अधिकाधिक सम्मान एवं धन प्राप्त करना था। उत्तर मध्यकाल मे राज्याश्रित काव्यधारा के प्रबल हो जाने पर

१ — किसी आचार्य ने कह दिया कि महाकाव्य मे इतने सर्ग होने चाहिए और इन वस्तुओं का वर्णन होना चाहिए फिर क्या था, जिसे महाकाव्य लिखने का हौसला हुआ उसे झखमारकर उन सब वस्तुओ का वर्णन करना पड़ा, चाहे कथा के प्रसंग में किसी वस्तु की आवश्यकता बिल्कुल न हो। इस प्रकार उन्हें अप्रासंगिक वर्णन का भी समावेश अपने काव्यो मे करना पड़ा।

'रस मीमांसा'—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रथम संस्करण, पृ० ६७।

पांडित्य-प्रदर्शन तथा चमत्कारप्रियता की प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गयी कि लोक-जीवन को प्रभावित करने वाले काव्यों की रचना की तरफ से कवियों का ध्यान हट गया।[१]

मध्यकाल मे लिखे गये सभी प्रबन्ध काव्य शैली की दृष्टि से चार वर्गों में रखे जा सकते हैं—शास्त्रीय, प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक, पौराणिक तथा रोमांचक। इनमें से शास्त्रीय तथा प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक शैली के काव्य राज्याश्रित धारा तथा पौराणिक और रोमाचक शैली के काव्य लोकाश्रित धारा के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि एक ही कथावस्तु को लेकर दो अथवा दो से अधिक शैलियो मे भी प्रबन्ध काव्य की रचना हुई है। उदाहरण के लिये राम की पौराणिक कथा लेकर शास्त्रीय तथा पौराणिक दोनो शैलियो के प्रबन्ध काव्यो की रचना संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी तीनो भाषाओ मे की गयी है। इसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाओ तथा पुरुषो को लेकर भी शास्त्रीय शैली तथा प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक शैली दोनो मे ही प्रबन्ध काव्य लिखे गये हैं।

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो में तीन प्रकार की कथावस्तु प्राप्त होती है—(१)—आश्रयदाता राजाओ और उनके पूर्व पुरुषों के जीवनचरित से संबंधित (२) इतिहास-पुराण के ख्यात वृत्त पर आधृत अथवा अनुत्पाद्य और (३) कल्पित अथवा उत्पाद्य। इतिहास-पुराण के ख्यात वृत्त को लेकर इस काल मे शास्त्रीय, पौराणिक तथा रोमाचक इन तीनो शैलियों मे प्रबन्ध काव्यो की सृष्टि हुई है। इसी प्रकार समसामयिक राजाओ तथा उनके पूर्वपुरुषो से संबंधित प्रबन्ध शास्त्रीय एवं ऐतिहासिक दोनो शैली मे लिखे गये। कभी-कभी दरबारी कवि अपने आश्रयदाता की ख्याति बढ़ाने अथवा उसे प्रसन्न करने के लिये उसके विषय मे संभावनामूलक कल्पित घटनाएँ जोड़कर उसके व्यक्तित्व को निजन्धरी रूप दे देते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण मध्यकाल में संस्कृत, प्राकृत मे ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्य रोमाचक शैली मे भी लिखे गये हैं या उनमें ऐतिहासिक तथा रोमांचक दोनो शैलियो का मिश्रण हो गया है। परन्तु कल्पित अथवा उत्पाद्य कथावस्तु को आधार बनाकर रचे गये काव्यो में मात्र रोमाचक शैली ही प्राप्त होती है। कभी-कभी रोमांचक प्रबन्ध काव्यों की कल्पित कथा के साथ किसी ऐतिहासिक पुरुष का नाम तथा उसके जीवन की कुछ ऐतिहासिक घटनायें भी जोड़ दी जाती हैं। जायसी का पद्‌मावत ऐसा ही रोमांचक प्रबन्ध काव्य है जिसमें कुछ ऐतिहासिक पात्रो का नाम जोड़कर उसमें ऐतिहासिकता का आभास उत्पन्न किया गया है।

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक-रूढ़ियाँ-डा० व्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ६६।

बाणभट्ट के हर्षचरित से आश्रयदाता राजाओं के जीवन से संबंधित चरितकाव्य की जो परम्परा चली, वह संस्कृत तथा प्राकृत से होती हुई हिन्दी मे भी पहुँची। सम्पूर्ण मध्यकाल में साहित्य को आश्रय देने मे राजाओ का उद्देश्य कवियो को मात्र प्रोत्साहित करना ही नहीं, अपितु अपनी कीर्ति को स्थायी बनाना भी था तथा आश्रित कवियो की यह धारणा भी थी कि राजाओ की प्रशंसा करके धन तथा सम्मान उपलब्ध किया जा सकता है। इस प्रकार हिन्दी मे आश्रयदाता राजाओ और उनके पूर्व पुरुषो के जीवन से संबंधित काव्यो की सृष्टि आदिकाल से लेकर मध्यकाल के अन्त तक होती रही।

हिन्दी के उत्तरमध्यकाल मे प्रशस्तिमूलक काव्यो की रचना अत्यधिक हुई लेकिन उनमे से अधिकांश काव्य आश्रयदाताओ की युद्ध-वीरता, दान-वीरता आदि की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा मे लिखे गये केवल मुक्तकों के संग्रह ही हैं। जो प्रशस्तिमूलक काव्य प्रबन्ध रूप मे प्राप्त होते हैं उनमें से अधिकांश चरितनायक की अप्रसिद्धि के कारण महत्वपूर्ण नही हैं, इसका कारण यह है कि उन नायको के प्रति साधारण जनता के हृदय मे आदर का भाव उतना नही था। इन काव्यो के विषय मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'ऐसी पुस्तको मे सर्वप्रिय और प्रसिद्ध वे ही हो सकी हैं जो या तो देव काव्य के रूप मे हुई हैं अथवा जिनके नायक कोई देश प्रसिद्ध वीर या जनता के श्रद्धाभाजन रहे हैं—जैसे शिवाजी, छत्रशाल, महाराणा प्रताप आदि। जो पुस्तकें यो ही खुशामद के लिये, आश्रित कवियो की रूढ़ि के अनुसार लिखी गईं, जिनके नायको के लिये जनता के हृदय मे कोई स्थान न था, वे प्राकृतिक नियमानुसार प्रसिद्धि न प्राप्त कर सकी। बहुत सी तो लुप्त हो गईं। उनकी रचना मे सच पूछिये तो कवियो ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय ही किया।'[१] इस काल में जो ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्य लिखे गये उनमे घटनाओ की योजना ऐतिहासिक घटनाओ को ध्यान में रखकर की गई है। इन काव्यों का मुख्य उद्देश्य आश्रयदाताओं की प्रशंसा करना अथवा उनकी कीर्ति को स्थायी बनाना है। मान कवि का राजविलास, गोरेलाल का छत्रप्रकाश, जोधराज का हम्मीररासो, चन्द्रशेखर का हम्मीरहठ और सूदन का सुजानचरित ऐतिहासिक शैली के मुख्य उल्लेखनीय प्रबन्ध काव्य हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक शैली के इन काव्यों मे संस्कृत के ऐतिहासिक चरित काव्यों की प्रणाली का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया गया है।

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संशोधित संस्करण, पृ० २८२।

ऐतिहासिक कहे जाने वाले अधिकतर भारतीय काव्यो मे अनेक अनैतिहासिक तथ्य भी प्राप्त होते हैं। भारतीय ऐतिहासिक काव्यो को तीन श्रेणियो मे रखा जा सकता है—

१—समसामयिक कवियो द्वारा लिखे गये ऐतिहासिक काव्य

२—परवर्ती कवियो द्वारा लिखे गये ऐतिहासिक काव्य

३—विकसनशील ऐतिहासिक काव्य

इनमे से पहले प्रकार के ऐतिहासिक काव्य प्रशस्तिमूलक होते हैं, जिनमे कवि अपने आश्रयदाता के जीवन से सम्बन्धित घटनाओ या सम्पूर्ण जीवनवृत्त का वर्णन करता है। ऐसे काव्य भी दो प्रकार के हो सकते हैं—पहले मे कवि प्रमुख रूप से अपने कथानायक के जीवन की वास्तविक घटनाओ को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाता है तथा दूसरे मे ऐतिहासिक घटनाओ के साथ ही अनेक कवि-कल्पित घटनायें भी मिली जुली रहती हैं। परिवर्ती कवियो द्वारा रचित ऐतिहासिक काव्यो मे कल्पित घटनाओ के साथ ही नायक के जीवन से सम्बन्धित अनेक निजन्धरी घटनायें भी कवियो द्वारा ऐतिहासिक तथ्य के रूप मे स्वीकार कर ली गई हैं। हम्मीररासो मे महिमामगोल सम्बन्धा घटना इसी तरह की है। विकसनशील ऐतिहासिक प्रबन्धकाव्यों मे ऐतिहासिकता की और भी कमी होती है इसका कारण यह है कि उनके मूल रूप मे निजन्धरी तथा कल्पित घटनायें तो विद्यमान होती ही हैं, बाद के उनके विकसित रूप मे प्रक्षेपको द्वारा अनक परवर्ती ऐतिहासिक व्यक्तियो तथा काल्पनिक घटनाओ से सम्बन्धित प्रसग भी जोड दिये जाते हैं। पृथ्वीराज रासो को इसी तरह का विकसनशील ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है।

हिन्दी के मध्यकालीन ऐतिहासिक प्रबन्ध काव्यो मे अधिकतर ऊपर वर्णित प्रथम प्रकार के ऐसे काव्य हैं जिनमे कवियो ने अपने आश्रयदाताओ के जीवन से सम्बन्धित वास्तविक घटनाओ को ही प्रधानत अपने प्रबन्धो का वर्ण्य विषय बनाया है। कल्पना का योग इनमे भी कम नही है, परन्तु वह चरितनायको की विशेषताओ के अतिशयोक्तिपूर्ण काव्यात्मक वर्णन तक ही सीमित है।

मध्यकाल को लोकाश्रित परम्परा मे प्राय पौराणिक तथा रोमाचक शैली के प्रबन्धकाव्यो की सृष्टि हुई। पौराणिक शैली के प्रबन्ध काव्यो की कथा वस्तु मुख्यत वाल्मीकि रामायण, महाभारत और पुराणो से ली गई है। पौराणिक शैली के प्रबन्ध-काव्यो म प्रबन्ध रचना तथा वस्तु-योजना की प्रणाली न तो बिल्कुल रामायण, महाभारत तथा पुराणो जैसी होती है और न शास्त्रीय शैली के प्रबन्ध काव्यो जैसी ही। उनमे पुराण और शास्त्रीय प्रबंध काव्य की शैलियो का मिश्रण होता है। रोमाचक शैली के प्रबन्ध-

काव्यो पर कथा-आख्यायिका का प्रभाव अधिक होता है। कथा-आख्यायिका की भाँति इनमें काल्पनिक तथा रोमांचक प्रेम-प्रसंग से युक्त चमत्कारपूर्ण तथा कुतूहल जनक घटनाओ और पात्रो के साहसिक कार्यों की अधिकता रहती है। इस तरह लोकचित्त के अनुरंजक तत्वो की प्रधानता रोमांचक शैली के प्रबन्ध काव्यों की मुख्य विशेषता है। पौराणिक विषयो को लेकर मध्यकाल मे रामचन्द्रिका, सुदामाचरित, रामस्वयम्बर आदि प्रबन्ध-काव्य शास्त्रीय शैली मे लिखे गये हैं।

इस काल में जिन पुराण-इतिहास की कथाओं को प्रमुख आधार बनाकर पौराणिक तथा रोमाचक शैली के प्रबन्ध काव्यो की रचना हुई वे इस प्रकार हैं—(१) रामकथा को लेकर लिखे गये प्रबन्ध काव्यों मे रामचरितमानस का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। (२) नल-दमयन्ती की कथा का मूल उत्स महाभारत है। हिन्दी में इस कथा को लेकर लिखे गये तीन मध्यकालीन प्रबन्ध काव्य इस समय उपलब्ध हैं, सूरदास का नल-दमन, कुंवर मुकुन्द सिंह का नलचरित्र तथा सेवाराम का नल-दमयन्ती-चरित्र। (३) उषा-अनिरुद्ध की पौराणिक प्रेम-कथा को आधार बनाकर लिखे गये इस काल के चार प्रबन्ध काव्य प्राप्त होते हैं :—जनकुंजकृत उषाचरित, जीवनलाल नागर कृत उषाहरण, मुरलीदास कृत उषाचरित और रामदास कृत उषा की कथा। उपयुंक्त प्रबन्ध काव्य उषा-अनिरुद्ध की परम्परागत कथा-वस्तु को लेकर रोमांचक शैली मे लिखे गये हैं। नल-दमयंती तथा उषा-अनिरुद्ध की पौराणिक कथा मध्ययुगीन सामाजिक अभिरुचि के कारण रोमांचक प्रेमाख्यान के रूप मे परिवर्तित हो गई है।

मध्यकाल मे लिखे गये हिन्दी के उपलब्ध रोमांचक शैली के प्रबन्धकाव्य तीन प्रकार के हैं—

१—आध्यात्मिकता मूलक प्रेमाख्यान काव्य

२—लौकिक प्रेमाख्यान काव्य

३—नीतिपरक आख्यानक काव्य।

इन तीनो ही प्रकार के काव्यों मे मात्र उद्देश्य का भेद है, इसके अतिरिक्त काल्पनिक कथावस्तु की योजना, कथाशिल्प और कथाभिप्रायो के प्रयोग की दृष्टि से उनमें पर्याप्त समता मिलती है। ऐतिहासिकता का आभास देने वाले काव्यों-पद्मावत, छिताई-वार्ता तथा पद्मिनीचरित्र में—कवियो का उद्देश्य ऐतिहासिक पुरुषों का नाम लेकर विशुद्ध काल्पनिक रोमांचक कथा कहना है। इस प्रकार इस काल के रोमांचक शैली के सभी प्रबन्ध काव्य काल्पनिक कथावस्तु को लेकर लिखे गये हैं।

मध्यकालीन रोमांचक शैली के प्रबन्ध काव्यो में सूफी कवियो द्वारा लिखे गये काव्य आध्यात्मिकता मूलक हैं यानी उनमें लौकिक प्रेम-कथा को मुख्य आधार बनाकर प्रतीक तथा समासोक्ति पद्धति द्वारा सूफी परम्परानुसार आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना की गई है। इन प्रेमाख्यानो का प्रधान उद्देश्य भारतीय जीवन से सम्बन्धित रोमांचक कथा कहकर उसी के माध्यम से सूफी सिद्धान्तों का प्रचार करना और आध्यात्मिक प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करना था ! इस प्रकार के आध्यात्मिकतामूलक काव्यों की परम्परा अरब तथा फारस मे पूर्व से ही विद्यमान थी, लेकिन भारत मे यह मुसलमानो के आने के पश्चात् आरम्भ हुई। धार्मिक तथा नैतिक उद्देश्य से लोक-प्रचलित कथाओ के आधार पर कल्पित कथाकाव्य या धर्मकथा या दृष्टान्तकथा लिखने की परम्परा इस देश मे वर्तमान अवश्य थी, जिन्हे जातको, जैन चरितो और धर्म-कथाओ मे देखा जा सकता है।

लौकिक प्रेमाख्यानक काव्य लिखने की परम्परा इस देश में अत्यन्त प्राचीन है। महाभारत तथा पुराणो मे नल-दमयन्ती, उषा-अनिरुद्ध, पुरूरवा-उर्वशी और दुष्यन्त-शकुन्तला आदि के प्रेममूलक उपाख्यान विद्यमान हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। पुरूरवा उर्वशी की कथा का मूल रूप ऋग्वेद मे वर्तमान है। प्राकृत तथा अपभ्रंश मे इस तरह से लौकिक प्रेमाख्यान काव्य लिखे गये जिनकी कथावस्तु कल्पित एवं ख्यात दोनो ही तरह की है। अपभ्रंश के जैन चरितकाव्यो पर धार्मिक रंग-चढ़ाने का प्रयत्न भी किया गया है, परन्तु उनका मूल स्वर ऐहिक प्रेम का ही है। हिन्दी मे ऐहिकतामूलक प्रेमाख्यानक काव्यो की परम्परा अपभ्रंश की उसी प्रेममूलक रोमांचक चरित काव्यो की परम्परा का ही विकसित रूप है, इस पर आगे विचार किया जायगा। हिन्दी के इन प्रेमाख्यानक काव्यो मे धार्मिकता अथवा उपदेशात्मकता का रंग नही है, इनका उद्देश्य तो शुद्ध रूप से लोकचित्त का अनुरंजन करना है। बहुत सम्भव है कि लोक-कथाओ से अधिक प्रेरणा लेने के कारण उनमें इस प्रवृत्ति की अधिकता हो। इसके अतिरिक्त इनपर तत्कालीन सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो का प्रभाव भी प्रेम तथा विरह के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन और कथावस्तु की योजना मे साफ परिलक्षित होता है, किन्तु सूफी काव्यो का आध्यात्मिक उद्देश्य तथा प्रतीकात्मक एवं सांकेतिक पद्धति इनमे उपलब्ध नही होती। इसी अर्थ मे ये प्रेमाख्यानक काव्य सूफी प्रेमाख्यानो से भिन्न हैं। मध्यकाल मे लिखित पुहकर का रसरतन, नारायणदास की छिताईवार्ता, दुखहरन की पुहुपावती, मेघराज की मृगावती, आलम का माधवानल कामकंदला, जटमल नाहर की प्रेम-विलास

प्रेमलता कथा, मृगेन्द्र का प्रेम-पयोनिधि, राजा चित्रमुकुट रानी चन्द्रकिरन की कथा आदि इसी प्रकार के लौकिकतामूलक प्रेमाख्यानक काव्य हैं।

जैन चरितकाव्यो में कुछ ऐसे भी काव्य हैं जिनमें किसी नैतिक या धार्मिक आदर्श अथवा सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए रोमांचक कथा का अवलम्ब लिया गया है। बौद्ध तथा हिन्दू धर्मकथाओं में भी यह पद्धति मिलती है किन्तु जैन काव्यो के समान रोमांचक तत्व उनमें नहीं उपलब्ध होते। हिन्दी मे रोमांचक धर्मकथाओं की यह परम्परा अधिक समृद्ध नही है। केवल ईश्वरदास की सत्यवती कथा में सतीत्व का महत्व तथा उसकी अलौकिक शक्ति दिखाने के लिए ऋतुवर्ण एवं सत्यवती की कल्पित कथा को आधार बनाया गया है। इस तरह की कथाओं के विषय मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन अत्यन्त उपयुक्त है कि कहीं-कहीं तो केवल कुछ नाम ही ऐतिहासिक या पौराणिक रहते थे, वृत्त सारा कल्पित रहता था, जैसे ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा।[1]

उपर्युक्त मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे जिन निजन्धरी एवं कल्पित घटनाओ की चर्चा की गई है उनके बीच हमें अपभ्रंश चरितकाव्यों—यथा णायकुमार चरिउ, जसहर चरिउ, भविसयत्त कहा आदि मे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इन प्रबन्ध काव्यो में जिस प्रकार के रीति-रिवाज, सामाजिक आचार-विचार, पारिवारिक ईर्ष्या, कलह एवं रूढ़ियो का चित्रण हुआ है उनका मूल भी अपभ्रंश के इन चरित काव्यो मे देखा जा सकता है। मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे लोकाश्रित धारा के प्रबन्ध काव्यो का उत्स इन चरित काव्यों मे ढूँढा जा सकता है। मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो के सही-सही मूल्यांकन एवं अध्ययन के लिये अपभ्रंश के इन चरितकाव्यो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इन चरित काव्यों के अध्ययन के बिना मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों की रूढियो को ठीक तरह से समझा नहीं जा सकता क्योंकि इन प्रबन्ध काव्यों में प्रयुक्त प्रायः सभी निजन्धरी घटनाओं एवं कथानक-रूढ़ियों का बीज हमें इन चरित काव्यो मे उपलब्ध होता है। ये चरितकाव्य लोकजीवन के अत्यन्त निकट हैं। अतः इनमे प्रयुक्त निजन्धरी घटनाओं एवं कथानक-रूढ़ियों के अध्ययन से तत्कालीन समाज की जानकारी बहुत भली प्रकार हो सकती है। ये अपभ्रंश चरित काव्य लोकाश्रित धारा के अन्तर्गत आते हैं, जिनमे करकंडचरिउ का स्थान सर्वोपरि है। करकंडचरिउ का अध्य-

---

१—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, परिवर्द्धित संस्करण, पृ० १६।

यन केवल इसलिये आवश्यक नहीं है कि वह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण चरित-काव्य है अपितु इसलिए भी आवश्यक है कि वह उस लोकाश्रित परम्परा का प्रतिनिधित्व करता हैं। केवल उदाहरण के लिये इस चरितकाव्य का चयन किया गया है क्योंकि कथानक-रूढियो की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों को समझने के लिए इसका अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इसमे प्रयुक्त अधिकाश कथानक-रूढियो का प्रयोग मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यो मे हुआ है।

★

दूसरा अध्याय

अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों को परम्परा से प्राप्त दाय

अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों को परम्परा से प्राप्त दाय

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रबन्ध काव्य को एक विस्तृत वनस्थली तथा मुक्तक को एक चुना हुआ गुलदस्ता कहा है। सम्पूर्ण वनस्थली के सौन्दर्य का परिशीलन करने के लिये हमें समय चाहिये, परिश्रम के बिना वह साध्य भी नहीं, पर सुन्दर गुलदस्ता हमारे समक्ष काव्य-वनस्थली के चुने हुए सूक्ष्म किन्तु रमणीय परिवेश को उपस्थित कर देता है। भले ही कुछ विद्वान मुक्तक के रस परिपाक को प्रबन्ध काव्य के रसपरिपाक से कुछ निम्न कोटि का मानें, परन्तु मुक्तक के एक-एक पुष्प-स्तवक मे मन को रमाने की अपूर्व क्षमता होती है। मुक्तक का 'रस चाहे (शुक्ल जी के शब्दो मे) कुछ छींटे ही हो, जिनसे कुछ देर के लिए हृदय-कलिका खिल उठती हो, परन्तु ये ही वे तुषार-कण हैं, जो हृदय की कलिका मे पराग का संचार कर मानव जीवन को सुरभित बनाते रहते हैं। मनुष्य के घात-प्रतिघातमय कटु जीवन के फफोलों पर मलहम का काम कर ये मुक्तक काव्य ही, उन फफोलों की खुजली को भले ही कुछ समय के लिये ही क्यो न हो, शान्त कर देते हैं। हृदय को रमाने की जो अपूर्व क्षमता सफल मुक्तक काव्यों मे पाई जाती है, वह प्रबन्ध काव्यों मे नहीं और संभवतः यही कारण है कि आनन्दवर्धन ने अमरुक कवि के एक-एक मुक्तक पद्य पर सैकड़ो प्रबन्ध काव्यों को न्योछावर करने की घोषणा की थी। वास्तव में अमरुक कवि के एक-एक मुक्तक पद्य में इतनी सरसता तथा जीवन्तता है कि सैकड़ों क्या हजारो प्रबन्ध काव्यों को उन पर न्यौछावर किया जा सकता है।[1]

यह तो निर्विवाद है कि महाकवि दुर्लभ कलाकार होता है तथा महाकाव्य कला का सर्वोत्तम विकास है। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि महाकाव्य किसी महाकवि की ही रचना होती है।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'कालरिज' ने महाकाव्य की रचना के लिए २० वर्षों की साधना की जो अपेक्षा की थी वह सवासोलहो आने सत्य है। काव्य को महाकाव्य के स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए एक विशिष्ट कौशल की आवश्यकता है। प्रतिभा को ज्ञान और चिन्तन के साथ संयुक्त करना पडता है। महाकाव्य के इसी गुरुतर कार्य को ध्यान मे रखकर कवि और आलोचक 'कालरिज' ने महाकाव्य के लिये

१—संस्कृत कवि दर्शन—डॉ० भोलाशंकर व्यास, पृ० ५३५।

२—काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डॉ० शकुन्तला दूबे पृ० ८४, ८५।

कम से कम २० वर्षों की साधना की अपेक्षा की थी।[1] जो लोग काव्य के लिये ८० प्रतिशत परिश्रम और १० प्रतिशत प्रतिभा की आवश्यकता अनुभव करते हैं, उनको महाकाव्य का ध्यान अवश्य ही रहता होगा।

संस्कृत के पद्यसाहित्य मे सबसे प्रमुख महाकाव्य साहित्य है। महाकाव्य प्रबन्धकाव्य की श्रेणी के इतिवृत्तात्मक विषय प्रधान काव्य हैं। संस्कृत साहित्य मे महाकाव्यो की विशेष पद्धति पाई जाती है। ये सर्गों मे विभक्त होते हैं जिनकी संख्या आठ से अधिक होती है। इनका नायक देवता या उच्च-कुलोत्पन्न राजा होता है जो धीरोदात्त कोटि का नायक होता है। नाटको की ही तरह महाकाव्य की कथावस्तु भी पंचसंधि-समन्वित होनी चाहिए। चतुर्वर्ग इन महाकाव्यो का लक्ष्य होता है और इनमे पुत्रजन्मोत्सव, विवाह, युद्ध आदि के वर्णन होते हैं। प्रकृति मे प्रभात, सायंकाल, चन्द्रोदय, षट्ऋतु वर्णन आदि पाये जाते हैं। महाकाव्य का अंगीरस, शृंगार, वीर या शान्त होता है, अन्य रस अंग रूप मे निबद्ध होते हैं।[2] महाकाव्यों का उपर्युक्त लक्षण सर्वप्रथम दंडी के काव्यादर्श मे पाया जाता है और ऐसा प्रतीत होता है कि दंडी ने अपने पूर्ववर्ती महाकाव्यो मुख्यतः कालिदास और भारवि के आधार पर यह परिभाषा निर्मित की है। अश्वघोष से लेकर बाद तक संस्कृत मे पचासो महाकाव्य लिखे गये हैं। इनमे वर्ण्य विषय की दृष्टि से दो श्रेणियाँ हैं: प्रथम के अन्तर्गत पौराणिक महाकाव्य आते हैं जिनकी कथा महाभारत या रामायण से ली गई है, दूसरी कोटि मे चरित सम्बन्धी महाकाव्य आते हैं, जो कि संस्कृत के ह्रासोन्मुख काल की रचनाएँ हैं। इन महाकाव्यो में राजसभा के कवियो ने अपने आश्रयदाता राजाओ की यशोगाथा का गान किया है। विक्रम की ११वी शतो से लेकर बहुत बाद तक इस तरह के तथाकथित ऐतिहासिक चरितकाव्यो की बहुलता संस्कृत साहित्य मे देखी जा सकती है जिसका प्रभाव हिन्दी के आदिकालीन चरितकाव्यो पर भी पडा है।

---

1. 'I should not think of devoting less than twenty years to an epic poem, ten years to collect materials and warm my mind to universal science...the next five in the composition of the poem and five last in the correction of it'.

   Quoted from 'The epic', Abercrombie page 37.

   आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान—डॉ॰ श्यामनन्दन किशोर, पृ॰ ८।

२—देखिए—दंडी : काव्यादर्श, १.१४-२२।

   हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास—डा॰ भोलाशंकर व्यास, पृ॰ २१०।

संस्कृत महाकाव्य के रचयिताओ में सर्वप्रथम अश्वघोष (सं० १८० वि०) का नाम उल्लेखनीय है जिनके दो महाकाव्य बुद्धचरित और सौंदरानन्द प्राप्त होते हैं। अश्वघोष के पूर्व का कोई महाकाव्य उपलब्ध नही है। पाणिनि के 'पातालविजय' और 'जांबवतीपरिणय' नामक महाकाव्यो का संकेत किंवदंतियों से मिलता है। पाणिनि के नाम से उपलब्ध सूक्ति पद्यो की शैली बहुत बाद की मालूम पडती है। अश्वघोष का स्थान निश्चित रूप से संस्कृत महाकाव्यकारो की प्रथम पंक्ति में नही आ पाता, जिसमे एक ओर रसवादी कालिदास, दूसरी ओर अलंकारवादी भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष इन चार कवियों का नाम लिया जा सकता है। परन्तु अश्वघोष का अपना एक महत्व है। अश्वघोष मे ही सर्वप्रथम कुछ ऐसी काव्य रूढ़ियाँ मिलती हैं, जिनका प्रयोग कालिदास से लेकर श्रीहर्ष तक मिलता है। इन रूढियों मे से प्रमुख दो रूढियो का उल्लेख कर देना आवश्यक होगा। बुद्धचरित के तीसरे सर्ग मे वनविहार के लिए जाते राजकुमार को देखने के लिए लालायित ललनाओ का वर्णन[1] अश्वघोष की स्वयं की उद्भावना न भी हो, लेकिन यह परम्परा सर्वप्रथम यहीं मिलती है। यही परम्परा या रूढ़ि रघुवंश के सप्तम सर्ग मे, तथा कुमार संभव के भी सप्तम सर्ग मे, माघ के तेरहवें सर्ग मे तथा श्रीहर्ष मे नैषध के सोलहवें सर्ग के अन्त में भी मिलती है। दूसरी महत्वपूर्ण रूढि वृक्षो के द्वारा वस्त्राभरणो को देने की है, जो कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल के चौथे[2] अंक मे भी मिलती है। इसका संकेत सौन्दरानन्द के दशम सर्ग के निम्न पद्य में भी मिलता है—

हारान् मणीनुत्तमकुण्डलानि केयूरवर्य्याण्यथनूपुराणि।
एवं विधान्याभरणानि यत्र स्वर्गानुरूपाणि फलन्ति वृक्षाः॥
(सौ० १०.२३)

"जहाँ वृक्ष स्वर्ग के योग्य हार, मणि, उत्तमकुण्डल, सुन्दर अंगद, नूपुर तथा ऐसे ही अन्य आभूषणो को फलित करते हैं।"

शैली की दृष्टि से अश्वघोष की शैली आदि कवि की भांति सरल और सरस है, हाँ कालिदास जैसी स्निग्धता का अश्वघोष मे अभाव है।

अश्वघोष की नीरस शैली का स्निग्ध रूप हमें कालिदास में प्राप्त होता है। यद्यपि

१—दे० बु० च० ३.१२-२४।

२—अभिज्ञानशाकुन्तल, ४ ४।

अश्वघोष और कालिदास[1] के बीच का कोई काव्य उपलब्ध नही होता, परन्तु अश्वघोष की शैली का परिपक्व रूप हरिषेण (सं० ४०७ वि०) की समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति मे देखा जा सकता है ।[2] कालिदास संस्कृत साहित्य का वह ज्वलंत दीप स्तम्भ है जिसमें अभिव्यंग्य और अभिव्यंजना, भावपक्ष और कलापक्ष का चरम समन्वय पाया जाता है ।[3] परन्तु कालिदास का सर्वाधिक महत्व इसलिए है कि उनके काव्य मे अपने युग की सामाजिक चेतना का सफल चित्रण हुआ है । उनमे संस्कृत साहित्य के महाकाव्यो का चरम उत्कर्ष दृष्टिगत होता है । कुमारसंभव और मेघदूत की अपेक्षा रघुवंश मे कवि की दृष्टि अधिक मानवीय है ।[4] उच्च मानवीय मूल्यो का पूर्ण निर्वाह इस पुस्तक मे हुआ है । कालिदास का कलापक्ष हमेशा भावपक्ष का उपस्कारक बनकर आता है ।

कालिदास के दो महाकाव्य है : कुमारसंभव तथा रघुवंश । इनके अतिरिक्त कालिदास के दो गीतिकाव्य (तथा कथित खंड काव्य) तथा तीन नाटक भी उपलब्ध हैं (ऋतुसंहार और मेघदूत तथा मालवकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल) । ऋतुसंहार छः सर्ग का एक छोटा-सा काव्य है । इसका प्रतिपाद्य विषय प्रकृतिचित्रण हे । ऋतुसहार मे कवि ने अपनी प्रिया को संबोधित कर छहो ऋतुओ का वर्णन किया हे । मेघदूत कालिदास की उन दो रचनाओ मे से एक हे जिनके कारण कालिदास ने विश्वख्याति प्राप्त की हैं । कवि ने १११ या ११८ पद्यो के इस छोटे से काव्य की गागर मे अपनी भावना के सागर को उडेल दिया है । कुमारसभव शिव पार्वती की कथा को लेकर लिखा गया है, तथा कालिदास की रचना मे इसके आठ सर्ग ही हैं । कुमारसंभव कवि के यौवन की उद्दाम प्रणय भावना से अंकित मालूम होता है । रघुवंश मे १९ सर्ग हैं, जिसमे दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के राजाओ

१—कालिदास के काल के विषय मे विद्वानो मे बडा मतभेद है । पंडितो का एक दल उन्हे विक्रम की प्रथम शताब्दी का मानता हे । हमने यहाँ अधिक प्रचलित मत को लेकर कालिदास को चंद्रगुप्त विक्रमादित्य का समसामयिक माना है ।

—हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २१२ ।

२—डा० ब्यूल्हर इंडियन इन्सक्रिप्शन एण्ड दि एंटिक्वेरी आफ इंडियन आर्टिफिशल पाएट्री—डा० ब्यूल्हर, पृ० २५–३७ ।

३—हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास—डा० भोलाशंकर व्यास, पृ० २१२ ।

4—'Unlike Kumar Sambhava or Meghduta, the Raghuvanmsa deals with characters that are human beings and for that reason are nearer to us'—Kalidas, A Study-Prof. G. C. Jhala, Page—92.

आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का शिल्प—विधान—डा० श्यामनन्दन किशोर, पृ० १४ ।

का वर्णन हुआ है। कालिदास ने प्रबन्धकाव्य को बाद के महाकाव्यों की भांति केवल नीरस ऊब भरे वर्णनों का आलवाल नहीं बनाया है। उनका ध्यान महाकाव्य की गतिशीलता की ओर हमेशा रहता है।

कालिदास कोमल भावो के कुशल चित्रकार हैं। शृंगार तथा करुण कालिदास के प्रमुख रस हैं। प्रकृति वर्णन में कालिदास का मन केवल प्रकृति के कोमल पक्षों मे ही रमता है, भवभूति की तरह उन्हें प्रकृति के गंभीर और भयावह पक्ष के प्रति रुचि नहीं। इसके अतिरिक्त कालिदास के काव्यों में कई ऐसी काव्यरूढ़ियाँ पाई जाती हैं, जो आगे के काव्यों का मार्ग प्रशस्त करती हैं। कुमारसंभव तथा रघुवंश के सप्तम सर्ग मे महादेव तथा अज को देखने के लिए लालायित पुर सुन्दरियो का वर्णन, रघुवंश के पंचम सर्ग का प्रभातवर्णन, षष्ठ सर्ग का स्वयंवर. वर्णन और अशोक, बकुल आदि के वर्णन मे दोहद सम्बन्धी रूढ़ियाँ कालिदास में ही सर्वप्रथम स्पष्ट रूप मे दिखाई पडती हैं। पुर सुन्दरियों वाले वर्णन का संकेत यद्यपि अश्वघोष में भी मिलता है, परन्तु कालिदास का यह निजी प्रिय विषय रहा जान पड़ता है। कालिदास की इन रूढ़ियो का प्रभाव माघ तथा श्रीहर्ष में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, जिसका उल्लेख इन कवियो के प्रसंग में किया जायगा।

परन्तु कालिदास ने काव्य के क्षेत्र में जिस मार्ग का संकेत किया उसका अनुकरण उनके परवर्ती कवियो को स्वीकार्य नही हुआ। उन्होंने कालिदास के कलापक्ष को तो आगे बढाया, परन्तु वे भावपक्ष को संभाल न पाये। कालिदास के परवर्ती काव्य अधिक अलंकृत परिवेश को लेकर आने लगे। इनका पहला प्रकट रूप भारवि के किरातार्जुनीय मे दिखलाई पड़ा।

भारवि (लगभग सं० ६०० वि०) दाक्षिणात्य थे और कुछ किंवदंतियों के अनुसार काञ्ची के किसी राजा के सभापंडित थे। भारवि की एक मात्र उपलब्ध कृति किरातार्जुनीय है, जो १८ सर्ग का महाकाव्य है। इसकी कथा महाभारत से ली गई है जिसमे पाशुपतास्त्र के लिए अर्जुन की तपस्या का वर्णन है। भारवि में पांडित्य प्रदर्शन की अधिकता है तथा इनका मुख्य उद्देश्य अर्थगौरव है। भारवि चित्रकाव्य के भी प्रेमी हैं। पंचम सर्ग मे अनेक प्रकार के यमक और पंचादश सर्ग में विविध चित्रकाव्यों का प्रयोग सबसे पहले भारवि में ही प्राप्त होता है। भारवि का भाव पक्ष कालिदास और माघ दोनो की अपेक्षा निम्न कोटि का है- और कलापक्ष मे भी माघ का स्थान प्रमुख है। भारवि नीति के, विशेषतः राजनीति के, बड़े भारी ज्ञाता प्रतीत होते हैं। पूरे काव्य में नीति भरी पड़ी है। 'वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः' न

वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः', 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' 'विश्वासरकासु सतां हि योगः'

इस प्रकार के न जाने कितने सुन्दर तथा उपादेय नीति वाक्य पंडितो की जिह्वा पर नाचा करते हैं। राजनीति की भांति ही भारवि कामशास्त्र के भी अच्छे पंडित हैं। भारवि शृंगार के कलापक्ष के कवि हैं। कालिदास प्रणय (सेन्टीमेंट आफ लव) के कवि हैं, भारवि प्रणय-कला (आर्ट आफ लव, टेकनीक आफ लव) के कवि। भारवि को कामशास्त्र का ज्ञान राजनीति से कम नही था।[1]

किरातार्जुनीय के आठवें, नवें तथा दसवें सर्ग में शृंगार के कई सरस स्थल हैं। अप्सराओं का वन-विहार, पुष्पावचय, जलक्रीडा तथा रतिकेलि का वर्णन भारवि के प्रणय-कला पाडित्य को प्रतिष्ठापित करने के लिए पर्याप्त है। काव्य मर्मज्ञो के लिए भले ही भारवि के चित्रकाव्यों का कोई महत्व न हो, परन्तु काव्यरूढियो का अध्ययन करने वालों के लिये ये कम महत्व नही रखते। भारवि की इन कलाबाजियो से ही उस जादूगरी का प्रारम्भ होता है, जिसकी शिष्यपरम्परा हिन्दी के केशव, सेनापति जैसे कई रीतिकालीन कवियो तक चली आई है। भारवि ने एक ही अक्षर वाला भी एक श्लोक[2] लिखा है। जिसमे 'न' के अतिरिक्त अन्य वर्ण है ही नही। अत: यत्र-तत्र इनका काव्य दुरूह हो गया है। इसीलिए मल्लिनाथ ने इनके काव्य को 'नारिकेलपाक' नारिकेल फल के समान बतलाया है (नारिकेल फल सन्निभं वचो भारवेः)। विविध छन्दो के प्रयोग मे भारवि कुशल हैं।

भारवि के ही मार्ग पर भट्टि (सं० ६८२ वि०) भी चलते दिखाई देते हैं। भेद मात्र इतना ही है कि भारवि का पाडित्य राजनीति का है तथा भट्टि का व्याकरण का। काव्य की दृष्टि से भट्टि काव्य बहुत निम्नकोटि का काव्य है, किन्तु इस काव्य की एक विशेषता अवश्य है कि २२ सर्ग के काव्य मे रामकथा के बहाने कवि ने व्याकरण के नियमो का प्रदर्शन किया है। भट्टि के काव्य का लक्ष्य निश्चित रूप से व्याकरण शास्त्र के शुद्ध प्रयोगो का संकेत करना है। भट्टि काव्य संस्कृत की उस महाकाव्य-परम्परा का संकेत करता है, जिसमे महाकाव्यो के द्वारा व्याकरण के नियमो का प्रदर्शन कवि का ध्येय रहा है। भारवि की कलावादिता का प्रभाव कुमारदास के जानकी हरण पर भी दिखलाई पड़ता है।

१—संस्कृत-कवि-दर्शन—डा० भोलाशंकर व्यास।

२—ननोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥ (१५।१४)

भारवि संस्कृत महाकाव्यों की कलावादी सरणि के प्रवर्तक हैं, लेकिन माघ (७३२ वि० सं०) इसके एकमात्र सम्राट। माघ ने भले ही भारवि के मार्ग पर चलना स्वीकार किया हो, परन्तु माघ का काव्य भावपक्ष, अर्थगाम्भीर्य, शब्दभाण्डार, पद विन्यास आदि सभी दृष्टियो से भारवि से आगे है। माघ का शृंगार भारवि के खेवे का विलासी शृंगार है। इस प्रकार माघ हिन्दी के रीतिकालीन कवियो के आचार्य भी ठहरते हैं। संस्कृत महाकाव्यो की परम्परा में कालिदास के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व माघ का ही दिखलाई देता है। विषय संविधान और शैली की दृष्टि से माघ का प्रभाव सम्पूर्ण परवर्ती काव्यो पर पडा है। रत्नाकर (९०७ वि० सं०) का हरविजय एवं हरिचंद्र (१० वी शती) का धर्मशर्माभ्युदय माघ के ढर्रे पर चलने वाले काव्यों मे प्रमुख हैं। इन उपरिउद्धृत समस्त परवर्ती काव्यों का केवल एक उद्देश्य शब्दयोजना तथा वक्रोक्ति के सहारे प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करना रहा है। इसलिए ये काव्य हृदय की अपेक्षा बुद्धि को अधिक छूते हैं।

माघ के बाद महाकाव्यो मे तीन प्रकार की रचनायें प्राप्त होती हैं। पहले प्रकार की कृतियो मे उन रचनाओं को गणना होती है जो पूर्णत. चित्रकाव्य कही जा सकती हैं। माघ के पश्चात् सस्कृत साहित्य मे यमक काव्यो और द्वयाश्रय श्लेष काव्यो की प्रचुरता दिखलाई पडती है। यहाँ पर महाकाव्य केवल शाब्दिक क्रीड़ा के क्षेत्र बन गये। यमक काव्यो के उदाहरणार्थ हम नलोदय काव्य और युधिष्ठिर विजय को ले सकते हैं, जिनमे प्रत्येक में यमक का प्रयोग, यमक के अनेक भेदो का प्रदर्शन किया गया है। इन रचनाओ ने माघ के बचे खुचे भाव की भी हत्या कर दिया। श्लेष काव्यों मे पहली महत्त्वपूर्ण कृति कविराज (११ वी शती) का 'राघवपाडवीय' है जिसमे श्लेष के द्वारा एक साथ रामायण तथा महाभारत की कथा कही गई है। हरेक पद्य का अभंग और सभग श्लेष के कारण दोनो पक्षों मे अर्थ लगता है। कविराज के अनुकरण राघवनैषधीय (हरिदत्तसूरि कृत) और राघवपाडवीययादवीय (चिदंबर कृत) जैसे अन्य तथाकथित महाकाव्य भी लिखे गये। इनमे अंतिम कृति मे एक साथ रामायण, महा-भारत और भागवत (कृष्णकथा) इन तीनो कथाओ का श्लिष्ट वर्णन मिलता है। दूसरे ढंग की वे कृतिया हैं जिन्हे सूक्ति प्रधान महाकाव्य कहा जाता है, जिनमे कवि का उद्देश्य दूर की उड़ान, हेतूत्प्रेक्षा और प्रौढोक्ति की लम्बो चौड़ी कल्पना करना रहा है। माघ मे ही कुछ इस प्रकार के अप्रस्तुत विधान देखे जा सकते हैं, परन्तु माघ के पश्चात् इस प्रकार के प्रयोगो की बहुलता पाई जाती है। मंख या मंखक (१२ वीं शती) का श्रीकंठचरित जो शिव से सम्बद्ध पौराणिक महाकाव्य है, प्रौढोक्तियो के लिए विशेष प्रसिद्ध है। तीसरी पद्धति ऐतिहासिक चरितकाव्यों की है। कहने को तो ये काव्य ऐतिहासिक हैं, परन्तु इनमे ऐतिहासिक तथ्यो की अपेक्षा कल्पना का समावेश

अधिक हुआ। चरितकाव्यों की परम्परा का प्रारम्भ शिलाप्रशस्तियों से माना जा सकता है, परन्तु उसका परिष्कृत रूप तो बाण के हर्षचरित और वाक्पतिराज के गउडवहो (प्राकृत काव्य) मे ही प्राप्त होता है। संस्कृत महाकाव्यो मे इस पद्धति का पहला काव्य विल्हण (११ वी शती) का विक्रमांकदेव चरित है। विल्हण ने अपने काव्य मे ऐतिहासिक तथ्यो को अधिक विकृत नहीं किया है, परन्तु पद्मगुप्त (११ वीं शती) के नवसाहसाकचरित मे तो इस प्रवृत्ति के कारण इतिहास दब गया है। संस्कृत मे १२ वी शती के बाद भी कई तथाकथित ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना हुई जो तथ्य और कल्पना को साथ लेकर चलते हैं। शैली मे ये माघ का ही अनुसरण करते दिखाई देते हैं। इन काव्यो मे हम्मीर विजय, राष्ट्रोढवंश, सुर्जनचरित आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

बारहवी शती के अन्त मे संस्कृत साहित्य मे एक प्रबल व्यक्तित्व सामने आता है जिसने उपर्युक्त तीनो धाराओं से प्रभावित होकर एक महत्वपूर्ण कृति दी। श्रीहर्ष (१२ वी शती) का नैषधीयचरित माघ के परवर्ती महाकाव्यो मे सर्वश्रेष्ठ है। दरबारी कवियो की सूक्ति परम्परा का श्रीहर्ष पर काफी प्रभाव पडा है। श्रीहर्ष कवि के रूप मे पाठक को इतने महत्वपूर्ण नही हैं जितने सूक्तिकार के रूप मे। सूक्तियो के लिये वे भाव की हत्या भी कर देते हैं।

संस्कृत महाकाव्यो की विशेषताओ का उपसंहार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कालिदास की परम्परा का निर्वाह उनके किसी परवर्ती उत्तराधिकारी कवि ने नही किया। कालिदास का सरस शृंगार परवर्ती काव्यो मे जाकर शृंगार कला का रूप ले लेता है।

प्राकृत के प्रबन्ध काव्य

प्राकृत के प्रबन्ध काव्यो की परंपरा बहुत समृद्ध नही है। "पउमचरिअ" पुराणों के ढंग पर लिखा हुआ प्रबन्ध काव्य है, तथा उसकी शैली भी पौराणिक सरलता की परिचायक है। परन्तु "पउमचरिअ" ने प्राकृत साहित्य मे जिस परम्परा को जन्म दिया वह प्राकृत से अपभ्रंश मे आकर स्वयंभू की "रामायण", "हरिवंशपुराण" तथा पुष्पदंत के "महापुराण" तथा अन्य जैन कवियो के धार्मिक चरित काव्यो को प्रभावित किया है। प्रवरसेन का "सेतुबन्ध प्राकृत कालीन महाकाव्य परम्परा का सच्चा प्रतिनिधि कहा जा सकता है।[1] इसे प्राकृत का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है।[2] इसके १५ आश्वासों

१ —हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास-डा०भोलाशंकर व्यास, पृ० ३०६।
२—प्राकृत और उसका साहित्य–डा० हरदेव बाहरी, पृ० ८३।

(सर्गों) में से प्रथम आठ में नल-नील तथा वानरों द्वारा समुद्र पर सेतु बांधने का वर्णन है। दण्डी, बाण आदि ने "सेतुबन्ध" अथवा "सेतु" नाम से ही इसका उल्लेख किया है। उत्तरार्द्ध में रावण-वध तक की घटनाओं का वर्णन है। इसलिए इसका दूसरा नाम "रावण-वध" भी उपयुक्त है। पुष्पिकाओं में "दसमुहवह" (दशमुखवध) नाम भी पाया जाता है। कथा का आधार "वाल्मीकीय रामायण" का युद्ध काण्ड है। कथानक में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया है। कथांश संक्षिप्त है। विरह-सन्तप्त राम हनुमान द्वारा सीता का समाचार पाकर लंका की ओर चल देते हैं। मार्ग मे समुद्र की बाधा उपस्थित हो जाने के कारण रुक जाते हैं। वहीं पर विभीषण उनसे आ मिलते हैं। वानर-सेना समुद्र पर सेतु बाधती है, सेतु बाधने मे बड़ी-बड़ी कठिनाइया आती हैं। यहा पर कई अन्तर्कथाओ की कल्पना की गई है। राम समुद्र पार करके लंका मे प्रवेश करते हैं रावण तथा कुम्भकर्ण आदि का बध करके सीता को छुडा लाते हैं। कथा का अन्त श्रीराम के अभिषेक के साथ ही होता है। इस काव्य में कवि कल्पना की जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है। सूक्तियों का यह ग्रन्थ भाण्डार है। उदाहरण के लिए कुछ स्थल देखे जा सकते हैं। सत्पुरुषो के सम्बन्ध की एक उक्ति इस प्रकार है।

ते विरला सप्पुरिसा जे अभणन्ता घडेन्ति कज्जालावे।
थोअ चिअ ते वि दुमा जे अमुणिअकुसुमनिग्गमा देन्ति फलं ॥ ३६

जो बिना कुछ कहे ही कार्य कर देते हैं, ऐसे सत्पुरुष विरले ही होते हैं। उदाहरणार्थ, बिना पुष्पो के फल देने वाले वृक्ष बहुत कम होते हैं। स्त्रियो के अनुराग के विषय मे उक्ति इस प्रकार है—

अलअं छिवइ विलक्खो पडिसारेइ वलअं जमेइ णिअत्थम्।
मोहं आलवइ सहिं दइआलोअण डिओ विला सिणीसत्यो ॥ १० ७०॥

विलासिनी स्त्रियां कहीं से अकस्मात् आये हुए अपने प्रिय को देखकर लज्जा से चंचल हो उठती हैं। वे अपने केशों को स्पर्श करती हैं, कड़ों को ऊपर नीचे करती हैं, वस्त्रो को ठीक-ठाक करती हैं और अपनी सखी से झूठ-मूठ का वार्तालाप करने लगती हैं।

नवोढ़ा के प्रथम समागम के सम्बन्ध में एक सूक्ति इस प्रकार है।
ण पिअइ दिण्णं पि मुहं ण पणमेइ अहरं ण मोएइ वला।
कह वि पडिवज्जइ रअं पढमसमागमपरम्मुहो जुवइजणो ॥ १०. ७८
नवोढ़ा स्त्री के चित्र द्वारा उपस्थित किये हुए मुख का पान नहीं करती, प्रिय के द्वारा याचित किये हुए अधर को नहीं झुकाती, प्रिय द्वारा अधर ओष्ठ से आकृष्ट किये

जाने पर जबर्दस्ती से उसे नही छुड़ाती। इस प्रकार प्रथम समागम मे लज्जा से पराङ्मुख युवतिया बड़े कष्टपूर्वक रति सम्पन्न करती हैं।[१]

आलंकारिको के मतानुसार प्राकृत के महाकाव्य सर्गों के स्थान पर आश्वासकों में विभक्त रहते हैं (सर्गा आश्वासकाभिधाः)। महाकाव्यो के अन्य लक्षण यहाँ भी ठीक वैसे ही हैं जैसे संस्कृत महाकाव्यों मे। 'सेतुबंध के विवेचन से पता चलता है कि सेतुबन्ध कालिदासोत्तर संस्कृत महाकाव्यो की कृत्रिम शैली का परिचायक है। उसका प्रमुख रस यद्यपि वीर है, फिर भी उसमे शृंगार के विलासादि का वर्णन उपलब्ध होता है। जलक्रीड़ा, वनविहार, रतिक्रीड़ा आदि वर्णनों की शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह सेतुबन्ध में हुआ है। शैली की दृष्टि से 'पउमचरिअ' प्राकृत की स्वाभाविक शैली का सहारा लेता है, तो 'सेतुबन्ध' कृत्रिम अलंकृत शैली का। इसमे समासान्त पदावली, श्लेष तथा यमक की अभिरुचि, अर्थालंकारो का बाहुल्य दिखाई पड़ता है, जिसका 'पउमचरिअ' मे अभाव है। 'सेतुबन्ध' की इस शैलीगत विशेषता ने निःसन्देह परवर्ती प्रबन्ध काव्यो की परम्परा को प्रभावित किया हे। 'जैन अपभ्रंश पुराणो तथा चरितकाव्यो मे विषम की दृष्टि से 'पउमचरिअ' का प्रभाव पडा है, किन्तु शैली की दृष्टि से 'सेतुबन्ध' का प्रभाव परिलक्षित होता है। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल आदि की कृतियो मे इसी प्रकार की कृत्रिम अलंकृत शैलो प्राप्त होती है। महाकाव्यो की तत्तत् वर्णन रूढियाँ भी अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों मे व्यवहृत हुई हैं और यही से ये रूढियाँ हिन्दी के आदिकालीन प्रबन्धकाव्यो मे आ गई हैं। वाक्पतिराज का 'गउडवहो' प्रबन्ध काव्य की एक तीसरी शैली का परिचय देता है—चरित काव्यो की शैली। यशोवर्मा के गुणो का वर्णन करते हुए कवि ने संसार की असारता, दुर्जन, सज्जन और स्वाधीन मुख आदि का वर्णन किया है—

> पेच्छह विवरीयमिमं बहुया मइरा मएइण हु थोवा।
> लच्छी उण थोवा जह मएइ ण तहा इर बहुया॥

देखो, कितनी विपरीत बात है, बहुत मदिरा का पान करने से नशा चढ़ता है थोडी का करने से नही। लेकिन थोड़ी सी लक्ष्मी जितना मनुष्य को मदमत्त बना देती है, उतना अधिक लक्ष्मी नहीं बनाती।

हृदय को समझाते हुए वह लिखता है—

> हियय ! कहि पि णिसम्मसु कितियमासाहओ किलिम्मिहिसि।
> दीणो वि वरं एक्कस्स ण उण समलाए पुहवीए॥

१—प्राकृत साहित्य का इतिहास, डॉ० जगदीश चन्द्र जैन, पृ० ५८७–८८।

हे हृदय ! कहीं एक स्थान पर विश्राम करो निराश होकर कब तक भटकते फिरोगे ? समस्त पृथ्वीमण्डल की अपेक्षा किसी एक का दीन बनकर रहना श्रेयष्कर है।[१]

हम देखते हैं कि आश्रयदाता राजाओं के चरित को लेकर काव्य लिखने की प्रवृत्ति संस्कृत साहित्य मे बाद में आई, किन्तु दसवी-ग्यारहवीं शती के पश्चात् संस्कृत साहित्य में यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई कि संस्कृत महाकाव्य राजाओं के जीवन चरित को लेकर ही लिखे गये। लेकिन इसका प्रथम रूप संस्कृत मे ही बाण के 'हर्षचरित' के रूप मे मिलता है, वैसे पद्य मे चरित काव्यो का प्रणयन प्राकृत से शुरू हुआ माना जा सकता है। वाक्पतिराज का 'गउडवहो' प्रथम चरित काव्य है, जिसमे कवि ने अपने आश्रय-दाता राजा के शौर्य को काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है। 'गउडवहो' का ही प्रभाव एक ओर संस्कृत चरितकाव्यों-विक्रमांकदेव चरित, नवसाहसाकचरित आदि पर, तथा दूसरी ओर गौण रूप से हिन्दी के चरित काव्यो पर पड़ा है। फिर भी हिन्दी के आदिकालीन प्रबन्ध काव्यो पर प्राकृत प्रबन्ध काव्यो का जो कुछ भी प्रभाव पड़ा है वह प्रत्यक्ष रूप से न होकर या तो अपभ्रंश चरितकाव्यो के द्वारा या संस्कृत महा-काव्यो तथा चरितकाव्यो के द्वारा ही आ पाया है।

अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्य

अभी तक प्राप्त होने वाले अपभ्रंश साहित्य मे श्रव्य तथा दृश्यकाव्यो का अभाव है। सम्पूर्ण साहित्य पाठ्य काव्य के अन्तर्गत है। उसके प्रमुख तीन भेद किये जा सकते हैं—प्रबन्ध, खण्ड और मुक्तक काव्य। जो प्रबन्ध-काव्य उपलब्ध हैं, वे मुख्य रूप से कथा-काव्य हैं। उनमे कथा और काव्य का विचित्र समन्वय है। इस काव्य धारा के दो भेद हैं—पुराण-काव्य और चरित-काव्य। चरित-काव्य के दो प्रकार हैं—एक शुद्ध या धार्मिक चरित-काव्य और दूसरा रोमाण्टिक। खण्ड-काव्य की रचनाएँ अधिक नही हैं, इसलिए उनके भेद का कोई प्रश्न ही नही उठता। मुक्तक काव्य के दो भेद हैं—गीतकाव्य और दोहाकाव्य।

प्रबन्ध-काव्य को कथा-काव्य कहना अधिक समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि उसमे प्रधानता कथा की ही है। कथा पौराणिक हो या काल्पनिक। डॉ० हरिवंश कोछड़ ने अपने शोध प्रबन्ध 'अपभ्रंश-साहित्य' में इस काव्य का जो विभाजन किया है, वह कई दृष्टियो से उचित नहीं मालूम होता। पहले तो वे पुराण-काव्य और चरित-काव्य मे भेद नही मानते, दूसरे कई चरित-काव्यों को उन्होंने खण्ड-काव्य के अन्तर्गत रखा है। तीसरे कीर्तिलता और पृथ्वीराजरासो को जो अवहट्ठ भाषा की

१—प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीश चन्द्र जैन, पृ० ५९३–९४।

रचनाएं हैं, अपभ्रंश की सीमा के अन्तर्गत रखा है। इस प्रकार इनका विभाजन कई दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण है। प्रो० हर्टेल ने 'जैनकथा-साहित्य के रूप इस प्रकार निर्धारित किये हैं—(१) धार्मिक आलोचना में मिलने वाली कहानियाँ, (२) धार्मिक आख्यान, (३) चरितकाव्य, (४) पौराणिक कहानियाँ (राम-कृष्ण आदि), (५) प्रबन्ध कहानियाँ (साधु-साध्वियों का जीवनचरित), (६) कथाकाव्य (विण्टर पृ० १०)। ऐसा प्रतीत होता है कि हर्टेल साहब का यह विभाजन प्राकृत और संस्कृत ग्रन्थों पर आधृत था।

प्रबन्ध-काव्य के भेद

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि प्रबन्ध-काव्य दो प्रकार का है—पुराण और चरितकाव्य। जैसे कवि पुष्पदन्त का महापुराण पुराण है, परन्तु स्वयंभू का पउमचरिउ पुराण की अपेक्षा चरित-काव्य अधिक है। जसहरचरिउ, णायकुमारचरिउ, करकंडचरिउ, ये सब इसी परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। भविसयतकहा का नाम कथा है, चरित नहीं, फिर भी आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा कि वह चरित-काव्य के अधिक समीप है।

अपभ्रंश चरित-काव्य के अन्तर्गत (१) पउमचरिउ, (२) णायकुमारचरिउ, (३) जसहरचरिउ, (४) पउमसिरिचरिउ, (५) करकंडचरिउ, और (६) भविसयत कहा है। इनमें पउमचरिउ पुराणकाव्य के समीप होते हुए भी चरित-काव्य है। णायकुमार चरिउ और करकंडचरिउ रोमाण्टिक चरितकाव्य हैं तथा जसहरचरिउ धार्मिक। शेष चरितकाव्यों में धर्म के साथ सामाजिक समस्या का भी अन्तर्भाव है। भविसयतकहा यद्यपि कथा है परन्तु शैली के दृष्टिकोण से वह चरित-काव्य की कोटि में ही आता है। इन चरितकाव्यों का विवेचन अगले अध्याय में किया जायगा।

पउमचरिउ

अपभ्रंश में रामकाव्य के प्रथम कवि स्वयंभू (८ वीं शताब्दी ईस्वी) है और यहीं अपभ्रंश के वाल्मीकि भी हैं। स्वयंभू[1] कौसल के निवासी थे, जिन्हें उत्तरी भारत के आक्रमण के समय राष्ट्रकूट राजा ध्रुव (वि० सं० ८३७–८५१) का मंत्री रयडा

---

१ प्रेमी जी के मतानुसार स्वयंभू कवि चतुर्मुख से भिन्न हैं जिन्हें मधुसूदन मोदी ने एक ही मान लिया है। उन्होंने सप्रमाण मोदी के मत का खंडन किया है। प्रो० हीरालाल तथा प्रो० वेलणकर ने भी चतुर्मुख और स्वयंभू को एक नहीं माना है।

दे० जै० सा० इ०, नाथूराम प्रेमी, पृ० ३७१।

धनंजय मान्यखेट ले गया था। स्वयंभू को काव्य और पांडित्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। उनके पिता मारुतिदेव भी, उन्हीं के शब्दों में कवि थे। स्वयंभू की दो कृतियाँ उपलब्ध हैं—पउमचरिय और हरिवंशपुराण। पउमचरिउ ६० संधियों का काव्य है। स्वयंभू ने इस काव्य को अधूरा ही छोड़ दिया था और काव्य के शेष अंश को उसके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू (तिहुअण सयंभू) ने पूरा किया था। ठीक इसी प्रकार स्वयंभू अपनी दूसरी कृति को भी पूरा नहीं कर सके और हरिवंशपुराण (रिट्ठणेमि-चरिउ) की ६६ संधि तक ही उनकी रचना मानी जाती है।[1] १०० से १०२ तक की संधियाँ उसके पुत्र त्रिभुवन की रचना है, शेष १६ वी शती में यश.कीर्ति ने जोड दी है। पउमचरिउ मे रामकथा वर्णित है, हरिवंशपुराण मे महाभारत तथा कृष्ण की कथा। चतुर्मुख का कहना है कि वे पिंगलशास्त्र, भामह, दंडी आदि द्वारा प्रदर्शित अलंकारशास्त्र से अनभिज्ञ हैं तथा काव्य करने के अभ्यस्त भी नहीं है, मात्र रयडा के आग्रह से ही काव्य की रचना कर रहे हैं,[2] परन्तु स्वयंभू की लेखनी अप्रतिम कवित्व का ज्वलंत प्रमाण है, एक ऐसे कवि का जिसे पिंगल, अलंकार तथा प्राचीन काव्य-परम्परा की पूर्ण जानकारी थी। भले ही वह कालिदास की कोमल गिरा और बाण तथा ईशान की काव्यकृतियों को न देखने को नम्रता प्रदर्शित करता हो, परन्तु कवि संस्कृत की काव्य-परम्परा से प्रभावित है, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता। संस्कृत की जलविहार, वनवर्णन, सूर्योदय-सूर्यास्त, नदी आदि के वर्णन की रूढिगत शैली का यथार्थ प्रतिबिम्ब स्वयम्भू मे प्राप्त होता है। केवल स्वयंभू ही नही अपितु प्राय: सभी जैन कवि अपने चरितकाव्यों मे संस्कृत की महाकाव्य परम्परा के ऋणी हैं तथा भारवि और माघवालो वर्णन प्रणाली की भांति यहां भी अनेक स्थलो पर इतिवृत्त

१—प्रेमी जी के मतानुसार स्वयंभू ने अपनी ओर से पउमचरिय और रिट्ठणेमि-चरिउ दोनों काव्यों को सम्पूर्ण कर दिया था। त्रिभुवन स्वयंभू ने उनमें नए भागो को जोड़ा है, अधूरे को पूरा नहीं किया। प्रेमी जी ने सप्रमाण इस मत की पुष्टि की है। वे स्वयंभू की एक तीसरी कृति का भी उल्लेख करते हैं—पंचमीचरिउ। संभवत: इस काव्य में पुष्पदंत के णायकुमारचरिउ की तरह श्रुतपंचमी' की कथा रही होगी। प्रेमी जी हरिवंश की ६६ संधि स्वयंभू की रचना मानते हैं, मोदी केवल ६२।

—जै० सा० इ०—नाथूराम प्रेमी, पृ० ३८०-८२। तथा पृ० ३७३, पाद हि० २, तथा मोदी: अपभ्रंश पाठावली, टिप्पणी, पृ० २३।

२—णउ बुज्झिउ पिंगलपत्थारु। णउ भम्महदंडियलंकारु॥
ववसाउ तो वि णउ परिहरमि। वरि रयडा वुत्तु कव्वु करमि॥ पउमचरिय॥

को गौण बनाकर वर्णन पर जोर देने की प्रवृत्ति पाई जाती है। स्वयंभू की उपमाएं अधिकतर परम्परामुक्त हैं। कहीं-कही मौलिक उपमाएं भी प्राप्त होती हैं परन्तु उन्हे अपभ्रंश काव्य की निजी विशेषता नही कहा जा सकता। जैन पडितो ने स्वयंभू को जल-विहार-वर्णन में सिद्धहस्त माना है तथा यह स्वीकार किया है कि अन्य कवि स्वयंभू को जलविहार-वर्णन मे नही पा सकते।[1] इसी प्रकार वसंत ऋतु का सरस अलंकृत वर्णन करने में भी स्वयंभू को विशेष दक्षता प्राप्त है।

स्वयंभू की कृति पाच काडों मे विभक्त है, विद्याधरकांड, अयोध्याकाड, सुन्दर-काड, युद्धकाड तथा उत्तरकाड। गुरु और आचार्यों की वन्दना करके कवि रामकथा प्रारम्भ करता है।

इय चउवीस वि परम पणवेप्पिणु भावे।
पुणु आरंभिय रामकह, रामायण कावे। १ २

आगे कवि रामकथा की परम्परा का वर्णन करता हे।

एह रामकहसरि सोहंती, मणहण देवहिं दिट्ठवहंती।
पच्छइ इंदभूइ आयरिएं पुणु धम्मेण गुणालंकरिएं।
पुणु पहवें संसाराराए कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं।
पुणु रविसेणयरिय पसाएं बुद्धिए अवगाहिय कइराएं॥ १.३

उपर्युक्त दृष्टान्त से स्पष्ट है कि स्वयंभू ने रविषेणाचार्य द्वारा गृहीत रामकथा पर-म्परा का पालन किया है। मूलकथा का प्रारम्भ अन्य जैन कृतियो के सामन ही हुआ है। मगध देश के राजा श्रेणिक जिनवर से रामकथा के सबंध मे लोक मे प्रचलित अनेक भ्रान्तियो का निराकरण कराना चाहते हैं। उनकी भ्रान्तिया इस प्रकार हैं—

जइ रामहो तिहुअणु उवरे माइ तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ।

× × ×

किह तियमइ कारेण कवि वरेण धाइज्जइ वालि सहोयरेण।
किह वारण गिरिवर उव्वहंति बंधेवि मयरहरु समुत्तरंति।
किहरावणु दहमुहु वीसहत्थु अमराहिव भुववंधण समत्थु।

—इत्यादि १,१०

१—अलकीलाए स्वयभू चउमुह पवंग मोगाहकहाए।
मद्ददंचमच्छवेहें अज्जवि कइणो न पावंति॥
(अपभ्रंश पाठमाला में उद्धृत, पृ० १६)

'यदि राम त्रिभुवन के ऊपर हैं या यदि राम के उदर मे तीनो लोक व्याप्त हैं तो रावण उनकी स्त्री को कैसे ले गया। स्त्री के कारण सहोदर कपि के द्वारा बालि क्यों मारा गया। पर्वतो को उठाकर सेतु बांधकर बानर कैसे पार हुए। दशमुख और बीस हाथो वाला रावण अमराधिप को बाधने मे कैसे समर्थ हुआ।' इसी प्रकार की कुछ और शंकाओं के निवारणार्थ गौतम गणधर कथा आरम्भ करते हैं। सृष्टि वर्णन, जंबूद्वीप की स्थिति, कुलकरो की उत्पत्ति, काल का उल्लेख करके अयोध्या मे ऋषभदेव की उत्पत्ति तथा उनके संस्कारादि और उनके जीवन की कथा दी है।[१] आगे इक्ष्वाकुवंश, लंका मे देवताओ, विद्याधरो के वंशादि के वर्णन हैं, और फिर जैन सम्प्रदाय मे प्रचलित परिवर्तनो के साथ रामकथा दी गई है। सभी प्रधान पात्र जिन भक्त हैं।

पद्मचरित मे स्वयंभू ने राम को मानवी रूप में ही देखा है। राम का चरित्र एक तरफ मानव की शक्ति से युक्त है तो दूसरी ओर मानव सुलभ दुर्बलताओ से भी परिपूर्ण हे। सीता को स्वीकार करते समय वे सीता के चरित्र को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। सीता की "अग्निपरीक्षा" का प्रसंग जैन कवियो ने अधिक जीवन्त और सशक्त रूप से वर्णित किया है। पमचरिउ की ८३ वी सन्धि मे सीता एक गर्वीली नारी के रूप मे सामने आती है जो उसके चरित्र पर संदेह करते राम को व्यंग्योक्तियाँ सुनाती हैं। सीताके वाक्य एक ओर उसकी पवित्रता और नारीकी विवशताका, दूसरी ओर पुरुष के स्वभाव की याद दिलाते हैं जो गुणवान् होते हुए भी कठोर होता है और मरती हुई स्त्री पर भी विश्वास नही करता।[२] सीता अपनी परीक्षा देती है, और अग्नि मे खरी उतरती है, वह अपने सतीत्व की पताका (सइबडाय) को संसार मे फहरा देती है। पउमचरिउ मे कई भावपूर्ण स्थल हैं जिनमे एक ओर रामवनगमन, लक्ष्मणमूर्च्छा आदि के स्थल करुण रस से युक्त हैं, तो दूसरी ओर जलबिहार आदि सरस शृंगारी चित्र भी हैं। पउचरिउ का शेष अंश, जो त्रिभुवन का लिखा हुआ है, काव्य की दृष्टि से उतना श्रेष्ठ नही है जितना स्वयंभू वाला अंश। स्वयंभू मे हम भावुक कवि का हृदय पाते हैं तो त्रिभुवन मे पाडित्य का। परन्तु फिर भी त्रिभुवन ने पउमचरिउ को पूर्ण कर अनुपम कार्य किया हे। जैन परम्परा के अनुसार यदि त्रिभुवन न होता तो स्वयंभू के काव्य का उद्धार कौन करता। स्वयंभू का पउमचरिउ आगे आने वाली जैन रामकथाओ का दीपस्तंभ है, परन्तु वह स्वयंभू भी किसी न किसी रूप मे विमलदेवसूरि से प्रभावित रहा है। स्वयंभू की शैली जहाँ कथासूत्र को पकडकर आगे बढती है वहाँ निश्चय ही सरलता और सादगी से पूर्ण रहती है, लेकिन जहाँ वह प्रकृतिचित्रण करने लगता हैं,

---

१—पउमचरिउ संधि, १—३।

२—पुरिस णिहीण होंति गुणवंत वि।
तियहे ण पतिज्जंति मरंत वि॥ पउमचरिउ, ८३, ८।

उसको तूली एक से एक अलंकृत संविधान का सहारा ग्रहण करती है। कवि को कभी गोदावरी पृथ्वी रूपी नायिका की फेनावलि के वलय से अलंकृत बाँह सी दिखाई देती हैं, जिसे उसने वक्ष पर मुक्ताहार धारण करने वाले प्रिय के गले मे डाल रखा है, तो कभी वृक्ष पंक्तियाँ वसुधा की रोमराजि जैसी दिखाई देती हैं। स्वयंभू की अभिव्यंजना शैली संस्कृत के परवर्ती ह्रासोन्मुख कवियो से प्रभावित होकर भी उनकी तरह विकृत नही है। इसका मुख्य कारण शायद यही था कि कवि यह समझ रहा था कि उसे अपनी कृति पंडितो के लिए न लिखकर "गामेल्लभास" जानने वालो के लिए लिखना है। परन्तु इतना होने पर भी स्वयंभू की कृति ऐसे अनुपम गुणो से परिपूर्ण है कि भाषा की दृष्टि से भले वह उस काल की "गामेल्लभास" मे लिखी गई हो, भाव और कला दोनो दृष्टियो से अत्यधिक सुसंस्कृत तथा कलापूर्ण कलाकार का परिचय देती है।

रिट्ठणेमि चरिउ या हरिवंशपुराण

इसके लेखक स्वयंभू देव हैं। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ क्रमश. ऐलक, पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बई भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना और डॉ० हीरालाल जैन, जबलपुर के पास है। इसमे सब ११२ सन्धियाँ और १९३७ कडवक हैं। ९२ सन्धियाँ स्वयं स्वयंभू रचित हैं, शेष मे कुछ उनका और उनके पुत्र त्रिभुवन एवं जसकीर्ति का हाथ है। ग्रन्थ मे चार काण्ड हैं—यादव, कुरू, युद्ध और उत्तरकाण्ड। जैसा कि पौराणिक काव्यो की परम्परा होती है वस्तुतः पहले और दूसरे काण्डो मे यादव और कुरुवंशो के उद्भव और विकास का ऐतिहासिक विवरण हैं, शेष मे उन परि-स्थितियो और कारणो का विवेचन है जिनमे महाभारत सम्भव हुआ। कृष्ण की कथा यादव काण्ड मे आती है। यह स्वाभाविक ही है, क्योकि उस वंश के केन्द्रीय व्यक्ति वही हो सकते हैं। उत्तरकाण्ड मे हार-जीत के विश्लेषण के सन्दर्भ मे आध्यात्मिक निष्कर्षों के विवेचन के साथ कथा का उपसंहार है।

कृति का प्रारम्भ नेमि तीर्थंकर की वंदना से हुआ है। ग्रन्थ की गहनता से चिन्तित कवि को सरस्वती द्वारा धैर्य मिलता है और उत्साहित होकर कवि हरिवंश की रचना के लिए प्रस्तुत होता है, वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> चितवइ सयंभु काइ करमि, हरिवंस महण्णउ के तरम्मि।
> गुरुवयण तरंडउ लद्धु न वि जम्महो विण जोइउ को वि कवि।
> णउ णाइउ वाहत्तरि कलउ एकु विण गंथु मोक्कलउ।
> तहि अवसरि सरसइ धीरवइ करि कव्वु दिणमइ विमल मइ।

— — —

पारंभिय पुणु हरिवंसकहा ससमय परसमय वियार सहा।
रि० च० १.।२

'स्वयंभू चिन्ता करते हैं, हरिवंश महार्णव को कौन पार कर सकता है? गुरुवचन नौका भी नही प्राप्त हुई, जन्म से भी किसी कवि को नही देखा बहत्तर कलाओं को नही जाना, एक ग्रन्थ भी नही देखा, उसी समय सरस्वती ने धैर्य बँधाया, कि दिनमति विमलमति। काव्यकरो। और हरिवंश कथा कवि ने प्रारम्भ की। कृति की प्रथम तेरह सन्धियो में कृष्ण के जन्म, बाललीला, विवाह एव प्रद्युम्न इत्यादि की कथाएँ हैं और नेमिजन्म कथा है। कवि ने इस कथाभाग को यादव काड से अभिहित किया है।'[1] इन सन्धियो मे नारद का प्रवेश कलह प्रिय साधु के रूप मे हुआ है। वे ही कृष्ण के अनेक विवाहो की तैयारी कराते हैं। शेष समस्त कृति मे महाभारत तथा हरिवंश के आधार पर कथा प्राप्त होती हैं। कुरुकाड मे कौरव पाडवों के जन्म, बाल्यकथा शिक्षा की कथा और उनके परस्पर के वैमनस्य, युधिष्ठिर के जुए मे सब कुछ हारने और पाडवो के द्वादश वर्ष वनवास की कथा है। कौरवो पाडवो मे आगे होने वाले युद्ध की पृष्ठभूमि भी इस कांड मे कवि ने प्रस्तुत की है। युद्धकांड मे कौरव पाडवो के युद्ध और कौरवो के पराभव का वर्णन है।

कथा के विन्यास और चरित्रों के चित्रण मे कवि अपनी परम्परा के पूर्व कवियों से अनुप्राणित है। पद्मचरित की भाँति प्रस्तुत काव्य मे भी वह, साहित्य की पूर्व परम्परा का उल्लेख करता है—

इंदेण समप्पिउ वायरणु, रसु भरहें वासें वित्थरणु।
पिंगलेण छंद पय पत्थारु, भम्मह दंडिणि हिं अलंकारु।
वाणेण समप्पिउ घणवणउं तं अक्खर डंबरु अप्पणउं।
चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय।
पारंभिय पुणु हरिवंस कहा, ससमय परसमय वियार-सहा।
रि०णे० च० १,२

महापुराण

पुष्पदंत काश्यप गोत्र के ब्राह्मण थे तथा उनके पिता का नाम केशव और माता का मुग्धा देवी था। पुष्पदंत के माता पिता जैन हो गये थे। पुष्पदंत पहले अनादृत रहे, परन्तु बाद मे मान्यखेट के राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय (९९६-१०२५) के

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डॉ० रामसिंह तोमर, पृ० १००।

मंत्री भरत के साथ वे मान्यखेट आ गए। यही भरत के अनुरोध पर पुष्पदंत ने महापुराण की रचना की थी। महापुराण, णायकुमारचरिउ (नागरकुमारचरित) और जसहरचरिउ (यशोधर चरित) तीन कृतियां पुष्पदंत की प्रकाशित हो चुकी हैं।

डा० भायाणी ने स्वयंभू को अपभ्रंश का कालिदास तथा पुष्पदंत को भवभूति कहा है। यदि स्वयंभू मे भावो का सहज सौन्दर्य है तो पुष्पदंत मे बंकिम भंगिमा है, स्वयंभू की भाषा मे प्रसन्न प्रवाह है तो पुष्पदंत की भाषा में अर्थगौरव की अलंकृत झाँकी, एक सादगी का अवतार है तो दूसरा अंकरण का उदाहरण।[1] इस अन्तर के मूल मे दोनो कवियों की जीवन-चर्या निहित है। स्वयभू सुखी सम्पन्न गृहस्थ, संयत-चित्त पुरुष और संतुलित मनीषी थे, वे भरे-पूरे परिवार के बीच जीवन का पूर्ण उपभोग करने वाले मनुष्य थे, जबकि पुष्पदत (पुप्फयत) का भवभूति की तरह उपेक्षा और तिरस्कार का पात्र बनना पड़ा था।[2] इनका जीवन तो निराला जी के समान (धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध, धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध)[3] (या दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज, जो नही कही)[4] अभाव तथा उपेक्षा का जीवन था। असंतोष ने उनके जीवन मे अद्भुत ढंग की तिक्तता, कटुता, आक्रोश और प्रतिक्रिया की भावना भर दी थी। स्वयभू स्वभाव मे शान्त थे, पुष्पदंत अक्खड। यही कारण है कि स्वयंभू की प्रकृति धार्मिक सहिष्णुता से समवेत है, जबकि पुष्पदत का स्वभाव इस उदारता से रहित है।[5] पुष्पदंत की कविता स्वयभू से अधिक अलंकृत परिवेश मे सजकर आती है तथा सस्कृत महाकाव्य परम्परा की रूढियो का प्रभाव पुष्पदंत पर अधिक पड़ा है।

पुष्पदन्त का महापुराण १०२ संधियो मे विभाजित है। प्रत्येक संधि कडवको मे विभाजित है। इसमे एक मुख्य कथा घटना या पात्र न होकर, अनेक कथाएँ, चरित्र और घटनाएँ हैं। इस समस्त काव्य मे ६३ महापुरुषो के जीवन का वर्णन है। 'जैन

१—हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २०२।

२—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—डा० भोलाशंकर व्यास, पृ० ३३८।

३—अपरा – निराला (राम की शक्ति-पूजा), पृ० ५४।

४—वही, (सरोज-स्मृति) पृ० १५८

५—पुष्पदंत अभिमानी व्यक्ति थे, और अभिमान मेरु, अभिमानचिन्ह, काव्य—रत्नाकर, कविपिशाच जैसी विचित्र पदवियो से विभूषित थे। इनके स्वभाव के विषय मे देखिए—जै०सा०इ०-प्रेमी, पृ० ३०७–३१२।

परम्परा के अनुसार महापुराण उसे कहते हैं जिसमे सभी तीर्थंकर, बलभद्र, वासुदेव और प्रतिवासुदेव का वर्णन हो। संस्कृत में आ० जिनसेन का महापुराण प्रसिद्ध है। यह पुष्पदन्त के पहले हुए थे। महापुराण के प्रथम अंश (३७ संधियो) में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की कथा है। प्रथम दो संधियो मे परम्परानुसार कवि का आत्म निवेदन, विनय प्रदर्शन, आश्रयदाता की प्रशस्ति, दुर्जन-निन्दा, सज्जन-प्रशंसा ग्रन्थ रचना का उद्देश्य वर्णित करने के साथ-साथ ऋषभदेव के अवतार लेने के पूर्व की दिव्य भूमिका बाँधी गई है। दुर्जनों की निन्दा के भय से कवि कविता नही करना चाहता था किन्तु अपने आश्रयदाता भरत के अनुरोध करने पर उसने काव्यारम्भ किया। श्रेणिक महाराज (बिंबिसार) की जिज्ञासा के परिणामस्वरूप महावीर के परमशिष्य गौतम गणधर पुराण कहते हैं। ऋषभ का जन्म अयोध्या मे होता है, उन्होने विभिन्न कलाएँ मनुष्य को सर्वप्रथम सिखाई। तत्पश्चात् उनके त्याग, तपस्या तथा अन्त मे कल्याण प्राप्त करने के, भव्य कवि प्रतिमा की पूर्ण गरिमा से युक्त वर्णन हैं। आगे की ३१ संधियो (३८-६८) मे अजितादि तीर्थंकरो की कथाएँ है। यह अंश कथात्मक है। संधि ६९-७९ तक आठवें बलदेव, वासुदेव प्रतिवासुदेव, राम, लक्ष्मण और रावण की कथा वर्णित है।[1] राम आदि के पूर्व जन्मो का कवि ने वर्णन किया है। सीता विद्याधर रावण और उसकी पत्नी मन्दोदरी की पुत्री थी। राम लक्ष्मण के कई विवाह होते है। सीता का रावण वाराणसी से हरण करता है। वानर रूपधारी विद्याधरों की मदद से राम रावण पर चढाई करते हैं और लक्ष्मण के हाथ से रावण मारा जाता है। राम लौटकर राज्य का कार्य भार सम्भालते हैं। हिंसा के कारण लक्ष्मण मरकर नरक में जाते हैं, और राम जिन भक्ति के प्रभाव से केवल ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करते हैं और कालान्तर मे लक्ष्मण भी शिव पद प्राप्त करते हैं।

बीच मे नमि की कथा (संधि ८०) के बाद नेमि तीर्थंकर तथा नवें बलदेव और वासुदेव श्रीकृष्ण और बलराम की कथा है। संधि (८१-९२) मे कौरव, पाडव और यादवो का वर्णन करते समय व्यास को अलीक कवि कहा गया है। कंस और उग्रसेन मे वैर पूर्व क कर्मों के अनुसार था। कृष्ण की बाल लीला का वर्णन बडे ही आकर्षक ढग से हुआ है। कृष्ण का पूरा चरित्र महापुराण मे काव्य की दृष्टि से सर्वोत्तम अंश माना जा सकता है। अन्त मे कृष्ण विरक्त होकर तपस्या करते हैं तथा एक भील के बाण से मारे जाते हैं। प्रेमोन्मत बलदेव कृष्ण को स्नान कराकर वस्त्रो से मंडित कर

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी पर प्रभाव–डा० राम सिंह तोमर, पृ० १०५।

कंधे पर बैठाकर छ. महीने तक पागल की भाँति घूमते हैं। ज्ञान होने पर कृष्ण का दाह संस्कार करते हैं। हिंसा करने के कारण कृष्ण की आत्मा को कुछ दिन नरक भोगना पड़ता है। बलदेव स्वर्ग प्राप्त करते हैं। कृष्ण की मृत्यु से पाडव दुखी होते हैं और तप करते हुए सद्गति प्राप्त करते हैं। कृति की अन्तिम संधियो मे पार्श्वनाथ (९३-९४), महावीर (९५-९७), जम्बूस्वामी (१००), प्रीतिंकर (१०१) की कथाएं हैं। अन्तिम सन्धि मे महावीर के निर्वाण का वर्णन और ग्रन्थकार की अन्तिम प्रशस्ति है। यह निर्विवाद है कि पुष्पदन्त का अधिक काव्य-कौशल उनके 'आदि-पुराण' मे व्यय हुआ है। इसका प्रमाण यही है कि जहाँ उन्होने राम के लिए केवल ११ सन्धियाँ दी हैं और कृष्ण के लिए १२ सन्धियाँ, वहाँ उन्होने आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के लिए ३७ सन्धियाँ लगा दी हैं।

कथा-प्रसंग मे अनेक युद्धो, विजयो और देश-देशान्तरो के वर्णन के साथ ही राज-नीति, धर्म, दर्शन और विविध विद्या-विषयक गम्भीर बातें हैं। सब मिलाकर यह सम्पूर्ण पुराण अनेक सामाजिक-राजनीतिक बातो का एक विश्वकोश है। जिस प्रकार 'महाभारत' समाप्त करने के बाद व्यास ने बडे ही आत्म-विश्वास के साथ कहा कि 'यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' उसी प्रकार 'महापुराण' के अन्त मे पुष्पदन्त ने भी कहा कि 'इस रचना मे प्रकृत के लक्षण, समस्त नीति, छन्द, अलंकार, रस, तत्वार्थ, निर्णय-सब कुछ आ गया है, यहाँ तक कि जो यहाँ है, वह अन्यत्र कही नही है। धन्य हैं वे पुष्पदन्त और भरत जिनको ऐसी सिद्धि मिली है।'[1]

महापुराण की भाषा आदर्श साहित्यिक अपभ्रंश है। देशी शब्दो तथा ध्वनिमूलक शब्दो के प्रयोग भी मिलते हैं।[2] इसी प्रकार अनेक स्थलो पर सुन्दर सजीव सुभाषितो का प्रयोग मिलता है—यथा—

वियलइ जोव्वणु णं करयलजलु णिवडइ माणुगु णं पिक्कउ फलु।
७.१८।

'अंजली के जल की भाँति यौवन विगलित होता है तथा पके फल की तरह मनुष्य निपतित होता है।'

फणि चरणइं जगि को अहिणाणइ परमत्थेण धम्मु को जाणइ।
२२।८६।

१—हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २०२।

२—भेंदुअ ११६ कन्दुक, सेरिह महिष २.१८, छुडुछुडु २१६ इत्यादि तथा ध्वनिमूलक शब्द—झंझं, झलझलइ ३.२०, गुलगुलंत ७८.१७ इत्यादि।

'संसार मे सर्प के पैरो को कौन जानता है' इसी प्रकार परमार्थ से धर्म को कौन जानता है। इसी प्रकार 'गर्दभ गर्दभ है, मनुष्य मनुष्य है, दुष्कृत वश और का ओर नही हो सकता।'[1] जैसी अनेक लोकोक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं।

कवि ने अपनी भाषा को समृद्ध बनाने के लिए अनेक अलंकारों का प्रयोग भी किया है। शब्दालंकारो मे यमक, श्लेष, अनुप्रास तथा अर्थालंकारों मे उपमा, व्यतिरेक, विरोधाभास, भ्रान्तिमान, अपह्नुति, अनन्वय प्रभृति अलंकारों के पर्याप्त दृष्टान्त मिलते हैं। पुष्पदंत का समय अन्त:साक्ष्य और बहि:साक्ष्य के आधार पर विद्वानो ने ईसा की १० वी सदी माना है।[2]

यदि गंभीरता से देखा जाय तो यह साफ हो जायगा कि यह पुराणकाव्य-कथासूत्र न तो सम्बद्ध है और न धारावाहिक। चरित्र अथवा पात्रों को दृष्टि मे रखकर इसके अनेक स्वतंत्र खंड किये जा सकते हैं। चरित्र के विस्तार के कारण किसी कथा का कई संधियो मे वर्णन मिलता है। परन्तु संधि के सकोच-विस्तार का भी काई नियम नही है, कोई संधि ११ कडवक मे समाप्त हुई है तो कोई ४० मे। वास्तव मे पुराण काव्य की शैली मे कथा के विकास का उतना अधिक महत्व नहीं होता जितना अधिक कि पुराण कहने का। कवि का कार्य मात्र काव्य का पुट देकर उसे संवेदनीय बनाना है। इसलिए कथा अधिक गतिशील नहीं हो पाती। काव्यात्मक वर्णनों के अतिरिक्त कुछ ऐसी रूढिया भी इस काव्य के अन्तर्गत आ गई हैं, जिनका निर्वाह आवश्यक होता है। पुराण काव्य अनेक चरित्रो का एक संग्रह ग्रन्थ है। कवि इनको काव्य मे इसलिए समाविष्ट करना चाहता है क्योकि वे धर्म के अनुशासन के आनन्द से परिपूर्ण हैं।

मोटे तौर पर इन पौराणिक रूढ़ियों के दो भेद हो सकते हैं

(१) काव्यसम्बन्धी रूढिया और (२) पौराणिक अथवा धार्मिक रूढियां। काव्यगत रूढियों के अन्तर्गत १—मंगलाचरण, २—ग्रन्थ रचना का उद्देश्य, ३—आत्म लघुता ४—सज्जन दुर्जन वर्णन, ५—स्तुति या प्रार्थना, ६—आत्मपरिचय, तथा श्रोता-वक्ता शैली आदि हैं।

यहाँ केवल कुछेक रूढ़ियो के विषय में ही विचार किया जायगा। शेष रूढियो पर प्रसंगानुसार प्रकाश डाला जायगा। जहाँ तक मंगलाचरण का प्रश्न है, यह भारतीय

१—वही, ६३.६ और इसी प्रकार की उक्तियाँ मिलती हैं यथा २७ १ मे अरघट्ट की उक्ति, ३१.१० में मकड़ी के जाले की, ३१.२० में भी सींग से दूध न निकलने की उक्ति इत्यादि।

२—जैन साहित्य और इतिहास-पं० नाथराम प्रेमी, बम्बई, १९४२, पृ० ३२१।

काव्यो की प्राचीन विशेषता रही है। श्रोता-वक्ता शैली का सम्बन्ध भी आध्यात्मिकता तथा पौराणिकता से है। हरेक कवि अपनी कथा का सूत्र प्राचीन साहित्य से जोडना चाहता है। इसलिए वह श्रोता-वक्ता की योजना करता है। श्रोता कथावस्तु के संबंध मे प्रश्न करता है। इसके पश्चात् वक्ता अपना व्याख्यान प्रारम्भ करता है। कभी-कभी तो उसमे भी प्रश्नोत्तर के रूप मे भेद-प्रभेद होने लगते है, तथा प्रसग इतना उलझ जाता है कि मुख्य और अवान्तर कथा बहुत दूर जा पडती है। इसी कारण लेखक बीच-बीच मे श्रोता-वक्ता का निर्देश कर देता है। कुछेक अपवाद को छोडकर सम्पूर्ण उपलब्ध अपभ्रंश-प्रबन्ध-काव्यो मे यह विशेषता पायी जाती है। रामचरितमानस को इसका सर्वोत्तम उदाहरण माना जा सकता है। इसी प्रकार संस्कृत कथा-साहित्य मे कादम्बरी इसी प्रकार की कृति है हालाकि उसमे श्रोता-वक्ता पक्षि योनि के है। पृथ्वी-राजरासो तथा कीर्तिलता मे भी यही चीज है। ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत की काल्पनिक कथाओ मे श्रोता-वक्ता की यह नयी परंपरा प्रारम्भ हुई होगी।[1]

पौराणिक रूढ़ियाँ

इन पौराणिक रूढियो से हमारा मतलब उन धार्मिक मान्यताओ से है, जो धार्मिक कथा की अपनी विशेषताएँ होती हैं, परन्तु जो काव्य का अग बन जाती हैं। उदाहरणार्थ तीर्थंकर के जन्म पर इन्द्र का अभिषेक के लिए आना एक जैन मान्यता है, परन्तु जब कोई ऐसी जैन कथा, काव्य का विषय बनती है, तो यह, अथवा इस तरह की दूसरी मान्यताएँ भी साथ हो जाती है। कुछ विशिष्टताएँ तो सभी धर्मों मे समान है तथा कुछ असमान, परन्तु इनका प्रयोग सभी करते पाये जाते हैं। अपभ्रंश साहित्य के प्रबन्ध काव्यो मे प्रमुख रूप से ऐसे रूढियो के अन्तर्गत १—सृष्टि का वर्णन, २—लोक-विभाजन, ३—धर्म प्रतिपादन, ४—दार्शनिक खंडन-मडन, ५—अलौकिक तथ्यो की योजना, जैसे आकाशवाणी, देवो द्वारा रत्नवृष्टि, पहाड़ उठा लेना, आकाश से गिर पडना इत्यादि, ६—पूर्वभवस्मरण और स्वप्न दर्शन की गणना की जा सकती है।[2]

इन तथ्यो के समावेश का प्रमुख आधार पुराण ही है। कवि को यह सब बातें इतनी प्रत्यक्ष होती हैं कि उसे वर्णन करने भर की देरी होती है। तथापि इन तथ्यो की योजना को बिल्कुल निराधार नही कहा जा सकता है क्योकि इनमे भी युग के विश्वास की झलक है। संस्कृत के पश्चात् कथा-सहित्य पालि तथा प्राकृत मे भी विद्यमान है। हा यह जरूर है कि वे विशेष रूप से धर्म और प्रवचनो की भाषाएँ है जबकि यह भषा

१—अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, पृ० ६७।
२—अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, पृ० ६७।

काव्य-की भाषा ही रही। धर्म तथा सिद्धान्त का केवल विचार करने वाली पुस्तकें अभी तक इसमे अलभ्य हैं, फिर भी धार्मिकता इसमे ह। ये कवि धर्म सम्बन्धी बात-चीत का अवसर ढूँढ ही लेते हैं। दूसरी बात यह है कि वस्तु तत्व पुराण से ग्रहण करने के कारण अतिरंजित बातो का आना अस्वाभाविक नही था। तीसरे उस युग मे कुछ ऐसी लोक-प्रचलित लोक-कथाएँ चल पडी थी जिनकी उपेक्षा करना इन कवियो के लिए प्राय. असभव था। चौथा कारण यह है कि पौराणिक कथाओं मे कुछ ऐसी मानवी जातियो का विवेचन है जो कौतुक और चमत्कार की जातियाँ मानी जाती थी, उदाहरणार्थ वानर जाति, राक्षस जाति, नाग जाति को लिया जा सकता है। इनमे कुछ की कहानियाँ पुराणो मे समाविष्ट हो गई थी तथा कुछ की कथाएँ लोक मे प्रचलित थी। पुराण काव्य के लेखको ने उन्हे धर्म तथा काव्य का अवलम्ब लेकर एक जगह पिरो दिया। यही कारण है कि आलोच्य साहित्य मे जहाँ एक तरफ कथा-कहानियो की अधिकता है, वही दूसरी तरफ काव्यात्मक वर्णन, प्रकृतिचित्रण, अलंकारादि भी है। राजनीति, कामशास्त्र, सगीत, नृत्य चित्रकलादि भी हैं। अत पुराण-काव्य की कथा-वस्तु के संघटन की महत्ता घटनाओ के क्रमिक विकास, सापेक्ष्यता अथवा उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण म नही, अपितु इस बात मे है कि वे अपने विशेष प्रतिपाद्य या धर्म को दृष्टि मे रखकर पुराण-कथाओ तथा लोक-कथाओ को काव्यात्मक परिवेश मे ढालने मे कहाँ तक सफल हो पाये है।

पउमचरिउ तथा महापुराण दोनो की बानगी देखने के पश्चात् सहज ही हम देख सकते है कि पुराण-काव्य परम्परा से ही चरित-काव्यो की धारा प्रवाहित हुई है। फिर भी कथावस्तु तथा उद्देश्य समान होते हुए भी शिल्प की दृष्टि से पुराण-काव्यो मे कुछ विशिष्टिताएँ नजर आती हैं, जिनका उल्लेख कर देना यहाँ अप्रासंगिक नही होगा, वे इस प्रकार है—

पुराण-काव्य	चरित-काव्य
१—अलौकिकता	१—लौकिक तत्व
१—विस्तार	२—संक्षेप
३—अवान्तर आख्यानो की अधिकता	३—मुख्य कथा तथा अवातर घटनायें भी अधिकतर प्रयोजन युक्त
४—पौराणिक रूढियो और धार्मिक तत्वो का वर्णन पर्याप्त	४—उसकी तुलना मे कम
५—प्रायः वस्तुतत्व असम्बद्ध	५—थोडा बहुत सम्बद्ध।

उपर्युक्त तुलना केवल पउमचरिउ तथा महापुराण को ध्यान मे रखकर की गई है।

अन्त मे अपभ्रंश प्रबन्धकाव्यो का उपसंहार करते हुये हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपभ्रंश प्रबन्ध काव्य के तीन प्रकार हैं—(१) पौराणिक चरितकाव्य, (२) धार्मिक चरित-काव्य, तथा (३) रोमाण्टिक चरितकाव्य। पहले प्रकार मे नायक तो पौराणिक होता है किन्तु कवि की दृष्टि भी पौराणिक होती है। पउमचरिउ की भाँति रामचरित-मानस भी चरितकाव्य है। मानस वह इस कारण है कि उसमें कवि का एक खास दार्शनिक उद्देश्य विद्यमान है। धार्मिक चरित-काव्यो मे पौराणिकता की मात्रा कम होती है, धार्मिकता की अधिक जैसे जसहरचरिउ या भविसयत्त कहा आदि। रोमाण्टिक चरितकाव्यो मे काल्पनिक या अतिरंजित कथाओ के अलावा नायक के धार्मिक तथा रोमाण्टिक साहसपूर्ण कार्यों का विवेचन रहता है। कही कही इनकी कथावस्तु भी ऐतिहासिक व्यक्ति से सम्बन्ध रखती हैं, लेकिन उनमे इतिहास ढूँढना निरर्थक है। जायसी का पद्मावत भी रोमाण्टिक चरितकाव्य ही है, यद्यपि शुक्ल जी ने उसके उत्तरार्द्ध को ऐतिहासिक माना है। जायसी को इतिहास की जानकारी भले ही हो, परन्तु ऐतिहासिक काव्य लिखना कवि का उद्देश्य नही प्रतीत होता। अपने काव्य के बहुत से तत्व उन्होंने लोक-परम्परा से लिये हैं। काव्य मे लौकिक काल्पनिक घटनाओ की कमी नही है। लेकिन रत्नसेन का जोगी बनना, समुद्र पार जाना, नौका डूबना, समुद्र का उपहार देना इत्यादि सभी प्रसंगो पर निःसंदेह ही पूर्ववर्ती काव्य-परम्परा का प्रभाव है। सूफी दृष्टि मे भले ही वह धार्मिक काव्य कहा जाय, परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से वह रोमांटिक ही कहा जायगा। आत्मपरिचय और मंगलाचरण, सज्जन, दुर्जन वर्णन तथा गीति तत्व आदि प्रायः अपभ्रंश के सभी प्रबन्ध काव्यो मे अनिवार्य रूप से मिलते है।

चरित काव्य और कथा-काव्य

कथाकाव्य के लक्षण

सच पूछा जाय तो अपभ्रंश कवि चरित-काव्य और कथा-काव्य मे भेद नही करते। आचार्य हेमचन्द्र के काव्यानुशासन से भी इस मत का समर्थन होता है। इस प्रकार प्रायः सभी चरितकाव्यो ने अपने को 'कथा' कहा है। प्राचीन वाङ्मय मे कथा शब्द का प्रयोग दो अर्थो मे मिलता है। पहला तो साधारण कहानी के अर्थ मे तथा दूसरा अलंकृत काव्य रूप के अर्थ मे। साधारण कहानी के अन्तर्गत पञ्चतन्त्र की कथाएँ, महाभारत और पुराणो के आख्यान, सुबाहु की वासवदत्ता, बाण की कादंबरी, गुणाढ्य की बृहत्कथा

आदि की गणना की जा सकती है। लेकिन विशिष्ट अर्थ में यह शब्द अलंकृत गद्यकाव्य के लिये व्यवहृत हुआ है। इस अर्थ मे यह कबसे प्रचलित हुआ, यह कहना कठिन है। भामह तथा दंडी द्वारा अलंकृत गद्यकाव्य के अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग किया गया है। दण्डी तो इस प्रकार के अलंकृत गद्य के लेखक भी हैं। दण्डी के बहुत पहले से ही अलंकृत गद्यकाव्य लिखे जाने लगे थे। महाक्षत्रप रुद्रदामा द्वारा खुदवाया हुआ गिरनार वाला शिलालेख गद्यकाव्य का एक अच्छा उदाहरण है। इससे स्पष्ट है कि अलकृत गद्य लिखने की प्रथा बहुत पहले से चली आ रही थी। भामह तथा दंडी ने लक्ष्य को देखकर ही लक्षण बनाये होंगे। कथा का लक्षण निर्दिष्ट करते समय उनके समक्ष प्राकृत और संस्कृत की कथा-पुस्तकें अवश्य विद्यमान थीं। चरित काव्य की कथा कहने की प्रथा बहुत बाद तक चलती रही। गोस्वामी तुलसीदास का रामचरितमानस 'चरित' तो है ही, कथा भी है। उन्होने अनेको बार इसे कथा कहा है।[1] विद्यापति ने अपनी कीर्तिलता को 'कहाणी' कहा है--'पुरिस कहाणी हउं कहउं।'' रासो मे भी कई बार उस काव्य को 'कीर्तिकथा' कहा गया है। इस तरह यह 'कथा' शब्द बहुत विस्तृत अर्थों मे व्यवहृत मालूम पड़ता है।

संस्कृत के आचार्यों ने 'कथा' शब्द का प्रयोग एक निश्चित काव्य रूप के अर्थ मे किया है। संस्कृत की 'कथा' गद्य मे लिखी जाती थी। एक इसी कोटि की गद्य-बद्ध रचना और भी होती थी जो आख्यायिका कही जाती थी। भामह ने काव्यालंकार (१.२५-२८) मे सुन्दर गद्य मे लिखी सरस कहानी वाली रचना को आख्यायिका कहा है।[2] यह उच्छ्वासो मे विभक्त होती थी और इसका कहने वाला और कोई नही, स्वयं नायक होता था। इसमे बीच-बीच में वक्त्र और अपवक्त्र छन्द आ जाते थे। इसमे कन्याहरण, युद्ध विरोध और अन्त में नायक की विजय का उल्लेख भी होता था। 'कथा' इससे कुछ भिन्न होती थी। उसमे वक्त्र और अपवक्त्र छन्द नही होते थे और न उसका विभाजन ही उच्छ्वासो मे होता था। इसकी कहानी नायक स्वय नही कहता था, अपितु किन्ही दो व्यक्तियों की बातचीत के रूप मे कह दी जाती थी। उसके लिए भाषा का भी कोई बन्धन नही था। ऐसा प्रतीत होता है कि भामह के इस कथन को ही सामने रखकर दंडी ने 'काव्यादर्श' (१।२३-२८) में कहा था कि कथा और आख्यायिका वस्तुतः एक ही श्रेणी की रचनाएँ हैं, क्योंकि कहानी नायक कहे या कोई और

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, तृ० व्याख्यान, पृ० ५७।

२—काव्यालंकार—भामह, प्रथम परिच्छेद, २५-२७।

हिंदी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ३९

कहे, अध्याय का विभाजन हो या न हो, अध्यायो का नाम उच्छ्वास रखा जाय या लम्भ रखा जाय, बीच में वक्त्र या अपवक्त्र छन्द आते हो या न आते हो, इससे कहानी में क्या अन्तर आ जाता है ? इसलिए इन ऊपरी भेदो के कारण 'कथा' तथा आख्यायिका मे भेद नही करना चाहिए।[१]

दण्डी ने यद्यपि भामह के कथन को उपर्युक्त तर्क से काट दिया है लेकिन भामह के कथन मे सत्यता अवश्य है। भामह ने अपने समय मे संस्कृत-गद्य मे लिखी जाने वाली कथाओ के साथ प्राकृत तथा अपभ्रंश मे लिखी गई कथाओ को भी देखा था। उनसे बहुत पहले ही 'बृहत्कथा' लोकप्रिय हो चुकी थी। नि.सन्देह संस्कृत कथा के तीन प्रसिद्ध तथा मजेमजाये लेखक-दण्डी, सुबाहु और बाणभट्ट-अपनी कथावस्तु के लिये बृहत्कथा के आभारी है। काव्यालंकार के लेखक रुद्रट (लगभग नवी शताब्दी) ने लिखा है कि केवल संस्कृत मे निबद्ध कथाओ के लिए गद्य मे लिखने का बंधन है, लेकिन दूसरी भाषाओ मे लिखी जाने वाली रचनायें पद्य मे भी लिखी जा सकती हैं। यहाँ अन्य या दूसरी भाषाओ से प्राकृत तथा अपभ्रंश की ओर संकेत है। नमिसाधु ने तो अपनी टीका मे साफ शब्दो मे कहा है कि 'अन्येन प्राकृतादि भाषान्तरेण तु अगद्येन गाथाभि प्रभूतं कुर्यात्' अर्थात् 'दूसरी भाषाओ का अर्थ प्राकृत आदि भाषाएँ, उनमे अगद्य मे अर्थात् गाथाओ मे कथा लिखी जानी चाहिए। इस प्रकार भामह और रुद्रट के बताए हुए कथालक्षणो से प्रतीत होता है कि 'कथा' संस्कृत से भिन्न भाषाओ मे पद्य मे भी लिखी जाती थी। निश्चित ही उन दिनो प्राकृत तथा अपभ्रंश मे लिखा हुआ ऐसा साहित्य विद्यमान था जिन्हे 'कथा' कहा जाता था। प्राकृत मे लिखित कथाएँ पद्यबद्ध भी होती

१— अपाद. पादसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदो द्वौ तयोराख्यायिका किल।।
नायके नैव वाच्यान्या नायकं नेतरेण वा।
स्वगुणा विष्क्रिया दोषो नात्र भूतार्थशसिन ।।
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदोरणान्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदलक्षणम्।।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासं चापि भेदकम्।
चिह्नमाख्या यिकायाश्चेत प्रसगेन कथास्वपि।।
आर्यादिवत्प्रदेश. किं न वक्त्रापरवक्त्रयो।
भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वास्तु किं ततः।।
तत्कथाख्यायिकेत्येव जातिः संज्ञाद्वयाकिता।
अत्रैवाविर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः।।

थी और गद्य में भी लिखी जाती थीं। जहाँ तक वृहत्कथा का प्रश्न है उसके सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है कि यह गद्य मे लिखी गई थी या पद्य में, लेकिन 'वसुदेवहिण्डि' नामक गद्य-निबद्ध प्राचीन प्राकृत कथा प्राप्त हुई है जो यह बताने के लिए काफी है कि प्राकृत में गद्य-बद्ध कथाएँ अवश्य लिखी जाती थी। प्राकृत मे लिखी हुई सबसे प्राचीन कथा तो गुणाढ्य की वृहत्कथा ही है। यह ग्रन्थ पैशाची प्राकृत मे लिखा गया था। हाल की 'सतसई' प्राकृत-कविताओं का अनुपम संग्रह है।

रुद्रट ने कथा या महाकथा के लिये जो लक्षण बताये हैं वे मुख्यत उस समय की प्राकृत या अपभ्रंश कथाओ को देखकर ही निर्दिष्ट किये गये होगे, क्योंकि सामान्यत: लक्ष्य को देखकर ही लक्षण बनाने का विधान है। रुद्रट के अनुसार (महा) कथा में प्रथम श्लोक द्वारा इष्टदेव और गुरू को नमस्कार कर ग्रन्थकार संक्षेप मे अपने वंश का परिचय देता है और ग्रन्थ रचना के उद्देश्य का वर्णन करता है। रुद्रट ने निर्देश किया है कि कथा मे पुरवर्णन आदि सहित कथानक अनुप्रासयुक्त गद्य मे लिखा जाना चाहिए। प्रारम्भ में कथान्तर होना चाहिए जो शीघ्र ही मुख्य कथा की अवतारण करता हो। इसका मुख्य विषय 'कन्यालाभ' (कन्या की प्राप्ति) है और इसमे श्रृंगारस का प्राधान्य होना है। 'सकल श्रृंगार से सम्यक् रूप से विन्यस्त' यह कथा संस्कृत भाषा मे गद्य मे लिखी जाती है और अन्य भाषाओ मे पद्य मे लिखी जाती है।[1] रुद्रट से कुछ पहले की लिखी कौतूहल कवि की 'लीलावती' नामक कथा प्राप्त हुई है जो ठीक-ठीक इन लक्षणो से मिलती है। भामह ने जो संकेत किया था कि कथा मे उच्छ्‌वास आदि के रूप मे अध्यायो का विभाजन नही होता, वह इस कथा मे स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। कथा का कहने वाला भी यहाँ नायक नही है। यह कवि तथा कवि-पत्नी की बातचीत के रूप मे कही गई है। इस प्रकार दो व्यक्तियो की बातचीत के रूप मे कथा कहने की प्रथा इस देश मे काफी पुरानी है।

१— श्लोकैर्महाकथायां मिष्टान् देवान् गुरुन्नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात्स्वं च कर्तृतया॥
सानुप्रासेन ततो लध्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन्॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपंचितं सम्यक्।
लघु तावत् सन्धानं प्रक्रान्तकथावताराय॥
कन्यालाभफलं वा सम्यग् विन्यस्य सकलश्रृंगारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन।

—रुद्रट, काव्यालंकार, १६–२०–२३

भामह ने जब कथा और आख्यायिका मे यह भेद किया था कि एक तो दूसरों की बातचीत के रूप में कही जानी चाहिए और दूसरी स्वयं नायक के द्वारा, तो उन्होंने संभवतः यह बताना चाहा था कि कथा मे कल्पना की गुंजायश अधिक होती है तथा आख्यायिका मे कम। एक की कहानी काल्पनिक होती है और दूसरी की ऐतिहासिक। परवर्ती आलकारिको ने कादम्बरी को कथा' कहा है तथा 'हर्षचरित' को 'आख्यायिका'

बाद के आचार्यों ने कथा, आख्यायिका के सम्बन्ध मे प्राचीन परम्परा को ही दुहराया है। जैसे आनन्दवर्धन ने कथा, आख्यायिका के भेद को बहुत दूर तक स्वीकार नहीं किया है वैसे उन्होने यह स्वीकार किया है कि कथा मे शृंगार रस की प्रधानता रहती है।

अभिनवगुप्त प्राचीन आचार्यों के बताए हुए भेद को केवल दुहरा भर देते हैं। हेमचन्द्र भी पुराने आचार्यों के लक्षणो की ही पुनरावृत्ति करते हैं परन्तु कथा के सम्बन्ध मे उन्होंने जो कहा है वह विचारणीय है। उन्होने कहा है कि कथा गद्य मे हो सकती है जैसे कादम्बरी अथवा पद्य मे हो सकती है जैसे लीलावती।[१] भाषा के सम्बन्ध मे उन्होंने बतलाया कि यह संस्कृत, मागधी, शौरसेनी, पैशाची प्राकृतो मे तथा अपभ्रंश मे लिखी जा सकती है

"या च सर्वभाषा काचित संस्कृतेन काचित प्राकृतेन काचिन्मागध्या काचिच्छूरसेन्या काचित् पिशाच्या काचिदपभ्रंशेन वध्यते सा कथा[२]।"

आख्यायिका के सम्बन्ध मे हेमचन्द्र ने हर्षचरित का नाम लिया है।[३] अन्य लक्षण लगभग भामह के बताए हुए लक्षणो जैसे हैं। आचार्य विश्वनाथ ने भी कथा तथा आख्यायिका के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है उसमे कोई नई चीज नही है। प्राचीन आचार्यों का मत ही उन्होने स्वीकार किया है।[४] कथा को उन्होने सरस वस्तु कहा है 'कथाया सरसं वस्तु।'

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कथा और आख्यायिका की परम्परा इस देश मे बहुत प्राचीन रही है तथा वक्तव्य-विषय, रूप-विधान इत्यादि को लेकर उसमे परिवर्तन होते रहे हैं। धीरे-धीरे आख्यायिका साहित्य का ह्रास हो गया और कालक्रम से

१—हेमचन्द्र · काव्यानुशासन, अध्याय ८ सूत्र ८ की टिप्पणी।
२—वही, अध्याय ८ सूत्र ८ की टिप्पणी।
३—वही, अध्याय ८, सूत्र ७ की टिप्पणी।
४—साहित्य दर्पण—विश्वनाथ, षष्ठ परिच्छेद, ३३२-३३५।

उसमें आचार्यों के बताए लक्षण विलुप्त होने लगे। कथा ने अवश्य अपना क्षेत्र अक्षुण्ण रखा वैसे समय के साथ कथा की परिभाषा में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया।

कथा और आख्यायिका के जो लक्षण बताए गये हैं उनसे ज्ञात होता है कि ऐतिहासिक वृत्त, कल्पित तथा अर्द्ध-कल्पित सभी प्रकार की कहानियो के आधार पर बहुत पहले से ही भारतवर्ष में काव्य-ग्रन्थ लिखे जाने लगे थे। ऐतिहासिक पुरुषो के नाम के साथ भी बहुत सी कहानियो मे प्रेम को प्रधानता दी जाती थी। ये प्रेम-कथाएँ संस्कृत प्राकृत, तथा अपभ्रंश मे शताब्दियो तक लिखी जाती रही। हम पहले देख चुके हैं कि आख्यायिकाओ मे कन्याहरण एक रूढ़ि की भाँति माना जाता था। बाद मे चलकर कन्यालाभ ने उसका स्थान ले लिया। इसलिए उन आख्यायिकाओं पर आधृत काव्य मे प्रेम का होना अनिवार्य था।

प्राचीनकाल से ही भारतीय कथा-साहित्य का अधिकाश तीन स्रोतों रामायण, महाभारत तथा लोकप्रचलित कहानियों से प्रेरणाग्रहण करता रहा है। बहुत से लोगों ने रामायण की कहानी को अपनी कृतियों का आधार बनाया है तथा बहुतो ने महाभारत का आश्रय लिया। इन दोनो के अतिरिक्त लोकप्रचलित कहानियों को आधार बनाकर भी कथाएं लिखी गई हैं। इन लोक-प्रचलति कहानियो का सबसे बडा संग्रह पैशाची प्राकृत मे लिखी गुणाढ्य कवि की 'बृहत्कथा' है। सोमदेव के 'कथासरित्सागर' के विषय मे कहा जाता है कि वह गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' पर आधृत है।[1] बृहत्कथा की कहानियाँ सोमदेव के कथासरित्सागर के अतिरिक्त बुद्धस्वामी के 'बृहत्कथाश्लोक संग्रह', क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी मे भी संगृहीत हैं।[2]

भारतीय आख्यान-साहित्य मे अनेको बार ऐतिहासिक राजाओ को केन्द्र बनाकर काव्य की रचना हुई है। ऐसे राजाओ मे नरवाहनदत्त, उदयन, शूद्रक, हाल, विक्रमादित्य आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उन कहानियो मे ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम तो लिये गये हैं किन्तु कथानक पूर्णतया कल्पित हैं। ये राजा, प्रेम-कहानियो के नायक रहे हैं। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तीनो मे ही इस प्रकार की प्रेम-कहानिया लिखी गई हैं। परवर्ती प्रेमाख्यानो के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि इन प्रेमकथाओं तथा उन प्रेम-कथाओ को लेकर लिखे गद्य या पद्य-काव्य के रचना-कौशल तथा कथानक रूढ़ियो की परम्परा से थोड़ा जायका लिया जाय।

हमने विचार किया है कि आचार्यगण अपने ग्रन्थों मे आख्यायिका तथा कथा के दृष्टान्त-स्वरूप बाण के हर्षचरित और कादम्बरी की चर्चा करते रहे हैं। इसलिए

१—वासवदत्ता की भूमिका—एफ० इ० हाल, पृ० २२।
२—हि० सा० आ०, पृ० ५६।

हर्षचरित और कादम्बरी की रचना-विधि की थोड़ी जानकारी आवश्यक है। हर्षचरित और कादम्बरी के कथानक सुपरिचित हैं। बाण ने हर्षचरित मे सुबन्धु की वासवदत्ता का उल्लेख किया है। संभवतः बाण के लिये सुबन्धु की यह रचना पथप्रदर्शन का कार्य करती रही है। वासवदत्ता संस्कृत मे लिखी हुई है। बाण ने बतलाया है कि सुबन्धु की बासवदत्ता मे प्रथम के बारह श्लोक आर्याछन्द मे लिखे हुए हैं। इन श्लोको मे सरस्वती, कृष्ण तथा शिव की वदना की गई है। कुछ अच्छे कवियो का नाम लिया गया है और उनकी प्रशंसा की गई है तथा फिर ग्रन्थकर्ता ने अपने सम्बन्ध में कहा है। कहानी मे अध्याय आदि नही हैं। गद्य मे लिखी हुई यह कहानी बिना किसी व्यवधान के चलती चली जाती है। इस ग्रन्थ मे वक्त्र या अपवक्त्र छन्द का प्रयोग नही किया गया है। इस कहानी मे प्रेम की ही प्रधानता है। संग्राम अथवा कन्याहरण आदि के प्रसंग नही आये हैं।[1]

बाण की कादम्बरी मे भी प्रेम की प्रधानता है और इसका कथानक कल्पना प्रसूत है। कादम्बरी गद्य मे लिखी गई है और उसमे उच्छ्वास आदि का विभाजन नही है। आरम्भ मे वंशस्थ छंद मे ब्रह्मा, शिव की वंदना की गई है। इसके बाद बाण ने अपने गुरु की वंदना की है और अच्छे काव्य के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट किये हैं। ग्रन्थ कर्ता ने अपनी जाति और वंश का परिचय दिया है। भामह ने जो लक्षण कथा के बतलाए हैं वे सामान्यतः कादम्बरी मे देखे जा सकते है।

हर्षचरित का जहातक प्रश्न है उसमे भामह के बतलाए हुए आख्यायिका के लक्षण कुछ दूर तक अवश्य ही मिलते हैं किन्तु ऐसा नही कहा जा सकता कि उन लक्षणो को पूर्णतया इसमे पाया जा सकता है। इस ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में आर्या छंद में उस अध्याय मे वर्णित विषय की और सकेत किया गया है। यह काम वक्त्र या अपवक्त्र छंद से नही लिया गया है। वक्त्र अपवक्त्र छदो का इसमे प्रयोग मिलता अवश्य है किन्तु वे प्रसंगानुसार हैं। सुन्दर, मधुर गद्य मे सम्राट हर्ष के चरित का इसमे वर्णन है। परन्तु कन्याहरण आदि के प्रसंग इसमे नही आये हैं। भामह के अनुसार आख्यायिका मे नायक स्वयं अपने कृत्यो का वर्णन करता है लेकिन हर्षचरित मे ऐसा नही है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भामह ने जब कथा-आख्यायिका के लक्षण लिखे थे तब अन्य रचनाएं उनके सामने रही होगी जिनका पता हमे आज नही है। हर्षचरित मे बाण ने ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य बताया है तथा सम्राट के प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की है। अपनी जाति और वश का परिचय भी बाण ने गद्य मे दिया है। रुद्रट के बताए हुए आख्यायिका के लक्षण हर्षचरित मे पूरी तरह से मिलते हैं।

१—हिन्दी-सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ४८।

ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में चलकर पद्य में भी कथाओं के लिखने का प्रचलन हो गया। हेमचन्द्र ने बतलाया है कि कथा गद्य अथवा पद्य में लिखी जा सकती है। उदाहरणार्थ हेमचन्द्र ने गद्य में लिखी कादम्बरी और पद्य में लिखी लीलावती का उल्लेख किया है। कुतूहल कवि की लीलावती कई दृष्टियों से अपना महत्व रखती है। इसलिए इसका थोड़ा परिचय आवश्यक है। लीलावती सिंहल देश की कन्या है। सातवाहन या हाल इसका नायक है। सातवाहन ऐतिहासिक पात्र है किन्तु सम्पूर्ण कथा कल्पित है। बाद के प्रेमाख्यानक काव्यो मे ऐतिहासिक पुरुषो के साथ कल्पित कथाओ का योग किया गया है। कन्या प्राप्ति ही लीलावती काव्य का मुख्य विषय है। कवि ने प्रारम्भ मे विष्णु के कई अवतारो और उनके कृत्यों का स्मरण कर उनकी वंदना की है। साथ ही महेश्वर, गौरी, चण्डी और गंगा का गुणगान कर उनकी वंदना की है। सज्जन और दुर्जन के गुण-दोषो का वर्णन किया है। इसके बाद कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है। कवि ने अपनी प्रियतमा के अनुरोध पर लीलावती की कथा सुनाई है। लीलावती के भावी जीवन मे भाग्य का बहुत बड़ा हाथ है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि के सामने वृहत्कथा का ही आदर्श है। कथानक रूढि, पात्रादि की दृष्टि से वृहत्कथा का प्रभाव उसपर स्पष्ट मालूम पड़ता है। सातवाहन यद्यपि ऐतिहासिक पुरुष है और इस ससार का है फिर भी विद्याधर, यक्ष, सिद्ध आदि के सम्पर्क मे आता है। नायक तथा अन्य बहुत से पात्र शिव और पार्वती के बड़े भक्त हैं। वृहत्कथा में शिव की पूजा की बात आई है। समुद्रयात्रा, जहाज का डूबना आदि लीलावती मे भी आये हैं। लीलावती के कथानक पर पूर्ववर्ती साहित्य की स्पष्ट छाप है। भारतीय कथासाहित्य चाहे संस्कृत मे लिखा गया हो, चाहे प्राकृत मे या अपभ्रंश मे प्राचीन कहानियो का प्रभाव, उनकी भावधारा, वातावरण, रूढ़ियां, पात्रो के नाम आदि उसमे किसी-न-किसी रूप मे आ ही गये हैं। एक और बात उल्लेख्य है कि ऐहिक-तापरक कहानी मे भी धर्म, नीति, सदाचार की बातें किसी-न-किसी रूप मे आ ही जाती हैं और यह प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है।[१]

जैन अपभ्रंश साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि भारतीय साहित्य का कोई भी अंग उससे अछूता नहीं रहा। जैन आख्यान-साहित्य, परिमाण की दृष्टि से भी उसका महत्व कम नहीं है। जैन चरित-काव्यो की निश्चित संख्या बताना मुश्किल है। इसी प्रकार से जैन कथाओ की संख्या भी अगणित है। चरित काव्यों के पात्र ऐतिहासिक पुरुष हैं और मुख्य रूप से जैन तीर्थंकरों या राजाओं का जीवन उनमे चित्रित है फिर भी उनमें कल्पना का योग अधिक है किन्तु यह भी सत्य है कि उनमे

---

१ —हिन्दी-सूफी काव्य की भूमिका-रामपूजन तिवारी, पृ० ५० ।

वर्णित कुछ घटनाएँ वास्तव में ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। समूचा जैनसाहित्य अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है। उसमें बहुत-सी प्राचीन परम्परायें चाहे वे ऐतिहासिक हों या अर्द्ध-ऐतिहासिक किसी-न-किसी रूप में सुरक्षित हैं। परवर्ती हिन्दी साहित्य को समझने में उनसे बहुत सहायता मिल सकती है।

अभी तक जितनी जैन धर्मकथाओं का पता चला है उनमे संभवतः सबसे प्राचीन पादलिप्त सूरी की लिखी हुइ धर्मकथा 'तरंगवती' है। यह ईसवी सन् के पांचवी शताब्दी के भी पहले की है।[1] यद्यपि मूल-ग्रन्थ का अभी तक पता नहीं चलता है ईसवी सन् की सोलहवी शताब्दी मे 'तरंगलोला' के नाम से इसका संक्षेप रूप में कुछ परिचय मिलता है।[2] यह एक प्रेम-काव्य है। एक जैन-मुनि के उपदेश से पति-पत्नी को वैराग्य उत्पन्न होता है। विशुद्ध प्रेमाख्यान के द्वारा धार्मिक अथवा नैतिक बातो का प्रचार भारतीय साहित्य की एक प्रमुख विशेषता रही है। जैन मुनियों ने केवल मनोरंजन के लिये कहानी नही कही है अपितु कहानियों को धर्म चर्चा का माध्यम बनाया है।

ईसवी सन् की आठवीं शताब्दी[3] के जैन कवि हरिभद्र की 'समराइच्च कहा' प्राकृत मे लिखी हुई धर्म कथा है। जैन कवि सामान्यतः कर्मफल, जन्मान्तर आदि का वर्णन कर अन्त में नायक तथा नायिका को संसार त्यागी बना देते हैं। यह कथा गद्य मे है लेकिन बीच-बीच में आर्या छन्द का भी रचनाकार ने प्रयोग किया है। इस ग्रन्थ मे कुछ प्रेमाख्यान भी आ गये हैं यथा—सनत्कुमार और विलासवती की प्रेम-कहानी या धरण और लक्ष्मी की कहानी।

सिद्धर्षि की सरल संस्कृत में लिखी हुई 'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' रूपक (Allegory) जैसी लिखी गई है। सिद्धर्षि ने इस ग्रन्थ को सन् ९०६ ई० मे समाप्त किया।[4] मुनिकनकामर का 'करकंडचरिउ' भी अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है। पण्डित लाखू या लक्खण की जिणदत्तचरिउ[5] (जिनदत्त चरित) संवत् १२७५ वि० (१२१८) की रचना है। यह अभी तक अप्रकाशित है। इसमे जिनदत्त की सिंहल यात्रा, राजकुमारी से विवाह तथा धन लेकर

१—हि०इ० लि० (भाग २)—विन्टरनित्स, पृ० ५२२।

२—वही, पृ० ५२२।

३—हि०इ० लि० (भाग २)—विन्टरनित्स, पृ० ४७९।

४—वही, पृ० ५२६।

५—हरिवंश कोछड़—अ०सा०, पृ० २२६—२३१।

लौटने की कथा का वर्णन है। लौटते समय समुद्र में फेंक दिये जाने, मणिद्वीप में पहुँचने, विमलवती से विवाह करने आदि के भी प्रसंग हैं।

ईसवी सन् की पन्द्रहवी शताब्दी के अंतिम चरण के कवि जिनहर्षगणि की रचना 'रयणसेहरीकहा' (रत्नशेखर नरपति कथा) का कथानक जायसी के पद्मावत से हू-बहू मिलता-जुलता है। इसका नायक राजा रत्नशेखर है। वह जब रत्नवती के रूप का वर्णन सुनता है तब बिल्कुल विह्वल हो जाता है। रत्नवती सिंहल द्वीप की राजकुमारी है। जैन कवियों की परम्परानुसार कवि ने दोनो के जन्म-जन्मान्तर की बात बतलाई है और उनके प्रेम को जन्म-जन्मान्तर का बतलाया है। राजा सिंहल जाता है और कामदेव के मंदिर में राजकुमारी की प्रतीक्षा करता है। राजकुमारी उसी मंदिर मे पूजा करने जाया करती थी। दोनों का विवाह हो जाता है। इस ग्रन्थ मे इन्द्रजाल योग आदि की बातें भी आ गई हैं।

कथा-काव्य तथा चरित-काव्य के विषय मे दो एक और बातों पर विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा। यह जो दो व्यक्तियों के बीच बातचीत के रूप मे कथा कहने की प्रथा है, वह इस देश की बहुत प्राचीन है। महाभारत मे पूर्वकथा कहकर श्रोता वक्ता की योजना की गई है। यद्यपि रामायण में श्रोता-वक्ता की योजना नही है, किन्तु पूर्वकथा उसमे भी है। लौकिक कथाओं मे यह प्रथा प्रारम्भ में शायद इसलिए व्यवहृत हुई थी कि कथा मे असंभव समझी जाने योग्य बातों को पर-प्रत्यक्ष बनाकर उसकी असंभाव्यता की मात्रा कम कर दी जाय। बृहत्कथा मे भी एक मनोरंजक कथान्तर या पूर्वकथा है, लेकिन वह ठीक-ठीक प्रश्नोत्तर के रूप में नही है। लीलावती में जरूर वह प्रश्नोत्तर के रूप मे है। कादम्बरी मे भी कथा शुक के द्वारा कहलवाई गई है तथा पूर्व कथा में बतलाया गया है कि किस प्रकार यह कथा ऋषि कुमारों के प्रश्नों के उत्तर में जाबालि ऋषि ने सुनाई थी और किस प्रकार शुक ने उनसे कथा सुनी, और इस प्रकार मुख्यतः प्रश्नोत्तर के रूप मे ही वह कथा कही गई। लीलावती मे पूर्वकथा की उतनी बाढ नहीं है। वहाँ केवल कवि की पत्नी ने सायंकालीन मधुर शोभा को देखकर अपने प्रियतमा को सम्बोधित करके कहा कि कोई सरस कथा कहो। इसके बाद कथा प्रारम्भ हो जाती है। बीच-बीच में कवि बिना प्रसंग के हो 'प्रियतमे' 'कुवलयदलाक्षि' आदि सम्बोधनों का ठीक उसी प्रकार प्रयोग करता है जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी अपने 'रामचरितमानस' में 'उमा', खगेश', 'उरगारि' आदि सम्बोधनों का प्रयोग करते हैं। तुलसीदास जी ने जब एकबार अपनी रचना को 'कथा' घोषित कर दिया तो उन्होंने उन तमाम रूढ़ियों का पालन किया जो प्राकृत तथा अपभ्रंश-कथाओं के लिये आवश्यक समझी जाती थीं। खल निंदा भी उन्होंने की है कथान्तर रूप में पूर्वकथा की योजना भी उन्होंने की है और श्रोता वक्ताओं के अनेक जोड़े

उपस्थित किये हैं। उपलब्ध अपभ्रंश काव्यों में इस प्रकार कई जोड़े श्रोता-वक्ता की योजना तथा इस तरह का जटिल प्रश्नविधान नहीं मिलता[1]। जटिलता का मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि तुलसीदास जी की कथा केवल कथा नहीं, 'पुराण' भी है। डा० श्रीकृष्ण लाल ने इसे 'पुराण' सिद्ध किया है।[2] पुराणों मे जटिल प्रश्नोत्तर विधान की योजना मिलती है, किन्तु पृथ्वीराजरासो मे भी इस प्रकार की जटिलता का कुछ आभास ढूंढा जा सकता है। हिन्दी के आरम्भकाल में पाई जाने वाली कथाओं में इस प्रकार की श्रोता-वक्ता की योजना वाला विधान पाया जाता है। कीतिलता की कहानी भृंग और भृंगी की बातचीत के रूप में है। यद्यपि पद्मावत की पूरी कहानी किसी शुक के मुंह से नहीं कहलाई गई है तब भी शुक उस कहानी का मुख्य पात्र है तथा कथा में गति देने मे वह मुख्य रूप से सहायक है। जहां तक कथानक को श्रोता-वक्ता के रूप मे कहने का सम्बन्ध है, सूफी कवियो मे—इस प्रकार की रूढि का पालन कम हुआ है। जैन-अपभ्रंश-चरित-काव्यो में भी इस रूढि को विशेष महत्व नही दिया गया। इसके अतिरिक्त राजपूताने में पाई जाने वाली 'ढोला मारु' की कहानी भी सीधे ही शुरू होती है। संस्कृत मे लिखे हुए जैन कवि हरिषेणाचार्य के 'कथाकोश' नामक ग्रन्थ मे संगृहीत सभी कथाएं सीधे ही प्रारम्भ होती हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि यह कथा बहुत व्यापक नही थी।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन काल से ही प्राकृत और संस्कृत कथाओं मे श्रोता और वक्ता की परम्परा रखने का नियम चला आ रहा है। जैन कवियो में तथा सूफी कवियो मे इस नियम के प्रति थोडी ढिलाई दिखाई पडती है, किन्तु अन्यत्र श्रोता और वक्ता की परम्परा रखना आवश्यक माना गया है। वैतालपंचविंशति, शुकसप्तति आदि कथाओ मे भी पूर्व कथा की योजना की गई तथा रासो मे तो स्पष्ट ही यह योजना मिल जाती है। इस सन्दर्भ मे ध्यान देने योग्य बात यह है कि विद्यापति की कीर्तिलता मे उस समय के देशभाषा-साहित्य के गुणानुवादप्रधान चरित काव्यो में अनेक लक्षण मिलते हैं तथा यह पुस्तक उस समय के गुणानुवादमूलक चरित काव्यों में सर्वाधिक प्रामाणिक है। संभवतः उसके आकार की लघुता के कारण ही कवि ने उसे 'कहाणी' या कथानिका कहा है। उसमे प्रायः उन सभी छन्दो का प्रयोग हुआ है जो रासो मे प्रयुक्त हैं। रासो की ही तरह उसमे संस्कृत तथा प्राकृत भाषाओ का प्रयोग है और वह देश्यमिश्रित अपभ्रंश भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनो

१—हिंदी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६२।

२—मानस-दर्शन : डा० श्रीकृष्णलाल।

ऐतिहासिक व्यक्ति के गुणानुवादमूलक चरित-काव्य इसी तरह से लिखे जाते थे। प्राकृत की पद्य-बद्ध कथाओं में थोड़ा-थोड़ा गद्य भी रहा करता था। लीलावती में गद्य है किन्तु नाम मात्र का ही। कीर्तिलता में गद्य तथा पद्य दोनों है। रासों में भी गद्य अवश्य रहा होगा। संभवतः रासो मे बीच-बीच में जो वचनिकाएं आती हैं, वे गद्य ही हैं। निश्चित ही इन वचनिकाओं की भाषा में भी परिवर्तन हुआ होगा, किन्तु वे इस बात के प्रमाण के रूप में आज भी विद्यमान हैं कि उन दिनो की प्राकृत तथा अपभ्रंश कथाओ के पूरे लक्षण रासो मे मिलते हैं।[1]

पृथ्वीराजरासो चरित-काव्य तो निःसन्देह है ही, यह रासो या 'रासक' काव्य भी है। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में रासक को गेयरूपक माना गया है।[2] ये गेयरूपक तीन प्रकार के होते थे—मसृण अर्थात् कोमल, उद्धत तथा मिश्र। रासक-मिश्र गेयरूपक है। रासक आरम्भ मे एक प्रकार उद्धत-प्रयोग प्रधान गेय रूपक को कहते थे, जिसमें थोड़ा-बहुत 'मसृण' के कोमल प्रयोग भी मिले होते थे। इसमें बहुत सी नर्तकियां विचित्र ताल-लय के साथ योग देती थी। यह मसृणोद्धत ढंग का गेय रूपक था। संदेशरासक इसी तरह का रूपक है। यह मसृण अधिक है। पृथ्वीराजरासो यदि वास्तव में पृथ्वीराज के समय में लिखा गया था तो उसमें रासक-काव्य के कुछ-न-कुछ लक्षण भी अवश्य रहे होंगे। संदेशरासक का जिस प्रकार से आरम्भ हुआ है उसी प्रकार से रासो का भी आरम्भ हुआ है। प्रारम्भ की कई आर्यायें तो बिल्कुल मिलती-जुलती हैं। जैसे—सदेशरासक

जइ बहुलदुद्ध संमीलया य उल्ललइ तंदुला खीरी।
ता कणकुक्कस सहिआ रब्बडिया मा दडव्वडउ ॥ १६ ॥

(यदि प्रचुर दूध मिलाकर : बड़े घरो में: तंदुल-खीर बनाया जाता है तो गरीब लोग क्या कण-भूसी मिलाकर मट्ठे की रबड़ी न बनाएं ?)

पृथ्वीराजरासो—

पय सक्करी सुभत्तो, एकतो कनय राय भोयंसी।
कर कंसी गुज्जरीय, रब्बरियनेव जीवंति ॥ छं० ४३, रू० १६))

(यदि दूध ? शक्कर तथा भात मिलाकर (बड़े घरों में) लड़कियां राजभोग

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ६४।
२—गेयं डोम्बिकाभाणप्रस्थानशिंगकभाणिकाप्रेरणका क्रीडहल्लीस करासगोष्ठी—श्रीगदितरागकाव्यादि। ८-४।

बनाती हैं तो (गरीब) गूजरी क्या कण-भूस्सी वाली रबडी (मट्ठे की) से न जीवन निर्वाह करे ?)

संदेशरासक में युद्ध का कोई प्रसंग नहीं है। परन्तु उद्धत-प्रयोग-प्रधान गेय रूपक में युद्ध का प्रसंग आना अपेक्षित ही होगा तथा युद्धो के साथ प्रेम-लीलाओं का मिश्रण भी प्रयोग और वक्तव्य-विषय के मिश्रण के अनुकूल ही होगा। इससे आभास होता है कि पृथ्वीराजरासो प्रारम्भ में ऐसा कथा-काव्य था, जो मुख्य रूप से उद्धत-प्रयोग प्रधान मसृण-प्रयोग युक्त गेय रूपक था। उसमें कथाओ और रासकों दोनों के लक्षण थे।[१]

हेमचन्द्राचार्य ने यह साफ-साफ लिखा है कि इन काव्य रूपो के ये भेद पुराने लोगों के बताए हुए हैं—'पदार्थाभिनयस्वभावानि डोम्बिकादीनि गेयानि रूपकाणि चिरन्तनैरुक्तानि'। और उन्होने पुराने आचार्यों के बताए लक्षण भी उद्धृत किये हैं। धीरे-धीरे इन शब्दों का प्रयोग कुछ घिसे अर्थों मे होने लगा। जिस प्रकार 'विलास' नाम देकर चरित काव्य लिखे गये, 'रूपक' नाम देकर चरित काव्य लिखे गये, उसी प्रकार 'रासो' या 'रासक' नाम देकर भी चरित काव्य लिखे गये। जब इन काव्यो के लेखक इन शब्दो का व्यवहार करते होंगे तो निश्चित ही उनके मन मे कुछ-न-कुछ विशिष्ट काव्यरूप रहता होगा। राजपूताने के डिंगल-साहित्य मे परवर्तीकाल मे ये शब्द असाधारण चरित-काव्य के नामान्तर बन गये हैं। अधिकाश चरित-काव्यो के साथ 'रासो' नाम जुडा मिलता है, यथा-रायमलरासो, राणारासो, संगत सिंघरासो, रतनरासो, आदि। इसी तरह बहुत से चरित काव्यो के साथ 'विलास' शब्द जुडा हुआ है, जैसे- रागविलास, जगविलास, विजैविलास, रतनविलास, अमैविलास, भीमविलास। 'विलास' शब्द भी कुछ क्रीड़ा, कुछ खेल आदि की ओर संकेत करता है। इसी तरह कुछ काव्यो के नाम के साथ 'रूपक' शब्द जुड़ा हुआ है, जैसे—राजारूपक, गोगादेरूपक, रावरिणमलरूपक, गजसिंघ जी रूपक आदि। स्पष्ट ही रूपक शब्द किसी अभिनेयता की ओर इशारा करता है। ये शब्द मात्र इस बात की ओर इंगित करके विरत हो जाते हैं कि ये काव्य-रूप किसी समय गेय तथा अभिनेय थे। 'रासक' का तो इस प्रकार का लक्षण भी मिल जाता है। लेकिन धीरे-धीरे ये भी कथाकाव्य या चरित काव्य के रूप मे ही स्मरण किये जाने लगे। इनका प्राचीन रूप क्रमशः भुला दिया गया, लेकिन पृथ्वीराज के काल में यह रूप पूर्णरूपेण भुलाये नही गये थे। इसी कारण पृथ्वीराजरासो मे कथा-काव्यों के भी लक्षण प्राप्त होते हैं तथा रासक रूप के भी कुछ चिन्ह प्राप्त हो जाते हैं।[२]

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल- हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६६।

२—हिन्दी साहित्य का आदिकाल डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ६६।

उपर्युक्त कथा के जिन सामान्य लक्षणों का विवेचन किया गया है, वे गद्य, पद्य सभी में मिलते हैं। अतएव यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विद्यापति ने अपनी कहानी का ढांचा उन दिनों सर्वाधिक प्रचलित चरित काव्यों के आदर्श पर ही निर्मित किया होगा। कीर्तिलता की कहानी भृंग और भृंगी के संवाद रूप में कहलवाई गई है। प्रत्येक पल्लव के आरम्भ में भृंगी भृंग से प्रश्न करती है और पुनः भृंग कहानी प्रारम्भ करता है। रासो के वर्तमान रूप को देखने से प्रतीत होता है कि मूल रासो मे भी शुक और शुकी के संवाद की ऐसी ही योजना रही होगी।

कथा का विश्लेषण इतिहास की दृष्टि से नहीं, वरन् काव्य की दृष्टि से होना चाहिए। प्राचीन कथाएं काव्य ही अधिक हैं, इतिहास वे बिल्कुल नही हैं।

आलंकारिक ग्रन्थों के कथाआख्यायिका के लक्षण बाह्य रूप की ओर ही संकेत करते हैं। कथा के वक्तव्य वस्तु से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। बाद के गद्य-काव्यों में अनेक प्रकार के अलंकारों से अलंकृत करके सुललित गद्य लिखना ही लेखक का मुख्य उदेश्य हो गया था। इन काव्यों मे कवि को कहानी कहने की जल्दीबाजी नही जान पड़ती। वह रूपक, दीपक तथा श्लेषादि की योजना को ही अपना मुख्य कार्य मान लेता है। सुबन्धु ने तो यह प्रतिज्ञा की थी कि अपने ग्रन्थ मे आद्यन्त श्लेष का निर्वाह करेंगे। इन कथाकारों के शिरोमणि बाणभट्ट ने कथा की प्रशंसा करते हुए मानों अपनी ही रचना के लिए कहा था कि सुस्पष्ट मधुरालाप और भावों से नितान्त मनोहरा तथा अनुरागवश स्वयमेव शय्या पर उपस्थित अभिनवा वधू की तरह सुगम, कला-विद्या सम्बन्धी वाक्य विन्यास के कारण सुश्राव्य और रस के अनुकरण के कारण बिना प्रयास समझ में आने वाले शब्द गुंफवाली कथा किसके हृदय में कौतुकयुक्त प्रेम उत्पन्न नहीं करती। सहज बोध्य दीपक और उपमा अलंकार से सम्पन्न अपूर्व पदार्थ के समावेश से विरचित अनवरत श्लेषालंकार से किंचित् दुर्बोध्य कथाकाव्य उज्ज्वल प्रदीप के समान उपादेय चम्पक की कली से गुंथे हुए और बीच-बीच में चमेली के पुष्प से अलंकृत घन-सनिविष्ट मोहन माला की भांति किसे आकृष्ट नही करता ?[1]

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्या भिनवा वधूरिव ॥
हरंति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिता कथा।
निरन्तर श्लेषघना सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥
—कादम्बरी

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ७१।

यानी संस्कृत के आलंकारिक जिस रस को गद्य की आत्मा मानते हैं जो अंगी है वही कथा तथा आख्यायिका का भी प्राण है : कथाकाव्य मे कहानी या आख्यान, अलंकार योजना तथा पदसंघटना सभी गौण हैं, मुख्य केवल रस है। यह रस अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता, शब्द से भी वह अप्रकाश्य है। उसे मात्र व्यंजित या ध्वनित किया जा सकता है। इस बात मे काव्य और कथा आख्यायिका समान हैं। विशेषता यह है कि कथा आख्यायिका मे रस के अनुकूल कहानी, अलंकार-योजना तथा पद संघटना सभी महत्वपूर्ण हैं, किसी की उपेक्षा नही की जा सकती। एक पद्य के बन्धन से मुक्त होने के कारण ही गद्य-कवि का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। वह अलंकार और पद-संघटना की अपेक्षा नही कर सकता और कहानी तो उसका प्रधान वक्तव्य ही है। कहानी के रस को अनुकूल रखकर इन शर्तों का पालन वास्तव मे कठिन है, इसी कारण संस्कृत के आलोचक ने गद्य को कवित्व की कसौटी कहा है– 'गद्यं कवीना निकषं वदन्ति'। लेकिन अपभ्रंश तथा प्राकृत की कथाओं मे पद का बंधन भी लगा हुआ है। अपभ्रंश मे भी अलंकार कथा का बहुत महत्वपूर्ण उपादान माना जाता रहा है। 'णायकुमारचरिउ' मे एक संकेतपूर्ण वाक्य आया है। सौत के कुचक्र से राजा ने नागकुमार की माता के सब अलंकार उतरवा लिये थे। नागकुमार जब लौटा, तब उसने अपनी माता को ऐसा निरलंकार देखा, मानो कुकवि की लिखी कथा हो। इससे ज्ञात होता है कि अलंकार का अभाव कथा को नीरस बना देता है। इस प्रकार कथा मे अलकार, रस-योजना तथा खल-निंदा आवश्यक माना जाने लगा था।

पृथ्वीराजरासो ऐसी ही रसमय सालकार युद्ध-बद्ध-कथा था, जिसका प्रधान विषय नायक की प्रेम लीला, कन्याहरण तथा शत्रुपराजय था। इन्ही बातो का मूल रासो मे विस्तार रहा होगा। ऐसी कथाएं उन दिनो और भी लिखी गयी थी। कुछ का पता संस्कृत-प्राकृत के विजय, विलास, रासक आदि को कोटि के काव्यो से लगता है तथा कुछ का उस समय की लिखी नाटिकाओ, सट्टको, प्रकरण, शिलालेख, प्रशस्तियो आदि से मिलता है।

पौराणिक पुरुषो की गाथाओ तथा अनुश्रुतियो मे विख्यात राजकुमारो के चरित-काव्यों के अलावा अपभ्रंश मे कुछ ऐसे भी प्रबन्ध-काव्य लिखे गये हैं जिनकी कहानी कवि की बिल्कुल कल्पित वस्तु है या किसी लोक-कथा को आधार बनाकर कवि द्वारा स्वच्छन्द रूप से कही गयी है। ऐसे आख्यान काव्य का चरित नायक कोई ख्यात राजा या राजकुमार नही होता, अपितु साधारण वणिक पुत्र होता है।[1] अपभ्रंश मे इस प्रकार का एक कथा-काव्य उपलब्ध है। यह है धनपाल (१० वी शताब्दी ई०)

१—हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डॉ० नामवर सिंह।

लिखित भविसयत्तकहा[1] अथवा भविष्यदत्तकथा। इसका दूसरा नाम 'सुयपंचमीकहा' भी है क्योंकि सुयपंचमी महात्म्य के लिये यह कही गयी है। यह प्रबन्ध काव्य बाईस संधियो का है। भविसयत्तकहा यद्यपि कथा है परन्तु शैली की दृष्टि से यह चरित काव्य की श्रेणी मे ही आता है। अपभ्रंश साहित्य मे उपलब्ध चरित काव्यो की प्रायः सभी विशेषताएं इसमें पायीं जाती हैं। हम इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि प्रायः सभी चरित काव्यों ने अपने को 'कथा' कहा है। अत. चरित काव्य और कथा-काव्य मे विवाद का कोई प्रश्न ही नही उठता। उद्देश्य, चरित्र-चित्रण तथा कथा विकास की दृष्टि से उपलब्ध अपभ्रंश चरित काव्यो मे भविसयतकहा का स्थान अद्वितीय है। भविसयत कहा' जैसी लोक-कथाओ पर आधृत काव्य संभवत: अपभ्रंश मे और भी लिखे गये होंगे, जिनका पता हमे अभी तक नही है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संस्कृत साहित्य मे उपलब्ध कथा काव्य के लक्षणो को ही परवर्ती अपभ्रंश कवियों, ने भी उसी रूप मे मान्यता दी। संस्कृत साहित्य मे कथा के लक्षणो मे कन्यालाभ (कन्या की प्राप्ति) तथा शृंगार या प्रेम रस की प्रधानता पर विशेष ध्यान दिया गया है। कन्या का प्रसंग किसी न किसी रूप मे अपभ्रंश के चरित या काव्य कथाओ मे भी मिलता है। उसी प्रकार यद्यपि अपभ्रंश साहित्य मे शान्तरस की प्रधानता पाई जाती है परन्तु शृंगार रस से भी वह रहित नही है। शृंगार का वर्णन भी मिल ही जाता है। हाँ एक बात अवश्य है कि अपभ्रंश साहित्य मे कुछ ऐसे भी प्रबन्ध काव्य रचे गये हैं जिसके नायक केवल वणिक् पुत्र ही होते हैं[2] जबकि संस्कृत साहित्य मे कोई ऐसा बन्धन नही है। वहाँ राजा या राजकुमार कथा-काव्य का नायक हो सकता है, परन्तु अपभ्रंश साहित्य मे ऐसा नही है। यहाँ केवल वणिक् पुत्र ही ऐसे कथा-काव्य का नायक हो सकता है। उदाहरणार्थ भविसयतकहा को लिया जा सकता है। शेष सभी बातें संस्कृत साहित्य जैसी ही हैं।

कथा काव्यो तथा चरित काव्यो के विषय मे इतनी माथापच्ची करने के बाद यह सहज ही कहा जा सकता है कि अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यो मे कथाकाव्यो तथा जीवन-चरित दोनो शैलियो का समन्वय हुआ है। कथाकाव्यो और चरित काव्यो की लगभग सभी विशेषताएं अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यो मे मिलती हैं। संस्कृत साहित्य की अलंकृत काव्य परम्परा का ह्रास इन प्रबन्ध काव्यो मे हो चला था। धीरे-धीरे इन प्रबन्ध

१—श्री दलाल तथा गुणे द्वारा 'गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज' मे संपादित, १९२३ ई०।

२—हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डॉ० नामवर सिंह, पृ० २१२।

काव्यों में लोक परम्परा का प्रभाव अधिक होने लगा। थोड़े ही दिनों में ये काव्य अपने को पूर्णतः अलंकृत काव्य परम्परा से मुक्त कर लिये।

आठवीं शताब्दी ईस्वी से लेकर १५वी शताब्दी ईस्वी तक के इस अपभ्रंश साहित्य का समूचे भारतीय साहित्य मे बहुत बड़ा वैशिष्ट्य है। हालांकि जिस समग्रता तथा विशालता के साथ इसका प्रारम्भ हुआ वह आद्यंत उसी रूप मे जारी नहीं रही, अपितु बाद के अपभ्रंश-साहित्य के विषय तथा शैली में एक तरह की मंथरता नजर आती है, फिर भी सम्पूर्ण रूप से यह साहित्य तत्कालीन जातीय नवोन्मेष का प्रतिनिधि होकर विकसित हुआ। अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यों की जीवन्तता का वास्तविक ज्ञान परवर्ती संस्कृत साहित्य की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में ही हो सकता है।

अपभ्रंश-युगीन संस्कृत साहित्य उस नागर समाज की बिंधी हुई विचारधारा को अंकित करता है जो अपना ऐतिहासिक काम तमाम कर सामाजिक उन्नति में बाधक हो रहा था। इस जडता का शिकार तत्कालीन संस्कृत साहित्य भी हुआ। दर्शन तथा काव्य प्रत्येक क्षेत्र मे प्राचीन तथ्यो की पुनरावृत्ति दिखाई पडती है। मौलिकता की अपेक्षा टीका तथा व्याख्याओं को अधिक महत्व दिया जाने लगा था। सारा चिन्तन तर्क-जाल मे फँसा था। संस्कृत-काव्य हृदय के स्वाभाविक भावों को छोडकर विद्वत्ता प्रदर्शन और काफी रियाज से साध्य आलंकारिक चेष्टाओ मे तन्मय था। लक्षण-ग्रन्थो की बहुलता थी। रस के मान शब्द-शक्तियो से ग्रस्त थे। प्रकृति चित्रण नाम-परिगणन तथा औपम्यविधान से भरा था। मानव-अनुभूतियों की अर्थ भूमि संकुचित होकर शृंगारिक लीलाओं से पंकिल हो रही थी। राज-दरबारों के उजडे वैभव की बासी पुनरावृत्ति से वस्तु-वर्णन मलीन हो रहा था। चरित-काव्यों मे चरित्रो का व्यक्तित्व बँधे-बँधाए टाइपो के रूप मे ही प्रकट हो रहा था। मुक्तक काव्य कृत्रिम तथा अलंकृत थे, प्रबन्ध-काव्य आकार मे विशाल होते हुए भी जीवन से रहित थे। गद्य बोलचाल की भाषा से अलग हटकर समासों का भीषण अरण्य हो गया था। सर्वत्र एक तरह की जड़ता तथा निष्प्राणता दृष्टिगोचर हो रही थी।[1]

अपभ्रंश-साहित्य का उद्भव संस्कृत के इस परिपार्श्व मे हुआ। निश्चय ही उस पर भी संस्कृत-साहित्य की ह्रासोन्मुखी छाया यत्र-तत्र पड़ गयी, अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यों में संस्कृत की कथानक-रूढ़ियों, काव्य-रूढ़ियों तथा वस्तु-वर्णन सम्बन्धी रूढ़ियों का पालन कहीं-कहीं अवश्य परिलक्षित होता है, फिर भी इन सबके मध्य अपभ्रंश के धार्मिक तथा ऐहिक काव्य मे नये जीवन का उत्साह और आवेग सरलता और सादगी, शक्ति और सौन्दर्य, जीवन्तता और प्रत्यग्रता का अनुभव होता है। उसमें लोककथाओं

१—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २३४।

तथा लोक-गीतों का जीवन्त रूप मिलता है।[1] इन तमाम विशेषताओं का मात्र यही कारण है कि जैन विद्वानों और मुनियों बौद्धों सिद्धों और अन्य दूसरे मतानुयायी कवियों द्वारा रचे जाने पर भी अपभ्रंश-साहित्य सामान्य लोक-जीवन के पर्याप्त सम्पर्क में था। वह जिन लोगों की आशाओं तथा आकांक्षाओं को व्यक्त कर रहा था, उन्हें बहुत लम्बे अरसे के पश्चात् अपनी देशी भाषा में हृदय की बात कहने का अवसर नसीब हुआ था। संस्कृत के द्वारा उस समय लोक-जीवन की अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो सकती थी क्योंकि 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा'। इस प्रकार वह सारी भाव-सम्पदा सीधे अपभ्रंश को ही पहली बार सुलभ हुई। अपभ्रंश साहित्य की शक्ति का यही मूल है। इसी लोक-तत्त्व के द्वारा अपभ्रंश साहित्य ने भारतीय साहित्य में अपना अप्रतिम स्थान बना लिया है। इसी लोक तत्त्व से ही उसमें युग-युग तक मानव हृदय को रससिक्त करने की क्षमता आयी।

अपभ्रंश कवियों की एक विशेषता यह रही है कि इन्होंने रूढ़ि का पालन न करते हुए प्रत्यक्ष अनुभूत और लौकिक जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन किया है। किसी दृश्य का वर्णन हो कवि की आंखों से यह लौकिक जीवन ओझल नहीं हो पाता। लौकिक जीवन की अनुभूति उसकी भाषा में उसके भावों में और उसकी शैली में समान रूप से अभिव्यक्त हुई है। कवि चाहे स्वर्ग का वर्णन कर रहा हो, चाहे पर्वत के उत्तुंग शिखर का, चाहे कान्तार प्रदेश का, वह मानव-जीवन की ग्राम्य जीवन की घटनाओं को नहीं भूल पाता।[2]

डा० द्विवेदी ने ठीक ही कहा है कि 'यह साहित्य अपभ्रंश-कवि द्वारा निबद्ध उस अकिंचना सुन्दरी के समान है जिसके सिर पर एक फटी-पुरानी कमली थी, गले में दस-बीस गुरियों की माला भी नहीं थी, फिर भी उसका सौन्दर्य ऐसा मनोहर था कि गोष्ठ के रसिकों को कितनी ही बार उठा-बैठी करने को विवश होना पड़ा—

सिरि जरखण्डी लोअडी गलि मणियडा न बीस।
तो वि गोट्ठडा कराविआ मुद्धए उट्ठ बईस॥[3]

१—वही, पृ० २३५।

२—अपभ्रंश-साहित्य—हरिवंश कोछड़, पृ० ४५।

३—हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २५।

तीसरा अध्याय

अपभ्रंश चरित काव्यों में करकंड चरिउ का स्थान

अपभ्रंश चरित काव्यों में करकंडु चरिउ का स्थान

अपभ्रंश साहित्य के मुख्य रूप से दो स्वरूप हमारे सामने आते हैं :—(१) जैन अपभ्रंश साहित्य, (२) जैनेतर अपभ्रंश साहित्य। जैन प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत पुराण, चरितकाव्य तथा कथासाहित्य आते हैं। इसके अतिरिक्त जैन रहस्यवादी कवियो ने आध्यात्मिक काव्य की भी सर्जना की है। जैन साहित्य के अतिरिक्त बौद्ध दोहा एवं चर्यापद तथा अपभ्रंश के शौर्य एवं प्रणय सम्बन्धी मुक्तक काव्य भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।[1]

जैन प्रबन्ध साहित्य के अर्न्तगत आने वाले पुराण काव्य जैनी मान्यताओं के अनुरूप हैं। यद्यपि जैनियो के पुराण काव्यों पर ब्राह्मणो के रामायण और महाभारत का प्रभूत प्रभाव पडा है फिर भी वे उनकी मान्यता को पूर्ण रूप से उसी रूप में स्वीकार नही करते।[2] पुराण साहित्य के अनन्तर जैन प्रबन्ध काव्य में चरित काव्य और कथा साहित्य भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अधिकांश चरित काव्यों की रचना तीर्थंकरों अथवा अन्य महापुरुषों की जीवन कथा को लेकर की गई थी। चरित काव्यों में पुष्पदन्त की दो कृतियाँ—णायकुमारचरिउ और जसहरचरिउ विशेष प्रसिद्ध हैं। चरित काव्यों की इसी परम्परा मे मुनिकनकामर कृत करकंडचरिउ आता है। प्रस्तुत चरित काव्य कथानक-रूढ़ियो की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उसमे कवि पुष्पदन्त की तरह पांडित्य प्रदर्शन नही हुआ है। बौद्ध साहित्य में करकंडु को प्रत्येक बुद्ध माना गया है। कवि का उद्देश्य कथा को पौराणिक और लोककथाओं का मिश्रण कर रोचक बनाना है। वह नायक के ऐतिहासिक जीवन पर प्रकाश नहीं डालना चाहता। नायक की सम्पूर्ण जीवन कथा तीन भागों मे विभक्त है-(१) जन्म से लेकर दंतिपुर का राजा बनना। (२) पिता से युद्ध और दिग्विजय, (३) श्रेष्ठ जीवन और धर्मानुष्ठान।[3]

इस बात का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है कि करकंडु चरिउ एक पौराणिक रोमांटिक काव्य है। दिग्विजय मे धर्म और रोमास की घटना साथ-साथ चलती

१—हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, प्रथम भाग—द्वितीय खंड, डा० भोलाशंकर व्यास, पृष्ठ ३२२।

२—वही, पृष्ठ ३३३।

३—अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० ११८।

है। रोमांस की स्थिति कभी-कभी इस सीमा तक पहुँच जाती है कि युद्ध गौण सा बन जाता है। वर्णन की अपेक्षा कवि ने कथाओ की योजना पर अधिक बल दिया है। कथा के माध्यम से कवि ने इस बात का संकेत किया है कि करकंडु जैन था। साथ ही उसने जैन लक्षण का भी संकेत किया है। मूल कथा के साथ-साथ अवांतर कथाओ का निर्वाह कुछ स्थलों पर अटपटा सा लगता है। कभी-कभी कवि अवांतर कथाओ के चक्कर मे पड़कर मूल कथा के साथ तालमेल नही बैठा पाता। अवातर कथाएं कुछ तो मूल रूप में हमारे सामने आती हैं और कुछ स्वतंत्र रूप मे।[१]

करकंडचरिउ धार्मिक अपभ्रंश खंडकाव्य है। खंडकाव्य मे महाकाव्य की भांति नायक के समस्त जीवन की घटनाओ का वर्णन सरसतापूर्वक अंकित न करके जीवन के किसी एक भाग का चित्र उपस्थित किया जाता है। वर्णन मे सुन्दरता और सरसता का समावेश महाकाव्य और खंडकाव्य दोनो में किया जाता है। अपभ्रंश में अनेक ऐसे चरित काव्य मिलते हैं जिनमे किसी महापुरुष का चरित्र किसी एक दृष्टि से अंकित किया जाता है। धार्मिक दृष्टिकोण से रहित अपभ्रंश खंडकाव्यों में प्रायः धार्मिक भावना का प्रचार हुआ है। धार्मिक भावना से रहित काव्यो में शुद्ध इहलौकिक भावना को प्रश्रय मिलता है और लौकिक जीवन से सम्बन्धित घटनायें अंकित की जाती हैं। दूसरे प्रकार के काव्य ऐसे भो मिलते हैं जिनमें ऐतिहासिक तत्वो का सम्मिश्रण है। ऐसे काव्यो मे किसी धार्मिक या पौराणिक नायक के गुणो की चर्चा नही होती, उसके स्थान पर किसी राजा के गुण और पराक्रम का वर्णन होता हे। इसी विचार को सामने रखकर डा० हरिवंश कोछड़ ने अपभ्रंश खण्ड काव्यो के तीन भेद किये हैं।[२] (१) शुद्ध धार्मिक दृष्टि से लिखे गये काव्य, जिनमे किसी धार्मिक या पौराणिक महापुरुष के चरित का अंकन किया गया हे (२) धार्मिक दृष्टिकोण से रहित इहलौकिक भावना से युक्त काव्य जिनमे किसी लौकिक घटना का वर्णन है (३) धार्मिक या साम्प्रदायिक भावना से रहित काव्य जिनमे किसी राजा के चरित का वर्णन है। करकंड चरिउ का सम्बन्ध प्रथम वर्ग के काव्यो से है। अतः इसी वर्ग मे आने वाले काव्यो को लेकर ही हम उनके साथ एक तुलनात्मक विवेचन इस अध्याय मे प्रस्तुत करेंगे। अपभ्रंश के चरित काव्य प्रेमाख्यानक ढंग के काव्य हैं। इनके रचयिताओ ने प्रचलित कहानियो के आधार पर अथवा कुछ कल्पित घटनाओ को जोडकर ऐसे काव्यो की सर्जना की है। अपभ्रंश के कुछ मुख्य चरित काव्य ये हैं—पउमचरिउ, जसहरचरिउ, णायकुमारचरिउ, करकंडचरिउ, सनत्कुमार

१—वही, पृ० ११८।

२—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १२६।

चरिउ, नेमिनाहचरिउ, कुमारपालचरित। इन चरितकाव्यों में प्रायः एक प्रेम कथा अवश्य है। इनमें प्रेम का आरम्भ प्रायः समान रूप में दिखाई देता है जैसे—गुण वर्णन सुनकर, चित्र देखकर या परस्पर दर्शन से। प्रेम के प्रारम्भ के पश्चात् इन सभी काव्यों में प्रायः नायक नायिका का विवाह करा दिया जाता है। इसके लिये प्रयत्न प्रायः नायक की ओर से ही देखा जाता है। पउमचरिउ तथा करकंडचरिउ के नायकों को सिंहल द्वीप की यात्रा करनी पड़ती है। इन काव्यों में प्रायः प्रतिनायक की भी व्यवस्था की गई है। कवियो ने अनेक स्थानो पर धर्मतत्व की विजय के लिये अनेक आश्चर्यजनक तत्वो का भी सम्मिश्रण किया है। ऐसे तत्वों में यक्ष, गंधर्व; मुनि, स्वप्न आदि विशेष रूप से पाये जाते हैं। प्रेम के स्वरूप को जन्मान्तर का सम्बन्ध सिद्ध करने का भी प्रयास किया जाता है। जैन अपभ्रंश काव्यों मे मूल रूप से प्रेम की ही प्रधानता है। इन कथाओ मे से यदि धार्मिक पक्ष को निकाल दिया जाय तो वे शुद्ध प्रेमाख्यानक के रूप मे हमारे सामने आते हैं।[1] इस प्रकार से इन चरित काव्यों का सम्बन्ध हम भारतीय आख्यान साहित्य से स्थापित कर सकते हैं। अगर हम भारतीय आख्यान साहित्य की परम्परा की ओर ध्यान दें तो यह ज्ञात होगा कि भारतीय कथा साहित्य में प्राचीन कहानियो का प्रभाव, उनकी भावधारा, वातावरण, रूढ़ियां पात्रों के नाम आदि उसमे किसी न किसी रूप मे आ ही गये हैं। कभी-कभी तो पूरी की पूरी कहानी ही दुहरा दी गई है। वेदो मे आये हुए अनेक वृत्त परवर्ती काल के काव्य, नाटकों, कहानियों आदि में पूरे विस्तार के साथ वर्णित हुए हैं। अन्य देशों मे भी यह बात पाई जाती है लेकिन भारतीय साहित्य में यह चीज संभवतः अत्यधिक है। एक और बात लक्ष्य करने की है कि विशुद्ध ऐहिकतापरक कहानी में भी धर्म, नीति, सदाचार की बातें किसी न किसी रूप मे आ ही जाती हैं और यह प्रवृति बहुत प्राचीनकाल से पाई जाती है।[2]

प्रेम मानव की सहज मानसिक वृत्ति है जो प्रकृति में उपस्थित प्राणियों अथवा अन्य सुन्दर पदार्थों के सान्निध्य से उद्भूत होता है। रूप, शील, गुण के द्वारा मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियां उत्तेजित होती हैं और उन्हें वे ग्रहण करती हैं। इसके पश्चात् उन ज्ञानेन्द्रियों से संबधित स्नायु तन्तु प्रभावित होते हैं और उसे मस्तिष्क के किसी विशेष केन्द्र तक पहुँचाते हैं। उत्तेजना जब मस्तिष्क मे पहुँचती है तो मस्तिष्क का केन्द्र विशेष झंकृत हो उठता है और हमें संवेदना होती है। ऐसी स्थिति में हमारे वासना जन्य संस्कार जागृत हो उठते हैं और हम उत्तेजना के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। जिससे एक अद्भुत और गतिशील मानसिक क्रिया का जन्म होता है। मानव मन प्रभूत

१—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० २२।
२—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ५०।

भावों से भरा है पर सौन्दर्योत्तेजक उत्तेजनाओं का जब मन मे प्रवेश होता है तो उसके स्थान को रिक्त करने के लिए ही भाव उमड़ कर बाहर निकल आते हैं। यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि जब कोई भी पदार्थ किसी भी स्थान पर प्रविष्ट होता है तो उस स्थान पर स्थित अन्य पदार्थों को हटना ही पड़ता है। कवि का मानस भी जब रमणीय वस्तुओं अथवा मधुर आकृतियों से प्रभावित होता है तो स्वाभाविक रूप से भाव छलछला कर बाहर चले आते हैं और उस स्थान पर उस रमणीय आकृति का स्वरूप स्थापित हो जाता है। प्रेम का यह स्वरूप जन्म जन्मान्तर से चला आ रहा है और अनुकूल परिस्थिति मे इसका उद्‌गार कवि और सहृदय दोनों को प्रभाबित करता है। कविकुल गुरु कालिदास ने भी लिखा है 'जब हम रम्य वस्तुओं को देखते हैं अथवा मधुर शब्दो को सुनते हैं तो सुख की अवस्था मे हमारा मन जो उत्कंठित हो उठता है वो निश्चित रूप से हमारे जन्म जन्मान्तर के भाव स्मृतिपटल पर स्वच्छ रूप से अंकित हो जाते हैं।'[1] प्रेमी अन्तः अनुभूति से ही तृप्त नही होता वह अपनी अभिव्यक्ति द्वारा अन्य की सहानुभूति भी चाहता है और कवि के तो रोम-रोम मे प्रेम की धारा प्रवाहित होती रहती है। उसमें अभिव्यक्ति की क्षमता भी निहित रहती है। वह उसे भला कैसे रोक सकता है। कवि की प्रेम सम्बन्धी ऐसी भावनायें जो सामाजिक अथवा धार्मिक मर्यादा से बाहर जाने में असमर्थ होती हैं उनका हल भी वह ढूंढ निकालता है, ठीक हमारे रीतिकालीन उन कवियो की भाँति जो आगे के सुकवि रीजिहै तो कविताई नतु राधिका-कन्हाई-सुमिरन को बहानौ है।' धार्मिक प्रेमाख्यानों के तल मे यदि प्रवेश किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उनका धार्मिक आडम्बर, आध्यात्मिक पक्ष केवल बहाना मात्र है। वह प्रेम की भावना को आच्छादित करते हुए भी उसके स्वरूप को उद्‌घाटित कर देता है और इस दुराव छिपाव में कवि की प्रेमाभिव्यक्ति छिपने के बजाय और स्पष्ट हो जाती है। प्रेमाभिव्यक्ति में एक अभूतपूर्व आनन्द की प्राप्ति भी होती है। 'प्रेमाभिव्यक्ति मे एक अनिर्वचनीय रस मिलता है जिसे बार-बार पीकर भी प्रेमी नही अघाता प्रत्युत इसके लिये उसकी प्यास बराबर बनी ही रहा करती है। इसका स्वाद इतना विलक्षण है कि वह इसका इतिवृत्त सुनने वाले तक को भी प्रभावित किये बिना नहीं रह पाता जिस कारण यह दूसरे की 'आपबीती होने पर

१—रम्याणि वीक्ष्यमधुरांश्च निशम्यशब्दान्
पर्युत्सुकोभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोध पूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ॥६॥
अभिज्ञानशाकुन्तलम्—कालिदास, हरिदास-संस्कृत ग्रन्थमाला ४१, पृ० ३२५-२५।

भी प्राय: बार-बार दुहराया जाता है। अतएव, उपाख्यानों, कथाओं अथवा गाथाओं के साहित्य में भी हमें प्रेमात्मक आख्यानों का ही अंश अधिक मिला करता है।[1]

प्रेमाख्यानों का सर्वप्रमुख विषय किसी पुरुष या स्त्री का किसी सुन्दर पुरुष या स्त्री पर प्रेमासक्त हो जाना है, यह प्रेमासक्ति प्रत्यक्ष दर्शन, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन या गुण श्रवण के माध्यम से हुआ करती है। प्रेमी या प्रेयसी प्राय: अपने अभीप्सित को प्राप्त करना चाहते हैं। इस सन्दर्भ मे अनेक बाधायें आती हैं और वे मुख्य रूप से नायक उन्हे दूर करने का अथक प्रयास करता है। प्रेमी अपने प्रेम पात्र का अल्प वियोग भी सहन नहीं कर पाता। प्रेमाख्यानों में उसकी वियोग दशा का उत्तेजक वर्णन मिलता है। यद्यपि अधिकांश प्रेमाख्यानों में प्रेमी एवं प्रेमपात्र का मिलन अन्त मे हो ही जाता है पर कभी-कभी ऐसी भी स्थिति आती है कि मिलन मे उन्हें असफलता की भी प्राप्ति होती है। विशुद्ध प्रेमाख्यानों में प्रेमी और प्रेमपात्र के मिलन का प्रयास एक ही ओर से होता है और यदि प्रेमी कुशल योद्धा हुआ तो अपने विरोधियों के साथ युद्ध करके अपने प्रेमपात्र का हरण कर लेता है। इसके अतिरिक्त कुछ निम्न कोटि के भी प्रेमी मिलते हैं जो अपनी वासना की तृप्ति के लिये षड्यन्त्र रचते हैं और उनके द्वारा अनेक हत्यायें भी हो जाती है। अधिकाश प्रेमाख्यानों में प्रेमी अपने प्रेमपात्र के साथ विवाह करके अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है। पर ऐसे भी स्वरूप हमारे सामने आते हैं जहाँ प्रेमी कुमार्गी हो जाता है किन्तु भारतीय साहित्य मे ऐसी अवस्था में पत्नी अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई चित्रित की जाती है।[2]

अपभ्रंश चरित काव्यों के साहित्यिक पक्ष पर विचार करते समय हमारे सामने उसके दो स्वरूप आते हैं—(१) कथात्मक पक्ष, (२) काव्यात्मक पक्ष। भारतीय साहित्य मे कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। ये कथायें अतिप्राचीन काल से लिखी जा रही हैं। संस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश में होती हुई इन कथाओं का सूत्र, अविच्छिन्न रूप से आधुनिक भारतीय साहित्य में चला आ रहा है।

जैन अपभ्रंश का विशाल चरित साहित्य उपलब्ध होता है। परिमाण और काव्यत्व दोनों ही दृष्टियों से इनका महत्व है। जैन चरित काव्यों की भाँति जैन कथाओं की संख्या भी असीम है। जैनों ने अपने चरित काव्यों का निर्माण धार्मिक विचारधारा से प्रेरित होकर जन साधारण तक पहुँचाने के लिये किया है। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश तीनों भाषाओं में जैन चरित ग्रन्थो की सर्जना हुई है। इन ग्रन्थों में मुख्यत: ऋषभ, पार्श्व, महावीर आदि तीर्थंकरो तथा यशोधर, नागकुमार, करकंडु आदि राजपुरुषो के चरित्रों को अंकित किया गया है। इसके अलावा जैन रामायण और हरिवंशपुराण के पात्रो को लेकर भी अनेक ग्रन्थों की रचना की गई है।[3]

१—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १।
२—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ३।
३—महाकवि पुष्पदन्त—डा० राजनारायण पांडेय, पृ० ६७।

चरित-काव्यों की रचना शैली

चरित काव्यों मे प्रायः मूलकथा के सम्बन्ध मे विशेष रूप से विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त कवि प्रकृति आदि के अन्य वर्णनों में अधिक समय नष्ट नहीं करता है। इस प्रकार से वर्णनात्मक अंशो के आधिक्य के अभाव में ये काव्य कथात्मक स्वरूप धारण करते हैं। चरित काव्यों में नायक के पूर्व जन्मों के विवरण, वर्तमान जन्म के कारण तथा देश, नगर आदि के वर्णन मिलते हैं। यद्यपि इस प्रकार के काव्यों में अवान्तर कथाओ का समावेश किया जाता है फिर भी एक ही कथानक में अनेक घटनाओ को व्यर्थ बाँधने का प्रयत्न नहीं किया जाता है। इस प्रकार से काव्य मे अधिक स्वाभाविकता आ जाती है।[1]

अपभ्रंश चरित काव्यो का अध्ययन हिन्दी प्रेमाख्यानों को समझने मे विशेष महत्व रखता है। भाषा, छन्द, कवित्व सभी दृष्टियो से अपभ्रंश की रचनायें समृद्ध हैं। अनेक अपभ्रंश की रचनायें ऐसी मिलती हैं जिनमें आदि से अन्त तक एक ही कथा मिलती है। उसमें कभी-कभी एक या एक से अधिक कथा का सन्निवेश रहता है। अधिकांश रचनायें सर्गबद्ध हैं। सर्ग या अध्याय के लिये अपभ्रंश की कृतियो मे संधि का व्यवहार मिलता है। संधियों की पूर्णता कड़वकों से मिलकर होती है। कड़वक के मूल भाग मे पज्झटिका या कोई अन्य छन्द स्थान पाता है और अन्त मे प्रायः घता या किसी अन्य छन्द का व्यवहार होता है। इन प्रबन्ध काव्यों की भाषा प्रायः साहित्यिक अपभ्रंश है जो इन काव्यो मे अपने शिखर पर पहुँची हुई दिखाई देती है। अपभ्रंश की इस धारा के सबसे प्राचीन कवि स्वयंभू माने जाते हैं[2] जिनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध होती हैं—(१)पउम चरिउ, (२) रिट्ठणे मिचरिउ, (३) स्वयंभू छंद।

स्वयंभू के पश्चात् दूसरे प्रसिद्ध कवि पुष्पदंत ने तीन ग्रन्थो की सर्जना की है— महापुराण, णायकुमार चरिउ और जसहरचरिउ। महापुराण का उल्लेख द्वितीय अध्याय मे किया जा चुका है। इस अध्याय मे णायकुमारचरिउ और जसहरचरिउ पर विचार किया जायगा। अपभ्रंश चरित काव्यो की परम्परा लगभग १७ वीं शताब्दी तक चलती रही।[3] यह परम्परा अत्यन्त समृद्ध है। यहाँ संक्षेप मे इन चरित काव्यो का विवेचन किया जा रहा है। मुख्य चरित काव्य इस प्रकार हैं।

१—महाकवि पुष्पदंत—डा० राजनारायण पांडेय, पृ० ६७।

२—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव,— डा० रामसिंह तोमर, पृ०, ६६।

३—महाकवि पुष्पदंत—डा० राजनारायण पांडेय, पृ० ६८।

णायकुमार चरिउ

अपभ्रंश में नागकुमार के चरित से संबंधित सबसे प्रसिद्ध काव्य पुष्पदंत का नागकुमार चरित[1] अथवा णायकुमार चरिउ है। कवि ने श्रुतपंचमी के व्रत का महत्व समझाने के लिए यह कथा कही है। जयन्धर मगध के कनकपुर का राजा था। उसकी रानी विशाल नेत्रा से श्रीधर नाम का पुत्र हुआ। एक व्यापारी सौराष्ट्र के गिरिनगर की राजकुमारी का चित्र लेकर आया। राजा उसपर मुग्ध हो गया। मंत्री को भेजकर उसने लड़की बुलवाकर उससे विवाह कर लिया। नयी रानी का नाम पृथ्वीदेवी था। राजा रानियों के साथ जलक्रीड़ा के लिए गया। रास्ते में सौतकी साज सज्जा देखकर नयी रानी को बुरा लगा। वह जिनमन्दिर चली आयी। स्तुति के पश्चात् मुनि का उपदेश सुनने लगी। मुनि ने उसके यशस्वी पुत्र होने की भविष्यवाणी की। इतने में राजा खोजता हुआ वहां आया। उसने पुत्र की बात उसे भी बता दी। दोनों पूजा करके घर चले गये। कुछ दिन पश्चात् उसने सपने देखे। उससे आशा और बलवती हो गई। राजा ने पुत्रजन्मोत्सव खूब धूम-धाम से मनाया। एक बार वह कुमार को लेकर मन्दिर गया, परन्तु किवाड़ नहीं खुले, लेकिन बालक के अंगूठे से छूते ही खुल गये। एक बार बच्चा वापी मे गिर गया। उसकी माँ भी उसमें कूद पड़ी। नीचे एक नाग ने उन्हे बचा लिया। बाद मे उस नाग ने बच्चे को गोद मे लेलिया। इससे उसका नाम नागकुमार पड़ गया। शिक्षा-दीक्षा उसकी वहीं हुई।

कुमार अब बिल्कुल तरुण हो गया। उसने दो गन्धर्व-कुमारियों की वीणावादन मे परीक्षा ली। वे कुमारियाँ उसपर मुग्ध हो गयीं। उसने उनसे विवाह किया। एक दिन कुमार जलक्रीडा करने गया था। माँ उसे कपड़े देने गयी, परन्तु उसकी सौत ने उसे कलंक लगा दिया। राजा चुप रहा। फिर भी राजा ने कुमार के अधिक घूमने-फिरने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। यह रानी को बुरा लगा। उसने लड़के को घूमने के लिए बढ़ावा दिया। एक दिन वह हाथी पर सवार होकर नगर में निकला उसे देखकर बहुत सी कुमारियाँ उसपर रीझ गयी। उनके अभिभावकों ने राजा से इसकी शिकायत की। राजा इसपर बहुत नाराज हुआ। उसने कुमार की माँ के गहने-कपड़े छीनकर अधिकार से वंचित कर दिया। कुमार को यह अच्छा नहीं लगा। वह द्यूतघर में गया! जूए मे बहुत-सा धन जीतकर उसने माँ को दे दिया। कुमार ने जुए मे कई राजपुरुषों को भी हराया। राजा कुमार की कला देखकर बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने एक दुष्ट घोड़े को वश में कर लिया। उसकी उन्नति देखकर सौतेला भाई श्रीधर उससे जलने लगा। एक दिन एक ऐसे दुष्ट हाथी को कुमार वश में कर लिया, जिसे श्रीधर न पकड़ सका।

२—हीरालाल जैन द्वारा 'कारंजा सीरीज' में संपादित, १९३३ ई०।

राजा ने नागकुमार से कुछ समय के लिए बाहर जाने को कहा। मथुरा में व्याल और महाव्याल दो राजकुमार थे। वे अपने मंत्री को राज्य सौंपकर पाटलिपुत्र के राजा श्रीवर्मा की लड़कियों के स्वयंवर में गये। दोनों के विवाह हो गए। उन्होंने मिलकर अपने ससुर के शत्रु को मार भगाया। छोटा भाई वहीं रुक गया, परन्तु बड़ा भाई कनकपुर नागकुमार से भेट करने आया। नागकुमार को मात्र देखने से ही उसकी आँख ठीक हो गयी। तब वह कुमार का शुभेच्छु हो गया। जब श्रीधर के लोग नागकुमार को मारने आये, तो इसने उसकी रक्षा की। वे दोनो मथुरा चले गये।

मथुरा में कुमार ने एक वेश्या का आतिथ्य स्वीकार किया, उसके अनुरोध पर शीलवती को राजा की कैद से मुक्त किया। महाव्याल ने भी इस मंत्री राजा से अपना राज्य वापस ले लिया। वहाँ से ही कुमार कश्मीर गया। व्याल भी उसके साथ ही था। उसने कश्मीर-नरेश नन्द की पुत्री को वीणा मे पराजित कर दिया। नन्दवती इसपर मोहित हो गयी। दोनों का परिणय हो गया। कुछ दिन वहाँ रहकर उसने हिमालय के भीतरी भागों की यात्रा की। वहाँ जिन मंदिर तथा गुहामंदिरों के दर्शन किये। एक भीलराज की धर्मपत्नी का गुहराज भामासुर से उद्धार भी किया।

आगे जानेपर कंचनगुहा मे उसकी भेंट सुदर्शना देवी से हुई। उसने कुमार को बहुत सी विद्याएँ दीं। जितशत्रु ने पहले ये विद्याएँ सिद्ध की थी, परन्तु बाद में वह विरक्त हो गया। देवी सुपात्र को ये विद्याएँ प्रदान कर प्रसन्न हुई। इसके अतिरिक्त और भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य करके वह वहाँ से लौट आया।

अपने मित्रो सहित वह विषवन में गया। वहाँ उसने विषैले आमों को खाया, परन्तु उसे कुछ भी असर नहीं हुआ। इसपर दुर्मुख भील ने पाँच सौ भीलों के साथ उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। उसके पश्चात् कुमार ने राजा अरिवर्मा की मदद की। विजयी होने पर उसने नागकुमार से अपनी लडकी जयावती की शादी कर दी। इतने में ही कुमार को एक लेख पत्र मिला। उसमें एक विद्याधर से सात कन्याओं के उद्धार की प्रार्थना की गई थी। विमान से जाकर उसने उन लड़कियो का उद्धार किया। बाद मे कुमार से उनका विवाह हो गया।

एक बार महाव्याल मदुरा पहुँचा। वहाँ वह बाजार मे घूम रहा था कि राजकुमारी मलयसुन्दरी उसे देखकर मुग्ध हो गयी, परन्तु वह झूठे ही चिल्लाकर बोली कि इसने मुझे रोक लिया। इसपर अनुचर दौड़े, परन्तु महाव्याल ने उन्हें पराजित कर दिया। मलयसुन्दरी को उसने प्राप्त किया। नागकुमार ने उज्जयिनी की कुमारी मेनका से विवाह भी किया। वहाँ से महाव्याल के साथ दक्षिण भारत की यात्रा करने गया। उसने तिलकसुन्दरी को मृदंग में जीत लिया। इसी प्रकार तोयद्वीप पहुँचकर उसने वृक्षपर टंगी हुई अनेक लड़कियों का उद्धार किया। ये सब भी कुमार को ही प्राप्त हुई। वहाँ के बाद वह पाण्ड्य देश गया। अन्ततोगत्वा उसने त्रिभुवन तिलकद्वीप के मण्डलीक

राजा की सुकन्या लक्ष्मीमती से विवाह कर लिया। इससे उसका बहुत घनिष्ठ प्रेम था।

वह पृथ्वीश्वर मुनि का दर्शन करने गया। अनेक प्रकार के दार्शनिक तथा धार्मिक विचार सुनने के पश्चात् उसने नयी पत्नी के प्रति विशेष अनुराग का कारण पूछा। मुनि ने बतलाया कि तुम दोनों ने पिछले भव में श्रुतपंचमी का व्रत किया था। उसी का यह पुण्य फल है। इसके बाद उन्होंने श्रुतपंचमी के विधान का स्वरूप तथा महत्व बतलाया। कुमार पिता के घर आ गया। कुमार को राज्य देकर जयन्धर तप करने चले गये। बहुत दिनों तक कुशलतापूर्वक राज्य करने के पश्चात् उसने भी जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। उसने मोक्ष प्राप्त किया।

यह कृति नौ सन्धियों में पूर्ण हुई है। कृति में श्रुतपंचमी के महत्व को बताते हुए मगध के राजा जयन्धर के पुत्र की कथा है। चूंकि जयन्धर के पुत्र को नागों ने पाला था इसी कारण उसका नाम नागकुमार पड़ा। धार्मिक वातावरण से युक्त इस कृति को प्रेमकथा कहा जा सकता है। जिसमें नायक के अनेक विवाहों तथा प्रेम के वर्णन हैं। राजा जयन्धर तथा पृथ्वी देवी के परिणय की कथा एक संक्षिप्त प्रेम कथा है जिसमे चित्र देखकर राजा की आसक्ति, पृथ्वी देवी का नखशिख वर्णन, विवाह, उद्यान में क्रीडा-सपत्नी-ईर्ष्या इत्यादि प्रसंगों के वर्णन हैं। इसी प्रकार नागकुमार का मनोहरी किन्नरी से विवाह, जलक्रीडा (संधि ३, ६-८) के प्रसंग प्रेमकथात्मक हैं। निःसन्देह कृति की आत्मा प्रेमप्रधान काव्यात्मक है। हाँ यह जरूर है कि कवि ने उसे धार्मिक वातावरण से ढकने का प्रयास अवश्य किया है। डा० देवेन्द्र कुमार जैन इसे रोमाण्टिक कथा-काव्य मानते हैं, जो अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।[1] इसमें वर्णित घटनाएँ अतिरंजित तथा रोमान्टिक हैं। यद्यपि कथा का आरम्भ स्वाभाविक ढंग से होता है। जयन्धर की नयी पत्नी की सौत से ईर्ष्या, दोनों पुत्रों में वैमनस्य आदि स्वाभाविक घटनाएँ हैं। परन्तु इन बातों का कुमार की भावी लीलाओं से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं दिखायी पड़ता। कुमार की पारिवारिक स्थिति का यथार्थ चित्रण भी यहाँ कवि को अभीष्ट नहीं है। वास्तव में इस कथा काव्य की सृष्टि विशेष प्रयोजन को लेकर हुई है और वह है कुमार का वह रूप वर्णित करना जो कि उसे श्रुतपंचमी व्रत के पुण्य से प्राप्त हुआ है। अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए इससे मोहक जीवन चरित दूसरा नहीं मिल सकता। कितनी दिव्यता और रमणीयता है कुमार के सौन्दर्य मे कि दुनिया भर की लड़कियाँ उसे ही पसन्द करती हैं तथा वह इतना शक्तिशाली भी है कि सब उससे पराजित हो जाते हैं। उस युग में वैसी ही कथा की आवश्यकता थी। पुण्य की महिमा से कुमार इतनी असाधारण लीलाओं का नायक बन जाता है। पौराणिक रूढ़ियों का प्रयोग भी इसमें हुआ है। उसी प्रकार खण्डन-मण्डन भी है। यह एक अजीब स्थिति

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य, डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० १२८।

है कि जैन धर्म विरक्तिमूलक है, परन्तु इन रोमांटिक कथा-काव्यों में धर्म के अनुष्ठान का फल ऐहिक भोगों की प्रचुर उपलब्धि दिखाया गया है। हाँ यह जरूर है कि अन्त में नायक सब कुछ भोग कर दीक्षा ग्रहण कर लेता है और इसी प्रकार उसको मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

जसहरचरिउ

यशोधर या जसहर के जीवन चरित को लेकर जितने भी काव्य लिखे गये हैं उनमे पुष्पदन्त के जसहर चरिउ[1] का स्थान सर्वोपरि है। यह पुष्पदन्त की तीसरी तथा अन्तिम रचना है। इसे कवि ने मान्यखेट की लूट के समय ९७२ ई० के लगभग लिखा था। चार सन्धियो के इस छोटे से खण्ड-काव्य मे कापालिक मत के ऊपर जैन-धर्म के विजय की कहानी बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णित है। यौधेय-देशीय राजपुर नगर में एक दिन कापालिकाचार्य भैरवानन्द आए। उनकी प्रशंसा सुनकर राजा बहुत प्रभावित हुआ और आकाश मे उड़ने की विद्या माँगा। भैरवानन्द ने इस सिद्धि की प्राप्ति हेतु देवी की पूजा का विधान बताया। पूजा के लिए नर-युग्म की बलि की आवश्यकता थी। राजा ने राज-पुरुषो को आदेश दिया और वे नगर मे घूमते हुए दो बालक तथा बालिका क्षुल्लकों को पकड़ लाये। ये क्षुल्लक सुदत्त नामक तपस्वी के शिष्य थे। राजा के सम्मुख जब ये क्षुल्लक उपस्थित किये गये तो उनके मुख पर कुछ विचित्र सामुद्रिक चिह्न दिखाई दिये। राजा ने उनके बध का आदेश न देकर बल्कि उनका परिचय पूछा। क्षुल्लको ने अपने गुरु द्वारा बतलाये गये अपने पूर्व जन्मों की सम्पूर्ण कथा सुना दी। कथा से यह स्पष्ट हुआ कि इनमे एक पूर्व जन्म का यशोधर और दूसरी बालिका उसकी माता है। विभिन्न कर्मों के कारण ये कभी पशु योनि मे उत्पन्न हुए तथा कभी मनुष्य योनि में, कभी पति-पत्नी के रूप मे, कभी भाई-बहन के रूप मे तथा कभी कभी मा-बेटे के रूप में। वर्तमान राजा और रानी भी उनके साथ पहले जन्मों मे घनिष्ठ रूप से जुड़े थे।

यह सब जानकर राजा को बहुत ही पश्चाताप हुआ तथा बाद मे भैरवानन्द के साथ राजा-रानी क्षुल्लकों के गुरु सुदत्त के यहाँ जाकर जैन-धर्म मे दीक्षित हो गये।

सम्पूर्ण कथा बहुत पेचीदी है। केला के पात-पात मे पात की तरह इसमें कहानी के भीतर कहानी है।[2] अनेक जन्मान्तरों की ऐसी उलझी कहानी पूरे अपभ्रंश साहित्य में कोई नहीं है। आदि तथा अन्त में धार्मिकता के पुट के अलावा बीच की

---

१. डा० परशुराम लक्ष्मण वैद्य द्वारा 'कारंजा सीरीज' में सम्पादित, १९३१ ई०।

२. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग। डा० नामवर सिंह, पृ० २०९।

शेष कथा बहुत ही यथार्थवादी है जिसमे राजाओं के छल-कपट, पर-स्त्री आसक्ति, पर-पुरुष-अनुरक्ति, धोखा, लूट-खसोट, हत्या, चोरी इत्यादि मानवीय दुर्बलताओं का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है। यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि एक ही कवि की कृति होने पर भी कुमार चरिउ की तरह इसमें कपोलकल्पित घटनायें नहीं हैं। उसमें रोमाण्टिक वृत्ति की बहुलता थी, इसमें जीवदया। पौराणिक काव्य की सम्पूर्ण रूढ़ियाँ इसमे विद्यमान हैं।

पउमसिरी चरिउ[1]

चार सधियों मे समाप्त सुन्दर धार्मिक प्रेमकथा पद्मसिरी चरिउ (पद्म श्रीचरित, धाहिल कवि की एकमात्र कृति है। इसमे कवि ने पद्मश्री के पूर्व जन्म की कथा का वर्णन किया है। कवि के जीवन-चरित तथा स्थान के विषय मे पर्याप्त सामग्री का अभाव है। पउम सिरीचरिउ की अन्तिम प्रशस्ति से इतना हो प्रकट होता है कि वह शिशुपालवध के रचयिता कवि माघ की परम्परा मे पैदा हुए। भाषा तथा विषय शैली के आधार पर उन्हें १०वीं के लगभग माना जा सकता है। डा० भायाणी उन्हें माघ से आठ-नौ पीढ़ी बाद का मानते हैं (प० सि०च० १५)। कवि इसमें पारिवारिक समस्या का धार्मिक हल ढूँढने के पक्ष में है। धार्मिक कल्पना का रंग होने पर भी, एक सम्पन्न परिवार मे विधवा लड़की की स्थिति, गृहकलह, पारिवारिक कूटनीति तथा गन्धर्वविवाह की रोमाण्टिक प्रवृत्ति का अत्यन्त ही सुन्दर और सरस वर्णन है। सब मिला जुलाकर, धार्मिक होते हुए भी यह चरितकाव्य सरस, भावयुक्त तथा काव्यो-पयुक्त है। कवि का उपनाम दिव्य दृष्टि था।[2] कपट का परिणाम दूसरे जन्म मे भोगना पड़ता है, यही इस धर्म-कहानी का प्रतिपाद्य है। संक्षेप मे कथा इस प्रकार है।

मध्यदेश के बसन्त नगर मे जितशत्रु नामक राजा था। उसी नगर में धनसेन नगर सेठ भी था। धनदत्त तथा धनवइ उसके दो पुत्र और धनश्री नाम की एक लड़की भी थी। उस लड़की का विवाह वैश्रवण के पुत्र शंकर के साथ हुआ। अभाग्यवश किसी रोग के कारण उसकी असामयिक मृत्यु हो गयी। इसके पश्चात् दोनों भाई विपत्ति की मारी अपनी विधवा बहन को घर ले आये। घर आकर वह पूजापाठ मे अपना दिन व्यतीत करने लगी। एक दिन अभयघोष मुनि वहाँ पधारे। इसने उनसे कुछ व्रत ग्रहण किया। बस क्या था। वह दिल खोलकर दूने उत्साह से धार्मिक कार्यों मे व्यय करने

---

१. श्रीमधुसूदन मोदी तथा हरिवल्लभ भायाणी द्वारा सम्पादित भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४८ ई०।

२. प०सि०च०, पृ० ४०।

लगी। परन्तु उसका इस प्रकार से धन खर्च करना उसकी दोनों भाभियों को अच्छा नहीं लगा। वे उसपर व्यंग्य करने लगीं और इधर-उधर इसकी चरचा चली। धनश्री को यह मालूम हो गया। उसने सोचा यदि भाइयों को यह पता लग जायगा तो मैं इस प्रकार खर्च न कर पाऊँगी। अच्छा होगा यदि मैं छल से दोनों में वैमनस्य पैदा कर दूँ। एक दिन यशोमती बन-ठन कर अपने पति के कमरे में जाने लगी। धनश्री को अच्छा अवसर मिला। उसने तुरन्त शील पर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। यह सुनकर भाई ने सोचा निश्चित हो मेरी पत्नी चरित्रहीन होगी। उसने पलंग पर बैठते ही उसे लात मारकर पलंग से नीचे गिरा दिया। वह रात भर रोती चिल्लाती रही और दूसरे दिन सब बात उसने धनश्री से कही। उसने समझाकर भाई से समझौता करा दिया। इसी प्रकार उसने दूसरे भाभी और भाई में भी भेद उत्पन्न कर दिया तथा बाद में दूर किया। अब कोई उसकी आलोचना करने वाला नहीं था। वह इच्छानुसार खर्च करने लगी। मरकर वह स्वर्ग में पैदा हुई।

दूसरे जन्म में धनदत्त तथा धनवह साकेतपुर में अशोक के यहाँ समुद्रदत्त और उदधिदत्त नाम के पुत्र हुए। धनश्री भी हस्तिनापुर मे सेठ के यहाँ पद्मश्री नाम की लड़की के रूप में पैदा हुई। यशोमती तथा जशोदा कौशलपुर मे जन्म ली। क्रमशः पद्मश्री बड़ी हुई। एक दिन वह अपूर्वश्री उद्यान में वसन्तोत्सव मनाने के लिए गई। वहाँ एक लतामण्डप मे उसको मुलाकात समुद्रदत्त से हो गयी। बस क्या था? आँखें चार हुई। दोनो की प्रणय कहानी प्रारम्भ हो गयी। पद्मश्री ने अपने हाथ से गूँथकर उसे बकौली की माला पहनायी। इसके बाद वे दोनो अपने-अपने घर चले गये। पद्मश्री को घर पर जरा भी अच्छा नही लगता था। वह वियोगाग्नि से पीड़ित थी। इधर समुद्रदत्त की भी बड़ी बुरी स्थिति हो गई। यद्यपि पद्मश्री गुप्तरूप से अपने प्रिय से मिलना चाहती थी, पर बसन्तसेना नामक सखी ने कुलीनता की सलाह देकर समझा दिया। समुद्रगुप्त का बाप शरण के घर अपने लड़के के लिए उसकी लड़की माँगने आया। उसने अनुमति दे दी। खूब चहल-पहल से दोनो का विवाह हो गया। कुछ दिन तक समुद्र गुप्त ससुराल में ही रहा, परन्तु सहसा माँ की बीमारी का सन्देश पाकर वह घर चला गया। वहाँ जाने पर वह पद्मश्री को भुला दिया। एक दिन अचानक चकवा-चकवी का विरह देखकर उसे उसकी सुधि आयी तथा वह ससुराल को प्रस्थान कर दिया। इधर पद्मश्री प्रिय के विरह मे बिल्कुल सूख गयी। उसको आया देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। रात्रि मे वे दोनों आपस में बात कर रहे थे कि ठीक उसी समय पास के कमरे से एक यक्ष ने यह कहना प्रारम्भ किया—'कल तो तूने मुझे संकेत द्वारा आने को कहा था और अब किसी दूसरे के साथ है।[1] यह सुनते ही समुद्रगुप्त को उस

---

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० १२५।

पर सन्देह हो गया। वह अपने घर लौट आया। उन दोनों भाइयों ने कान्तिमती तथा कीर्तिमती से विवाह किया। (ये उनकी पूर्वजन्म की पत्नियाँ थीं) पद्मश्री के पिता को बड़ा कष्ट हुआ। एक दिन मुनि के द्वारा पद्मश्री को उसके छोड़े जाने का कारण ज्ञात हो गया। उसने जिन दीक्षा ले ली। वह विहार करती हुई साकेतपुर में गयी। कान्तिमती तथा कीर्तिमती ने उसका स्वागत किया। एक दिन कान्तिमती हार बना रही थी उसी समय पद्मश्री आयी। वह हार रखकर भोजन लाने चली गई। इतने में ही वह यक्ष मोर होकर हार निगल गया। अपना हार वहाँ न पाकर उसने पद्मश्री को हार की चोरी लगा दी। उसे इस अपमान से बहुत दुःख हुआ। वह सब छोड़कर तप करने लगी। उसे केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया। यक्ष अपनी भूलपर बहुत पश्चाताप किया। उसने उसी प्रकार मोर बनकर हार उगल दिया। इसे देख सभी आश्चर्यचकित हो गये, पद्मश्री ने उन्हें धर्मोपदेश दिया तथा अपने पूर्व भव बताये।

पउम सिरीचरिउ की कथावस्तु का मुख्य आधार पारिवारिक घटना ही है। इसमें अवान्तर कथाएं अधिक नहीं हैं। इसकी कथावस्तु पौराणिक है, पर फिर भी वह सामाजिक चरितकाव्य के काफी नजदीक है। इसमें पद्मश्री के दो जन्मो की कथा निबद्ध है। पूर्व जन्म में उसने जो किया, दूसरे में वही पाया। पहले जन्म की घटना में यह दर्शाया गया है कि विधवा बहन भाई के घर रहकर धर्म मे धन खर्च करती है। भाभियों को वह बुरा लगता है। तब ननद कपट से भाई-भाभियों में कलह उत्पन्न कर अपने अच्छी बन जाती है। संयुक्त परिवार में प्रायः ऐसा होता है। दूसरे जन्म की घटनाओ मे पिछले जन्म के कर्मफल के सहित गंधर्व विवाह की बुराई का परिणाम भी बताया गया है। पहले तो दोनों का प्रेमपूर्वक विवाह होता है, परन्तु अन्त में पति की विरक्ति हो जाती है। पत्नी साध्वी बन गयी। इसके पूर्व दोनों के वैवाहिक जीवन के वर्णन में उस युग के सम्पन्न पति पत्नी के विलासयुक्त जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है। युवक-युवती में प्रेम होना, फिर पत्नी के चरित्र पर सन्देह करना, हार का चुराया जाना, कान्तिमती का पद्मश्री पर सन्देह करना इत्यादि सब घटनायें बिल्कुल ही स्वाभाविक हैं। विशेषता केवल यही है कि कवि ने उन्हें बुराई न मानकर पुण्य-पाप का परिणाम माना है तथा उसका धार्मिक हल ढूंढ़ा है। इसी कारण उसने यक्षके मोर बनकर निगलने की कल्पना की। यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि पउमसिरी चरिउ की कथावस्तु बहुत स्वाभाविक है तथा इसपर उस युग की सामाजिक स्थिति का पूरा प्रभाव है। सुभाषितों, लोकोक्तियो तथा नवीन अप्रस्तुतों के प्रयोग भी कवि ने किये हैं।[1]

---

१. कुछ सरस उक्तियां इस प्रकार हैं, जो आणा खंडणु करइ अज्जु, बप्पेण इ किंचि विनाहि कज्जु, १, ५, १०। (जो आज्ञा खण्डन करे, उसके पिता से भी कुछ काम नहीं है)।

करकंड चरिउ

करकंडु के जीवन चरित पर लिखी गई कहानियों में कनकाम मुनि (१०६५ ई०) का करकंड चरित[1] ही अपभ्रंश साहित्य मे सम्प्रति उपलब्ध है। 'करकंडु चरित' कई लोगों ने लिखा है, रइधू लिखित 'करकंडु चरित' का प्राय: नाम भी सुना जाता है, पर अभी तक उसका स्पष्ट पता नही लग सका है। इनका उल्लेख दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों में मिलता है। बौद्ध जातकों मे ये 'प्रत्येक-बुद्ध' रूप मे मान्य एक महात्मा हैं। कनकामर मुनि ने ऐसे महापुरुष को अपना चरित-नायक चुना है। कनकामर के बारे मे केवल इतना ही ज्ञात है कि वे 'आसाइय' नगरी के रहने वाले थे, जो शायद बुन्देलखण्ड में कही थी।

दस सन्धियो के इस प्रबन्ध काव्य के तीन-चौथाई भाग मे करकंडु की मुख्य कथा है तथा शेष चौथाई भाग मे नौ अवान्तर कथाएँ हैं, इन अवान्तर कथाओ मे से एक कथा नरवाहन दत्त की है जो सस्कृत मे प्रचलित कथा से कुछ भिन्न है। ये अवान्तर कथाएँ राजा को नीति की शिक्षा देने के बहाने कही गयी हैं। संक्षेप मे मुख्य कथा इस प्रकार है—'एक बार चंपाधीश धाडीवाहन अपनी रानी पद्मावती के दोहद निमित्त हाथी से कही जा रहे थे कि एकाएक हाथी मदोन्मत्त होकर भागने लगा। ऐसी विषम स्थिति मे रानी की परामर्श से राजा एक डाल के सहारे बच गये, परन्तु रानी एक भुतहे स्थान पर पहुँची तथा वहीं उन्होने पुत्र-प्रसव किया। पुत्र को एक माली ने पाला तथा हाथी द्वारा परीक्षण के बाद उसे चक्रवर्ती जानकर दंतिपुर का राजा बनाया गया। उसने वही से सौराष्ट्र की राजकुमारी से विवाह किया। उस राजकुमार का नाम करकंडु इसलिए पडा कि बचपन मे उसके कर मे कंडु अथवा खुजली हो गयी थी। कुछ समय बाद चम्पा के राजा ने करकंडु के पास अधीनता स्वीकार कर लेने की धमकी भेजी, लेकिन इस धमकी की चिन्ता न करके करकंडु ने युद्ध का निश्चय किया। युद्ध हुआ। युद्ध मे पिता ने पुत्र को पहचान लिया और उसी क्षण अपना सम्पूर्ण राज-पाट सौंप दिया। इसके पश्चात् करकंडु ने दक्षिण के चौल, चेर, पाडय राज्यो पर भी चढ़ाई की। इस अभियान मे उसकी रानी मदनावली हर ली गई। राजा को एक सुर ने आकर रानी के मिलने का आश्वासन दिया। करकंडु वहाँ से सिंहल गये। सिंहल

अलि वंचेवि केयइ वउले लग्गु। जं जस मणिट्ठ रा तासु लग्गु। २, ५, ८
'भ्रमर केतकी को छोडकर वकुल (मौलश्री) मे रत है, जो जिसको प्रिय है वह उसमें अनुरक्त है।' 'मित्र वियोग से किसे दुःख नहीं होता' ३, १, ३।

२. प्रो० हीरालाल जैन द्वारा 'कारन्जा जैन ग्रंथमाला' में संपादित, (१९३४ ई०)।

नरेश ने उसके साथ अपनी पुत्री ब्याह दी। नई रानी सहित करकंडु जब समुद्र-मार्ग से लौट रहा था तो एक मत्स्य ने विघ्न उपस्थित किया। राजा ने उस मत्स्य को मार दिया पर फिर स्वयं एक विद्याधर द्वारा हर लिया गया। रानी के बहुत अधिक व्रत करने पर वह प्राप्त हुआ। लौटते समय करकंडु ने दक्षिण के राज्यों को जीत लिया तथा रास्ते में उसने पहली रानी को भी पाया। अन्त में एक दिन मुनिशीलगुप्त से अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर राजा करकंडु तपस्या के लिए चल पड़ा।

नाना देश-देशान्तरों मे भ्रमण के कारण कथा मे विस्तार तथा वर्णन मे व्यापकता आ गयी है। यद्यपि काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से कृति अत्यन्त सामान्य कोटि की है परन्तु कथानक-रूढ़ियो की दृष्टि से इस काव्य की कथा बहुत समृद्ध है, अनेक स्थलो पर कहानी में लोक-कथाओ की झलक भी मिलती है।

प्रधान चरित की कथा के अलावा कृति में प्रसंगानुसार नौ आवान्तर कथायें हैं।[1] इसके अतिरिक्त प्रेम के प्रसंग स्वाभाविक हैं, यथा, करकंडु के पिता राजा धाडीवाहन का पद्मावती को देखकर मुग्ध होना (संधि १), मालिन कुसुमदत्ता की पद्मावती के प्रति ईर्ष्या (१.१६), करकंडु पर सुन्दरियों का क्षुब्ध होना (३.२), सौराष्ट्र की कुमारी को देखकर करकंडु के प्रेम का आरम्भ और विकास (३.४-७) तथा करकंडु और सिंहल की कुमारी का विवाह (७.७) आदि।

काव्य के अध्ययन से तत्कालीन समाज का स्पष्ट रूप सामने आता है। राजाओं का जीवन विलास से परिपूर्ण था। ऐश्वर्योन्मत्त राजाओं का अधिक समय अपनी अनेक रानियो-उपपत्नियो के साथ अन्तःपुर में अथवा क्रीडोद्यान मे व्यतीत होता था। राजा बहुपत्नीक होते थे। करकंडु की (मदनावलि, रतिवेगा, कुसुमावलि, रत्नावलि, अनंगलेखा, चन्द्रलेखा) कई पत्नियाँ इसके उदाहरण हैं।

इस काव्य के उद्देश्य हैं—श्रुतपंचमी का फल, पंचकल्याणक विधि की प्रतिष्ठा। कवि प्रारम्भ में ही स्पष्ट कह देता है कि मैं करकंडु के उस चरित्र का वर्णन करता हूँ जो कल्याणकविधि रत्न से कलित है। यहाँ कल्याणक विधि का अर्थ पंचकल्याण विधान से है। करकंडु यह विधान अन्त में स्वयं करता है। उसने लयण का भी निर्माण कराया। भाषा और काव्य शिल्प के आधार पर निर्विवाद इस कृति को ११ वीं के

---

१. त्रिशक्ति को प्रदर्शित करने की कथा २.१०-१२, अज्ञान के कारण विपत्ति आने का उदाहरण २.१३, नीच संगति के परिणाम को स्पष्ट करने के लिये सेठ का दृष्टान्त २.१४.१५, सुसंग का दृष्टान्त २.१५.१८, नरवाहनदत्त की कथा संधि ६, माधव तथामधुसूदन की कथा ६.४. ७, शुभशकुन के सम्बन्ध में दृष्टान्त७. १. ४, अरिदमन की कथा उपवास के परिणाम का दृष्टान्त १०. १८. २२।

अन्त और १२ वीं के प्रारम्भ का माना जा सकता है। कनकामर की केवल यही रचना है। इसका उद्देश्य है 'दुःख से रहित सुख-भरी चरित-कथा वस्तु की रचना करना (कर० च० १)। जैसा कि डा० हीरालाल ने लिखा है (करकण्डु चरित्र की भूमिका) कि करकण्डु को बौद्ध साहित्य में प्रत्येक बुद्ध माना गया है। श्वेताम्बर साहित्य भी उन्हें यही मानते हैं। अतः यह पूर्व बुद्ध युग के ऐतिहासिक पुरुष सिद्ध होते हैं। डा० देवेन्द्र कुमार जैन करकंडु चरिउ को पौराणिक रोमांटिक काव्य मानते हैं जो काफी उचित प्रतीत होता है।[1]

भविसयत कहा

भविसयत्त कहा के लेखक धक्कड़ वैश्य वंश में पैदा हुये थे। उनके पिता का नाम माएसर और माता का धनश्री देवी था।[2] वैश्य कुल में पैदा होने पर भी इन्हें अपनी विद्वता का बड़ा गर्व था और इन्होंने बड़े गर्व से अपने आप को सरस्वती पुत्र कहा है (सरसइ बहुलद्ध महावरेण भ० क० १.४) इसके समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। डा० याकोबी इन्हें १० वीं सदी के पूर्व नहीं मानते। धनपाल नाम के कई कवि हो चुके हैं।

इस ग्रन्थ का दूसरा नाम 'सुयपंचमी कहा' भी है क्योंकि 'सुयपंचमी' महात्म्य के लिए यह कही गयी है। बाईस संधियों के इस प्रबन्ध काव्य में एक प्रकार से तीन प्रकार की कथाएँ जुड़ी हुई हैं। कथा का पहला भाग शुद्ध घरेलू ढंग की कहानी है जिसमे दो विवाहों के दुखद पक्ष को उभाड़ा गया है। इसमे वणिकपुत्र भविष्यदत्त के भाग्य की गाथा है जो अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के द्वारा अनेक बार छले जाने पर भी अन्ततोगत्वा जिन-महिमा के प्रताप से सुखी होता है। इस काव्य की कथा का प्रमुख अंश यही है तथा कवि ने इसे दिव्य ढंग से चौदह संधियों मे वर्णित किया है। चौदहवी संधि के प्रारम्भ में कवि ने स्वयं इस कहानी का सारांश इस प्रकार दिया है—

> उप्पराणउं चिरु वणि वरहं गोत्ति
> परिवड्ढिउ मामहं सालि पुत्ति।
> वाणिज्जें गउ सव्वायरेण
> घत्तिउ सावत्ति भायरेण।
> परिहविण गंपि नरनाहु दिट्ठु
> तेणवि सम्माणिउं किउ वरिट्ठु।

---

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्र कुमार जैन, पृ० ११८।

२. धक्कड वणि वंसे माएसरहो समुब्भव विण
धण सिरिहोवि सुवेण विरइउ सरसइ संभविण ॥ भ० क० १.९।

हुअ बहु मंडलवइ नर-वरिंदु
उच्चाइउ निय-सुहि-सयण-विंदु।
एहउ जाणेविणु मच्चलोइ
मं करहु गव्व संपय-विहोइ।
पारंपर-कव्वहं लहिउ भेउ
मइं झंखिउ सरसइ-वसिण एउ।

पूरी कथा इस प्रकार है—

राजपुर में धनपति नामक एक नगर सेठ रहता था। उसने उसी नगर के एक दूसरे वणिक हरिबल की कन्या कमल श्री से विवाह किया जिससे कुछ दिनों के पश्चात् भविष्यदत्त नामक पुत्र पैदा हुआ। न जाने पहले जन्म के किस कर्म के कारण धनपति का प्रेम कमलश्री से हट गया और उसने कमलश्री को मायके भेजकर सरूपा नामक एक लडकी से विवाह किया। शीघ्र ही सरूपा से बंधुदत्त नामक पुत्र हुआ। जब बंधुदत्त बड़ा हुआ तो पिता ने उसे व्यापार के लिए विदेश जाने की आज्ञा दी। बंधुदत्त ने अन्य अनेक वणिक-पुत्रों के साथ कंचन देश की यात्रा की। भाई को व्यापार के लिये जाते देख भविष्यदत्त ने भी साथ जाना चाहा। कमलश्री ने पुत्र को बहुत मना किया कि बन्धुदत्त के साथ मत जाओ, परन्तु भविष्यदत्त ने बंधुदत्त पर विश्वास करके यात्रा प्रारम्भ कर दी। प्रस्थान करने से पहले बन्धुदत्त की मां ने पुत्र को उपदेश दिया कि भविष्यदत्त को उठाकर समुद्र में फेंक देना तथा भविष्यदत्त की माँ ने सदाचार-पालन का उपदेश दिया। यात्रा प्रारम्भ होने के कुछ ही दिनों बाद सहसा तूफान आ गया और नौकाएं तिलक द्वीप से आ लगीं। उतरने पर वहाँ भविष्यदत्त फूल लेने चला गया, तो बन्धुदत्त उसे उस द्वीप में अकेले छोड़कर चला गया।

भविष्यदत्त अकेला इधर-उधर भटकते हुए एक ऐसी वैभवशाली नगरी में पहुँचा जो जनशून्य थी। वहाँ उसे एक सुन्दरी मिली तथा वहीं एक राक्षस भी आ गया, उसने उन दोनों का विवाह करा दिया। उस नगरी में बारह वर्ष तक सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने के पश्चात् भविष्यदत्त अन्त में अपार धनराशि लेकर अपनी पत्नी के साथ घर आने को तैयार हुआ। जैसे ही वह किनारे पहुँचा, उसका भाई बन्धुदत्त भी आ गया और वह अपने किये पर पछताने लगा। इसके बाद भविष्यदत्त ज्योंही जिन-मन्दिर में प्रणाम करने गया, बन्धुदत्त उसकी पत्नी सहित सम्पूर्ण धनराशि लेकर चम्पत हो गया। घर आकर बन्धुदत्त ने भविष्यदत्त की पत्नी को अपनी पत्नी बताया तथा विवाहादि की तिथि तय कर ली। इधर भविष्यदत्त की माँ 'सुयपंचमी' व्रत रहती है तथा उधर भविष्यदत्त जिन की पूजा करता है। इन दोनों के परिणामस्वरूप उसकी सहायता के लिए एक देव उपस्थित हुआ और उसने अपार धनराशि के साथ भविष्यदत्त को घर पहुँचा दिया। भविष्यदत्त घर आकर सारा रहस्य खोल दिया तथा राजा

से न्याय की याचना की। राजा ने बन्धुदत्त को दण्ड देकर भविष्यदत्त को उसकी पत्नी दिला दी। प्रथम खंड यहीं समाप्त हो जाता है।

दूसरे खंड मे दो तरह की कहानियां हैं। पहली तो यह कि कुरुराज और तक्षशिला नरेश में लड़ाई हुई जिसमे भविष्यदत्त ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा उसी के पराक्रम से कुरुराज की विजय हुई। खुश होकर पुरस्कार मे राजा ने आधा राज्य और अपनी लडकी भविष्यदत्त को दी। कहानी का अन्तिम मोड यह है जिसमें भविष्यदत्त के विविधपूर्व जन्मो की विचित्र कहानियां वर्णित हैं तथा जिनके श्रवण के पश्चात् वह अपने पुत्र सुप्रभ को राज्य देकर तपस्या के लिए चल पडा। इस तरह दूसरे खंड की कहानी ऊपर से आरोपित या कवि द्वारा समझ-बूझकर सोद्देश्य विकृत की हुई प्रतीत होती है। कहानी के प्रथम खण्ड में लोक-कथा का जो सहज रस है' वह अन्तिम खंड के सोद्देश्य मोड से समाप्त हो जाता है। शायद इसी लिए कवि ने अपने आप ही इस कथा के दो खण्ड कर दिये हैं।[1]

इस काव्य मे कई ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं जहां कवि की काव्य-प्रतिभा निखर उठी है। इसमे भी वह प्रसंग तो सर्वाधिक मोहक एवं आकर्षक बन पडा है जब भविष्यदत्त तिलक द्वीप मे अकेला छोड दिया जाता है तथा विह्वल होकर इधर-उधर भटकता है। न जाने कितने बडे-बडे मनोरथ लेकर वह घर से चला था। पर अब उसकी सारी आशाओ पर तुषारापात हो गया। वह बेचारा अकेले पडा हुआ विचार कर रहा है—

गयं णिप्फलं ताम सव्वं वणिज्जं।
हुवं अम्ह् गोतम्मि लज्जावणिज्जं॥
ण जत्ता ण वित्तं ण मितं ण गेहं।
ण धम्मं, ण कम्मं, ण जीयं, ण देहं॥
ण पुत्तं कलत्तं, ण इट्ठं ण दिट्ठं।
गयं गयउरे दूर-देसे पइट्ठं॥

तथा ऐसे ही किंकर्तव्यविमूढ़ मन वाले व्यक्ति की आंखो के आगे वह उजाड़ नगरी दिखाई देती है जिसमे सब कुछ के बावजूद कोई जीवित व्यक्ति नहीं है। उसे देखकर ऐसा आभास होता है कि सब कुछ सजा हुआ त्याग कर कोई कहीं चला गया है। वह देखता है कि—

वावि - कूव-सु - प्पहूव-सु - प्पसण्ण-वण्णयं
मढ-विहार-देहुरेहिं सुट्ठ तं खण्णयं।

---

१. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २१४।

देव-मंदिरेसु तेसु अंतरं णियच्छए
सो ण तित्थु जो कयाइ पुज्जिऊण पिच्छए।
सुरहिं-गंध-परिमलं पसुणएहिं फंसए
सो ण तित्थु जो करेण गिण्हिऊण वासए।
पिक्क सालि-धराणयं पणट्ठयम्मि ताणए
सो ण तित्थु जो घरम्मि लेवि तं पराणए।
सर-वरम्मि पंकयाइं भमिर-भमर-कंदिरे
सो ण तित्थु जो खुडेवि णेइ ताइं मंदिरे।
हत्थ-गिज्झ वर-फलाइं विभएण पिक्खए।
केण कारणेण को वि तोडिउं ण भक्खए।

क्या विडम्बना है कि प्रसून सुरभि-गन्ध-परिमल से स्पर्श कर रहे हैं परन्तु उन्हे हाथ से लेकर सूंघने वाला कोई नहीं है, पके हुए धान के दाने बिखर रहे हैं, पर उन्हे घर लाकर उपभोग करने वाला कोई नहीं है, सरोवरों मे गूँजते हुए भौरों से कमल घिरे हैं, लेकिन उन्हे तोडकर मंदिर मे ले जाने वाला कोई नहीं है तथा फलों के बोझ से वृक्ष स्वयं ही झुक आये हैं, परन्तु आश्चर्य है कि उनका स्वाद चखने वाला कोई नही है।

इसके बाद उद्यान से आगे जाकर वह राजभवन के पास पहुँचता है तो उसका हृदय एक-एक चीज को देखकर भर जाता है। गवाक्षों को अधखुला छोड़कर कोई चला गया है, जैसे वे किसी नव-वधू की अधखुली आखें हो। फलक पर गुह्य अन्तर्देश हैं, मालूम होता है जैसे वे वनिताओ के अधखुले उरु प्रदेश हों। भरे हुए समृद्ध भाण्ड स्वयं अपना अन्तर्भाग दिखला रहे हैं जैसे नागिन के मुकुट के चिन्ह हो। रंध्रों में एक धनाभिलाषी पुरुषो की तरह दीपक जल रहे हैं। योगियों की तरह अविचलित खम्भे खड़े हैं, जैसे सुरतारम्भ के समय मिथुन निर्वसन हो गये हों। गोपदों से परिवर्जित मार्गों वाले गोपुर दिखाई दे रहे हैं। जो विशाल भवन काफी दिनो तक जनाकुल थे, वे भी अब सुरत समाप्ति के मिथुनो की भांति निर्ध्वनि हो गये हैं। जो घाट पनिहारिनियों के हमेशा आने जाने से नूपुरो की झंकार से गुंजित रहते थे, अब वे विधिवश निःशब्द हो गये हैं। यह सब देखकर भविष्यदत्त के अंग उन्मथित हो गये तथा वह अपने शरीर की छाया को देखता हुआ धीरे-धीरे घूमने लगा।

पिक्खइ मंदिराइं फल-अद्धुग्घाडिय-जाल-गवक्खइं
अद्ध पलोइराइं णं णव-वहु-णयण-कडक्खइं।
अह फलहतरेण दरिसिय-गुज्झंतर-देसइं।
अद्ध-पयंघियाइं विलयाण व ऊरू-पएसइं।

पिक्खइ आवणाइं भरियंतर-भंड-समिद्धइं
पयडिय-पण्णयाइं णं णाइणि-मउडइं चिंघइं।
एक्कवणा हिलास-पुरिसाइ व रंधि पलितइं
वरइत्त-जुवाणइं ण वड्ड-कुमारिहु चित्तइं॥
जोएसर-विवाय-करणाइं व जोइय थंमइं
विहडिय-पेसणाइं मिहुणाण व सुरयारंभइं
पिक्खइ गोउराएं परिवज्जिय-गोपय-मग्गइं
पासायंतराइं पवणुद्धुअ-धवल-धयग्गइं।
जाइं जणाउलाइं चिरु आसि महत्तर भवणइं
ताइं मि णि-ज्झुणाइ सुरयइं सम्मत्तइं मिहुणइं
जाइं णिरंतराइं चिरु पाणिय-हारिहु तित्थइं
ताइं वि विहिवसेण हूअइं णीसद्द सु दुत्थइं।
सियवंत-णियाणइ णिहइवि तहो उम्माहउ अंगइं भरइ।
पिक्खंतु णियय-पडिबिंब-तणु सणिणउं संणिउं संचरइ॥

इस उजाड़ नगरी का वर्णन पढ़कर लोकजीवन मे प्रचलित कहानी की वह नगरी सामने आ जाती है जो विपत्ति पड़ने के कारण रातो रात, क्या से क्या हो जाती है। हाथी हथिसारे मर जाते हैं तथा घोड़ा घुड़सारे, सम्पूर्ण सोना कोयला हो जाता है और सभी नगर-निवासी जहाँ के तहाँ पत्थर हो जाते हैं।

सम्पूर्ण उपलब्ध अपभ्रंश कथा-काव्यों मे भविष्यदत्त की कहानी करुण और यथार्थ है। कथाकार ने घटनाओं का वर्णन तथा पात्रों का चित्रण बड़ा ही सहृदयता से किया है। यद्यपि णायकुमार चरिउ की भांति यह कथा भी श्रुतपंचमी व्रत का माहात्म्य प्रतिपादित करने के लिये लिखी गयी है, तथा दोनों कथाओ का आरम्भ माहात्म्य सापत्य द्वेष से होता है, फिर भी भविसयत कथा मे घटनाओ का विकास सम्बद्ध, स्वाभाविक तथा संवेदनीय है। उद्देश्य, चरित्र-चित्रण तथा कथा विकास की दृष्टि से अब तक के प्राप्त अपभ्रंश चरित-काव्यों मे उसे सर्वोत्तम स्थान दिया जा सकता है।

हरिवंश पुराण

इसके लेखक कवि धाहिल १० तथा ११वीं के बीच हुए। उनके माता पिता का नाम क्रमशः केसल्ल और सूर था। कवि ने अपने गुरु का नाम अम्बसेन बताया है। उसने प्रस्तावना में कवि-परम्परा का उल्लेख भी किया है।

११२ संधियों के इस काव्य में सन्धि के नियमों का अच्छी प्रकार से पालन

नहीं किया गया है। इसमें अपभ्रंश काव्य की सभी रूढ़ियों का निर्वाह अवश्य हुआ है। इसकी शैली अलंकृत तथा कथा सरस है। सम्पूर्ण कृति जैन स्वभाव से परिपूर्ण है। यह अभी प्रकाशित नहीं है। इसकी पहली सूचना डा० हीरालाल ने सन् १६२५ में दी थी। इसकी एक प्रति, बड़ा तेरह पन्थियों के जैन मन्दिर जयपुर में सुरक्षित है।

जम्बूसामि चरिउ

जम्बूसामि चरिउ एक अप्रकाशित रचना है।[1] इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर-शास्त्र भण्डार मे है। इसके रचयिता वीर कवि ग्यारहवीं सदी के प्रथम चरण में हुए। इनके पिता का नाम देवदत्त तथा माता का सन्तुआ था। वीर की कई पत्नियां थी। इनके पिता देवदत्त भी कवि थे, जिन्होंने पद्धड़ियाबन्ध में 'वरांग चरित' की रचना की थी। कवि अपने पिता की गणना स्वयंभू तथा पुष्पदंत के बराबर करता है—

संते संयूभुए एवे एक्को कइत्ति विन्नि पुणु भाणिया।
जायम्मि पुप्फयन्ते तिण्णितहा देवयत्तंमि ॥ ५.१ ॥

बीच-बीच मे संस्कृत में आत्मप्रशंसा भी है। पर कथा के दौरान वह सभी काव्य-रूढ़ियो का पालन करता है। इसमें जन्म-जन्मान्तरों के प्रसंग मे जम्बूस्वामी का जीवन वर्णित है। वही कथा का नायक है। उसके वर्तमान यश, प्रताप तथा ऐश्वर्य के मूल मे उसके पूर्वभवों का घटनाक्रम सम्बद्ध है। वह इस बात का द्योतक है कि 'मनुष्य जो कुछ होता है वह अपनी अतीत घटनाओं का परिणाम होता है। धार्मिक कार्य से वह अपने भावी जीवन को बना सकता है तथा वर्तमान को भी ठीक रख सकता है। अपभ्रंश चरित-काव्यों के दूसरे कथा-नायकों की तरह उसके जीवन का अवसान भी विरक्ति में होता है। श्रोता-वक्ता शैली, कथा की आर्ष परम्परा वही पूर्ववत् जानी-पहचानी राजा श्रेणिक तथा गौतम गणधर से आरम्भ होती है। उसी का चरित्र इसमें मुख्य है, शेष पात्र और घटनाएँ उसी के इर्दगिर्द उसकी सहायक होकर चक्कर काटती हैं। नाना प्रकार की साहित्यिक शैलियों तथा वर्णनो के पालन के लोभ से कथानक स्वाभाविकता से काफी दूर हो गया है। अन्य बातें अपभ्रंश चरित काव्यों के समान हैं। अनेक रसों से समन्वित कथा का उपसंहार शान्तरस मे होता है।

जम्बूस्वामी के जिस जीवन की कथा इस काव्य में कही गयी है, उसकी परम्परा कई जन्म पूर्व ही प्रारम्भ होती है। मगध देश के वर्धमान नामक गांव मे एक ब्राह्मण तथा ब्राह्मणी थे। उनके दो पुत्र हुए, एक १८ वर्ष का तथा दूसरा १२ वर्ष

१—अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्र कुमार जैन, पृ० १३५।

का। पिता की मृत्यु और मां के सती हो जाने पर एक भाई भवदत्त दिगम्बर मुनि हो गया। दूसरा अपने विवाह के फेर में लगा हुआ था। अन्त में अपने भाई के कहने पर वह दीक्षा ले लिया, परन्तु उसका मन बार-बार संसार की ओर आकर्षित होता था। दोनों भाई अनेक जन्मों में भ्रमण करते रहे, अन्त में भवदत्त ही जम्बूस्वामी के नाम से पैदा हुआ। उसके पिता का नाम अरहदास था। जम्बूस्वामी युवकोचित सर्वगुण सम्पन्न था। सभी प्रकार के वैभव में रहकर भी जम्बूस्वामी का मन सांसारिक वस्तुओं में नही लगता था। एक नहीं चार-चार कन्याओं से उनका विवाह किया गया। स्वामी के मन में भोग तथा योग में जब कभी द्वन्द्व पैदा होता था, पत्नियां उसके वैराग्य का मखौल उड़ातीं, इस बीच विद्युच्चोर से उसका विवाद होता है। अन्त में जम्बूस्वामी विरक्त हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा प्रतीक रूप मे निबद्ध है। राग तथा विराग का द्वन्द्व दिखाने के लिए समूची घटनाएं तथा जन्म परम्पराएं वर्णित की गई हैं। मनुष्य राग से ऊपर उठना तो चाहता है, लेकिन सांसारिक परिस्थितिया उसे ऐसा करने से विवश करती हैं। जम्बूस्वामी का चरित्र इसी बात का दृष्टान्त है। निरन्तर साधना के पश्चात् ही मनुष्य उनपर विजय प्राप्त कर सकता है।

कृति में पज्झटिका, घता. दोहा, दंडक, भुजंगप्रयात, खंडिता, गाथा, मालागाथा स्राग्विणी. रत्नमालिका, दुवई आदि छंदो के प्रयोग मिलते हैं। गाथाओ की भाषा प्राकृत है। पूर्ववर्ती लेखकों में वीर ने शान्ति, वादीन्द्र, विभु, विष्णु, जयकवि, स्वयंभू, पुष्पदंत तथा देवदत्त का उल्लेख किया है।[1]

सुदंसण चरिउ

यह ग्रंथ अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर में है। एक हस्तलिखित प्रति प्रो० हीरा लाल जैन के पास है। कवि नयनन्दी ने १२ सन्धियो के इस काव्य मे सुदर्शन चरित्र का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उनकी 'सकल विधि विधान' रचना भी मिलती है। इनका समय ११वी सदी है। सुदर्शन चरित्र की रचना, अवन्ति नरेश भोजराज के समय हुई। रचना शायद धारा नगरी मे हुई। जैसा कि निम्नलिखित पुष्पिका से स्पष्ट है—

'आरामगाम पुरवरणिवेसे सुपसिद्ध अवंती नाम देसे
तहिं अत्थि धार नयरी गरिट्ठ।
तिहुयण नारायण सिरि णिकेउ तहिं णरवइ पुंगमु भोय देउ

१. प्रेमी अभिनन्दन ग्रंथ में पं० परमानन्द जैन का लेख तथा प्रशस्ति संग्रह, पृ० १०० पर उद्धृत कृति का अंश।

णिव विक्कम कालहो नव गएंसु एयारह संवच्छरसएसु
तहिं केवल चरिउ अमच्छरेण णयणंदे विरइउ वित्थरेण ।'

कवि माणिक्यनंदी का शिष्य था। पहली सन्धि मे कथा की परम्परा बतलाई गई है। दूसरी सन्धि मे गौतमगणधर बतलाते हैं कि भरत क्षेत्र के अंगरथ में चंपापुरी नगर मे धाडीवाहन राजा रहता था। उसकी रानी का नाम अभया था। उसी नगर मे ऋषभदास सेठ भी था। उसकी पत्नी का नाम अर्हदासी था। उसके यहाँ पूर्वजन्म का एक गोपाल, णमोकार मंत्र के प्रभाव से सुदर्शन नाम से पुत्र हुआ। वह अनुपम सुन्दर और बुद्धिमान था। युवतियों को आकर्षित करने मे वह कामदेव ही था। सुदर्शन सागरदत्त की पुत्री मनोरमा पर मुग्ध हो गया। वह उसे प्राप्त करने के लिए बेचैन हो गया। दोनो का विवाह हो गया। धाडीवाहन राजा की पत्नी अभया तथा कपिला नाम की एक दूसरी स्त्री भी उस पर मोहित हो गई रानी ने पंडिता नामक धाय के जरिये सुदर्शन से मिलने के लिए युक्ति सोचा। किसी प्रकार सुदर्शन रानी के समीप पहुँचा, लेकिन रानी उसे अनुकूल करने मे असमर्थ रही। इसपर उसने सुदर्शन पर उलटा दोष लगाकर पकडवा लिया। व्यन्तर देवता ने उस समय उसकी रक्षा की। धाडीवाहन व्यन्तर से युद्ध मे हार गया। अन्ततोगत्वा राजा तथा सुदर्शन सन्यासी हो गये। अभया तथा कपिला नरक गयी। जन्म-जन्मान्तरो के वर्णन के साथ कथा समाप्त होती है। यह प्रबन्धकाव्य भी धार्मिक उद्देश्य से लिखा गया है, इसमे घटनाएँ तथा कथाएँ कुछ धार्मिक मान्यताओ को सिद्ध करने के लिए कथानक में जोड़ी गयी हैं। अपभ्रश प्रबन्धो के इतिवृत्त के बन्ध को, अपभ्रंश कवियो के धार्मिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए। सुदर्शन चरित मे रानी अभया का सेठ पुत्र सुदर्शन के प्रति अपने पति की उपस्थिति मे आकृष्ट होना एक सामाजिक असंगति है, यह मान्य है। परन्तु यह सामन्तवाद पर वणिक्वाद की विजय है। उसके मूल मे धार्मिक पुण्य काम कर रहा है। प्रायः ये कवि नही बतलाते कि वास्तव मे रानी अभया अथवा कपिला के इन सामाजिक अकर्षण का मनोवैज्ञानिक या पारिवारिक कारण क्या था? तो भी इतना तो मानना ही पडेगा कि मानव स्वभाव इसमे सबसे बडा कारण है। सुदर्शन भी भावुक और प्रेमी है, वह मनोरमा के प्रति आकृष्ट होता है, परन्तु अपनी नयी असामाजिक प्रेमिकाओ के प्रति नही। उसके चरित्र की यह गतिशीलता और स्थिरता ही ऊँचा उठाती है।

अन्य अपभ्रंश चरित-कवियों की भांति नयनन्दी के भी काव्य के आदर्श थे। कवि के मतानुसार तरुणियो के विद्रुम-जडित, अधरो, सरस इक्षुदण्ड, अमृत चंदन तथा चन्द्रमा में वह रस नहीं, जो आलंकारयुक्त काव्य के कथन मे रस होता है—'सालंकरे सुकइभणिदे जंहोदि कव्वे।'

इसी तरह प्रकृतिवर्णन और छन्दयोजना भी परम्परानुसार ही है। प्रकृति-वर्णन संयोग वियोग दोनो पक्षों में हुआ है। शृंगार का पर्यवसान शान्त मे हुआ है।

स्त्रियों के चार भेदों की कल्पना की गई है। यह भी तत्कालीन प्रबन्ध काव्यों की एक प्रवृत्ति थी। सुभाषितो और मुहावरो के प्रयोग से भाषा अत्यन्त रोचक हो गई है। उदाहरणार्थ कुछ नमूने देखिये—

'जं जसु रुच्चइ तं तसु भल्लउ'। ७.५
अर्थात् जो जिसे अच्छा लगे वही उसके लिए भला।
'अह ण कवणु णेहें संताविउ'। ७.२
यानी प्रेम से कौन दुःखित नहीं होता?
'एक्कें हत्थें ताल कि वज्जइ। ८.३
अर्थात् एक हाथ से ताली कैसे बजाई जा सकती है?
'देवहं वि दुलक्खउतिय चरित्तु'। ६.१८
अर्थात् स्त्री-चरित्र देवताओ से भी दुर्लक्ष्य है।
'जोव्वणु पुणु गिरिणइ वेय तुल्लु,
विद्धत्तें होइ सव्वंगु ढिल्लु।' ६.२१

यौवन पहाड़ी नदी के वेग के तुल्य होता है। वृद्धत्व से अंग अंग शिथिल हो जाता है।

उक्ति छल से कवि ने अपनी रचना को निर्दोष कहा है।[1] यह निर्दोषता चरित्रगत है, प्रबन्धगत नही। उसका कहना है कि रामायण मे राम और सीता का वियोग है। महाभारत मे यादव, पांडव और धृतराष्ट्र के वंशों का भयंकर क्षय हुआ, परन्तु सुदर्शन के चरित्र मे कलंक की एक रेखा भी नही? यह उक्ति ही कवि के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देती है। इनकी दूसरी कृति सकल विधि विधान एक कर्मकाण्डात्मक रचना है, शुद्ध काव्य नहीं।

पास चरिउ

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। आमेर शास्त्र भंडार मे इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं। इसमे कवि पद्मकीर्ति ने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चित्रण किया है। इसमे कुल १८ संधियाँ हैं। ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति मे कवि ने अपने को जिनसेन का शिष्य बताया है।[2] कृति के रचनाकाल के सम्बन्ध मे निम्न लिखित पद्य मिलता है—

णव सय णउ वाणुइये कत्तिय अमावस दिवसे॥
लिहियं पास पुराणं कइणा इह पउम णामेण

इस पद्य के अनुसार कृति का रचनाकाल ६६२ वि० सं० मालूम होता है। प्रो० हीरालाल जैन ने इसका समय शक संवत् ६६६ माना है।

१—रामो सीय विओय सोय विहुरं संपत्तु रामायणे
जादा पंडव धायरट्ठ सद दं गोत्तं कली भारहे।
हेड्डा को लिय चोर रज्जु निरदा आहासिदा सुद्दये।
णो एक्कं पि सुदसणस्स चरिदे दोसं समुब्भासिद॥ सु० च० ३.१

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५०, अंक ३-४, पृ० ११७।

पासणाह चरिउ

इसके लेखक श्रीधर आयरवाल (अग्रवाल) १२वीं और १३वीं के बीच में हुए थे। पासणाह चरिउ के अलावा इन्होंने दो चरित-काव्य सुकुमाल चरिउ और भविसयत्त चरिउ भी लिखे हैं। तीनों ग्रन्थ अप्रकाशित हैं किन्तु इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भंडार मे हैं। इनकी माता का नाम बील्हा तथा पिता का गोल्ह था। कवि ने श्री नट्टल साहु की प्रेरणा से इस काव्य की रचना की। बीच मे संस्कृत छंदों मे कवि ने अपने प्रेरणादाता की प्रशंसा भी की है। पार्श्वनाथ की कथा पूर्ववत् ही है। वर्णन भी परम्परानुसार ही है। उसमें दिल्ली का अच्छा वर्णन हुआ है।

सुकुमाल चरिउ

सुकुमाल चरिउ एक अन्य चरित-काव्य है। इसके रचयिता भी कवि श्रीधर हैं। यह कृति अहमदाबाद में राजा गोविन्द चन्द्र के समय मे लिखी गई।[1]

ग्रन्थ रचना का समय वि० सं० १२०८, आग्रहायण मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया, चन्द्रवार है।[2] कवि ने प्रत्येक सन्धि की पुष्पिका मे अपने आश्रयदाता का उल्लेख किया है। इसी तरह श्रुतपंचमी का माहात्म्य बतलाने के लिए उसने भविसयत कहा की रचना की। भविसयत का आख्यान भी जैन-परम्परा में बहुत प्रसिद्ध रहा है।

सुलोचना चरिउ

सुलोचना चरिउ कवि देवसेन गणी की कृति है। राक्षस संवत्सर मे यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। ज्योतिष-गणना के अनुसार यह संवत्सर जुलाई १०७५ या जुलाई १३१५ पड़ता है। ग्रन्थ मे कवि ने पूर्व कवियों---वाल्मीकि, व्यास, श्रीहर्ष कालिदास, बाण, मयूर, हलिय, गोविन्द, चतुर्मुख, स्वयंभू, पुष्पदंत भूपाल आदि की लम्बी सूची दी है।[3] इनका जन्म १३०५ के पूर्व हुआ था। सुलोचना की कथा पुष्पदंत के महापुराण में भी है। जैन कथाओ मे यह कथा भी पर्याप्त विख्यात रही है। धवल पुराणकार ने भी इसके चरित पर एक काव्य लिखा। प्रमुख रूप से इसमे सुलोचना का चरित्र वर्णित है।

---

१. एक्कहिं दिणि भव्वयण पियारइ, बलड्इ नामे गामे मण हारइ।
सिरि गोविन्द चंद निव पालिए, अणवइ सुहयारय कर लालिए॥ १.२

२. बारह सयइ गयइ कय हरिसइ, अट्ठोत्तरइ महीयलि बरिसइ।
कसण पक्खि आगहणो जायए, तिज्ज दिवसि ससि बासरि मायइ।
बारह सहय गंथं कहइ पढडिएहिं रयणु।
जण मण हरणु सुह वित्थरणु एउ अत्थु संपुण्णउं॥ ६.१७

३. जहिं वम्मिय वास सिरि हरिसहिं।
कालयास पमहइ कय हरिसहिं।

प्रद्युम्न चरिउ

सिद्ध और सिंह विरचित १५ संधियो का अप्रकाशित काव्य है।[1] इसकी तीन हस्तलिखित प्रतियाँ आमेर शास्त्र भंडार मे सुरक्षित हैं। कवि ने जैन सम्प्रदायानुसार चौबीस कामदेवो मे से इक्कीसवें कामदेव कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न के चरित्र का १५ संधियो में वर्णन किया है। कवि ने अपने पिता का नाम रल्हण तथा माता का नाम जिनमती बताया है।[2]

सनत्कुमार चरिउ

सनत्कुमार चरिउ के रचयिता श्रीहरिभद्रसूरि श्रीजिन चन्द्र सूरि के प्रशिष्य थे। इसकी रचना अणहिल पाटन में १२ वी सदी के अन्तिम चरण मे हुई। चालुक्यवंशी सिद्धराज तथा कुमारपाल के मंत्री पृथ्वीपाल के आश्रय मे रहकर उन्होने इस ग्रन्थ की रचना को। इसके अलावा उन्होने मल्लिनाथ चरित को प्राकृत मे रचना की। सनत्कुमार चरिउ १९२१ मे डा० हरमन जैकोबी-द्वारा सम्पादित हो चुका है। यद्यपि

वाण मयूर हलिय गोविंदहिं।
चउमुह अवर सयंभु कयंदहिं।
पुप्फयत भूवाल पहाणहे।
अवरेहि मि बहु सत्थ वियाणहि।
विरइयाइं कव्वइं णिसुणेप्पिणु।
अम्हारिसह न रंजइ बुह यणु।
हउ तहावि धिट्ठ पयासमि।
सत्थ रहिउ अप्पउ आयासमि। १.३

१. कृति की संधियो की पुष्पिकाओ मे सिद्ध और सिंह दोनो नाम मिलते हैं। प्रथम से लेकर आठ संधि तक की पुष्पिकाओ मे 'सिद्ध' नाम मिलता है, नवी सन्धि मे 'सिंह' मिलता है। दशवी संधि मे पुन 'सिद्ध' मिलता है। आगे ग्यारहवी संधि से पुष्पिकाओ मे सिंह के पिता का नाम वुह रल्हण भी मिलने लगता है। अत: सिद्ध और सिंह दो कवियो ने प्रस्तुत कृति की रचना की। सिंह ने अपना परिचय भी दिया है।

२. कवि ने अपने माता पिता का उल्लेख इस प्रकार किया है।
पुणु पंपाइय देवणणदणु, भवियणजण मण णयणाणंदणु।
वुहयण जण पय पकय छप्पय, भणइ सिद्धु पणमिय परमप्पउ।
देo प्रशस्ति संग्रह, पृ० १३४।
प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० रामसिंह तोमर, पृ० १३७।

वह नेमिनाथ चरित का ही एक अंग है लेकिन कथानक की दृष्टि से इसका स्वतंत्र महत्त्व है। सनत्कुमार गजपुर के राजा अश्वसेन तथा रानी सुहदेवी का पुत्र था। राजसी ठाट-बाट मे पलकर कुमार सयाना होता है। वसन्त के एक सुहावने दिन वह एक सुन्दरी को देखा। देखते ही दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो गये। मदनायतन में उनका मिलन होता है। इसी बीच भोजराज पुत्र कुमार को जलधिकल्लोल नामक एक विख्यात घोड़ा देता है। वह कुमार को लेकर उड जाता है। राजधानी मे हाहाकार मच जाता है। कुमार की खोज का शासकीय आदेश होता है। सनत्कुमार का मित्र अश्वसेन भी उसे खोजते-खोजते मानसरोवर जा पहुँचता है। वहां पर एक किन्नरी अपनी गीत में कुमार का वर्णन कर रही थी। उससे कुमार का वृत्तान्त मालूम होता है। अब तक कुमार अनेक रमणियो को अपना बना चुके थे। जिस युवती से पहले प्रेम था, उसे यक्ष हर ले गया था। बाद मे उससे विवाह होता है। इसके पश्चात् वीर कार्यों तथा साहसपूर्ण घटनाओ का वर्णन है। अन्ततोगत्वा चक्रवर्ती पद प्राप्त कर रूप की क्षीणतम विरक्ति उन्हे सन्यासी बना देती है। चिरकालीन साधना के पश्चात् वह मुक्त होते हैं। अन्य रोमाण्टिक चरित-काव्यो की तरह ही इस कृति का शिल्प, शैली तथा चरित्र-चित्रण है।

उपर्युक्त चरित काव्यो और कथाकाव्यो के अतिरिक्त अनेक ऐसे काव्य मिलते हैं जिनका सम्बन्ध मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो से जोडा जा सकता है। इनके सम्बन्ध मे प्रसंगानुसार यथास्थान विवेचन किया गया है। साथ ही तीसरे अध्याय मे करकंडु चरिउ की कथा शिल्प सम्बन्धी विशेषताओ पर विचार करते समय उसपर पडने वाले पूर्ववर्ती सस्कृत, प्राकृत आदि की रचनाओ के प्रभाव का भी उल्लेख किया गया है। यहा पर विचारणीय यह है कि करकडु चरिउ के पूर्व रचित अपभ्रंश के चरित काव्यो व लोक प्रबन्ध काव्यो की परम्परा का प्रभाव करकंडु चरिउ पर कितना पडा है। साथ ही यह विचार कर लेना भी आवश्यक होगा कि करकडु चरिउ इस परम्परा मे कितना महत्वपूर्ण काव्य है।

अपभ्रंश कथाकाव्यों और लोक प्रबन्ध काव्यों की परम्परा का करकंडु चरिउ पर प्रभाव

वस्तु वर्णन

प्रबन्धकाव्य के लिये वस्तु वर्णन के जो विधान हैं उनके दो भेद किये जा सकते हैं—(१) प्राकृतिक वस्तुवर्णन—संध्या, सूर्य आदि का वर्णन (२) सामाजिक वर्णन-विवाह, युद्ध, यात्रा आदि का वर्णन[१]। प्राचीन समय से ही भारतीय काव्य मे इस

१. साहित्यदर्पण—६, ६२२, ३२४।

प्रकार के वर्णन उपलब्ध होते हैं। अपभ्रंश काव्य में भी ऐसे वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं।[1]

देश वर्णन

इसके अन्तर्गत नगर और द्वीपों के वर्णन आते हैं। ऐसे वर्णन प्राय परम्परागत हुआ करते हैं। अधिकांश अपभ्रंश प्रबन्ध में मगध देश की प्राकृतिक शोभा का वर्णन मिलता है। ऐसे वर्णन प्रायः सभी अपभ्रंश काव्यों मे समान रूप से मिलते हैं।[2] नगर के वर्णनो मे बहुधा प्राकार, गोपुर, परिखा, मकानों की ऊँचाई और विलास-सम्पत्ति का उल्लेख मिलता है।[3] जैसे—वसन्तपुर,[4], चंपानगरी[5], राजगृह[6], गजपुर[7] रतनपुर[8] आदि के वर्णन काफी साम्य रखते हैं। करकंड चरिउ मे चम्पा नगरी का वर्णन कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है—

> जा वेढिय परिहाजलभरेण। णं मेइणि रेहइ सायरेण।
> उत्तुंगधवलकउसीसएहिं । णं सग्गु छिवइ बाहूसएहिं।
> जिणमंदिर रेहहिं जाहिं तुंग। णं पुण्णपुंज णिम्मल अहंग।
> कोसेयपडायउ घरि लुलंति। णं सेयसप्प णहि सलवलंति।
> जा पंचवण्णमणि किरण दित्त। कुसुमंजलि णं मयणेण घित्त।
> चित्तलियहिं जा सोहइ घरेहिं। णं अमरविमाणहिं मणहरेहिं।
> णव कुंकुमद्दइयहिं जा सहेइ। समरंगणु मयणहो णं कहेइ।
> रत्तुप्पलाइं भूमिहिं गयाइं। णं कहइ धरंती फलसयाइं।
> जिणवासपुज्जमाहप्पएण । ण वि कामुय जिताकामएण।

---

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० १८०।
२. महापुराण, १, १२, २, ५७।
   णायकुमार चरिउ ६।
   जसहर चरिउ ४।
   भविसयत्त कहा १।
३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० १८१।
४. पउमसिरी चरिउ २।
५. करकंडु चरिउ ४।
६. णायकुमार चरिउ ६।
७. भविसयत्तकहा ३।
८. महापुराण २, ३७०।

घसात हिं अखिविद्दारगु मयतरुवारगु धाडीवाहगु पहु हुयउ ।
जो कलगुणजुत्तउ गुरुयणभत्तउ विज्जासायरपारगउ ॥
(क० च० १ । ४)

वह चम्पा नगरी जल भरी परिखा से घिरी होने के कारण, सागर से वेष्टित पृथ्वी के समान शोभायमान है। वह अपने ऊंचे प्रासाद-शिखरों से ऐसी प्रतीत होती है मानो अपनी सैकड़ो बाहुओ–द्वारा स्वर्ग को छू रही हो। वहां विशाल जिन मन्दिर ऐसे शोभायमान हैं, मानो निर्मल और अभंग पुण्य के पुंज ही हो। घर-घर रेशम की पताकाएँ उड़ रही हैं, मानो आकाश मे श्वेत सर्प सलबला रहे हो। वह पचरंगे मणियो की किरणो से देदीप्यमान हो रही हैं, मानो मदन ने अपनी कुसुमांजलि ही चढ़ायी हो। वह चित्रमय घरों से ऐसी शोभायमान है, जैसे मानो वे देवो के मनोहर विमान ही हो। नयी केशर की छटाओं की वहाँ ऐसी शोभा है कि मनो वह कह रही हो कि मदन का समरांगण यही तो है। वहाँ स्थान-स्थान पर रक्त कमल बिखरे हुये हैं, मानो वह पुकार पुकार कर कह रही है कि मैं ही सैकड़ो प्रकार के फलो को धारण करती हूँ। वहां भगवान वासु पूज्य के माहात्म्य से पुरुष कामी होकर कामदेव द्वारा जीते नहीं जाते।

इस प्रकार की उस चम्पा नगरी मे शत्रुओ का नाश करने वाला मदरूपी वृक्ष के लिये हाथी के समान धाडीवाहन प्रभु हुआ, जो समस्त कलाओ और गुणो से युक्त, गुरुजनों का भक्त तथा विद्याओ के सागर का पारगामी था।[1])

बाजार हाट

बाजार हाट का वर्णन पउम चरिउ जैसे अनेक अपभ्रंश चरित काव्यो मे मिलता है [2]।

विवाह वर्णन

अपभ्रंश साहित्य मे विवाह का बहुत ही रोचक वर्णन मिलता है। जहां बाण के हर्षचरित मे राजन्य वर्ग के विवाह का वर्णन मिलता है वही अपभ्रंश काव्य मे मध्यम और श्रेष्ठि वर्ग का भी। स्वयभू ने राम सीता के विवाह के अवसर पर केसर[3] कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यो तथा वाद्य यन्त्रो का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार से अन्य चरित काव्यों मे थोड़े हेर फेर के साथ मडप, चौक, भोजन, आभूषण आदि का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार युवतियो के हास-परिहास, कन्या का अभिषेक, वस्त्र

---

१. करकंड चरिउ–डा० हीरालाल जैन, हिन्दी अनुवाद, पृ० ५।
२. पउम चरिउ २, १९७, २, १९२।
३. वही, २, ८।

और आभूषणों से सजाकर कुलदेवी के संमुख ले जाना, जैसी अनेक परम्परायें अपभ्रंश मे हमे प्राप्त होती हैं। पउम चरिउ के अतिरिक्त महापुराण[१], भविसयत्तकहा[२], पउमसिरी चरिउ[३], जसहर चरिउ[४], तथा करकंड चरिउ[५], मे विवाह सम्बन्धी वर्णन सुन्दर रूप में दिखलाई पड़ते हैं।

पारिवारिक जीवन

अपभ्रंश चरित काव्यो मे सामान्य रूप से गर्भावस्था का वर्णन मिलता है। स्त्री के गर्भवती होने पर उसके चिन्हो का भी स्वाभाविक वर्णन मिलता है। इस प्रकार के वर्णन मे शरीर की कृशता, भारीपन, चेहरे पर पीलापन आदि का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार से दोहद होने का भी उल्लेख मिलता है।

इसी प्रकार से अपभ्रंश चरित काव्यो व कथाकाव्यो मे युद्ध वर्णन,[८] गजवर्णन,[९] जलक्रीडा,[१०] नारी के विविध रूपो का चित्रण सामान्य रूप से मिलता है[११]।

भाव व्यंजना

अपभ्रंश काव्य मे उक्तिमूलक शैली अपेक्षाकृत अधिक है। यहाँ पर भावव्यंजना के साथ ही साथ वस्तु-व्यंजना भी मिलती है। अपभ्रंश काव्यो मे स्थल स्थल पर गर्व, निर्वेद, आवेग, तर्क, अमर्ष, चिन्ता, शोक, ईर्ष्या, ममता, करुणा आदि भावो के साथ ही साथ भाग्य की विडम्बना का भी सुन्दर चित्रण मिलता है।

रस-सिद्धि

अपभ्रंश काव्यो मे मुख्य रूप से शृंगार और वीर रस का परिपाक हुआ है

---

१. महापुराण १' ६२।७१, १। ३८७।
२. भविसयत्तकहा ५।
३. पउमसिरी चरिउ २४।
४. जसहर चरिउ २१।
५. करकडु चरिउ २६।
६. करकंडु चरिउ ७, भविसयत्तकहा ७, णायकुमार चरिउ १६।
७. अपभ्रंश भाषा और साहित्य-डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० १८६।
८. महापुराण २।२८६, २।१६२, करकडु चरिउ २८,३२। पउमचरिउ २,५५,१८१। भविसयतकहा १०१।
९. णायकुमार चरिउ ३५, पउम चरिउ १।६३, पउमसिरी चरिउ २२।
१०. पउमचरिउ १।११६, १।१२०, १।१४६, महापुराण २।४४१।
११. पउमचरिउ २।१२२, महापुराण २।४०६, २।४०७, पउमसिरी चरिउ २६, णायकुमार चरिउ ८४, करकडुचरिउ ११, जसहर चरिउ २७।

पर उसका पर्यवसान प्रायः शान्तरस में ही मिलता है। इन काव्यो में शृंगार के दोनों स्वरूपों-संयोग और विप्रलंभ की अभिव्यक्ति पायी जाती है। अपभ्रंश काव्य-कथा में प्रेम के निम्नलिखित रूप मिलते हैं।[1]

१—विवाह के लिए प्रेम।
२—विवाह के बाद प्रेम।
३—असामाजिक प्रेम।
४—रोमेटिक प्रेम।
५—विषम प्रेम।

प्रेम के उपर्युक्त रूपों मे से रोमेण्टिक प्रेम का चित्रण सर्वाधिक मिलता है। इसका कारण यह है कि सामन्तवाद के उस युग मे बहुपत्नी प्रथा का प्रचार था और धर्म की महिमा बताने के लिए भी ऐसा किया जाता था।

अपभ्रंश कवि संयोग शृंगार की अपेक्षा विप्रलंभ शृंगार का वर्णन करते हुए अधिक देखे जाते हैं। अपभ्रंश के कवि कथा के अन्त मे वैराग्य का वर्णन करते हैं। इसके कारणो का उल्लेख करते हुए डा० देवेन्द्र कुमार जैन कहते हैं 'असल मे यह विरक्ति भी रति का एक रूप है, क्योकि शृंगार मे रति का आलम्बन दूसरा होता है और विरक्ति मे अपनी ही आत्मा। इसी तरह विप्रलंभ की व्यंजना में यह महत्वपूर्ण बात दिखाई देती है कि वियोगिनी स्त्रियां आंसू ही नही बहातीं, अपितु कठोरता से अपना कर्तव्य पालन भी करती हैं। कमला (भविसयत्तकहा) पद्मश्री (पउमसिरी चरिउ) इसके उदाहरण हैं। प्रेम वैषम्य के अनेक निदर्शन इस काव्य मे हैं। पर सावधानी या मार्मिकता से ये कवि उसके दुखद या अनिष्ट अन्त को बचा देते हैं।[1]

वियोग शृंगार के जो चार भेद—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण किये गये हैं उनके वर्णन स्थल-स्थल पर मिलते हैं। इन रसों के अतिरिक्त अन्य रसो का भी गौण रूप मे प्रयोग अपभ्रंश काव्यों मे दिखाई देता है।

अलंकार-योजना

अपभ्रंश काव्यो मे मुख्य रूप से उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, एकावली, व्यतिरेक, उल्लेख, अनन्वय, उदाहरण, निदर्शना, विरोधाभास, भ्रान्तिमान और संदेह अलंकारों का प्रयोग मिलता है। अलंकार रचना की दृष्टि से अपभ्रंश कवि भामह और दण्डी के अलकार सिद्धान्त का प्रायोगिक स्वरूप लेकर चलते हैं।

छंद-योजना

---

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्र कुमार जैन, पृ० २०४।

अपभ्रंश प्रबन्ध काव्य छन्द की दृष्टि से अधिक समृद्ध हैं। श्री अल्सफोर्ड ने अपभ्रंश छन्द के दो भेद किये हैं। गणप्रधान और मात्रा प्रधान। फिर उन्होंने मात्रा प्रधान छन्द को पाँच भागों मे विभाजित किया है। (१) चार पाद का लयात्मक छन्द, (२) दोहा आकार के छन्द, (३) केवल लय वाले छन्द, (४) मिश्रित छन्द, (५) घत्ता के आकार के छन्द।[2] प्रयोग की दृष्टि से अपभ्रंश छन्दो के तीन भेदो की कल्पना की जाती है, (१) मुक्तक रचनाओं में प्रयुक्त होने वाले छन्द, (२) कड़वक रचना में प्रयुक्त छन्द, (३) कड़वक के आदि अन्त मे प्रयुक्त छन्द, दोहा छन्द का प्रयोग अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यों मे बहुत कम हुआ है। पर मुक्तक काव्यो में इसका प्रयोग अधिक देखा जाता है।

अपभ्रंश छन्दो पर लोक भाषा के छन्दो का प्रचुर प्रभाव पडा है। प्रयोग भेद से अपभ्रंश छन्दों के धवल और मंगल नाम होते हैं। लौकिक महापुरुषो की प्रशस्ति करने वाले गीतो को धवल के नाम से अभिहित किया जाता था। आध्यात्मिक महापुरुषों की प्रशस्ति के लिए जिन गीतो का प्रयोग होता था उन्हें मंगल नाम दिया गया। अधिकाश अपभ्रंश चरित काव्य धवल मंगल गान ही हैं।[1] अपभ्रंश के कड़वक के मुख्य छन्द पद्धडिका, अडिल्ल, वदनक और पारणक हैं। इसके अतिरिक्त अपभ्रंश काव्य अनेक छन्दो से भरा पडा है जिनकी चर्चा अपभ्रंश के विद्वानो ने अपने ग्रन्थो मे की है। निष्कर्ष रूप मे केवल यही कहा जा सकता है कि छन्द की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य बडा समृद्ध है। अधिकाश हिन्दी छन्दो के मूल अपभ्रश काव्यो मे ढूंढ़े जा सकते हैं।

प्रकृति-चित्रण

अपभ्रंश काव्यो मे प्रकृति के यथातथ्य वर्णन बहुत कम उपलब्ध होते हैं। अपभ्रंश कवि मुख्य रूप से वन, उद्यान, ऋतु, पर्वत आदि का वर्णन करते हुए देखे जाते हैं। अलंकार भार से प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण सम्भव नही हो पाया है। प्रकृति चित्रणों मे प्राय: अलंकारो का उपयोग पाया जाता है। यहाँ पर प्रकृति चित्रण बहुधा रूपक और उत्प्रेक्षा शैली मे पाया जाता है। इसी प्रकार से प्रकृति के मानवीकृत रूप भी दिखाई देते हैं। प्रकृति के आरोपित चित्रण भी उपलब्ध होते हैं। कवि अपनी भावना को व्यक्त करने के लिए उपमान रूप मे ऐसी बातो को कहता है। बारहमासा और षड्‌ऋतु वर्णन का अपभ्रंश काव्यो मे अभाव सा दिखायी पड़ता है।

उपर्युक्त सभी दृष्टियो से करकंड चरिउ अपने पूर्ववर्ती अपभ्रंश चरित काव्यो और कथाकाव्यो से प्रभावित है। इतना होते हुए भी वस्तु व्यंजना, भाव व्यंजना और कलात्मक दृष्टि से जो सूक्ष्मता इस काव्य मे पायी जाती है वह दूसरे अपभ्रंश काव्यों में दुर्लभ है। बहुत सम्भव है कि किसी एक काव्य मे किसी एक प्रवृत्ति का सुन्दर चित्रण उपलब्ध हो पर समष्टि रूप में करकंडु चरिउ अपभ्रश चरित काव्यों तथा कथाकाव्यो की भावगत और शैलीगत विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है।

१. अपभ्रंश भाषा और साहित्य–डा० देवेन्द्र कुमार जैन, पृ० २०५।
२. अपभ्रंश स्टेडेन १९३७, पृ० ४६ --डा० देवेन्द्रकुमार जैन पृ० २३७ पर उद्धृत।
३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य। डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० २३८।

चौथा अध्याय

करकंड चरिउ का कथा-शिल्प

करकंड चरिउ का कथा-शिल्प

करकंड चरिउ एक रोमांटिक चरित काव्य है। इसके रचयिता मुनि कनकामर हैं। इन्होंने अपने को चन्द्रऋषि गोत्रीय कहा है। इनके गुरु मंगलदेव थे। ग्रन्थ के आरम्भ मे कवि ने मंगलदेव के चरणों की वन्दना की है। 'धर्म-रत्नाकर' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ उपलब्ध होता है जिसमें उसके रचयिता का नाम पंडित मंगल बताया गया है। करकड चरिउ के सम्पादक डॉ० हीरालाल जैन को धर्मरत्नाकर की दो प्रतिया मिली हैं। इनमे से प्रथम प्रति बलात्कार जैन मन्दिर, भंडार, कारंजा में तथा दूसरी प्रति शास्त्र भंडार दिगम्बर जैन मन्दिर पाटोदी जयपुर मे है। जयपुर वाली प्रति के आधार पर यह मालूम पडता है कि इस ग्रन्थ का रचनाकाल संवत् १६८० है। परन्तु कारंजा शास्त्र भंडार की प्रति मे उसका लेखन काल १६६७ मुद्रित है। काष्ठासंघ और नंदि-तट ग्राम का प्राचीनतम उल्लेख देवसेन कृत दर्शनसार (गाथा ३८) मे उपलब्ध होता है इसका उल्लेख करते हुए डॉ० हीरालाल जैन कहते हैं कि विक्रम संवत् के ७५३ वर्ष मे नन्दितट ग्राम मे काष्ठासंघ की स्थापना हुई।[1] यदि कनकामर के समय के आस-पास इस सघ के श्रीभूषण और उनके शिष्य मंगलदेव का वर्तमान रहना प्रमाणित हो जाय तो वे ही इस ग्रन्थ के रचयिता के गुरू माने जा सकते हैं। किन्तु इस समय तक 'धर्मरत्नाकर' की प्राप्त दो प्रतियों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध नही होते।

करकंड चरिउ मे उसके रचयिता व काल आदि के सम्बन्ध मे बहुत कुछ संकेत मिल जाता है। प्रस्तुत काव्य दस संधियों मे विभाजित है। प्रत्येक सन्धि के अन्त में ग्रन्थकर्ता का नाम उल्लिखित है। जैसा कि ऊपर उल्लिखित है कि कवि ब्राह्मण वंश के चन्द्रऋषि गोत्र में उत्पन्न हुआ था और वैराग्य धारण कर दिगम्बर साधु हो गया। भ्रमणोपरान्त वह आसाइय नगरी में पहुँचा और वही पर इसने ग्रन्थ की रचना की।[2]

करकंड चरिउ मे प्रशस्ति के अन्तर्गत तीन नरेशो के नाम का उल्लेख है—विज-यपाल, भूपाल और कर्ण। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के जीवन काल मे इन तीनों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रह चुका था। इन तीनों राजाओं का सम्बन्ध बुन्देलखंड प्रान्त या उसके आसपास के प्रदेश से बतलाया जाता है। डा० हीरालाल जैन ने तीन ऐसे

१—करकंड चरिउ—डा० हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ० १३।

२—करकंड चरिउ—डा० हीरालाल जैन, प्रस्तावना पृ० १०।

शिलालेखों का उल्लेख किया है जिनमें इन राजाओं के नाम अंकित हैं। प्रथम शिलालेख अपभ्रंश भाषा में है जिसमें इस बात का संकेत मिलता है कि विजयपाल विश्वामित्र गोत्र के क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए थे जिनके पुत्र का नाम भुवनपाल था। दूसरे शिलालेख में जो बांदा जिले के चंदेलों की प्राचीन राजधानी कालिंजर में प्राप्त हुआ था, विजयपाल के पुत्र भूमिपाल का उल्लेख मिलता है जो दक्षिण दिशा और कर्ण नरेश पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख था। तीसरे शिलालेख में जो जबलपुर के तीवर नामक स्थान में प्राप्त हुआ है, भूमिपाल के उत्पन्न होने के सम्बन्ध में संकेत है। उक्त लेखों मे किसी सन संवत् का उल्लेख नही है, पर उनकी लिखावट के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे ग्यारहवी या बारहवीं शताब्दी के रहे होंगे।[१] डा० हीरालाल जैन ने यह अनुमान लगाया है कि उपर्युक्त लेखो के विजयपाल और उनके पुत्र भुवनपाल या भूमिपाल प्रस्तुत ग्रंथ के विजयपाल और भूपाल ही हैं। इस ग्रन्थ में उल्लिखित कर्ण का सम्बन्ध शिलालेख में उल्लेख किये गये कर्ण से ही है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर इन राजाओं का सम्बन्ध बुन्देलखंड के चन्देल वंश से हो सकता है। विजयपाल का पुत्र देवेन्द्रवर्मा था जो सन् १०५० ई० में सिंहासन पर आसीन था। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पूर्व ही विजयपाल का राज्य समाप्त हो चुका था। कलचुरि कर्ण देवेन्द्रवर्मा के छोटे भाई कीर्तिवर्मा को पराजित कर सन् १०५१ ई० मे बुन्देलखंड को अपने राज्य मे मिला लिया था। इसके पश्चात् कीर्तिवर्मा ने कर्णदेव को पराजित किया। विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि विजयपाल, कीर्तिवर्मा (भुवनपाल) और कर्ण इन तीनो राजाओं का १०४०और १०५१ के बीच वर्तमान रहना सिद्ध होता है। इसी अधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि करकंड चरिउ का रचनाकाल ११ वी शती का मध्य भाग रहा होगा। इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों मे काल निर्देश सन् १५०२ मिलता है।

ग्रन्थ का कथानक

प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ पद्धडिया शैली में रचित प्रबन्धकाव्य है। जैन धर्म को दृष्टि मे रखते हुए कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है पर कवि का लक्ष्य जैन धर्म के गहन तत्वो का विवेचन करना नही था।[२] प्रस्तुत ग्रन्थ मे जैन धर्म के सदाचार से संबन्धित तत्वो-उपवास, व्रत, देशाटन आदि का उल्लेख मिलता है। गन्थ की रचना सर्वसाधारण के लिये की गई जान पड़ती है। धर्मों का खंडन-मंडन तथा धार्मिक संकीर्णता के वर्णन इसमे नही होते। प्रस्तुत ग्रन्थ में महाराज करकंडु की कथा मुख्य है और इसके अति-

---

१—वही, पृ० ११।

२—'अपभ्रंश साहित्य'—डा० हरिवंश कोछड़ पृ० १८१।

रिक्त नौ अवान्तर कथाएं भी हैं। मुख्य कथा संक्षेप में इस प्रकार है—अंग देश की चम्पा नगरी में राजा धाड़ीवाहन राज्य करता था। कुसुमपुर की पद्मावती नामक एक युवती से उसका प्रेम हो गया था। पद्मावती कौशाम्बी के राजा वसुपाल की पुत्री थी। जन्म के समय अपशकुन के भय से उसके पिता ने उसे यमुना नदी मे बहा दिया था। उसका पालन-पोषण कुसुमपुर के एक माली ने किया था। राजा की कन्या समझ कर धाड़ीवाहन ने उससे विवाह किया और चम्पा नगरी ले गया। समयोपरान्त वह गर्भवती हुई और राजा ने यह समझा कि इससे एक सुयोग्य पुत्र उत्पन्न होगा। गर्भवती रानी की यह इच्छा हुई कि वर्षा काल मे नरवेश धारण कर अपने पति के साथ हाथी पर सवार होकर नगर का भ्रमण करेगी। विद्या के बल से राजा ने ऐसी व्यवस्था कर दी। हाथी राजा और रानी को लेकर जंगल की ओर भागने लगा। रानी के अनुरोध से राजा को एक वृक्ष की डाली पकड़कर अपने प्राण बचाने पड़े। हाथी भागता हुआ एक सरोवर मे घुसा। रानी पद्मावती उसमें कूद पड़ी और वहाँ से निकलने के पश्चात् उसने बन में प्रवेश किया। बन सूखा हुआ था और उसके प्रवेश करते ही हरा-भरा हो गया। समाचार पाते ही बनपाल वहाँ उपस्थित हुआ और उसे वह अपने घर ले गया पर उसकी पत्नी उसके सौन्दर्य से ईर्ष्या करती थी। पद्मावती को वहां से निकल जाना पड़ा और श्मसान मे आकर उसने एक पुत्र को जन्म दिया।

श्मशान के पास चांडाल के रूप में एक विद्याधर रहता था। उसने बच्चे को अपने पास रखने के लिये रानी से आज्ञा मांगी। रानी ने इसका विरोध किया पर उसने कहा कि वास्तव मे वह विद्याधर था जो एक मुनि के शाप से मातंग हो गया। शाप के प्रतिकार के लिये मुनि ने उससे कहा था कि दंतिपुर के श्मशान में जब करकंडु का जन्म हो तब उस बच्चे को ले जाकर उसका पालन-पोषण करना। जब वह बड़ा होकर उस नगर का राजा हो जायगा तब वह मातंग पुनः विद्याधर का रूप प्राप्त कर लेगा। रानी की बाद में अनुमति पाकर मातंग ने अच्छी तरह उसका पालन पोषण किया। युवावस्था के प्राप्त होने पर जब दंतिपुर के पुत्रहीन राजा का गोलोकवास हो गया तो राजमंत्रियो ने यह व्यवस्था की कि एक मंगल कलश हाथी को दिया जाय और जिस व्यक्ति का वह अभिषेक कर दे उसे ही राजगद्दी पर बैठने का अवसर दिया जाय। संयोगवश श्मशान में जाकर हाथी ने करकंडु के ऊपर मंगल कलश उड़ेल दिया परन्तु चांडाल पुत्र समझ कर प्रजा बड़े ही संशय मे पड़ गयी। इसी समय मातंग को अपनी विद्याधरी प्राप्त हो गयी और उसने सभी रहस्यों को लोगों के सामने उद्‌घाटित किया और वह राजगद्दी का अधिकारी बना।

समयोपरान्त करकंडु का विवाह गिरि नगर की राजकुमारी मदनावली से सम्पन्न हुआ। एक बार चम्पा नगरी के राजा द्वारा भेजा हुआ एक दूत करकंडु के पास

आया। उसने उससे चंपा नरेश की अधीनता स्वीकार करने की बात कही। वह क्रोध से लाल हो गया और तत्काल ही सेना सहित चम्पा नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया। पिता और पुत्र दोनो मे घोर युद्ध हुआ। अन्त मे युद्धस्थल पर पद्मावती उपस्थित हुई और पिता-पुत्र का परिचय कराते हुए युद्ध को प्रेम मिलन मे परिणत कर दिया। धाडीवाहन ने अपने राज्य को अपने पुत्र को सौप कर वैराग्य धारण कर लिया।

करकंडु ने अपने राज्य का पूर्ण विस्तार किया। द्रविड़ देश के चोल, चेर और पांड्य नरेश के अतिरिक्त प्रायः सभी नरेश उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। वे जिन भगवान को छोडकर किसी के समक्ष अपना मस्तक झुकाने को तैयार न थे। करकंडु ने इन राजाओ को परास्त करने की प्रतिज्ञा की। उसने शीघ्र ही उन पर चढाई कर दी। चढाई करते समय बीच पथ मे उसे तेरापुर नगर मिला। वहाँ के राजा शिव से यह सूचना मिली कि इस नगर के पास ही एक पहाड़ी के चढ़ाव पर एक गुफा है और पहाडी के ऊपर एक वामी है। उस वामी की पूजा नित्यप्रति एक हाथी किया करता था। पहाडी पर स्थित गुफा मे जाकर शिव नरेश के साथ राजा ने श्री पार्श्वनाथ भगवान का दर्शन किया। साथी राजा ने तालाब से कमल लाकर वामी की पूजा करते हुए उस हाथी को देखा। करकंडु ने उस वामी को खुदवाया जहां उसके अनुमान के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति मिली। मूर्ति को गुफा मे स्थापित किया गया। इसके पश्चात् एक बार पुन. करकंडु ने गुफा की पुरानी मूर्ति की ओर दृष्टिपात किया। एक अनुभवी शिल्पकार से पूछने पर यह पता चला कि गुफा बनवाते समय वहाँ एक जलवाहिनी प्रस्रवित हो उठी थी और उसे रोकने के लिये एक गाठ दी गई थी। करकंडु अपनी उत्सुकता को रोक न सका। वह जलवाहिनी के दर्शन के लिये लालायित था। अतः उसने उस गांठ को तोडवा डाला। देखते ही देखते जल की धारा उमड़ पड़ी। करकंडु अत्यन्त दुखित हुआ। तत्क्षण एक विद्याधर ने प्रकट होकर जलधारा को रोकने का आश्वासन दिया और गुफा के ऐतिहासिक स्वरूप से अवगत कराया।

विद्याधर ने कहना आरम्भ किया कि नील और महानील नाम के दो विद्याधर भाइयो ने एक मुनि के उपदेश से जैन धर्म मे दीक्षा ली थी और उन्ही के द्वारा उस गुफा मंदिर का निर्माण कराया गया था। इसी समय दो विद्याधर सहोदरो को लंका की यात्रा करते समय मलय देश के पूदी पर्वत पर रावण के वंशज द्वारा निर्मित जिन मंदिर मे एक भव्य जिन मूर्ति मिली। उन्हांने उस मूर्ति को उठा लिया और तेरापुर की पहाडी पर पहुँच कर वही उस मूर्ति को रखने के पश्चात् वे जिन मंदिर मे गये। जब वे लौटकर आये और मूर्ति को उठाने लगे तो यह उनके सामर्थ्य के बाहर हो गया और वह मूर्ति न उठ सकी। एक मुनि के वचन का पालन करते हुए उन्होने उस मूर्ति

को वहीं छोड़ दिया और वैरागी हो गये। इनमें से प्रथम भाई शुद्धात्मा था जिसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। और दूसरा कपटी था जो मरणोपरान्त हाथी हुआ। स्वर्गवासी भाई अपने भ्राता की यह दुर्गति न सहन कर सका और उसे पूर्व जन्म की बातों का स्मरण कराया जिससे वह बामी की मूर्ति का पूजन करने लगा। विद्याधर के परामर्श से करकंडु ने दो अन्य गुफाओ का निर्माण कराया। इसके बाद हाथी का रूप धारण कर एक विद्याधर ने मदनावली का हरण कर लिया। शोक मे विह्वल हुए करकंडु को एक विद्याधर ने पुर्नमिलन का आश्वासन दिया और नरवाहन दत्त का व्याख्यान सुनाया।

करकंडु ने सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसने वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह किया। उसको साथ लेकर जब वे समुद्र मार्ग से लौट रहे थे तब एक विशालकाय मच्छ ने उनकी नौका पर आक्रमण किया। समुद्र मे कूदकर करकंडु ने उस मच्छ को मार डाला पर पुन. वह नौका पर न आ सका। एक विद्याधर पुत्री ने उसका हरण कर लिया। रतिवेगा बहुत दुखित हुई। मंत्री बड़ी शीघ्रता के साथ नाव किनारे पर ले आया। रतिवेगा ने पूजा करना प्रारम्भ किया और पद्मावती देवी ने प्रकट होकर पुर्नमिलन का आश्वासन दिया।

देवी पद्मावती ने रतिवेगा को अरिदमन की कथा सुनायी। रतिवेगा पूजा पाठ करती हुई वही समय व्यतीत करने लगी। करकंडु का हरण करने के पश्चात् विद्याधरी ने अपने घर ले जाकर अपने पिता की आज्ञा से उसे अपना पति बना लिया। कुछ समय पश्चात् उसी विद्याधरी के साथ करकंडु रतिवेगा से पुन. मिला और पूरी तैयारी के साथ करकंडु ने चोल, चेर और पांड्य नरेशो के ऊपर धावा बोल दिया और उन्हें पराजित कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार करकंडु ने इन राजाओं के मस्तक पर पैर रखा पर उनके मुकुटो पर उसे जिन प्रतिमायें दिखाई दी। भारी पश्चाताप के पश्चात् वह उनके राज्य को लौटाना चाहता था पर उन्होने इसको स्वीकार न किया। वहाँ से लौटते हुए तेरापुर मे मदनावली को हरण करने वाले विद्याधर ने पश्चाताप करते हुए उसे करकंडु को लौटा दिया। अपनी तीनो पत्नियो के साथ वह अपनी नगरी चम्पा को लौटा दिया। अपनी तीनो पत्नियो के साथ वह अपनी नगरी चम्पा को लौटा और वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगा।

एक बार चम्पा नगरी के उपवन मे शीलगुप्त मुनिराज का आगमन हुआ। भक्ति के साथ मुनि के पास पहुँच कर करकंडु ने उनके धर्मोपदेशों को सुना जिससे उसके चित्त मे संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई। करकंडु ने मुनिराज से तीन प्रश्न पूछे। (१) उनके सुन्दर शरीर के होते हुए भी उनके हाथ में कंडू का क्या कारण है। (२) अत्यन्त स्नेह होने पर भी माता-पिता का वियोग क्यों? (३) उनकी प्रिय पत्नी

मदनावली का अपहरण उस दुष्ट विद्याधर ने क्यों किया ? मुनिराज शीलगुप्त ने उत्तर में यह कहा—पूर्व जन्म में करकंडु एक सेठ के यहाँ ग्वाला था और उसका नाम धनदत्त था। भैंस चराते समय उसने एक सरोवर से एक अत्यन्त सुन्दर कमल तोड़ लिया उसी समय एक देव ने प्रकट होकर कहा कि इस कमल को उसे चढ़ाना जो जगत में सबसे बड़ा हो और बड़े से बड़े पुरुष जिसकी पूजा करते हो। वह अपने सेठ के पास गया। उसने अपने राजा को बड़ा बताते हुए फूल चढ़ाने को कहा। राजा ने मुनिराज को बड़ा बताया और मुनिराज ने भगवान जिनेन्द्र को। अन्त में उसने उस फूल से भगवान की पूजा की जिसके कारण उसे अनुपम शरीर और अपार वैभव की उपलब्धि हुई। उसने उस कमल को कीचड़ से सने हुए हाथ से चढ़ाया था, अतः उसके हाथ में कंडु (खुजली) हुई।

दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनिराज ने कहा पद्मावती पूर्व जन्म में श्रावस्ती नगर की एक सेठानी थी। वह दुराचारिणी थी और उसका सम्बन्ध एक ब्राह्मण युवक के साथ था। पत्नी से विरक्त होकर पति ने तपस्या आरम्भ की और मरणोपरान्त चम्पा नगरी का धाडीवाहन राजा हुआ। वह ब्राह्मण युवक मरने के पश्चात् हाथी हुआ। सेठानी मरने के पश्चात् पुनः स्त्री योनि में पैदा हुई और उसे पति वियोग का दुःख भोगना पड़ा। अपनी एक सुपुत्री के संसर्ग से अन्त में उसने धर्मपूर्वक भगवान का ध्यान किया और मरकर वह कौशाम्बी नरेश वसुपाल की राजकन्या हुई। अशुभ लग्न में उत्पन्न होने के कारण उसे नदी की धारा में प्रवाहित कर दिया गया और पूर्व जन्म के कर्म बंधन के अनुसार राजा धाडीवाहन ने उसका पाणिग्रहण किया। उस हाथी ने उसका अपहरण किया और वही करकंडु की माता हुई।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में मुनिराज ने कहा कि पिछले जन्म में करकंडु एक पिंजर बद्ध तोते से बहुत प्यार करते थे। एक दिन जब एक सर्प ने उस तोते पर आक्रमण किया तो करकंडु ने उसकी रक्षा करने के उपरान्त उसे नवकार मंत्र दिया। मरते समय सर्प ने भी उस मन्त्र को ग्रहण कर लिया, जिसके फलस्वरूप वह विद्याधर हुआ और पूर्वजन्म के बैर भाव के कारण उसने मदनावली का अपहरण किया।

सम्पूर्ण कथा सुनने के पश्चात् करकंडु का वैराग्यभाव चरम सीमा पर पहुँच गया और अपने पुत्र वसुपाल को राज्य भार सौंप कर वह वैरागी हो गया। घोर तपस्या के पश्चात् करकंडु ने मोक्ष प्राप्त किया।

करकंडु कथा की पूर्व परम्परा

बौद्ध साहित्य के कुम्भकार (क्र० ४०८) के अनुसार करंडु कलिंग देश के दंतिपुर नगर के राजा थे और ये वाराणसी में राज्य करने वाले राजा ब्रह्मदत्त के समकालीन

थे[1]। एक बार ये अपने परिवार के सहित हाथी पर बैठ कर उद्यान की ओर जा रहे थे। वहाँ हाथी पर बैठे ही बैठे उन्होंने आम्रफल के मधुर गुच्छों को तोड़ लिया और तत्पश्चात् उद्यान की एक शिला पर बैठकर उन फलों को अपने अन्य सम्बन्धी जनों में वितरित किया। तत्पश्चात् अन्य लोगों ने उस वृक्ष के समस्त फलों को तोड़कर खा लिया। शाम को लौटते समय राजा को उस आम्र वृक्ष की शोभा अत्यन्त हीन दिखाई दी और उसी के समीप एक दूसरे हरे-भरे वृक्ष मे उन्हें कोई परिवर्तन नही दिखाई दिया। उन्होने गृहस्थ धर्म की तुलना उस फलित वृक्ष से की और वैराग्य की तुलना उस फलहीन वृक्ष से की जो सदा समान बना रहता है। उसके हानि की कोई आशंका नहीं रहती। इस प्रकार के विचार आने के पश्चात् उन्होंने अपने राज्य का परित्याग कर दिया और श्रवण वेश धारण कर हिमालय की नन्दमूल गुफा की ओर प्रस्थान किया। जातक की कथा अत्यन्त संक्षेप में है। करंडु के पाठान्तर करंडको, करकंडु व करकंडको भी मिलते हैं। जातक की कथा और प्रस्तुत ग्रन्थ की कथा मे काफी साम्य है। नाम को समानता के अतिरिक्त राज्य से विरक्ति हो जाने के बाद वैराग्य धारण करने की कथा भी समान ही है किन्तु कथा की अन्य बातों मे पर्याप्त विषमता पायी जाती है।

बौद्ध जातक की उक्त कथा की परम्परा जैन परम्परा के प्राचीनतम रूपान्तर 'उत्तराध्ययन' के अनुसार करकंडु कलिंग देश के राजा थे और अपने पुत्र को राज्य भार सौंप कर उन्होंने जैन धर्म में दीक्षा ग्रहण की थी। 'उत्तराध्ययन' के टीकाकार 'देवेन्द्र गणी' के अनुसार करकंडु की कथा इस प्रकार है—

दधिवाहन चम्पा नगरी के राजा थे। उनको रानी चेटक राजा की पुत्री पद्मावती थी। गर्भवती होने पर राजा के साथ हाथी पर बैठकर उसकी इच्छा घूमने की हुई। वर्षाकाल के आरम्भ में उसको इच्छा की पूर्ति के लिए राजा ने ऐसा ही किया पर हाथी वन की ओर भाग निकला। वन मे प्रविष्ट होने पर राजा ने रानी से बटवृक्ष की शाखा से लिपट कर प्राण रक्षा का परामर्श दिया। राजा तो ऐसा करने में सक्षम हुआ पर रानी असमर्थ हो गई। राजा उदास होकर अपनी नगरी को लौट आया। हाथी एक तालाब मे घुस पड़ा। अब वह वहाँ क्रीड़ा कर रहा था, रानी किसी तरह उतर कर तालाब से बाहर आयी। वन में उसे दिशाओं का भी ज्ञान न रहा और वह एक दिशा की ओर चली। रास्ते में उसे एक तपस्वी मिला, जिसने उसे वनफलो का आहार कराने के पश्चात् दन्तपुर नगर के पास पहुँचा दिया। नगर में उसने तपस्विनियो के

१—करकंड चरिउ—डा० हीरालाल जैन, पृ० १६।

एक आश्रम मे जाकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और अपने गर्भवती होने का रहस्य गुप्त रखा। छिपे रूप से शिशु को जन्म दिया और उसे नाम की मुद्रा लगाकर कम्बल मे लपेट कर श्मशान मे छोड आयी। वह पुत्र श्मशान के रक्षक को प्राप्त हुआ जिसे उसने अपनी स्त्री को दे दिया। पुत्र का नाम अपकीर्ण रक्खा गया। जिन तपस्विनियों को गर्भ की बात का पता था उनसे पद्मावती ने यह कह दिया कि मृतक पुत्र उत्पन्न हुआ था, इसलिये उसे फेंक दिया। बालक धीरे-धीरे बडा होने लगा और उसके हाथ मे खुजली हो गई।

कुछ और बडा होने पर बालक श्मशान की रखवाली करने लगा। एक बार वहाँ दो मुनियो का आगमन हुआ। वहाँ एक बाँस के दण्ड को देखकर एक मुनि ने कहा कि इस बाँस के चार अंगुल और बढ जाने पर इसका ग्रहणकर्ता राजा बनेगा। इस बात को करकंडु और एक ब्राह्मण ने सुन लिया। ब्राह्मण ने भूमि को चार अंगुल नीचे तक खोदकर बाँस को काट लिया, पर बालक ने उसे छीन लिया। ब्राह्मण ने जब न्यायालय मे यह बात उठायी तो न्यायाधीश ने यह निर्णय दिया कि राजा बनने पर ब्राह्मण उसे एक ग्राम दे। ब्राह्मण ने अन्य ब्राह्मणो की सहायता से करकंडु को मारकर उसका बाँस छीनने का विचार किया। इस बात को सुनकर श्मशान का रक्षक (मातंग) अपनी स्त्री और करकंडु को लेकर कंचनपुर भाग गया। वहाँ का राजा नि सन्तान मर गया। अश्व छोडने पर नगर के बाहर सोते हुए करकंडु की वह प्रदक्षिणा करने लगा। जगने पर वह घोडे पर चढकर नगर मे पहुँचा। पर ब्राह्मणो ने उसे मातंग कहकर नगर मे प्रवेश करने से रोका। करकंडु ने उस बाँस के डडे को हाथ मे लिया जो जलने लगा। ब्राह्मण डर गये। उसने वाटधानक मातंगो को ब्राह्मण बना दिया। इन लोगो ने 'अपकीर्णक' के स्थान पर उस श्मशान मे जन्म लिये बालक का- जो अब राजा बन चुका था नाम करकंडु रक्खा। समय पाकर ब्राह्मण ने एक ग्राम की माग की। साथ ही यह इच्छा व्यक्त की कि उसको चम्पा प्रदेश का कोई ग्राम मिले, क्योकि वह वही के एक ग्राम का निवासी है। करकंडु की इस आशय का एक पत्र चम्पा नगरी के राजा दधिवाहन के पास लिखा और इस बात का जिक्र किया कि उस ग्राम के बदले उसे कोई अन्य ग्राम या नगर जो वह पसन्द करे, प्रदान किया जायगा। दधिवाहन ने रुष्ट होकर करकंडु को अपशब्द कहे। दूत द्वारा मालूम होने पर उसने चम्पा नगरी पर चढ़ाई कर दी। जब पद्मावती को ये सारे समाचार मालूम हुए तो वहाँ पहुँचकर उसने सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर पिता-पुत्र का सम्मिलन कराया। दधिवाहन ने दोनों राज्यों का भार उसे सौपकर प्रव्रज्या धारण कर ली।

करकंडु एक महान् शासक बना। उसे गोकुल बड़ा प्रिय था और उसमे एक गाय के बछड़े के प्रति उसे अपार स्नेह हो गया, जिसकी माँ का दोहन उसकी आज्ञा के अनुसार बन्द कर दिया गया और अन्य गायों के भी दूध उसे पीने को मिलते। प्रथम तो वह एक बलिष्ट सांड हुआ पर पश्चात् अति जीर्णकाय होकर कष्ट झेलने लगा। इसे देखकर करकंडु राजा को विरक्ति हो गई और उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

यह कथा अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। जहाँ बौद्ध जातक मे मुख्य रूप से करकंडु का हाथी पर बैठकर उद्यान मे घूमना, फले हुए आम्र वृक्ष से फलो को तोडना और अन्य लोगों के द्वारा वृक्ष को फलहीन बना देना तथा अन्त मे उसके वैराग्य का वर्णन है, वही उत्तराध्ययन की टीका में करकंडु के माता-पिता का दोहला ओर उनके हाथी द्वारा हरण से लेकर श्मशान में करकंडु का जन्म और उसके राज्यारोहण का सविस्तार वर्णन है। इसके अनुसार करकंडु के विरक्ति का निमित्त वृषभ है, जबकि बौद्ध जातक मे आम्रवृक्ष[1]।

'करकंडु चरिउ' की कथा की पूर्व कथा से तुलना

'करकंडु चरिउ' की कथा उक्त दोनों कथाओं से विशिष्ट है। जहाँ तक माता-पिता के नाम का प्रश्न है, उनमे काफी साम्य है, पर उनके परिचय मे पर्याप्त वैषम्य परिलक्षित होता है। उत्तराध्ययन की टीका के अनुसार[2] पद्मावती चेटकराज की कन्या है, जिसका विवाह दधिवाहन के साथ परम्परागत नियमो के आधार पर हुआ, पर 'करकंडु चरिउ' मे वर्णित कथा के अनुसार वह कौशाम्बी के राजा वसुपाल की पुत्री है, जो अपशकुन के कारण यमुना नदी की धारा मे प्रवाहित कर दी गई थी और उसका पालन-पोषण पाटलिपुत्र के एक माली द्वारा हुआ था। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो राजा ने उससे विवाह किया था। रानी की 'दोहला' वाली कथा दोनो स्थानो पर समान है, अन्तर सिर्फ इतना ही है कि हाथी के भागते समय बटवृक्ष की डाल पकड कर राजा को आत्मरक्षा करने के लिए रानी ने परामर्श दिया था, राजा ने इस सम्बन्ध मे कोई विचार प्रगट नही किया था, जबकि 'करकंडु चरिउ' की कथा में यह परामर्श राजा की ओर से था रानी ऐसा करने मे अपने को अक्षम पायी। प्रस्तुत कथा के अनुसार तालाब मे उतरने के पश्चात् पद्मावती की भेंट एक वनमाली से होती है, वह उसे अपने घर ले जाता है, पर मालिन की ईर्ष्या के कारण उसे घर से बाहर निकल जाना पडता है। यह अंश नवीन है। श्मशान मे पुत्र-प्रसव के उपरान्त उसे एक मातंग को

१—करकंड चरिउ (प्रस्तावना)— डा० हीरालाल जैन, पृ० १६।
२—वही।

सौंप देना पड़ता है। वह मातंग एक विद्याधर है जो शापवश चाण्डाल हुआ है और करकंडु की राज्य प्राप्ति के पश्चात् वह पुनः शाप मुक्त होगा—अतः वह करकंडु को नाना-विद्याओं से परिचय कराता है। पद्मावती मातंग को अपने पुत्र को सौंपने के पश्चात् ही साध्वी आश्रम में जाती है। इस प्रकार दोनों कथाओं में काफी विषमता दिखाई देती है।

जहाँ उत्तराध्ययन की टीका में अद्भुत गुणों वाले मुनि कथित एक ही बाँसदण्ड का कथन है, वहीं प्रस्तुत कथा में वे संख्या में तीन हैं—जो ध्वज, अंकुश और छत्र दंड का स्वरूप धारण करने की क्षमता रखते हैं। उत्तराध्ययन की टीका में बाँस-दंड को ब्राह्मण युवक के हाथ से करकंडु द्वारा छीनने का वर्णन है और बात न्यायालय तक पहुँचती है, जिसके अनुसार करकंडु उस ब्राह्मण को राज्य प्राप्ति के पश्चात् एक ग्राम-दान देने के लिए वचन-बद्ध होता है। प्रस्तुत कथा के अनुसार इस द्विज ने राज्य प्राप्ति के पश्चात् सीधे करकंडु से मन्त्री बनने का वचन ले लेता है। राज्य प्राप्ति निमित्त मातंग-परिवार को कंचनपुर नहीं भागना पड़ा था, अपितु दंतिपुर के पुत्रहीन राजा की मृत्यु के पश्चात् हाथी द्वारा मंगल कलश के उड़ेलने पर उसको राज्य की प्राप्ति हुई थी। उत्तराध्ययन की टीका में वर्णित कथा की भाँति ब्राह्मण-युवक को उसकी इच्छानुसार ग्राम दिलाने के लिए चम्पा नरेश को पत्र नहीं लिखना पड़ा था, अपितु उसने (चम्पा नरेश ने) स्वयं करकंडु के पास अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए एक दूत भेजा था जिससे रुष्ट होकर उसने चम्पा नगरी पर चढ़ाई की थी। पर दोनों कथाओं में पद्मावती द्वारा पिता-पुत्र में मेल कराने की कथा में समानता है। साथ ही पुत्र को राज्य भार सौंप कर प्रव्रज्या ग्रहण करने वाली बात भी प्रायः समान ही है। इसके अतिरिक्त करकंडु की दक्षिण भारत की विजय-यात्रा का वृत्तान्त भी सर्वथा नवीन ही है।

अवान्तर कथाएं

मुख्य कथा के साथ-साथ करकंडु चरिउ में नौ छोटी बड़ी कथाएं भी सम्मिलित हैं जो मूल कथा को गति प्रदान करने में काफी सहायता प्रदान करती हैं। प्रथम कथा में मंत्र शक्ति के आधार पर एक राजपुत्री की रक्षा का वर्णन है।[१] उसको एक राक्षस हर ले गया था बहुत समय पश्चात् कन्नौज के एक ब्राह्मण और एक वैश्य ने मंत्र शक्ति के द्वारा उस राक्षस से उसका उद्धार किया था।

१—करकंड चरिउ (२, १०–१२)।

दूसरी कथा में धन कमाने के इच्छुक दो यात्रियों के एक राक्षस द्वारा पकड़े जाने पर मार्ग में मिले एक ज्ञानी पुरुष के द्वारा उनकी रक्षा का वर्णन है।[१] तीसरी कथा से इस बात की शिक्षा मिलती है कि दुष्ट संगति का फल बुरा होता है।[२] एक राजा ने एक चालाक सेठ से यह कहा कि यदि तुम बिना ओठ हिले कोई गाथा पढ दो तो तुम्हें एक जागीर प्रदान की जायगी। सेठ ने इस प्रकार की गाथा पढ़ दी, राजा को बड़े कष्ट के साथ उसे एक जागीर देनी पडी। सेठ एक चेटी से प्रेम करता था। चेटी ने एक बार यह इच्छा व्यक्त की कि वह राजा के मोर का मास खायेगी, उसकी इच्छा की पूर्ति के लिये चतुर सेठ ने मोर को पकड़ कर छिपा दिया और किसी दूसरे जीव का मांस लाकर चेटी को दिया। राजा ने अपने प्रिय मोर की खोज करवायी और चेटी द्वारा यह मालूम होने पर कि उसके कहने पर सेठ ने मोर को मार डाला है, सेठ को फाँसी की सजा दी गई। तब सेठ ने उस मोर को राजा के सामने प्रस्तुत किया और उस नीच राजा और कृतघ्नी चेटी से अपनी प्राणी रक्षा की। इसके विपरीत चौथी कथा का सम्बन्ध सत्संगति के सुपरिणाम से है।[३] एक बार एक राजा शिकार खेलने जगल मे गया, वहा भ्रमण करते हुये वह भूख और प्यास से क्षुब्ध हो उठा। थोडी देर मे एक बनिये से उसकी भेंट हो गयी जिसने कुछ फल खिलाकर तथा पानी पिलाकर उसे तृप्त किया। राजधानी वापस आने पर उस बनिये के उपकार के फलस्वरूप उस राजा ने उसे अपना मंत्री बना लिया। बनिया एक वेश्या से प्रेम करता था। एक बार उसने राजकुमार के आभूषण ले जाकर उस वेश्या को प्रदान किया और राजकुमार को छिपा दिया। वेश्या को उस बनिये ने यह सूचना दी कि मैं इन आभूषणो को राजकुमार को मारकर ला रहा हूँ। हिताकाक्षिणी उस वेश्या ने उससे इस बात को छिपाने का आग्रह किया। राजकुमार की खोज आरम्भ हुयी और किसी के द्वारा राजा को यह सूचना मिली कि उसके वणिक मंत्री ने उसको मार डाला है। राजा ने मंत्री को बुलाया और कहा कि तुमने मुझे तीन फल दिये थे, उनमें से एक का ऋण चुक गया, अत. मैं बहुत प्रसन्न हूँ। शेष दो फलों का ऋण अभी बाकी है। यह सुनकर मंत्री ने राजकुमार को राजा के सामने प्रस्तुत किया और ये सभी प्रेमपूर्वक रहने लगे।

पाँचवीं कथा इस बात को सिद्ध करती है कि पति पत्नी के वियोग के पश्चात् उनका पुन: संयोग होता है।[४] जब करकंडु मदनावली के हरण से व्याकुल था तो उसे सान्त्वना

१—वही, (२,१३)।
२—वही, (२, १४–१५)।
३—वही, (२,१५–१८)।
४—करकंड चरिउ (६, १०–११)।

प्रदान करने के लिए एक विद्याधर ने यह कथा सुनाई थी। कथा इस प्रकार है– 'वत्स देश मे कौशाम्बी नगरी के राजा वत्सराज के पुत्र नरवाहन दत्त थे। प्रभूत गुण सम्पन्न अपने सुयोग्य पुत्र को पिता ने राज्य भार सौप कर प्रव्रज्या धारण की थी। नरवाहन दत्त की रानी मदन मंजूषा थी। एक बार हंस रथ नामक एक विद्याधर ने उसका अपहरण कर लिया। राजा वियोग से विह्वल हो उठा और आत्महत्या के विचार से निकट के एक वन मे गया, जहाँ उसकी भेट एक ऐसी विद्याधरी से हुई जिसका प्रेमी विद्याधर एक ऋषि कन्या के शाप से सुआ के रूप मे परिणत हो गया था। उस ऋषि कन्या ने विद्याधरी के प्रति दया दिखाते हुए उससे यह कहा था कि यह सुआ शाप विमुक्त होकर विद्याधर का रूप उस समय ग्रहण करेगा जब राजा नरवाहन दत्त का पाणिग्रहण रतिविभ्रमा नामक विद्याधर पुत्री से हो जायेगा। थोडी देर मे रति विभ्रमा का चित्रपट लिये हुए लीलावती नामक एक विद्याधरी वहा उपस्थित हुई। उस विद्याधरी के साथ नरवाहन विजयार्ध पर्वत पर गया, जहा उसकी भेंट उसकी पत्नी से हुई जिसका हरण-कर्ता रतिविभ्रमा का पिता था। नरवाहन ने रतिविभ्रमा तथा उसकी अनेक सहेलियो और अन्य पाच सौ विद्याधर कुमारियो के साथ विवाह किया। कालान्तर मे वह समस्त विद्याधरो का अधिनायक बन बैठा।

छठी अवान्तर कथा का सम्बन्ध भी नरवाहनदत्त की कथा से है।[१] पिता की मृत्यु से नरवाहन दत्त अत्यन्त दुखित था, उसी समय उसको (राजा को) संबोधित करते हुए एक महामुनि कहते हैं– माधव और मधुसूदन दो भाई थे। वे एक दूसरे से ईर्ष्या करते थे। भाग्य चक्र के परिणामस्वरूप माधव दरिद्र हो गया। भोजन वस्त्र के लिये उसे अनेक कष्ट सहने पडते थे। पत्नी के बहुत समझाने बुझाने पर वह मधुसूदन की शरण मे गया। भाई ने उसे बडे प्रेम के साथ रखा। पर माधव ईर्ष्या की आग मे जलता ही रहा। उसने यह निश्चय किया कि मैं मरणोपरान्त मधुसूदन के पुत्र के रूप मे उत्पन्न होऊँ और उसके हृदय मे प्रेम की वृद्धि करने के उपरान्त उसे दुखित करने के लिए मर जाऊँ। अतः प्रयाग मे भागकर अनशन के द्वारा उसने अपना प्राणान्त कर दिया और मरणोपरान्त वह मधुसूदन का पुत्र हुआ और कुछ काल के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई। मधुसूदन पुत्र शोक मे विह्वल होकर मरने के लिये तैयार हो गया। उसी समय एक विद्याधर ने माधव के पूर्व जन्म के भेदो का उद्घाटन कर उसके शोक को हलका किया। मुनिराज ने कहा कि इसी प्रकार से पिता पुत्रादि का सम्बन्ध है जिसमे हर्ष या शोक का कारण उपस्थित नही होता।

१—करकंड चरिउ (६ ४–७)।

सातवीं अवान्तर कथा शकुन के फल से सम्बन्धित है।[१] इस कथा को विद्याधर ने करकंडु को सुनाई थी। कथा इस प्रकार है- एक दरिद्र ब्राह्मण मार्ग मे एक मुनि से मिलकर बडा प्रसन्न दिखाई दे रहा था। उसको इस चित्तवृत्ति को देखकर सामने से गुजरते हुए एक क्षत्रिय कुमार ने उससे उसकी प्रसन्नता का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा कि मुझे मुनि दर्शन के शुभ शकुन के अनुसार राज्य लाभ मिलेगा। क्षत्रिय कुमार ने अपने घोडे और आभूषण को देखकर शकुन का फल ब्राह्मण से ग्रहण कर लिया। बन मे प्रवेश करने पर स्त्री का रूप धारण करके सुदर्शना देवी उसका अनुगमन करने लगी। उन्होंने एक अन्धकूप मे लडते हुए एक मेढक और साँप देखे। क्षत्रिय युवक ने अपने शरीर से मास का एक टुकडा काट कर कुएं मे डाल दिया। इससे वे दोनो मनुष्य का रूप धारण कर उसके सहगामी बन गये। एक राजा उनके साथ उस स्त्री को देखकर उसके रूप पर मुग्ध हो गया। उसने क्षत्रिय कुमार को कुएं मे ढकेल दिया और स्त्री से प्रेम स्थापित करना चाहा। तत्क्षण उसे एक सर्प ने डस लिया और उसकी मृत्यु हो गई। उस स्त्री ने उस क्षत्रिय कुमार को कूएं से निकाला और मृत राजा के स्थान पर उसका राज्यारोहण हुआ। शकुन के इस फल को प्रदान करने के पश्चात् सुदर्शना देवी ने वहां से प्रस्थान कर दिया।

आठवी अवान्तर कथा अरिदमन से सम्बद्ध है।[२] समुद्र में विद्याधरी द्वारा करकंडु के हर लिये जाने पर रतिवेगा शोक से विह्वल थी, उस समय पद्मावती देवी ने उसे यह कथा सुनाई थी। एक विद्याधर ने सुआ का रूप धारण कर एक ग्वाल के माध्यम से अपने को उज्जैन के राजा अरिदमन के हाथ बिकवा दिया। सुआ के द्वारा राजा को यह मालूम हुआ कि उसके मंत्री के पास एक अनुपम घोडा है। मंत्री से उस घोड़े को प्राप्त कर वह सुआ के साथ उस पर आरूढ़ हुआ। एक ही चाबुक लगने पर घोड़ा वेग से उडकर समुद्र के पार एक द्वीप पर जा पहुँचा। वहाँ उसने रत्नलेखा नामक एक सुन्दरी से विवाह कर लिया। रत्नलेखा ने उज्जैन देखने की इच्छा व्यक्त की। एक नौका पर रानी, सुआ और घोडा सहित वह सवार हुआ। विपरीत दिशागामी वायु के कारण वह नौका एक उजडे द्वीप पर जा लगी। वहाँ उन्हे रात्रि व्यतीत करने के लिये ठहरना पडा। किसी ने रात्रि मे ही नाव को चुरा लिया। सुआ के परामर्श से लकडी काटकर एक डोंगी तैयार की गई जिस पर बैठकर वे सभी चले। लहरो की चपेट से डोंगी के बंधन टूट गये और वे चारो बिछुड गये। राजा कोकन नामक स्थान पर पहुँचे और रानी रत्नलेखा खंबायत बन्दर पर पहुँची। रानी ने एक कुट्टिनी के

१—वही (७, १–४)।

२—करकंड चरिउ (८, १-१६)।

यहाँ आश्रय ग्रहण किया। उसने यह प्रतिज्ञा की कि सारपासे की खेल में हराने वाला ही उसके प्रेम का अधिकारी होगा। अनेक पुरुषो के प्रयत्न वृथा हुए। किसी दिन वह सुआ वहाँ उड़कर आया और उसे पहचान लिया। रत्नलेखा की पासे खेलने की चर्चा सर्वत्र फैल गई थी। कोकन में जब इस समाचार से अरिदमन अवगत हुआ तो वह वहाँ आया और खेल में रत्नलेखा को हराया। पहले तो रत्नलेखा अत्यन्त व्याकुल हुई किन्तु जब उन्होंने एक दूसरे को पहचान लिया तब वे दोनो अत्यन्त प्रसन्न हुए। एक दिन कुछ ठग वहां घोड़े बेचने के लिये आये। उनमे अरिदमन का वह प्रतापी घोडा भी था जिसे पहचान कर उससे उसने खरीद लिया। इस प्रकार सभी वियुक्त प्राणी मिलकर बहुत आनन्दित हुए।

अंतिम अवातर कथा मुनिराज ने करकंडु की माता पद्मावती को यह बतलाने के लिये सुनायी है कि भवान्तर मे स्त्रीलिंग का परिवर्तन भी हो सकता है।[1] वह इस प्रकार है—सुमित्रा उज्जैन नरेश की पुत्री थी, उपवास करने के कारण उसकी मृत्यु हो गई और उसका जन्म एक ब्राह्मण के घर बालक के रूप मे हुआ। जब वह गर्भ में थी तभी उसके पिता (ब्राह्मण) की मृत्यु हो गई। विधवा स्त्री का यह बालक बड़ा नटखट और शरारती था। एक बार वह माता से लड झगडकर घर से भागकर वन की ओर चल दिया। वहा एक पुरानी मठिया मे रात्रि व्यतीत करने के लिये ठहर गया। रात्रि मे वहा कई विद्याधरियां आयी, उनमे से किसी एक की चीर उस ब्राह्मण बालक ने चुरा ली और घर आकर मां को दे दिया। मा ने उसे एक सेठ के हाथ बेंच दिया और सेठ ने भेंट रूप मे राजा को प्रदान किया। राजा की इच्छा हुई कि उसकी जोड़ी भी उसे मिले और इस काम को उस ब्राम्हण बालक को सौंपा गया, जिसने वन मे जाकर एक राक्षसी को डंडे के सहारे वश मे किया और उस चीर की जोड़ी प्राप्त की। राजा ब्राह्मण-बालक से बड़ा प्रसन्न हुआ और उससे उसका स्नेह बढता ही गया। राजा के मन्त्री को यह सहन न हुआ और उसने रानी को उभाडकर उस बालक को किसी न किसी बहाने मरवा डालना चाहता था। कठिन से कठिन काम (जैसे-शेरनी का दूध लाना, बोलता हुआ पानी लाना) उसके सामने रखा जाता जिसे वह राक्षसी की सहायता से हल कर देता था। राजा जब मंत्री के इस व्यवहार से अवगत हुआ तो उसने उसे पदच्युत कर दिया और वह ब्राह्मण मंत्री बना। उस ब्राह्मण ने अंतिम अवस्था मे वैराग्य धारण किया और भवातर मे अर्जुन हुआ। प्रस्तुत कथा को मुनि श्रेष्ठ ने करकंडु की माता पद्मावती को सुनायी थी। करकंडु चरिउ मे इन कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

१—करकंड चरिउ (१०, १८-२२)।

कथानक-रूढ़ियों के आधार पर कथा का विकास

'करकंडचरिउ' में समाविष्ट अनेक वृत्तान्तो के बीज पूर्ववर्ती साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं। प्रस्तुत काव्य में पद्मावती के यमुना मे प्रवाहित करने का वृत्तान्त तथा कुसुमपुर के एक माली द्वारा उसके पालन-पोषण की बात परम्परागत है। इसकी तुलना जिनसेन कृत 'हरिवंशपुराण' मे उल्लिखित उस घटना से की जा सकती है, जबकि राजा जरासंध ने कंस से उसकी जाति के संबंध में प्रश्न पूछा था और पूछताछ के उपरान्त इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि माता-पिता ने गर्भ में स्थित होने पर ही उसके उग्र व्यवहार को समझ कर एक कांस्यमंजूषा में रखकर यमुना में प्रवाहित कर दिया था, जिसे पाकर कौशाम्बी की एक मदिरा बनाने वाली मंजोदरी नामक स्त्री ने पालन-पोषण किया था। इस शिशु के पिता उग्रसेन और माता पद्मावती थी। जरासंध ने, वास्तविकता से अवगत होने पर अपनी पुत्री जीवद्यशा से उसका विवाह कर दिया। जन्म से निंद्य और अशुभ शिशु का जल-प्रवाह करा देने की परम्परा बड़ी पुरानी है। महाभारत आदि ग्रन्थो मे भी इस प्रकार का वर्णन मिलता है। यदुवंशी शूर की पुत्री पृथा ने सूर्य के आह्वान करने के फलस्वरूप गर्भ धारण किया था और प्रसव के पश्चात् नवजात शिशु को जल मे प्रवाहित कर दिया था। राधा के पति रथकार ने पाकर उसका पालन-पोषण किया, जो बाद में वीर 'कर्ण' के नाम से विख्यात हुआ।

करकंड चरिउ में वर्णित रानी के दोहले (दोहद) होने का सूत्र णायाधम्मकहाओ मे ही मिल जाता है। यहां पर महाराज श्रेणिक की पत्नी धारिणी ने गर्भ धारण करने के तीसरे मास मे यह इच्छा व्यक्त की कि मैं मंद-मंद जल वृष्टि के बीच हाथी पर बैठकर नगर का परिभ्रमण करना चाहती हूँ। राजा ने इस काम को ज्येष्ठ पुत्र को सौंपा और सौधर्मस्वर्ग के एक देव की सहायता से अकालवृष्टि करा कर रानी के दोहले की पूर्ति की।

करकंडचरिउ मे वर्णित गुण निकेत विद्याधर की कथा की तुलना सोमदेव कृत यशस्तिलक चम्पू के कन्दलविलास विद्याधर की कथा से की जा सकती है। जब गुणनिकेत विद्याधर विजयार्द्ध से विमान द्वारा दक्षिण की ओर जा रहा था तो आकाश मे बीच में ही उसका विमान रुक गया। ठीक उसके नीचे सुव्रत मुनि ध्यानलीन थे। गुणनिकेत ने इसका कारण सुव्रत मुनि को माना और मुनि का ध्यान भंग किया। मुनि ने रुष्ट होकर उसे शाप दिया कि तेरी सभी विद्यायें नष्ट हो जायं। क्षमा-याचना करने पर मुनि ने शान्त ढंग से कहा कि श्मशान में करकंडु के जन्म लेने पर जब तू उसका पालन-पोषण करेगा और जब उसे राज्य की प्राप्ति हो जायेगी तभी तू शाप-विमुक्त होकर अपनी विद्याओं को पुनः प्राप्त करने में समर्थ होगा। इसी प्रकार से यशस्तिलक

के पांचवें आश्वास मे यह वर्णन मिलता है कि कंदविलास विद्याधर आकाश-मार्ग से जा रहा था, बीच में उसका विमान रुक गया। उसने नीचे देखा मन्मथमथन नामक मुनि विजयार्द्ध पर्वत पर ध्यान-मग्न थे। मुनि को दोषी ठहराता हुआ उसने मुनि के ध्यान को मग्न किया। तत्क्षण वहां उपस्थित होकर विद्याधर नरेश रत्नशिखंडी ने उसे यह शाप दिया कि तू इस पाप के फलस्वरूप उज्जैनी मे चण्डकर्मा नामक चाण्डाल होगा। जब विद्याधर ने बहुत क्षमा-याचना की तो रत्नशिखंडी ने कहा कि जब तुझे आचार्य सुदत्त के दर्शन होंगे, तब तू इस शाप से विमुक्त हो जायेगा दोनो घटनाओं मे थोड़ी सी विभिन्नता के अतिरिक्त पर्याप्त साम्य दिखाई देता है।

करकंड चरिउ मे वर्णित नील-महानील विद्याधरों का शत्रुओ के भय से चक्रवाल नगर से भागकर तेरापुर मे आकर राज्य स्थापित करने की घटना का सम्बन्ध रवि-षेणकृत पद्मपुराण और पउमचरिउ मे वर्णित मेघवाहन विद्याधर के चक्रवाल राजधानी से निकलकर दक्षिण मे राक्षस द्वीप मे आकर और लंकापुरी को राजधाना बनाने की घटना से स्थापित किया जा सकता है।

करकंड चरिउ मे पिता और पुत्र के बीच युद्ध का वर्णन है। युद्ध के बीच माता ने आकर पिता और पुत्र का परिचय तथा सम्बन्ध कराया और तत्पश्चात् युद्ध समाप्ति की घोषणा को गई और पिता के नगर मे पुत्र के सम्मानपूर्वक प्रवेश का वर्णन है। अति संक्षेप मे यह कथानक इस प्रकार है—करकंडु दंतीपुर का राजा है, जो चम्पा के राजा धाडीवाहन के दूत द्वारा अधीनता स्वीकार कर लेने के प्रस्ताव से क्षुब्ध होकर चंपा पर चढाई कर देता है। युद्ध के बीच करकंडु की माता पद्मावती आती है जो धाडीवाहन की पत्नी है। वह पिता और पुत्र का पहचान करातो है और राजकीय सम्मान के साथ चंपानगरी मे करकंडु का प्रवेश होता है। इस कथा की तुलना पद्म-पुराण तथा पउमचरिउ मे वर्णित लवणांकुश द्वारा अयोध्या पर आक्रमण और रामचन्द्र की सेना से भयंकर युद्ध से की जा सकती है। यहाँ पिता-पुत्र के पहिचान कराने के पश्चात् सम्मान के साथ अयोध्या मे कुमारो का प्रवेश कराया जाता है। राम तथा लव-कुश के बीच युद्ध की घटना का वर्णन बाल्मीकीय रामायण मे तो प्राप्त नही होता, उसका कुछ स्वरूप भवभूति कृत 'उत्तररामचरित' मे मिलता है। कथा इस प्रकार है—लव और कुश (राम के पुत्र) आश्रम मे विद्याभ्यास कर रहे थे। उसी समय लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु सेनासहित अश्वमेध यज्ञ के अश्व की रक्षा करते हुये जा रहे थे। ये दोनो बालक वहां पहुँचे और लव अश्व को पकड़कर आश्रम की ओर ले जाने लगे। फलस्वरूप चन्द्रकेतु और लव के बीच युद्ध आरम्भ हुआ। समाचार पाने पर राम स्वयं पुष्पक विमान द्वारा वहा उपस्थित हुये और युद्धशात करवाया।

पात्र

करकंड चरिउ का मुख्य पात्र करकंडु है। वही कथा का नायक है। करकंडु मे धीरोदात्त नायक के गुण उपलब्ध होते हैं। वह अनेक स्त्रियों से विवाह करता है। इसमे वीरता, स्वाभिमान, उत्साह, मातृ भक्ति आदि गुण भरे पडे हैं। सम्पूर्ण करकंड चरिउ मे करकंडु के चरित्र का पूर्ण विकास दिखाई देता है। करकंडु के अतिरिक्त करकंडु की माता पद्मावती, मुनिशीलगुप्त, मदनावली, रतिवेगा आदि पात्रों के चरित्रों की विशिष्टतायें मिलती हैं। पर इनके चरित्र का विकास अपेक्षाकृत कम हुआ है। मुनिशील गुप्त एक जैन महात्मा के गुणों से ओत-प्रोत हैं। पद्मावती वात्सल्य की मूर्ति है। इन दोनो पात्रों का चरित कुछ अंशो मे विकसित दिखाई देता है।[1]

वर्ण्य-विषय

प्रस्तुत काव्य मानवीय और प्राकृतिक वर्णनो से परिपूर्ण है। कवि ने मानव हृदय के भावों का अनुभूतिपरक चित्रण प्रस्तुत किया है। करकंड के दंतिपुर मे प्रवेश करने पर नारियों के हृदय की व्यग्रता,[2] मुनिराज शीलगुप्त के आगमन पर पुर-नर नारियों के हृदय का उत्साह और उनके दर्शन की उत्सुकता[3] आदि के वर्णन निश्चित रूप से बड़े ही प्रभावोत्पादक हैं। इसी प्रकार से भौगोलिक वर्णनो मे वनो, देशो आदि के वर्णन भी बडे सुन्दर बन पडे हैं। कवि ने अगदेश का बडा ही मनोरम चित्रण उपस्थित किया है।[4]

उक्त वर्णनो के अतिरिक्त निम्नलिखित वर्णन काव्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं—

(१) राजा धाडीवाहन का वर्णन[5]

(२) श्मशान का वर्णन[6]

(३) राजप्रसाद का वर्णन[7]

(४) सिंहलदीप वर्णन[8]

१—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १८४।

२—करकंड चरिउ—३.२.१।१०।

३—करकंड चरिउ ६.२.१।७।

४—वही, १.३.४।१०।

५—वही, १।५।

६—वही, १।१७।

७—वही, ३।३।

८—वही, ७।५।

करकंड चरिउ के उक्त वर्णनों का प्रभाव मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यों पर पड़ा है, जिनकी चर्चा यथास्थान की जायेगी।

प्रस्तुत काव्य में वीर रस के अनेक आकर्षक प्रसंग मिलते हैं। यहां पर किसी स्त्री के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाने के परिणामस्वरूप युद्ध नहीं होता अपितु युद्ध मे पराजित राजाओं की कन्यायें स्वयं करकंडु के आगे आत्मसमर्पण कर देती हैं।[1] काव्य में 'उत्साह' के अनेक उत्तेजक स्वरूप उपलब्ध होते हैं। उचित शब्द योजना के माध्यम से कवि ने युद्ध की भिन्न-भिन्न क्रियाओ और चेष्टाओ का सजीव चित्र उपस्थित किया है। इसी प्रकार से छन्द की गति भी बहुत कुछ सेना के प्रयाण का आभास देती है। इसी के आधार पर छन्दो मे परिवर्तन भी देखा जाता है। चंपाधिपति के युद्ध मे प्रयाण करने की स्थिति[2], सेना का प्रयाण और युद्ध आरम्भ होने पर शस्त्र संपात की तीव्रता[3], करकंडु का क्रुद्ध होकर धनुष का उठाना[4] आदि प्रसंग निश्चित रूप से ही संवेदक हैं।

शृंगार के दोनो पक्षों—संयोग और विप्रलंभ का सुन्दर वर्णन करकंड चरिउ मे उपलब्ध होता है। रूप आदि के वर्णन मे कवि ने परम्परागत उपमानो का ही आश्रय लिया है। कवि का ध्यान आन्तरिक सौन्दर्य की अपेक्षा बाह्य अंगो के सौन्दर्य की ओर ही जा पाता है। इतना होते हुये भी कही-कही कवि की कल्पना का सुन्दर परिचय भी मिलता है।

वियोग वर्णन मे नायक और नायिका दोनो के वियोगो का वर्णन हुआ है, पर तीव्रता नायिका के वियोग मे ही दिखाई देती है, नायक मे अपेक्षाकृत कम। करकंड के वियोग के कारण रतिवेगा के विलाप करने से समुद्र मे भी विक्षोभ हो जाता है, नौकायें भी परस्पर टकराने लगती हैं और उसके शोक से मनुष्य में भी व्याकुलता आ जाती है।

हल्लोहलि हूयउ सयलु जलु अपरंपरि जाणइं संचलहिं।
हा हा रउ उट्ठिउ करुणसरु तहो सोएं णरवर सलवलहिं[5]।

वियोग वर्णन मे ऊहात्मक प्रसंगो का प्रायः अभाव सा दिखाई देता है। वियोग के प्रभाव मे वृद्धि लाने के लिये अनुभावो का प्रयोग किया गया है। ऐसे वर्णन प्रायः संवेद-

---

१—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १८६।
२—करकंडचरिउ ३.१४.१।१०।
३—वही, ३.१५.१।११।
४—वही, ५.१८.२।११।
५—वही, ७.१०.६।१०।

नापूर्ण हैं। 'वियोग वर्णन मे शरीर-ताप की मात्रा को सूचित करने वाले ऊहात्मक प्रसंगों का अभाव है। अनुभाव के प्रयोग से वियोग दृश्य के प्रभाव को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया हैं। रतिवेगा के शब्दो से पाठक उसके हृदय के साथ सहानुभूति का अनुभव करता है। सारा वर्णन संवेदनात्मक है। कवि ने वियोगजन्य दुःख के हृदय मे पड़ने वाले प्रभाव को अंकित करने का प्रयास किया है[१]।'

इसके साथ ही साथ मदनावली के विलुप्त हो जाने पर करकंड के वियोग में दुखी होने का वर्णन भी मिलता है। उसके लिये करकंडु विलाप भी करता है, व्याकुल होता है, भाग्य को कोसता है और पशुओ से पूछता है[२]। किन्तु मदनावली का वियोग वर्णन अपेक्षाकृत अधिक संवेदनापूर्ण है।

निर्वेद-भाव

निर्वेद भाव को व्यंजित करने के लिये भी अनेक प्रसंग मिलते हैं। पुत्र के वियोग मे दुखी और विलाप करती हुई स्त्री को देखकर करकंडु का हृदय द्रवित हो जाता है और वह वैराग्य की ओर उन्मुख हो जाता है।[३] कवि ने इस प्रकार के वर्णन में दुःख की विशालता, गंभीरता, क्षारता, अनुपादेयता और सुख की मधुरता, स्वल्पता, दुर्लभता आदि भावो की अभिव्यंजना की है[४]। इसी प्रकार से संसार की नश्वरता और अस्थिरता[५], सासारिक विषयो की क्षणभंगुरता[६], कर्मों का भोग[७] आदि का वर्णन भी कवि ने किया है।

रस

रस की दृष्टि से करकंडचरिउ एक शृंगार-वीर रस प्रधान प्रबन्धकाव्य है, जिसका पर्यवसान शान्त रस में हुआ है। वीर रस की पुष्टि अपेक्षाकृत सबल रूप में दिखाई

१—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १८६।
२—करकंडचरिउ ५।१५।
३—वही, ६. ४. ६।१०।
४—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १६०।
५—करकंडचरिउ, ६.५.१।१०।
६—वही, ६।६।
७—वही, ६।९।

देती है। इस प्रकार इस शृंगार-वीर रसात्मक काव्य का अन्त शान्त रस मे होता है। प्रायः सभी चरितकाव्यो मे रस सम्बन्धी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

अलंकार

अनेक अलंकारो का स्वाभाविक प्रयोग प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य मे मिलता है। अलंकारो मे श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि के विशेष उदाहरण मिलते हैं। कुछ के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

उपमा

दीवाण पहाण हिं दीवदीवे   जबू दुमलछिए जंबुदीवे।
वेढियलवणण्णववलयमाणे   जोयणसयसहसपरिप्पमाणे।
वित्थिण्णउ इह सिरि भरहछेत्तु   गंगाणइ सिंधु हिंविप्फुरंतु।
छक्खंडभूमिरयणह णिहाणु   रयणायरो व्व सोहायमाणु।
(करकंडचरिउ १।३)

(द्वीपो मे प्रधान, द्वीपो के दीपक समान, जम्बूवृक्ष से लक्षित जम्बू द्वीप है, जो लवण समुद्र से वलय के समान वेष्टिक तथा प्रमाण मे एक लाख योजना है, जो गंगा और सिन्धु नदियो से विस्फुरित होता है वह छ खण्ड भूमि रूपी रत्नो का निधान होने से रत्नाकर के समान शोभायमान है।)

रूपक

जो धम्ममहारह धुरधरणु
कणीणदीणदुत्थियसरणु। (क०च० १।४)

(राजा धाडीवाहन धर्म रूपी महारथ के धुरे को धारण करता था तथा अनाथो, दीनो और दुखियो को सहारा देता था।)

उत्प्रेक्षा

उत्तुंग धवलकउसीसएहिं
णं सग्गु छिवइ बाहूसएहिं। (क०च० १।५)

(वह अपने ऊंचे प्रासाद शिखरो से ऐसी प्रतीत होती है, मानो सैकड़ो बाहुओं द्वारा स्वर्ग को छू रही हो।)

प्रकृति-चित्रण

करकंडुचरिउ मे प्रकृति का स्वाभाविक और आलंकारिक वर्णन हुआ है। इस प्रकार के वर्णन में प्रकृति का मानवीकृत रूप भी सामने आता है। प्रकृति के वर्णन प्रायः

साभिप्राय हैं। करकंडु ने क्रुद्ध होकर शीघ्रातिशीघ्र युद्ध के लिये प्रस्थान किया, मार्ग मे उसे गंगा दिखाई दी। कवि गंगा की शोभा का वर्णन उसी परिस्थिति तथा भाव के अनुसार ही करता है।

सा सोहइ सियजल कुडिलवंति
णं सेयभुवगहो महिल जंति।
दुराउ वहती अइ विहाइ
हिमवंतगिरिंदहो कित्ति णाइं।
विहि कूलहि लोयहि ण्हंतएहि
आइच्चहो जलु परिदितएहि।
दब्भंकियउड्ढहि करयलेहि
णइ भणइ णाइं एयहि छलेहि।
हउं सुद्धिय णियमग्गेण जामि।
मा रुसहि अम्महो उवरि सामि।

(क०च० ३।१२)

(वह गंगा श्वेत जल सहित अपनी कुटिल धारा से ऐसी सुशोभित होती थी मानो श्वेत-भुजंग की महिला जा रही हो। दूर से ही बहती हुई वह ऐसी दिखाई दी, जैसे वह हिमगिरि की कीर्ति ही हो। दोनो तटो पर स्नान करते हुये व सूर्य को जल चढाते हुये दर्भ से युक्त ऊंचे उठाये हुये करतलो से युक्त लोगो द्वारा, मानो इन्ही बहानो से, नदी कह रही थी कि 'मैं शुद्ध हूँ' और अपने मार्ग से जाती हूँ, हे स्वामी, हमारे ऊपर रुष्ट मत होइए।[१])

इसी प्रकार से कवि ने सरोवर का भी स्वाभाविक और भावानुकूल वर्णन किया है। ऊपर के उद्धरण मे युद्ध के प्रस्थान करते समय रोष-युक्त करकंडु को गंगा विन-म्रतापूर्वक रास्ता देती है तो दूसरी और स्वस्थचित राजा का स्वागत करने के लिये सरोवर उल्लसित हो रहा है। कवि को पात्र की मनोदशा और परिस्थिति की कैसी पहचान है। वह प्रकृति मे उसी के भावो को डाल देता है।

आवंतहो तहो अइदिहि जणंतु
खगरावइं आवहु णं भणंतु।
जलकुंभिकुंभकुंभइं धरंतु।
तण्हाउरजीवहुं सुहु करंतु।

१—करकंड चरिउ—डा० होरालाल जैन (हिन्दी अनुवाद), पृ० ४१।

उद्दंडणलिणि उण्णइ वहंतु।
उच्छल्लियमीवहिं मणु कहंतु।
डिंडीरपिंडरयणहिं हसंतु
अइणिम्मलपउरगुणेहिं जंतु।
पच्छण्णउ वियसियपकएहिं
णच्चतउ विविह विहंगएहिं
गायंतउ भमरावलिरवेण।
धावंतउ पवणाहयजलेण।
(क०च० ४।७)

(करकंडु को आते देखकर वह सरोवर मानो उसे विश्वास दिलाने के लिये पक्षियो के कोलाहल द्वारा कह रहा था—आइये। वह जल हस्तियों के कुंभस्थलों, द्वारा कलश धारण किये था और तृष्णातुर जीवनो को सुख प्रदान करता था। वह उच्च दण्ड कमलो के माध्यम से उन्नति धारण कर रहा था और उछलती मछलियों द्वारा अपना उछलता मन प्रकट कर रहा था। फेन पिंड रूपी दातो को प्रकट करता हुआ वह हंस रहा था, एवं अति निर्मल व प्रचुर गुणो सहित चल रहा था। फूले हुये कमलो द्वारा वह अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा था और विविध विहंगो के रूप मे वह नर्तन कर रहा था। भ्रमरावलं की गुंजार द्वारा वह गा रहा था और पवन से प्रेरित जल के द्वारा दौड़ रहा था।[1])

जायसी ने भी मानसरोदक खण्ड के अन्त मे मानसरोवर का वर्णन कुछ इसी ढंग से किया है। अन्तर सिर्फ इतना है कि जायसी के वर्णन मे आध्यात्मिक भावना छिपी हुई है; जब कि प्रस्तुत वर्णन लौकिक सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत कर रहा है। प्रस्तुत वर्णन में करकंड का स्वागत करने में हर्षोल्लास से मानसरोवर परिपूर्ण है, जायसी का मानसरोवर पद्मावती का चरण छूकर कृतकृत्य हो रहा है। वर्णन मे कितना साम्य है।

करकंडचरिउ की भाषा

करकंडचरिउ की भाषा अपभ्रंश है। अपभ्रंश से तात्पर्य किसी भाषाविशेष से नही है, किन्तु संस्कृत के सभी विकृत या देश प्रचलित रूपान्तर इसके अन्तर्गत आते हैं। अपभ्रंश का साधारण अर्थ है भ्रष्ट, च्युत, स्खलित, विकृत अथवा अशुद्ध।[2] भाषा

१—करकंडउरिउ—डा० हीरालाल जैन (हिन्दी अनुवाद), पृ० ५५।
२—डा० नामवर सिंह—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ० २०।

के सामान्य रूप से बिगड़कर जो शब्द बनते हैं उन्हे अपभ्रंश कहते हैं। संग्रहकार व्याडि ने अपभ्रंश शब्द का उल्लेख किया है। इस पर विचार करते हुये भर्तृहरि ने अपने वाक्यपदीयम् मे लिखा है—संग्रहकार के अनुसार अपभ्रंश की प्रकृति शब्द अर्थात् संस्कृत शब्द हैं—शब्दः प्रकृतिरपभ्रंशः इति संग्रहकारो।[1] महाभाष्यकार पतंजलि ने भी संग्रहकार 'व्याडि' का उल्लेख अपने ग्रंथ में किया है।[2] इस प्रकार व्याडि का समय महाभाष्यकार (२री शती ईस्वी पूर्व) से पहले माना जा सकता है। पर व्याडि के ग्रन्थ के अनुपलब्ध होने के कारण अपभ्रंश शब्द के इतिहास के बारे मे कुछ निश्चय नहीं हो पाया है।

सर्वप्रथम स्पष्ट उल्लेख अपभ्रंश शब्द का पतंजलि ने अपने महाभाष्य में किया है। उन्होने शब्दों के साधु और असाधु दो रूप माने।[3] इनमे प्रथम रूप मूल और द्वितीय मूल के रूपान्तर हैं। उनके अनुसार एक ही साधु रूप के अनेक असाधु रूपान्तर रूप पाये जाते हैं; यथा—गोः शब्द साधु रूप है और इसके असाधु रूप हैं—गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि। द्वितीय रूप अर्थात् असाधु शब्दो को ही पतंजलि ने अपभ्रंश के रूप मे स्वीकार किया है।

●

१—वाक्यपदीयम्—काण्ड १, कारिका १४८ का वार्तिक।
(हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग, पृ० २० पर उद्धृत)।

२—महाभाष्यम्—कीलहार्न संस्करण, भाग १, पृ० ६ और ४६८, भाग ६।

३—भूयांसोऽपशब्दाः, अल्पीयांसः शब्दा इति। एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशः तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी गोणी गोता गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः पतंजलि—महाभाष्य।

पतंजलि ने शब्दों के लिये अपशब्द (असाधु) का प्रयोग किया, यह उचित नही जान पड़ता, जब कि ये महाविद्वान् स्वयं शब्दो के प्रयोगो के विषय में लोक-प्रचलित प्रयोगों को ही महत्त्वपूर्ण बताते हैं, 'पतंजलि जैसे लोकवादी मुनि के मुख से बोली के शब्दो के लिये अपशब्द और अपभ्रंश संज्ञा का प्रयोग सुनकर आश्चर्य होता है, क्योंकि उन्होने स्थान-स्थान पर लोक प्रचलित शब्द-रूपो को ही लक्षित नहीं किया है, बल्कि शब्द-प्रयोग के विषय मे लोक को ही प्रमाण माना है। महाभाष्य का वैयाकरण और सूत-संवाद प्रसिद्ध है जिसमे शब्द-प्रयोग को लेकर वैयाकरण को सूत के सम्मुख मुँह की खानी पडती है। यही नहीं महाभाष्यकार ने अनेक जगह शब्द को 'लोक विज्ञान' कहा है। 'लोकतो अर्थ-प्रयुक्ते शब्द प्रयोग शास्त्रेण धर्मनियमो क्रियते' वार्तिक पर भाष्य करते हुए जो यह कह सकता हो कि 'अभ्यंतरोऽहं लोके न त्वहं लोक.' उसके द्वारा लोक मे व्यवहृत बोली के शब्दो के लिये अपशब्द का प्रयोग किया जाना कुछ विस्मय-कर ही लगता है।'ऐसा प्रतीत होता है कि अपशब्द से महाभाष्यकार का तात्पर्य शब्दो के बिगड़े रूप से है, जो सस्कृतवत् नही हैं।

उक्त परम्परा का पालन परवर्ती वैयाकरणो ने भी किया। संस्कृत से इतर शब्दो को अपभ्रंश की संज्ञा दण्डी (७वी शती ई० पूर्व) ने भी दी-शास्त्रेषु संस्कृता-दन्यदपभ्रंशतयो दितम्।[२] (शास्त्र मे संस्कृत से इतर शब्द को अपभ्रंश की संज्ञा दी जाती है।) भरत मुनि ने समान शब्दो के अतिरिक्त अन्य विभ्रष्ट शब्दो को अपभ्रंश की संज्ञा दी है। वाक्यपदीयकार ने सस्काररहीन शब्दो को अपभ्रंश कहा है।

शब्दसंस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षिते।
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशितम्॥[३]

इस प्रकार प्राय. सभी संस्कृत-वैयाकरणो ने उक्त रूप मे ही अपभ्रंश के सम्बन्ध मे अपने मत और सिद्धान्त दिये। इन वैयाकरणो ने संस्कृत से इतर भाषा को प्राकृत की संज्ञा दी और संस्कृत से इतर शब्द को अपभ्रंश की।

अपभ्रंश शब्द का प्रयोग भाषा-विशेष के लिये छठी शताब्दी के आस-पास हुआ प्रतीत होता है। संस्कृत आलकारिको मे प्रथम भामह हैं जिन्होने 'अपभ्रंश' शब्द का उल्लेख किया है।[४] इसी प्रकार से सर्वप्रथम प्राकृत वैयाकरण चण्ड ने 'अपभ्रंश का नामोल्लेख किया है।[५] छठी शती ई० के बलभी के राजा धरसेन द्वितीय के ताम्रपत्र

---

१. हिंदी के विकास मे अपभ्रंश का योग डा० नामवर सिंह, पृ० २१।
२. काव्यादर्श, १। ३६।
३. वाक्यपदीयम्–काण्ड १, कारिका १४८।
४. शब्दार्थौ सहितौ काव्य गद्यपद्यं च तद्विधा।
संस्कृत प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा॥ (काव्यालंकार १।१६)
५. न लोपेऽपभ्रंशेऽधो रेफस्य। (प्राकृतलक्षणम् ३।३७)

में इस बात का उल्लेख है कि गुहसेन (धरसेन का पिता) संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं की प्रबन्ध-रचना में प्रवीण था।[१] इससे प्रतीत होता है कि छठी शताब्दी तक आते-आते अपभ्रंश का प्रयोग भाषा के लिये होने लगा था और ईशा से दो शताब्दी पूर्व तक अपशब्द समझा जाने वाला अपभ्रंश भाषा के रूप मे सामने आया। फिर भी अधिकांश विद्वानों के एक मत न होने के कारण यह सन्देह बना ही रहता है कि अपभ्रंश का भाषा के रूप में व्यवहार कब से होने लगा—'अपभ्रंश शब्द का प्रयोग यद्यपि महाभाष्य से भी कुछ शताब्दी पूर्व मिलता है तथापि अपभ्रंश शब्द का व्यवहार भाषा के रूप मे कब से प्रयुक्त होने लगा, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। भाषा-शास्त्र के द्वानो ने अपभ्रंश साहित्य का आरम्भव ५०० या ६०० ई० से माना है। किन्तु अपभ्रंश भाषा के जो लक्षण वैयाकरणो ने निर्दिष्ट किये हैं उनके कुछ उदाहरण हमे अशोक के शिलालेखो मे मिलते हैं।'[२]

अपभ्रंश और देशी भाषा

अपभ्रंश को एक लम्बे अरसे तक देश भाषा समझा जाता रहा है।

षष्टोऽत्र भूरिभेदो देशविशेषादपभ्रंशः।[3]

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या अपभ्रंश और देशी भाषा एक है। स्वयंभू और पुष्पदन्त ने अपनी भाषा को देशी भाषा कहा और विद्यापति ने 'देशी वचन' को सबसे मीठा बताकर उसका नियोजन अवहट्ट के साथ किया।[४] भरत ने अपने नाट्यशास्त्र मे सस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त देशी भाषाओ की भी चर्चा की है। संस्कृत का प्रयोग अभिजात वर्ग करता था। जनसामान्य मे प्रयुक्त होने वाली 'भाषा' प्राकृत थी। प्राकृत भाषा ने प्रादेशिक विशेषताओ के कारण विभिन्न रूप धारण किया; यथा—मागधी, शौरसेनी आदि। प्राकृत भाषा के अतिरिक्त भरत ने ऐसे लोगो की बोलियो का भी उल्लेख किया है; जो कन्दराओ और जगलो मे रहा करते थे। यह 'भाषा' का अपभ्रंश रूप या विभाषा के अन्तर्गत समाहित किया गया। ये विभाषायें देशी भाषा की श्रेणी मे स्थान प्राप्त नही कर पाई थी।[५] ये विभाषायें कालान्तर मे (२-३ शताब्दी बाद) देशी भाषाओं के साथ घुल मिल गईं और देश भाषा के नाम से अभिहित की जाने लगी। इस समय तक अन्य प्रादेशिक भाषायें मागधी, शौरसेनी

---

१. संस्कृत प्राकृतापभ्रंश–भाषात्रय–प्रतिबद्ध-प्रबन्धरचना–निपुणान्तकरण:
(इण्डियन एन्टिक्वेरी, भाग १०, अक्तू० १८८१, पृ० २८४।
२. अपभ्रंश साहित्य—हरिवंश कोछड़, पृ० ६।
३. काव्यालंकार—रुद्रट, पृ० २-१२।
४. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन—डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, पृ० २२।
५. वही, पृ० २३।

आदि प्राकृत भाषा के अन्दर ही पूर्ण रूप से घुल मिल गईं और अब इन्हें साहित्यिक भाषा का पद मिल गया। इस प्रकार के परिवर्तन के कारणों का उल्लेख करते हुये डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव ने लिखा है—'भरत के समान शब्द (तत्सम) और विभ्रष्ट (तद्भव) पदों से मुख्यतः निर्मित भाषा प्राकृत भाषा रही और देशी पदों से, जिनकी प्रकृति अव्युत्पादित थी, अत्यधिक सम्पन्न, प्राकृत के ढाँचे में चलने वाली भाषा अपभ्रंश हो गई। इसे अब देशी भाषा की संज्ञा दो कारणों से मिली—(१) विभिन्न प्रदेशों में बोलचाल की विभिन्नता के कारण, (२) देशी पदों के अत्यधिक समावेश के कारण।

प्रत्येक युग में साहित्य के लिये रूढ़ भाषा के अतिरिक्त कोई न कोई देशी भाषा अवश्य प्रचलित रही। यही देशी भाषा धीरे-धीरे विकसित होती हुई साहित्यिक-भाषा का रूप धारण कर लेती है और कालान्तर मे अन्य देशी भाषा को जन्म देती है। छन्दस् की भाषा संस्कृत और संस्कृत से तत्कालीन देशी भाषा का सहयोग प्राप्त कर प्राकृत के रूप मे ढली। समयानुसार प्राकृत को भी लोकभाषा का आश्रय लेना पड़ा, फलस्वरूप अपभ्रंश का जन्म हुआ। इसी अपभ्रंश से आगे चलकर सिंधी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी, ब्रज, अवधी आदि आधुनिक देशी भाषाओ की धारा फूट निकली।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं, जो भाषा देशी-भाषा के रूप मे विकसित होती है और सर्वसाधारण की भाषा (बोल-चाल की भाषा) रहती है, वही कालान्तर मे साहित्यिक भाषा (शिष्टजनो की भाषा) का रूप धारण कर लेती है और पूर्व प्रचलित साहित्यिक-भाषा का प्रसार धीरे-धीरे समाप्त होने लगता है। जो अपभ्रंश स्वयं के द्वारा 'ग्रामीण भाषा' (गामेल्लभास) के नाम से अभिहित की जाती थी, वही ११वी शती मे आकर पुरुषोत्तम के द्वारा शिष्ट-जन ग्रहीत मानी जाने लगी।[2]

अपभ्रंश देश भाषा (बोलचाल की भाषा) थी या नहीं; आधुनिक विद्वानों में इस सम्बन्ध मे काफी मतभेद रहा है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों का एक वर्ग (जिसमे पिशेल, ग्रियर्सन, भण्डारकर, चटर्जी, बुलनर आदि विद्वान आते हैं) अपभ्रंश को देश भाषा मानता है और दूसरा वर्ग (याकोबी, कीथ, ज्यूल ब्लाख आदि) इसे देश-भाषा के रूप मे स्वीकार नहीं करता। डा० नामवर सिंह ने इसे देश भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करते हुये लिखा है—'वस्तुतः यह सारा विवाद इसलिये है कि अपभ्रंश सम्बन्धी प्रस्तुत ज्ञान जिन सामग्रियो पर आधारित है उनमे से कुछ तो आलंकारिको एवं वैयाकरणो के स्फुट विचार हैं और शेष काव्य-साहित्य और वह साहित्य भी अधि-

---

१. हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २५।

२. शेषं शिष्ट प्रयोगात् (पुरुषोत्तम १७-६१)

वही, पृ० २५।

कांशतः एक विशेष सम्प्रदाय-परम्परा से प्राप्त है। जब तक उस समय की बोल-चाल की भाषा का पता देने वाली कोई अन्य प्रमाणिक सामग्री नहीं मिलती तब तक हमें अपभ्रंश के प्राप्त साहित्य के परीक्षण से ही देश-भाषा का निश्चय करना होगा। और जो विद्वान् अपभ्रंश को देशभाषा मानने से इनकार करते हैं उनके कथन से भी इतना तो निश्चित है ही कि अपभ्रंश में देश-भाषा के पर्याप्त तत्व प्राप्त होते हैं।'[१]

इस प्रकार अपभ्रंश का उद्भव पूर्ववर्ती साहित्यिक प्राकृत से माना जा सकता है। नमिसाधु ने प्राकृत को ही अपभ्रंश की संज्ञा दी—प्राकृतमेवापभ्रंशः।[२] प्राकृत से नमिसाधु का तात्पर्य महाराष्ट्री प्राकृत से है। वे अन्य प्राकृतों की भाँति अपभ्रंश की प्रकृति का सम्बन्ध भी महाराष्ट्री प्राकृत से मानते हैं; फिर भी अपभ्रंश को उन्होंने मागधी आदि अन्य प्राकृतों से विशिष्ट माना है। वैयाकरण हेमचन्द्र ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि अपभ्रंश के विशेष प्रयोग में स्थान-स्थान पर महाराष्ट्री प्राकृत और शौरसेनी प्राकृतवत् कार्य होता है।[३] प्राकृत वैयाकरण मार्कण्डेय (१७वीं शती) ने भी उक्त मत का समर्थन करते हुये लिखा है कि नागर अपभ्रंश महाराष्ट्री और शौरसेनी पर अवलंबित है।—नागरं तु महाराष्ट्री शौरसेन्योः प्रतिष्ठितम्।[४] इस प्रकार भाषा-विकास की परम्परा मे अपभ्रंश का प्राकृत से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जिस अर्थ में प्राकृत की प्रकृति संस्कृत है, उसी अर्थ में अपभ्रंश की प्रकृति प्राकृत है—प्राकृत अर्थात् शौरसेनी आदि भेदो से युक्त मुख्यतः महाराष्ट्री प्राकृत।[५]

अपभ्रंश का वैशिष्ट्य

यद्यपि वैयाकरणो ने अपभ्रंश को प्राकृत का ही एक रूप माना है, फिर भी प्राकृत के भेदों का उल्लेख करते हुए अपभ्रंश का नाम उसमे कही नही गिनाया गया है। प्राय. वैयाकरणो ने इसकी पृथक् सत्ता स्वीकार करते हुए अलग से इसके भेदो का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भारतीय आर्यभाषाओ के विकास-सोपान माने जाते हैं। भारतीय आर्यभाषाओ के विकास में अप-भ्रंश का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अपभ्रंश तक आते-आते संस्कृत का मोह बहुत कुछ धुंधला हो गया, जबकि पालि और प्राकृत भाषाएँ शब्द रूप और धातु रूप शैली दोनों दृष्टियों से संस्कृत का अनुसरण करते देखी जाती हैं। अपभ्रंश मे नये सुबंतो और तिङन्तज रूपो का व्यवहार पाया जाता है।[६] विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर

१. हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २८।
२. काव्यालंकार—रुद्रट, २-११ की टीका।
३. सिद्धहेम शब्दानुशासन की व्याख्या ८-४-३२।
४. प्राकृत सर्वस्वम्—सप्तदश पाद।
५. हिंदी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० ३१।
६. हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह पृ० ३६।

पहुँचते हैं कि अपभ्रंश ने संस्कृत-व्याकरण के ढांचे को अत्यन्त सरल बना दिया। शब्द रूपों और धातु रूपों की जटिलता बहुत कुछ समाप्त सी हो गई। विभक्ति-चिन्हों की संख्या न्यून हो गई। कारकों के स्थान पर परसर्गों का प्रयोग बहुप्रचलित हो गया। तिङन्तज रूपों का काम प्रायः कृदंतज रूपों द्वारा होने लगा।

अपभ्रंश की अनेक विशेषताओं में से उकार बहुला (उकारान्त की प्रवृत्ति) भी एक है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि ने एक उकारबहुला भाषा के सम्बन्ध में संकेत किया, जिसका क्षेत्र उन्होंने हिमवत् सिन्धु और सौवीर अर्थात् पश्चिमोत्तर भारत बतलाया है।[1] राजशेखर के कथनानुसार अपभ्रंश सकल मरु भूमि, टक्क और भादानक देशों में व्यवहृत होती है।[2] अपभ्रंश का सम्बन्ध राजस्थानी और गुजराती के पश्चात् पंजाबी से घनिष्ठ रूप में स्वीकार किया जाता है। अपभ्रंश के अधिकांश कवियों का प्रादुर्भाव इन्हीं क्षेत्रों में हुआ। 'भाषा-वैज्ञानिकों ने प्रायः अपभ्रंश से राजस्थानी और गुजराती का घनिष्ठ सम्बन्ध दिखलाया है। यद्यपि सीधे अपभ्रंश से पंजाबी का साम्य दिखाने की ओर लोगों का ध्यान बहुत कम गया है, तथापि राजस्थानी और पंजाबी की निकटता के उदाहरण प्रायः दिये जाते हैं। यदि यह सच है तो इन क्षेत्रों में बहुतायत से रचे हुए अपभ्रंश साहित्य की भाषा का यहाँ की बोली से शक्ति ग्रहण करना स्वाभाविक है। अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य इसी क्षेत्र के प्रमुख नगरों और जैन भाण्डारों में प्राप्त हुआ है, जैसे अहमदाबाद, पाटण आदि। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि अपभ्रंश के अधिकांश कवि इसी क्षेत्र के रहने वाले थे अथवा उन्होंने इसी क्षेत्र में अपने साहित्य की रचना की है। धनपाल, हेमचन्द्र, सोमप्रभ, हरिभद्र, जिनदत्त आदि ने गुजरात में, देवसेन ने मालवा में, रामसिंह ने राजपूताना तथा अब्दुल रहमान ने मुल्तान में, अपने ग्रंथ रचे।'[3]

उपर्युक्त विवेचन में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अपभ्रंश का सम्बन्ध भौगोलिक दृष्टि से पश्चिमी भारत से था। परिनिष्ठित अपभ्रंश (नागर अपभ्रंश) पश्चिमी भारत में बोली जाने वाली अपभ्रंश का साहित्यिक रूप था। यही साहित्यिक अपभ्रंश ८वीं से १३वीं शती तक सम्पूर्ण उत्तर भारत की साहित्यिक भाषा हो गई थी। इसी अपभ्रंश-भाषा में कनकामर मुनि ने करकडचरिउ की रचना कर ख्याति प्राप्त की। 'एक ओर इसमें बंगाल के सरह और काराह जैसे सिद्ध कवियों ने दोहाकोशों की रचना की और मिथिला में ज्योतिरीश्वर तथा विद्यापति ने स्थानीय बोली का पुट देकर साहित्यिक

१—हिमवत्सिंधुसौवीरान् येऽन्यदेशान् समाश्रिताः।
उकारबहुला तेषु नित्यं भाषा प्रयोजयेत॥

—नाट्यशास्त्रम्।

२—सापभ्रंशप्रयोगाः सकलमरुभुवष्टक्कभादानकाश्च।

३—हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० ४५।

अपभ्रंश में ग्रन्थ लिखे तो दूसरी ओर मुल्तान में अब्दुल-रहमान का भी कंठ इसी में फूटा। दक्षिण मे मान्यखेट के पुष्पदंत ने इसी वाणी को अपने हृदय का हार बनाया, असये के कनकामर मुनि ने इसी मे चरित गाया।[1]

यद्यपि अपभ्रंश एक विस्तृत भूभाग की भाषा रही है फिर भी स्थान-भेद के कारण उसके कुछ पृथक् स्वरूप भी सामने आते हैं। विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार स्थानभेद (देश-भेद) से अपभ्रंश के अनेक प्रकार पाये जाते हैं।[2] इतना होने पर भी इसके कुछ मुख्य भेदो का संकेत विद्वानो ने किया है। नमिसाधु के अनुसार अपभ्रंश के तीन भेद होते हैं--उपनागर, आभीर और ग्राम्य।[3] इसके अतिरिक्त मार्कण्डेय ने भी तीन भेदो का उल्लेख किया है; जो नमिसाधु द्वारा उल्लिखित नामो से भिन्न हैं। वे भेद हैं— नागर, उपनागर और व्राचड।[4] मार्कण्डेय का नागर अपभ्रंश प्राय. उन्ही विशेषताओं से समन्वित है, जो नमिसाधु के उपनागर अपभ्रंश मे पाई जाती हैं। इसे ही परिनिष्ठित अपभ्रंश की सज्ञा दी जाती है। सिन्धु देश मे व्यवहृत होने वाले अपभ्रंश के रूप को मार्कण्डेय ने व्राचड नाम दिया। उनके अनुसार उपनागर, नागर और व्राचड की सम्मिलित विशेषताओ से समन्वित है। मार्कण्डेय मे यह भी ज्ञात होता है कि कुछ लोग २७ अपभ्रंश मानते रहे हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं--वाचड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर, बार्बर' अवन्त्य, पाचाल, टाक्क, मालव, कैकय, गौड, ओढ्र, वैवपश्चात्य, पाड्य, कौन्तल, सैहल, कलिंग्य, प्राच्य, कार्णाट, कांच्य, द्राविड, गौर्जर, आभीर, मध्यदेशीय, वैताल आदि।[5] लेकिन प्राचीन आचार्यों ने इन भेदो का युक्तिपूर्ण ढग से खण्डन कर दिया है।

आधुनिक युग मे क्षेत्रीय आधार पर भी अपभ्रंश का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया गया। 'सनत्कुमारचरिउ' की भूमिका मे डा० याकोबी ने अपभ्रंश के चार क्षेत्रीय भेदो का उल्लेख किया है--पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी। इसके विपरीत डा० तगारे ने इसके तीन भेद माने हैं--दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी। डा० तगारे ने दक्षिणी अपभ्रंश के अन्तर्गत कनकामर के करकंडचरिउ की गणना की है। इसके अतिरिक्त उनके अनुसार पुष्पदंत के महापुराण, जसहरचरिउ और णायकुमार चरिउ इसी के अन्तर्गत समाविष्ट किये जा सकते हैं। इसके कारणो का उल्लेख करते हुए डा० नामवर सिंह लिखते है— "कारण स्पष्ट है। इसकी रचना—मान्यखेट और असये (बरार) में

१—वही, पृ० ४६।

२— देशभाषा विशेषे तस्यान्तोनैव विद्यते। (विष्णु ३।३)

३—काव्यालंकार (टीका) २।१२।

४—प्राकृत सर्वस्व–४।

५—वही।

हुई, इसीलिये अनुमान के लिए सहज छूट मिल जाती है कि इन काव्यों की भाषा पर स्थानीय बोलियों की छाप अवश्य पड़ी होगी। इन काव्यों की भाषा संबन्धी विशेषताओं को अलग करने के लिए डा० तगारे ने कुछ ऐसे संज्ञा-पद और क्रिया-पद दिखलाये हैं जो परिनिष्ठित अथवा पश्चिमी अपभ्रंश के रूपों से अतिरिक्त हैं।"[1]

इसके विपरीत डा० नामवर सिंह ने पुष्पदंत और कनकामर की भाषा को प्राकृत से प्रभावित माना है। इनकी दृष्टि में दक्षिणी अपभ्रंश नामक एक अलग भाषा की कल्पना निराधार है। डा० नामवर सिंह भारतीय आर्य भाषा की पूर्ववर्ती परम्परा के आधार पर दो क्षेत्रीय भेद माने हैं, जो बहुत कुछ ठीक भी प्रतीत होता है। वे भेद हैं—पश्चिमी और पूर्वी। इनमें पश्चिमी अपभ्रंश का स्वरूप परिनिष्ठित और पूर्वी का विभाषा मात्र था[2]। करकंडचरिउ की भाषा में प्रायः पश्चिमी अपभ्रंश की ही विशेषताएँ मिलती हैं। अब हम विस्तार में न जाकर पश्चिमी अपभ्रंश सम्बन्धी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुये और कतिपय अन्य प्रभावों को विचार करते हुए करकण्डचरिउ की मुख्य ध्वन्यात्मक और पदरचनात्मक विशेषताओं पर दृष्टिपात करेंगे।

ध्वन्यात्मक विशेषतायें

अपभ्रंश-ध्वनियों का सम्बन्ध मुख्य रूप से प्राकृत-ध्वनिसमूह से है। इतना होते हुये भी ध्वनि परिवर्तन की प्रवृत्ति अपभ्रंश में अपेक्षाकृत प्रधान और प्रबल थी। साथ ही कुछ ध्वनि परिवर्तन अपभ्रंश में प्राकृत से सर्वथा भिन्न थे।[3] अन्त्यस्वर का ह्रस्वीकरण अपभ्रंश की विशेष प्रवृत्ति मानी जाती है। प्रायः सभी शुद्ध अपभ्रंश शब्दों का अन्त स्वर में ही होता है। करकंडचरिउ में भी ऐसी विशेषतायें देखने को मिलती हैं—

हियए (हृदये) (१।२), अरियणु (१।५), रायहो (२।१५) राएं (७।५), देविहे (७।१४) आदि।

करकंडचरिउ में संस्कृत के स्वर के ह्रस्व-दीर्घत्व का भेद अनेक स्थानों पर मिलता है—

देविंद ∠ देवेन्द्र; फणिंद ∠ फणीन्द्र, णरिंद ∠ नरेन्द्र आदि।

अपभ्रंश की व्यंजन ध्वनियों में जो कुछ परिवर्तन दिखाई देते हैं, वे प्रायः

---

१. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० ५२।

२. वही, पृ० ५७।

३. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० ५८।

प्राकृत का ही अनुसरण करते हैं। यहाँ आदि और अनादि स्पर्श-व्यंजनो का महाप्राण रूप हो जाता है। करकंडचरिउ में भी ऐसे प्रयोग यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं।

मध्य-व्यंजन लोप

अन्य अपभ्रंश की कृतियो की भांति करकंडचरिउ में भी मध्यव्यंजन का लोप दिखाई पड़ता है, और उसके स्थान पर 'य' तथा 'व' श्रुति का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है, यथा—

पाव (पाय), दिणयर (दिनकर), पय (पद), अणुवम (अनुपम), कलिय (कलित), आविय (आपित), भुवंगम (भुजंगम), गइ (गति), रहिय (रहित), सुयण (सुजन), राय (राज), हंसोवम (हंसोपम), यण (जन), हुआसण (हुताशन), वारिय (वारित), संपय (सम्पदा), सय (शत), सेविय (सेवित), णिय (निज), समिच्छिअ (समिच्छित)[1]।

संयुक्त व्यंजन का समीकरण या किसी एक का लोप

कम्म < कर्म, मंत < मंत्र, कयंत < कृतान्त
गह < ग्रह, कय < कृत, पसंस < प्रशंस

स्वर भक्ति के द्वारा संयुक्त वर्ण का सरलीकरण

सिरि < श्री, भविय < भव्य, सुमिरंत < स्मरन्

वर्ण-परिवर्तन

करकंडचरिउ में छिटपुट वर्ण-परिवर्तन के भी उदाहरण मिल जाते हैं; यथा—

णाण < ज्ञान, संजम < संयम, घर < गृह।

महाप्राण ध्वनियों का ह् में परिवर्तन

अपभ्रंश साहित्य में प्राकृत के अनुसार ही ख, घ, थ, ध, फ, भ महाप्राण-ध्वनियों का प्राय: 'ह्' हो जाता है। करकण्डचरिउ में भी इसके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं; यथा--

सुह < सुख, महोवहि < महोदधि, पह < पथ
दुह < दु:ख, बुह < बुध कोह < क्रोध

---

१. करकण्डचरिउ (भूमिका)—डा० हीरालाल जैन, पृ० १३।

अपभ्रंश मे प्राय 'श' या 'ष' के दंत्य 'स' मे परिणत हो जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है, वह करकन्डचरिउ मे भी देखा जा सकता है[1]—

विणास, सिव, सरण और णिवास आदि।

'न' के स्थान पर रूढिगत 'ण' का भी प्रयोग करकन्डचरिउ मे पाया जाता है—

विणास, लोण, विहीण, जिणवर, दमण, जण, णिरंजण इत्यादि।[2]

डा० हीरालाल जैन ने अपभ्रंश के एक कडवक का भाषात्मक विश्लेषण किया है; जिसके द्वारा उन्होने संस्कृत-प्राकृत के साथ साम्य और वैषम्य का निरूपण किया है। पूरे कडवक मे उन्हे लगभग १०० भिन्न शब्द मिले हैं, जिनमे ३२ शुद्ध तत्सम, ६२ शब्द तद्भव हैं और एक शब्द देशी मिला है। इसके आधार पर डा० जैन इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि करकन्डचरिउ मे लगभग ३३ प्रतिशत शब्द तत्सम और ६२ प्रतिशत तद्भव एवं १ प्रतिशत शब्द प्राय. देशज हैं। इस प्रकार तद्भव शब्दो की संख्या तत्सम से दूनी है। साथ ही डा० जैन ने यह निष्कर्ष भी निकाला है'''यदि प्राकृत से अपभ्रंश का कोई वैशिष्ट्य है तो यह कि यहाँ मध्य-व्यंजन लोप एवं 'य' और 'व' श्रुति का बहुलता से प्रयोग पाया जाता है; जबकि शौरसेनी मे 'त' के स्थान पर 'द' एवं थ के स्थान पर 'ध' भी पाया जाता है तथा सेतुबंध व गाथासप्तशती मे प्रयुक्त महाराष्ट्री मे मध्य-व्यंजन-लोप तो बहुलता से अपभ्रंश के समान ही पाया जाता है, किन्तु यहाँ 'य' और 'व' श्रुति का प्रयोग नही किया गया।[3]।'

पदरचनात्मक विशेषतायें

ध्वन्यात्मक विशेषताओ की दृष्टि से अपभ्रंश भाषा प्राकृत के काफी निकट है। वर्णोच्चारण, ध्वनि-विकार और तद्भव शब्दो के प्रयोग को प्रायः अपभ्रंश ने प्राकृत से ग्रहण किया। पद रचना की दृष्टि से अपभ्रंश का पृथक् महत्व है। अपभ्रंश मे नये सुबन्त और तिङन्त रूप मिलते हैं। प्रातिपदिको की विविधता अपभ्रंश मे समाप्त हो गई। यहाँ पर केवल आकारान्त पुल्लिङ्ग प्रातिपदको का अस्तित्व था। संस्कृत में कारको के लिए १ शब्द के २१ रूप होते थे, प्राकृत मे १२ अपभ्रंश मे घटकर ६ रह गये। शब्दो और धातुओ के रूपों मे स्पष्ट भेद परिलक्षित होने लगा। संस्कृत और प्राकृत मे विभक्ति की जो प्रधानता थी वह अपभ्रंश तक आते-आते गौण हो गयी। निर्विभक्तिक शब्दों और परसर्गों के प्रयोग की प्रक्रिया अपभ्रंश मे निरन्तर बढ़ती गयी।[4]

---

१. करकन्डचरिउ—डा० हीरालाल जैन (प्रस्तावना, पृ० ३३

२. वही।

३. वही।

४. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन—डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, पृ० १२३।

पद विभाग

यास्क के अनुसार पद के चार विभाग किये गये हैं—(१) नाम, (२) आख्यात, (३) उपसर्ग, (४) निपात ।[1] नाम के अन्तर्गत संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण आते हैं। आख्यात मे धातु और क्रियाएँ आती हैं। उपसर्ग और निपात का समावेश अव्यय मे है। पद रचना की प्रक्रिया का विवेचन इसी पद-विभाग के अनुसार किया जाता है। यहाँ पर संक्षेप में करकंडचरिउ मे व्यवहृत मुख्य पदविभागों (विशेष रूप से शब्दों और धातुओं की प्रकृति) के सम्बन्ध मे विचार किया जायगा।

शब्द-प्रकृति

यह पहले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत मे सुप् और तिङ् प्रत्यय मिलकर पद की रचना करते हैं।[2] वहाँ प्रातिपदिक और धातु का स्वतन्त्र प्रयोग असम्भव सा दीखता है। यद्यपि प्राकृत वैयाकरणो ने भी इसका आश्रय लिया, परन्तु धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति घटने लगी और अपभ्रंश मे विभक्तियो के प्रयोग का क्रम निरन्तर क्षरित होने लगा। प्राकृत मे चतुर्थी और षष्ठी के लिए एक ही विभक्ति चिह्न का प्रयोग किया जाता था।[3] प्राकृत मे यह प्रवृत्ति लोकभाषा के माध्यम से आयी।[4] अपभ्रंश मे मुख्य रूप से प्रथमा, षष्ठी और सप्तमी तीन विभक्तियाँ शेष रह गईं।[5] इस प्रकार अपभ्रंश तक आते-आते कारक विभक्तियाँ तीन वर्गों मे समाहित हो गईं। (१) प्रथम वर्ग-प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधन। (२) द्वितीय वर्ग—तृतीया और सप्तमी। (३) तृतीय वर्ग—चतुर्थी, पंचमी और षष्ठी। बाद मे अन्तिम दोनो वर्गों मे प्राय· मिश्रण और विपर्यय से अविकारी और विकारी कारक ही शेष रह गये।[6]

कर्ता और कर्म कारक एकवचन की विभक्ति 'उ' अपभ्रंश की विशेषता है। इस विभक्ति का सम्बन्ध संस्कृत स् = विसर्ग से माना जाता है, जो सघोष वर्णों से पूर्व संधि के नियमानुसार 'ओ' हो जाता है। प्राकृत मे यही 'ओ' कर्ता एकवचन की

१—तथान्येतानि चत्वारि पद जातानि–नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च। यास्क–निरुक्त १।१।८

(अपभ्रंश भाषा का अध्ययन—डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, पृ० १२३)।

२. सुप्तिङन्तं पदम्। पाणिनि, १।४।१४।

३. चतुर्थ्याः षष्ठी—हेम० ८।३।१३१।

४. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन। डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, पृ० १२४।

५. हि०गा० अ० तगारे, पृ० १०४।

६. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० ६१।

विभक्ति के रूप में व्यवहृत होने लगा। लघु प्रयत्न के द्वारा यही विकसित होकर अपभ्रंश में 'उ' रूप धारण करता है।[1]

करकंडचरिउ में इसके प्रचुर उदाहरण मिलते हैं।

चरणु (१।१), पवणु (१।१५), वयणु (४।१)

करकंडचरिउ में व्यवहृत दूसरी ध्यातव्य षष्ठी विभक्ति 'हो' है। इसका सम्बन्ध संस्कृत की 'स्य' और प्राकृत 'स्स' से माना जाता है—जिणवरहो (१।१) वणवालहो (१।१५) सुरेसरहो (४।१)। साथ ही संस्कृत और प्राकृत की भाँति सप्तमी की 'ए' विभक्ति का प्रयोग करकंडचरिउ में उपलब्ध है। हियए (१।२), दीवदीवे (१।३), मुहकमले (१।५)।

इसके अतिरिक्त अन्य कारक विभक्तियों का प्रयोग गौण रूप मे मिलता है। यथा—एण (तृतीया विभक्ति), कारणेण (१।१०), जेण (१।१५), इ—(सप्तमी) णियमणि (१।११), वणम्मि (१।।१४) मण्णमि (१।१४)। इहे—(षष्ठी) कुंमिहे (१।१६), इहें—(सप्तमी) दिसिहें (२।२) 'एण' का अपभ्रंश में प्राकृताभास ही समझना चाहिये।

संस्कृत में जहाँ लिंगों की संख्या तीन थी और वहाँ पर लिंग सम्बन्धी अनेक जटिलतायें थीं। प्राकृत मे यह लिंग विधान अपेक्षाकृत सरल हो गया। वहाँ शब्द रूप प्रायः पुलिंग या स्त्रीलिंग मे रह गये, परन्तु लिंग सम्बन्धी अव्यवस्था, वहाँ भी बनी रह गयी। अपभ्रंश मे यह अव्यवस्था दूर सी होती दिखायी देती है। अपभ्रंश मे लिंग का निर्णय शब्द प्रकृति पर निर्भर करने लगा। अपभ्रंश की लिंग सम्बन्धी इस प्रवृत्ति के उदाहरण करकंडचरिउ मे भी उपलब्ध होते हैं--'कुंभइं (१।१६)'।

संख्या के बोध के लिए तीन वचनों का प्रयोग प्राकृत एवं भारतीय आर्यभाषा में मिलता है। सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण मध्य भारतीय आर्यभाषा (प्राकृत, अपभ्रंश) में एकार्थ एकवचन और अनेकार्थ बहुवचन ही रह गये।[2] करकंड चरिउ में भी यही प्रवृत्त देखी जाती है।

धातु-प्रकृति

काल-रचना की दृष्टि से अपभ्रंश धातुओं के मुख्य रूप से तिङन्त रूप लट्, लोट् और लृट् लकारो के मिलते थे। करकंड चरिउ मे उत्तमपुरुष एकवचन में सामान्य वर्तमानकाल की क्रिया के लिए 'मि' प्रत्यय का प्रयोग मिलता है, जैसे सरमि। यह 'मि' संस्कृत और प्राकृत के समान है। इसी प्रकार से अन्य पुरुष बहुवचन के लिए 'इ'

---

१. करकडचरिउ—डा० हीरालाल जैन (प्रस्तावना), पृ० ३४।

२. अपभ्रंश भाषा का अध्ययन। डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, पृ० १२७।

प्रत्यय का प्रयोग मिलता है, यथा—होइ। यह संस्कृत के अन्य पुरुष एकवचन के 'ति' में 'त्' का लोप होने से बचा हुआ रूप है। धातु सम्बन्धी अन्य विशेषतायें करकंडचरिउ में अन्य अपभ्रंश काव्यों की भांति ही दिखायी देती हैं। यहाँ भी कृदंतज रूपों का बाहुल्य दिखलाई पड़ता है।

छंद

करकंडचरिउ में मुख्य रूप से पज्झटिका, अलिल्लह, पादाकुलक, समानिका, तूणक, स्रग्विणी, दोधक, सोमराजी, भ्रमरपदा भ्रमरपट्टा, चित्रपदा, प्रमाणिका, चन्द्रलेखा, घत्ता आदि छन्दों का व्यवहार हुआ है।

करकंडचरिउ की दश संधियों में क्रमशः १७, २१, २२, १७, १६, १६, १६, २०, २४ तथा २१ कुल २०१ कड़वक हैं। इनमें निम्नलिखित को छोड़कर पज्झटिका छन्द का प्रयोग हुआ है।[1]

पज्झटिका

इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्रायें होती हैं। अन्त में जगण अर्थात् लघु, गुरु और लघु मात्रायें आती हैं, तथा प्रत्येक दो चरणों में परस्पर यमक (तुक मिलान) होता है।

अलिल्लह

यह छन्द पज्झटिका का ही एक रूप है जिसमें मात्राओं की संख्या व तुक उसी प्रकार रहती है। विशेषता केवल यह है कि अन्त मे गुरु लघु मात्रायें न होकर दोनों ही, लघु होती हैं। ऐसे एक-एक दो-दो यमक अनेक कड़वकों के बीच पाये जाते हैं जैसे—१,१,६; १,२,२–३; २,१०,१–२; २,१०,६; २,१४,४; २,१५,४; २'१६,७; ३,३,६; ३, १६,४; ६,१५,१; १०, २१।

पादाकुलक

यह भी पज्झटिका का एक प्रकार है जिसमें १६ मात्रायें तथा यमक तो उसी प्रकार होता है, परन्तु उसकी अंतिम मात्राओं के लघु-गुरु होने का कोई नियम नहीं अतएव जिनमें पज्झटिका व अलिल्लह के पूर्वोक्त नियम घटित नहीं होते। इसका प्रयोग निम्न पद्यो मे पाया जाता है—

१, ५, २,७,१–३; २,१६,५; ३,४,२–३; ३,२०; ३,२१,१; ३,२१,३–८; ३,२२,१–३; ५,१४,१; ४,१५,८; ५,६,१–७; ५,१०; ५,१३; ६,५,६; ७,५,१; ७,१४; ८,१६,१; ६,५; १०,१; १०,६; १०,६; १०,१५,१–३।

---

१. करकंडचरिउ–डा० हीरालाल जैन (प्रस्तावना), पृ० ३४, ३५।

इसमें बहुधा चरण की अन्तिम मात्रा यद्यपि लघु दिखाई देती है, तथापि छन्द की दृष्टि से उसे गुरु ही मानना पड़ता है। अलिल्लह और पादाकुलक का यह भेद इतना सूक्ष्म है कि कहीं-कहीं एक ही यमक का प्रथम चरण अलिल्लह और द्वितीय पादाकुलक पाया जाता है; जैसे—६,५,४।

समानिका

यह वर्णात्मक चरणोवाला यमक सहित वर्णवृत्त है जिसकी गण-व्यवस्था है—र ज ग ल। इसका प्रयोग १–७; १–८; १–१२; १–१३; १–१७ (आधा) ३–१७; ५–१; ७–१०; ८–५; और १०–१७ कुल १० कडवको में पाया जाता है।

तूणक

इस छन्द का प्रत्येक चरण समानिका का द्विगुणित होता है, किन्तु अन्त मे गुरु-लघु न होकर मात्र एक गुरु वर्ण ही होता है जिससे प्रत्येक चरण मे वर्णों की संख्या सोलह न होकर पन्द्रह ही रह जाती है। इसका प्रयोग १-१७ के अन्तिम पाच यमको मे किया गया है।

स्रग्विणी

यह भी वर्णवृत्त है जिसके प्रत्येक चरण मे बारह वर्ण चार रगण के रूप मे रखे जाते हैं। इसका प्रयोग ३-१४ और ८-२ इन दो कडवको मे हुआ है।

दीपक

इसके प्रत्येक चरण मे दश मात्रायें होती हैं और अन्त मे लघु मात्रा आती है। इसका प्रयोग ३-१५; ३-१८; ५-११; ६-७ और ६-२० इन पांच कडवको मे देखा जा सकता है।

सोमराजी

इस वर्णवृत के प्रत्येक चरण मे छह वर्ण य य गणानुसार पाये जाते हैं। इसका प्रयोग ४-१६ व ८-४ इन दो कडवको मे पाया जाता है। इस छन्द का दूसरा नाम संखनारी भी है।

भ्रमरपदा या भ्रमरपट्टा

यह एक षट्पदी गेय छन्द है जिसके प्रत्येक चरण मे चौबीस मात्राएं होती हैं तथा १० और १८ मात्राओं पर यति। इसका प्रयोग ७-११ में करुण रसात्मक विलाप के लिये बहुत उपयुक्त रूप से किया गया है। इस छन्द का नाम नयनन्दिकृत

सुदंसणचरिउ में उपलब्ध होता है। वहां इसका प्रयोग ८, २६ तथा ११, ६ में प्राप्त होता है [1]

चित्रपदा

इस वर्णवृत्त के प्रत्येक चरण मे आठ वर्ण दो मगण और दो गुरु के रूप में पाये जाते हैं। इसका प्रयोग ८–३ में देखा जा सकता है।

प्रमाणिका

इस वर्णवृत्त के प्रत्येक चरण में आठ वर्णभुज र गण और दो गुरु के क्रम से आते हैं। इसका प्रयोग ६–३ मे देखा जा सकता है।

चन्द्रलेखा

यह विषमपादात्मक छन्द है जिसका प्रथम चरण सोलह मात्रिक पद्धडिया होता है तथा उसका यमक पद्धडिया के आधे अर्थात् आठ मात्राओं के द्वितीय चरण के साथ बैठाया जाता हे। इसका प्रयोग १०–२६ मे देखा जा सकता है। इसका नाम नयनन्दिकृत सुदसण चरित्र मे मिलता है जहाँ इसका प्रयोग २–६ और १०–७ मे प्राप्त होता है।[2]

घता

यह छन्द विविध प्रकार का होता है, और उसका प्रयोग प्रत्येक कड़वक के अन्त मे किया जाता है। एक सन्धि मे वह प्रायः एक रूप ही रहता है और इसीलिये वह ध्रुवक कहलाता है। करकण्डुचरिउ की प्रत्येक सन्धि के आरम्भ मे एक-एक ध्रुवक पाया जाता हे। प्रथम सन्धि का ध्रुवक व घत्ता षट्पदी है जिसके प्रत्येक चरण मे ३१ मात्रायें हैं तथा १० और १८ पर यति है।

शेष समस्त सन्धियो का ध्रुवक चतुष्पदी है और चरण के बीच पन्द्रह मात्राओं के बाद यति पाई जाती है। किन्तु कहीं-कही घत्ता ऐसे भी आये हैं जिनमे प्रथम यति तो १५ मात्राओ पर ही है, परन्तु दूसरे चरण-भाग मे १२, १३ या १४ मात्रायें ही हैं; १५ या १६ नही। उदाहरण के लिए ६–४; ६–६; ६–७; ६–१०; १०–७ आदि कड़वकों के घत्तो को देखा जा सकता है।

---

१. करकण्डुचरिउ—डा० हीरालाल जैन (प्रस्तावना), पृ० ३५।

२. वही, पृ० ३५।

पांचवाँ अध्याय

मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्य और करकंडचरिउ : तुलनात्मक अध्ययन

पौराणिक और प्रेमाख्यानमूलक प्रबन्ध काव्य

प्रेमाख्यानो का मुख्य विषय किसी पुरुष और स्त्री का क्रमश. किसी अन्य सुन्दर रमणी या सुन्दर पुरुष पर प्रेमासक्त हो जाना है। प्रेमी अपने प्रेम पात्र की तरफ उसका प्रत्यक्ष दर्शन अथवा गुण श्रवण के द्वारा भी आकर्षित होता है। वह उसे प्राप्त करने का प्रयास करता हे तथा यदि इस मार्ग मे किसी प्रकार का विघ्न भी उपस्थित होता है तो वह उसे हटाने का भरपूर प्रयत्न करता है। प्रेमी को अपने प्रेमपात्र का अल्प वियोग भी असह्य हो जाता हे तथा प्रेमाख्यानक काव्यो मे प्रिय को प्रेयसी के लिए व्यग्र और परेशान दिखाया जाता है। ठीक इसी तरह प्रेमाख्यानो का अन्त ज्यादातर प्रेमी तथा प्रेमिका के मिलन मे ही होता हे, लेकिन कभी-कभी इनमे, इसके विरुद्ध उनके प्रयासो की असफलता भी चित्रित की जाती है। विशुद्ध प्रेमाख्यानो मे प्रेमी और प्रेमपात्र का प्रेम प्रारम्भ से ही एक समान प्रदर्शित होता है तथा दोनो ही मिलन के लिए उद्यत दिखाई पडते है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सर्वप्रथम एक पक्ष की ओर से ही प्रयत्न किया जाता है और यदि प्रेमी बीर पुरुष हे तो अपनी प्रेयसी का हरण करने के ध्येय से शत्रुओ से भयानक युद्ध भी करता हे। इसके अतिरिक्त निकृष्ट श्रेणी के कामोन्मत्त प्रेमी अधिकतर कतर ब्योंत (छल-कपट) का भी सहारा लेते हैं तथा हत्यायें भी कराते हैं। प्रेमाख्यानो के प्रेमियो की सफलता प्राय· उनके प्रेमपात्रो के साथ परिणय-सम्बन्ध के स्थापित होने मे ही देखी जाती है। लेकिन भारतीय वाङ्मय मे प्रेम का एक स्वरूप वह भी प्राप्त होता ह जिसमे पत्नी अपने पातिव्रत धर्म का पूर्ण निर्वाह करती है तथा अपने पति के लक्ष्य भ्रष्ट हो जाने पर भी उसका साथ नही त्यागती।

पुरुरवस् एवं उर्वशी

भारतीय प्रेमाख्यानो की परम्परा बहुत प्राचीन है तथा उनके कुछ उदाहरण 'ऋग्वेद सहिता' मे भी पाये जाते हैं। 'ऋग्वेद' के दशम मंडल वाले ९५वें सूक्त मे उर्वशी तथा पुरुरवस् का प्रेमाख्यान प्राप्त होता है जिसके बारे मे कहा जाता है कि 'अभी तक जितनी भारतीय यूरोपीय प्रेम-कहानियाँ ज्ञात हैं उनमे यह सर्वप्रथम है और हो सकता है कि सम्पूर्ण विश्व के प्रेमाख्यानो मे भी यह प्राचीनतम समझा जा सके।'[1]

१—'It is the first Indo-European love, story known and may even be the oldest love-story in the world'.

N. M. Penjer (The Ocean of Story-London, 1924), P. 245.

इसकी प्रणय कथा के भीतर प्रेमाभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रतीकात्मकता भी पर्याप्त रूप मे मिलती है। यह अपने मूल रूप में पुरुरवस् एवं उर्वशी का संवाद मात्र है जो उक्त सूक्त के १८ मंत्रो में से कई एक में प्रकट होता है।[1]

यम तथा यमी

ऋग्वेद का एक दूसरा संवाद जो उसके दशम मण्डल के दशम सूक्त के रूप मे प्राप्त होता है एक दूसरे प्रेमाख्यान का मूलरूप माना जाता है। इस सूक्त के अन्तर्गत १४ मन्त्र आते हैं जिनमे यम तथा यमी नामक दो भाई-बहनो की बातचीत वर्णित है। यमी यम की सगी बहन है जो उसके साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छुक है तथा कामासक्त होकर प्रेम भरे शब्दो द्वारा उसे भोग-विलास के लिए निमन्त्रण देती है। लेकिन उसका भाई यम इसे अच्छा नही समझता और भाई-बहन के बीच ऐसे सम्बन्ध का स्थापित होना अस्वाभाविक घोषित करना चाहता है। वह पूरे आत्म-विश्वास के साथ कहता है कि ऐसा आचरण करना सहज नियमो के विरुद्ध है तथा देवताओ द्वारा भी यह तिरष्कृत है। लेकिन यमी के ऊपर इन सारी बातो का कुछ भी प्रभाव नही पडता। अन्ततोगत्वा यमी उसे कायर तथा निर्बलतक कह डालती है और कहती है कि तुम चाहते हो कि मुझे न वरण कर किसी और को ग्रहण करो। यह सुनकर यम भी उत्तर देता है कि 'जाओ तुम भी किसी अन्य पुरुष का ही आलिंगन करो और उसके साथ वृक्ष से लता की भाँति चिपक जाओ। तुम उसके हृदय पर अधिकार करो और वह तुम्हारे हृदय पर विजय प्राप्त कर ले और तुम दोनो एक साथ पूरे आनन्द के साथ अपना जीवन व्यतीत करो।'[2] इन दोनो भाई-बहनो के संवाद का यही पर अन्त हो जाता है और ज्ञात नही होता कि पूरी कथा का रूप क्या रहा होगा। इस प्रेमाख्यान के अधूरे अशो की पूर्ति कही भी की गई नही प्राप्त होती तथा न इसको आधार बनाकर कभी किसी परवर्ती कवि ने कोई रचना करना उचित समझा। लगता है सामाजिक बन्धनो के क्रमिक विकास द्वारा उसका कथानक अधिकतर हेय कहलाता चला गया होगा और कालान्तर मे उसकी पूर्ण उपेक्षा कर दी गई होगी।

श्यावाश्व

'ऋग्वेद' के ही पंचम मण्डल के ६१वें सूक्त मे एक अन्य कथा श्यावाश्व की मिलती है, जिसे भी किसी प्रेमाख्यान की रूपरेखा माना जा सकता है। इस सूक्त में १६ मन्त्र आये हैं तथा इसके पहले वाले ५२वें से लेकर ६०वें सूक्तो तक के मन्त्रो से,

---

१—मन्त्र १, २, १४, १५ और १६।

२—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ७ से उद्धृत।

ज्ञात होता है कि उनका क्रम कदाचित् एक ही है। परन्तु उस कथा के मूल सूत्रों का परिचय तब तक नहीं मिलता जब तक उन मन्त्रों के लिए सायण भाष्य का भी अध्ययन न किया जाय। इसके द्वारा स्पष्ट होता है कि रथवीति नाम के राजा ने अर्चनाना को होतृ कार्य के लिए नियुक्त किया था जो श्यावाश्व के पिता थे। जिस समय यज्ञ का कार्य सम्पन्न हो रहा था, उसी समय अर्चनाना की निगाह रथवीति की राजपुत्री पर गई। उन्होंने उस लडकी के सौन्दर्य से वशीभूत होकर उसे अपने पुत्र श्यावाश्व की पत्नी बनाना चाहा तथा उसे रथवीति से माँग भी लिया। यद्यपि रथवीति ने इस प्रस्ताव को मान लिया, लेकिन उनकी महिषी को यह बात अच्छी नहीं जँची और उन्होने श्यावाश्व पर ऋषि न होने का दोषारोपण किया। इससे श्यावाश्व को बहुत पश्चाताप हुआ तथा उन्होंने उस सुन्दरी का विवाह करने के लिए कठोर तप किया। परिणामस्वरूप उनको मरुतो के दर्शन प्राप्त हुए। उन्होंने उनकी बड़ी प्रार्थना की और उन्हे खुश कर उनसे ऋषित्व की उपाधि प्राप्त की। अन्त मे उनका परिणय रथवीति की कन्या के साथ सम्पन्न हो गया।

'ऋग्वेद संहिता' के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली इन अपूर्ण एवं अव्यवस्थित कथाओं पर यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो साफ पता चलेगा कि ये उन दिनो की बातो का उल्लेख करती हैं जब समाज के भीतर प्रेम सम्बन्धी स्वच्छन्दता और उच्छृङ्खलता अपने प्रचण्ड रूप का त्याग करती जा रही थी। यम और यमी का संवाद इस बात का सबूत है कि सामाजिक नियमो का नियंत्रण अभी तक व्यापक न हो पाया था। उर्वशी का पुरुरवस् के प्रति आकर्षित होना और उसी प्रकार यमी का भी यम के प्रति प्रस्ताव करना तत्कालीन नारियों के समानाधिकार की याद को ताजी करता है।[१] इससे यह भी प्रमाणित किया जा सकता है कि प्राचीन भारतीय स्त्रियाँ, उस समय की पुरुषो की तुलना मे, गंभीर तथा विशाल प्रेम द्वारा कहीं अधिक अनुप्राणित रहती रही होगी और वह किसी तरलता से अपवित्र भी नही होता होगा। लेकिन इस स्थल पर यह विचारणीय है कि यम एवं यमी के संवाद में जहाँ यम का अधिक ध्यान मर्यादा पर केन्द्रित रहता है वहां पुरुरवस् तथा उर्वशी वाले मे उर्वशी ही ऐसा आचरण करती दिखाई पड़ती है। ज्ञात नही इस तरह की मर्यादा—रक्षा का सम्बन्ध मात्र उस समय के भारतीय समाज के ही साथ है या किसी स्वर्गीय समाज से, कारण इसकी हामी भरने वाले यम और उर्वशी इन दोनो के ही वाक्यों से जाहिर होता है कि वे किसी दूसरे लोक की तरफ भी इंगित कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त उर्वशी को अपना बनाने के लिये जिस तरह पुरुरवस् को अग्नि की प्रतिष्ठा करनी पड़ी, ठीक उसी तरह श्यावाश्व

१—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ८।

ने भी कठोर तप किया। श्यावाश्व का प्रयास इस बात का ज्वलन्त दृष्टान्त है कि किसी के प्रति अपने स्नेह की सफलता के लिये कहां तक आत्म-त्याग किया जा सकता है। प्रेम के निमित्त तथा एक प्रेमी के स्तर पर अप्सरा की योनि तथा मानवयोनि में कोई खास अन्तर नहीं है तथा न इस तरह किसी राजकन्या एवं ऋषिकुमार में भी है। श्यावाश्व एव राजकुमारी के इस सम्बन्ध की समता मे सुषेण राजा की पुत्री सुलोचना और ऋषि कुमार वत्स के प्रेम की कथा का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसका विवेचन काश्मीरी पंडित सोमदेव के विख्यात ग्रंथ 'कथा सरित्सागर' मे प्राप्त होता है।[1]

पौराणिक प्रेमाख्यान

वैदिक साहित्य के अन्तर्गत उपलब्ध होने वाले प्रेमाख्यानो का मूल उत्स (स्रोत) क्या है इसका परिचय नही मिलता। लेकिन इतना साफ है कि बाद मे उनमें से उर्वशी एवं पुरूरवस् की प्रेम-कथा की एक परम्परा ही चल पडी। 'महाभारत के 'वनपर्व' वाले ४६वें परिच्छेद मे इसका एक वर्णन मिलता है तथा इसका उल्लेख 'हरिवंश पुराण' मे भी उसी प्रकार मिलता है। पुरूरवस् इधर एक राजवंश के पूर्वपुरुष बन जाते हैं। विष्णुपुराण' के अनुसार वे बुद्ध तथा इड़ा की सन्तान हैं। इसी से उन्हे यत्र-तत्र 'ऐड' या 'ऐल' भी कहा गया प्राप्त होता है। 'विष्णुपुराण' से ज्ञात होता है कि उर्वशी को मित्रावरुण ने शाप दियाथा इसी कारण उसने मृत्युलोक में रहना चाहा तथा यही पर उसने पुरूरवस् को भी देखा। इसके बाद आने वाला इस कथा का अंश प्रायः उसी तरह का है जिस तरह 'शतपथ ब्राह्मण' मे मिलता है। खास भेद मात्र यही है कि कुरुक्षेत्र मे उर्वशी केवल एक ही बार नही आती है, बल्कि उसका वहां पर हर वर्ष आना होता है तथा उसे पुरूरवस् से पांच पुत्र पैदा होते हैं जिनमें से पहले का नाम यहा पर 'आयुस' दिया हुआ है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुपुराण' वाले गंधर्व पुरूरवस् से जाहिर है कि जो अग्नि तुम ले जा रहे हो उसे वेदो के विधानानुसार तीन भागो मे कर देना।[2] इस तरह इस पुराण के अन्तर्गत 'शतपथ ब्राह्मण' वाली कथा को ही ज्यादा विस्तृत कर दिया गया है एवं उसकी बहुत सी बातें यहां स्पष्ट हो गई हैं।

विक्रमोर्वशीयम्

उर्वशी तथा पुरूरवस् के प्रेमाख्यान की दृष्टि से महाकवि कालिदास का विख्यात नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' भी विचारणीय है। इसके कथानक के अध्ययन से पता चलता

1—'The Ocean of Story' (28-35) Pt. 24-7.

२—'विष्णुपुराण' (अंश ४ अध्याय ६) श्रीमद्भागवत (स्कन्ध ९, अध्याय १४) भी।

है कि यह कथा पूर्ववर्ती जैसी नही है। इसी तरह इस प्रेमाख्यान का एक अन्य रूप सोमदेव के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कथासरित्सागर' मे भी प्राप्त होता है।

'महाभारत' का 'नलोपाख्यान'

उर्वशी तथा पुरूरवस् के प्रेमाख्यान की ही तरह नल तथा दमयन्ती की भी एक प्रेम कथा है जिसका उल्लेख यहाँ आवश्यक हे। इस कथा का परिचय वैदिक साहित्य मे कही नही मिलता। सबसे पहले, महाभारत मे ही यह 'नलोपाख्यानम्' के रूप मे आती है। 'महाभारत' के बनपर्व वाले ५३वें से लेकर ७९ वें अध्याय तक यह प्रेमाख्यान चलता है। यही कथा सोमदेव के 'कथासरित्सागर' मे भी आयी है। 'कथा सरित्सागर' मे इसे अपेक्षाकृत कम स्थान मिला है तथा यहा इसमे उतनी सरसता भी नही आ पाई है। नाम मात्र के परिवर्तनो के अतिरिक्त दोनो ग्रन्थो में कथा का प्रारम्भ प्राय एक ही तरह से हुआ है। कथावस्तु की सादगी, उसकी सभी घटनाओं का स्वाभाविक प्रवाह, उसके नायक तथा नायिका यानी राजा नल एवं दमयन्ती के सरल स्वभाव, निश्छल प्रेम एवं दृढ विश्वास तथा सम्पूर्ण कहानी मे भरा पूरा भारतीय वातावरण का सफल चित्रण इन दोनो रचनाओ मे एक समान दर्शनीय हे। ठीक इसी कथा को अंशत या पूरे रूप मे आधार बनाकर अनेक अन्य रचनाओं की भी सृष्टि हुई है। ९वी ईस्वी शताब्दो के केरल कवि वासुदेव ने नल तथा दमयंती के पुनर्मिलन के बाद वाली कथा को आधार बनाकर चार सर्गो के 'नलोदय' नामक काव्य की रचना की है। इसी तरह १२वी ईसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे श्री हर्ष कवि ने अपने विख्यात महाकाव्य 'नैषधीयम्' की भी रचना की है। इसकी सम्पूर्ण कथा का वर्णन, उसके २२ सर्गों मे, बहुत ही कौशल के साथ किया गया है। कथा की दृष्टि से यहाँ भी कोई विशेष मौलिक भेद दिखलाई नही पडता।

दुष्यन्त और शकुन्तला

पौराणिक साहित्य के अन्तर्गत एक तीसरा विख्यात प्रेमाख्यान शकुन्तला एवं दुष्यन्त विशेष उल्लेखनीय हे, जो मूलत महाभारत का ही है। इसकी कथा साधारणत: 'शकुन्तलोपाख्यान' कही जाती हे। इसका वर्णन 'महाभारत' के आदि पर्व मे हे। इसका लगभग वही रूप 'श्रीमद्भागवत' के नवें स्कन्ध मे भी प्राप्त होता हे। 'महाभारत' वाली लम्बी कथा से यह बहुत भिन्न है। इसमे शकुन्तला तथा दुष्यन्त के बीच वाले प्रेम-प्रसंग को तरफ ज्यादा ध्यान नहो दिया गया है, बल्कि पौराणिक परम्परानुसार वंशावली वर्णन के चक्कर में उसे यो ही निबटा दिया गया है। यहाँ पर सम्पूर्ण प्रेमाभिव्यक्ति मात्र दुष्यन्त की तरफ से ही की गई कही जा सकती है वह

भी केवल औपचारिकता के निर्वाह के लिये ही। उसी प्रकार यहाँ पर दुष्यन्त द्वारा त्यक्त शकुन्तला और उसके पुत्र की तरफ से पुनः स्वीकृति भी केवल आकाशवाणी के आदेश-मात्र से ही हो गई मालूम पड़ती है।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'

महाकवि कालिदास ने इस छोटे से कथानक को ही आधार बनाकर अपने सुप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की रचना की है। इस रचना का ध्येय मात्र वंशावली का वर्णन ही नहीं, अपितु मानवीय हृदय के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन भी है। कालिदास ने अपने रचना-कौशल के माध्यम से इसके मुख्य पात्रों को सजीव बना दिया है। इसीलिये इसके कथानक का रूप आदर्श प्रेमाख्यान जैसा बन पड़ा है। इस नाटक में अंगूठी का वर्णन देखकर बौद्धों के 'कट्टहारि जातक' का स्मरण हो जाता है, जिसकी संक्षिप्त कथा यहाँ दी जाती है—'वाराणसी का राजा ब्रह्मदत्त अपने उद्यान में गया और वहाँ पर किसी गा-गाकर लकड़ी चुनती हुई स्त्री को देखकर उस पर आसक्त हो गया। उसने उसके साथ सहवास भी किया और उसे अपना गर्भ रहा जानकर, उसे एक अंगूठी दे दी कि यदि लड़की उत्पन्न हो तो वह उस चिह्न को फेंक देगी, किन्तु यदि लड़का होगा तो वह उसे उसके पास राज दरबार में उपस्थित करेगी। किन्तु लड़का होने पर जब वह उसे लेकर अंगूठी के साथ राजदरबार में पहुँची तो उस राजा ने लज्जावश अगूठी अथवा पुत्र किसी को भी स्वीकार नहीं किया और इसके लिये 'क्रिया' करनी पड़ी।'[1] यद्यपि शकुन्तला वाली कथा से इसमें कुछ भेद जरूर है लेकिन इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कवि को इस 'जातक' से भी कुछ प्रेरणा मिली हो।

उषा तथा अनिरुद्ध

पौराणिक साहित्य के प्रेमाख्यानों में उषा तथा अनिरुद्ध की प्रेमकथा भी काफी लोकप्रिय है। यह सर्वाधिक विस्तार के साथ 'हरिवंशपुराण' में है। यह 'ब्रह्मवैवर्त्त'-पुराण'[2], 'विष्णुपुराण',[3] 'शिवपुराण',[4] 'ब्रह्मपुराण',[5] 'अग्निपुराण',[6] एवं श्रीमद्भाग-

---

१—'जातककथा' (प्रथम खण्ड, पृ० १७३–६) हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
२—'ब्रह्मवैवर्तपुराण' (अ० ११४–२०)।
३—'विष्णुपुराण' (अं० ५, अ० ३२–३)।
४—'शिवपुराण' (ख० ५, अ० ५१–४)।
५—'ब्रह्मपुराण' (अ० २०५–६)।
६—'अग्निपुराण' (अ० १२)।

वतपुराण',[1] में भी लगभग ऐसी ही मिलती है। उषा एवं अनिरुद्ध के इस प्रेमाख्यान में अधिक उल्लेखनीय बात, स्वप्न दर्शन द्वारा प्रेम उत्पन्न होने तथा उसके बाद उस के फिर चित्र दर्शन द्वारा पुष्टि पाकर विकसित होने मे देखी जा सकती है। इसके दृष्टान्त अभारतीय प्रेमाख्यानो मे भी प्राप्त होते हैं। उषा तथा अनिरुद्ध की प्रेम कथा सोमदेव के 'कथासरित्सागर' मे भी मिलती है[2] तथा वह इस 'भागवत' वाली कथा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। भेद बस इतना ही है कि यहाँ उषा गौरी की उपासना करके उनसे वर प्राप्त करती है कि जिस किसी के साथ वह अपने स्वप्न में रमण करती दीख पडेगी वही उसका पति होगा। बाणासुर के विषय मे, इस कथा के अन्तर्गत केवल इतना ही वर्णन प्राप्त होता है कि वह अनिरुद्ध के प्रति उषा के प्रेम की सूचना पाकर क्रुद्ध हो जाता है, लेकिन अनिरुद्ध उसे अकेले तथा अपने पितामह कृष्ण की सहायता से भी हरा देते हैं। इस कथा मे शिव के किसी युद्ध का उल्लेख नही मिलता। प्रेमलीला के प्रसंग मे प्रेयसी के लिये युद्ध करना तथा उसका उसके पिता के घर से बलात्कारपूर्वक हरण कर लाना इस प्रेमाख्यान की एक विशेषता है।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणी

श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण उस समय करते हैं जब वह पूर्व नियोजित योजना के अनुसार देव-दर्शन के लिए जाती है। बहरहाल उनके विवाह को 'राक्षस विवाह' की ही संज्ञा दी गई है जो दुष्यन्त तथा शकुन्तला वाले ,गाधर्व-विवाह' से भिन्न है। उषा तथा अनिरुद्ध के विवाह से भी इसे कुछ भिन्न कहा जा सकता है कारण वहाँ भी दोनो प्रेमियो का सम्बन्ध पूर्व से ही स्थापित हो गया रहता है। श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी के प्रेमाख्यान की कथा 'विष्णुपुराण'[3] मे भी प्राप्त होती है परन्तु वहाँ पर इसका विवरण संक्षिप्त ही मिलता है। किन्तु वहाँ पर उक्त प्रकार के राक्षस विवाह का उल्लेख साफ शब्दो मे किया गया है। 'हरिवंशपुराण' मे भी यह कथा मिलती है।[4] लेकिन वहाँ पर दोनो प्रेमियो के गुणश्रवण द्वारा प्रेमासक्त होने पर भी, श्रीकृष्ण एवं बलराम रुक्मिणी के यहाँ, उसका शिशुपाल के साथ विवाह देखने जाते हैं तथा उसके पहले ही, रुक्मिणी को देव-मन्दिर के समीप देखकर, श्रीकृष्ण उसका हरण करते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रेम कथा का वर्णन बहुत से मध्ययुगीन लेखको ने भी किया है तथा उन्होंने इसे अपने

१—'श्रीमद्भागवत' (स्कं० १० अ० ६२–३)।
२—'कथासरित्सागर' (दी औसन आफ स्टोरी, चेप्टर ३१–४०)।
३—'विष्णुपुराण' (अ० अ० २६–८)।
४—'हरिवंशपुराण' (अ० ५९–६०)।

काव्य-कौशल द्वारा सजाया व सवाँरा भी है। इस सन्दर्भ मे राठौर-नरेश प्रिथीराज द्वारा रचित 'बेलिक्रिसन रुकमणीरी' का भी नाम लिया जा सकता है जिसमें 'श्रीमद्-भागवत' के कोरे आख्यान मात्र को काव्यात्मक रूप प्रदान किया गया है। इसके अलावा इस विषय पर लेखनी चलाने वाले अनेक लेखकों एवं कवियों ने 'रुक्मिणी हरण' का नाम 'रुक्मिणी स्वयंवर' भी कर दिया है। ऐसे नामकरण वाली कृतियों में महानुभाव पंथी नरेन्द्र कवि की मराठी रचना 'रुक्मिणी स्वयंवर' का उल्लेख किया जा सकता है।

प्रद्युम्न तथा मायावती

श्रीकृष्ण की उक्त पत्नी रुक्मिणी के ही गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म होता है जिन्हें शिशु के रूप मे शम्बर नामक राक्षस चुरा ले जाता है। वह उन्हे जल मे फेंक देता है जहाँ वे मछली के पेट में चले जाते हैं तथा उस मछली को मछुए पकड़ कर शम्बर को भेंट मे देते हैं। रसोइये द्वारा पकाने के लिए चीरी जाने पर उस मछली के पेट से एक सुन्दर बालक निकलता है, जिसका पालन शम्बर की पत्नी मायावती द्वारा किया जाता है। वही मायावती समयानुसार तथा नारद द्वारा सकेत प्राप्त करने के कारण उस बालक को पति के रूप मे भी देखने लगती है और वह उसी की प्रेरणा से शम्बर को युद्ध मे मारकर उसे अपने माता-पिता कृष्ण एवं रुक्मिणी के यहाँ लाता है और उससे विवाह भी करता है। मायावती तथा प्रद्युम्न की यह कथा 'श्रीमद्भागवत पुराण' के दशम् स्कन्ध वाले ६५वें अध्याय मे इसी रूप मे मिलती है। पुन: इसी को 'हरिवंशपुराण' के १६३वें अध्याय से लेकर उसके १६७वें अध्याय तक मे भी देखा जा सकता है। 'श्रीमद्भागवत' मे इसका उल्लेख मिलता है कि मायावती पूर्वजन्म मे रति थी तथा प्रद्युम्न कामदेव। यही कारण था कि मायावती उन्हे बचपन से ही पतिवत् जानती थी। फिर प्रद्युम्न के सम्बन्ध मे ही एक दूसरी कथा, वज्रनाभ राक्षस की पुत्री प्रभावती के साथ उनके प्रणय की चर्चा करती मिलती है। इस कथा का उल्लेख भी 'हरिवंशपुराण' के १४१ वें अध्याय से लेकर उसके १४४वें तक मिलती है। इसमे प्रेमी तथा प्रेमिका के मध्य हंस पक्षी संदेशवाहक बनता है। प्रद्युम्न वज्रनाभ के दरबार मे एक अभिनेता के रूप मे हाजिर होते हैं। उनके साथ कुछ दूसरे लोग भी रहते हैं। प्रद्युम्न इत्यादि के अभिनय से राक्षस बहुत खुश होते हैं तथा ये प्रद्युम्न किसी प्रकार अपनी प्रिया तक पहुँच कर आनन्दानुभूति करने लगते हैं। पता लगने पर वज्रनाभ इन्हे बन्दी बनाना चाहता है, लेकिन वह इनके द्वारा मारा जाता है और ये प्रभावती को अपने घर लाते हैं।[1]

१—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २० । २० ।

अर्जुन और सुभद्रा

'महाभारत' के अनुसार श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा का हरण अर्जुन द्वारा किया जाता है तथा वे इसकी स्वीकृति भी देते हैं। 'महाभारत' के अनुसार जब अर्जुन अपने प्रवास मे रहते हैं तब वे द्वारका मे श्रीकृष्ण के अतिथि बन जाते हैं। जिस समय वहाँ के अन्धक एवं वृष्णि वंश वाले रैवतक पर्वत पर उत्सव मनाते हैं वे श्रीकृष्ण की सगी बहन सुभद्रा के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। जब श्रीकृष्ण को इस बात का पता लगता है तो वे उन्हे उसे हर ले जाने का परामर्श देते हैं। परिणामस्वरूप सुभद्रा के रैवतक का पूजन कर लौटने पर वे उसे उठाकर रथ पर बिठा कर अपने नगर की तरफ प्रस्थान कर देते हैं। बाद मे परिवार के लोगों द्वारा विरोध करने पर भी कुछ हाथ नही लगता[1]। श्रीमद्भागवत मे भी यह कथा आई है। अर्जुन तथा उर्वशी के प्रेम की एक कथा वनपर्व' के ४६ वें अध्याय मे प्राप्त होती है जिसमे उर्वशी उन्हे देखकर कामासक्त हो जाती है और उन्हे राजी न होने पर, नपुंसक नर्तक बन जाने का शाप भी दे देती है।[2] इसी तरह अर्जुन को ही एक बार उलूपी नाम की एक नागकन्या गंगा मे स्नान करते समय खींचकर नागलोक मे ले जाती है। वहाँ उनपर अपना प्रेम प्रदर्शित करती है। परन्तु अर्जुन उत्तर देते हैं कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है, इसलिए सहवास करने मे असमर्थ हूँ। पर वह आग्रह करती है कि मेरा कहना न मानोगे तो मैं प्राण त्याग दूँगी तो वे कर्तव्य की दृष्टि से उसके साथ एक रात बिताते हैं।

भीम और हिडिम्बा

'महाभारत' इस प्रकार के बहुत से प्रेमाख्यानो का एक वृहत्कोश है तथा ऐसी कथाओ मे श्रीकृष्ण के वंश वाले या पांडव ही अधिक हाथ बँटाते दिखलाई देते हैं। अर्जुन के भाई भीम को देखकर एक बार, वन मे किसी हिडिम्बराक्षस की बहन हिडिम्बा ही अनुरक्त हो जाती है। वह अपने भाई का कहना नही करती, अपितु भीम से अपने को अपनाने का प्रस्ताव करती है। भीम एव हिडिम्ब के मध्य पुनः द्वन्द्व युद्ध भी होता है जिसमे विजय भीम को मिलती है तथा हिडिम्बा भीम की पत्नी बन जाती है[3]। इसके पहले उन दोनो मे मात्र यही अनुबन्ध होता है कि हिडिम्बा उनसे केवल दिन मे रमण करे तथा किसी पुत्र के पैदा होने पर उन्हे त्याग दे, वह इसे

१—'महाभारत' (आदि पर्व २२४ अ०)।

२—वही, वनपर्व, अ० ४५–६।

३—महाभारत (आदिपर्व) २१७ अ०।

स्वीकार्य भी हो जाता है।[1] इस तरह प्रेमोदय जहाँ मनुष्य के प्रति किसी अप्सरा के हृदय में होता है, वहाँ वह किसी राक्षसी में भी प्रकट होता है। 'महाभारत' में उल्लेख मिलता है कि हिडिम्बा भीम को रिझाने के लिए पहले मानवीय रूप धारण करके ही सामने आती है जिस प्रकार शूर्पणखा राम के पास गई थी। इस प्रकार उसके राक्षसी होने मे सन्देह नही रह जाता तथा भीम को उसे पत्नी रूप मे स्वीकार करने मे कोई संकोच नही होता। शान्तनु गंगा नदी के ही स्त्री रूप को पत्नीवत् ग्रहण कर लेते हैं तथा दोनो से भीष्म की उत्पत्ति होती है। यही शान्तनु एक बार पुनः मछुए की कन्या सत्यवती को भी अपनाते हैं, इसी कारण उनके पुत्र भीष्म को अपने अधिकारो से हाथ धोना पड़ता है। यह सत्यवती वही है जिस पर कभी महर्षि पाराशर मोहित हो चुके थे तथा उसी के गर्भ से महर्षि व्यास पैदा हुए थे। ऋषियो के प्रेमभाव की गम्भीरता का थाह भी रुरु एवं प्रमद्वरा के आख्यान से लगता है, जहाँ रुरु विवाह सफल होने के पूर्व, उनकी प्रिया प्रमद्वरा सर्पदंश के कारण मृत्यु को प्राप्त होती है तथा वहाँ उसे पुनर्जीवित करने के लिये उन्हे आकाशवाणी के प्रस्ताव पर, अपनी आधी उम्र का समय उसे दे देना पडा।

पौराणिक प्रेमाख्यानों की विशिष्टता

महाभारत एवं पुराणो के अन्तर्गत प्रेमाख्यानो का स्वरूप विविध रूप से दृष्टिगोचर होता है तथा उनकी संख्या भी पर्याप्त है। वैदिक साहित्य के भीतर पर्याप्त दृष्टान्त प्राप्त नही होते तथा जो उपलब्ध भी हैं वे प्रायः अस्पष्ट तथा अधूरे लगते हैं। वैदिक मंत्रो के अधिकाश भाष्यकारो ने तो उनके विभिन्न प्रतीकात्मक अर्थ भी किये हैं और इस तरह प्रणय गाथाओ को उन्होने एक काल्पनिक रूप दे दिया है। लेकिन, पौराणिक साहित्य के अध्ययन से भी प्रतीत होता है कि वे लोग भी दुरूह कल्पना के चक्कर में ही अधिक पडे हैं। प्रेमाख्यानो का निर्माण हमेशा या तो यथार्थ घटनाओ को आधार बनाकर हुआ है या वह किसी न किसी प्राचीन परम्परा का परिणाम रहा है। ये परम्परागत मौखिक साहित्य के अंग बने रहते आये हैं तथा इनके किसी न किसी मौलिक रूप के भी सत्य होने मे किसी ने कभी संदेह नही किया। पौराणिक साहित्य की रचना के समय जब इनका अधिक स्पष्ट रूप प्रकट होने लगता है तथा इनकी संख्या भी बढ़ती जाती है। ऐसी स्थिति मे इनका रूप रंग भी, स्वभावत. कई तरह का हो जाता है और ये अपने तत्कालीन समाज का थोडा बहुत परिचय देने लगते हैं। इस काल के प्रेमाख्यानों मे प्रेम की उत्पत्ति मात्र प्रत्यक्ष दर्शन पर ही आधृत नही रहती। बल्कि यदा-

१—वही (वनपर्व) १५५-८ अ० ।

कदा स्वप्न-दर्शन और चित्र-दर्शन का भी सहारा लिया जाता है तथा गुण-श्रवण के कार्य सम्पन्न करने के लिये हंस जैसे पक्षियों को भी माध्यम बनाया जाता है। निःसन्देह कहा जा सकता है कि पौराणिक साहित्य के प्रेमाख्यानों में ज्यादातर काम-वासना ही काम करती दिखलाई पड़ती है, लेकिन 'नलोपाख्यान' जैसे दृष्टान्तों मे कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि यह उतनी स्पष्ट नही रहा करती। उसके स्थान पर विशुद्ध दाम्पत्य सम्बन्ध की प्राप्ति भी कार्य करने लगती है। इसका एक परिणाम इस बात मे भी परिलक्षित होता है कि प्रेमी अपनी प्रेमिका को पत्नीवत् अपनाने के निमित्त उसका हरण भी करने लगता है।[1]

स्वयंवर एवं सुन्दरीहरण, ये दो ऐसे माध्यम हैं जिनसे पौराणिक काल मे बहुत कार्य लिया गया है। इनमे से भी प्रथम का व्यवहार ज्यादातर उच्चवर्ग के लोगो मे ही हुआ है, परन्तु दूसरे के द्वारा निकृष्ट श्रेणी के प्रेमियों ने भी अपना स्वार्थ सिद्ध किया है। पौराणिक साहित्य के प्रेमाख्यानो द्वारा यह बात आगे भी ज्यादा हो जाती है कि प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रेमी व प्रेमिका का समान स्तरीय होना अनिवार्य नही तथा न यही ही जरूरी है कि वह पुरुष की ओर से प्रस्तावित होता है या स्त्री की ओर से। हाँ यह जरूर कहा जा सकता है कि जबतक उभय पक्षो के हृदयो मे प्रेमानुभूति न हो तब तक उसे प्रेम-सम्बन्ध न कहकर काम वासनात्मक सम्बन्ध ही समझना समीचीन होगा। तब भी, यदि वह, (यमी वाले दृष्टान्त की तरह) मात्र एक भी हृदय मे अपने निश्छल एवं सरल रूप मे, उदित हुआ हो भी तो, उसे फल की दृष्टि से, विफल हो जाने पर भी, पूर्ण महत्व दिया जा सकता है और उसे केवल वासनात्मक ही नहीं माना जा सकता। पौराणिक साहित्य वाले प्रेमाख्यानों मे विरह पीडा के भी कई उदाहरण प्राप्त होते हैं। यहाँ वियोग की व्यग्रता ज्यादातर प्रेमिकाओ मे ही दिखलाई गई है तथा उसका कारण भी उस समय के सामाजिक बन्धनों की दृढ़ता में खोजा जा सकता हैं। प्रेमिका कन्याओं को अपने पिता माता जैसे गुरुओ की इच्छा और उसी तरह अपने वंश-विशिष्ट की मर्यादा की महत्ता के कारण लाचार हो जाना पडता रहा है। यही कारण हे कि वे यदा-कदा पत्रवाहको द्वारा गुप्त पत्र भेजती हैं तथा अनेक उपायो का भी आश्रय लेती हैं। ये प्रेमिकाएँ विवाह विधि के पश्चात् अपने पातिव्रत धर्म का भी पालन करती दिखलाई पड़ती हैं। इनके त्याग का दृष्टान्त प्रेमी पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा मिलता है, पौराणिक प्रेमाख्यानो के पीछे काव्यात्मक रूप ग्रहण कर लेने पर वियोग की पीड़ा प्रेमी पुरुषो में भी प्रदर्शित की जाने लगी है।

१—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २३।

पौराणिक काव्य रामचरितमानस

मानस की कथावस्तु

मानस की रामकथा के पूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत करने के लिये उसे तीन भागों मे विभक्त करना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। वह इस प्रकार है—कथा का उपक्रम, कथा का मूल भाग अथवा मूलकथा तथा तृतीय है उपसंहार।[1]

उपक्रम

आरम्भिक स्तुति, माहात्म्य-वर्णन इत्यादि के बाद मूल-कथा का प्रस्तोवना भाग आता है जो इस प्रकार है—एक बार, मकर-स्नान के पश्चात् भरद्वाज मुनि ने ज्ञानी याज्ञवल्क्य से बहुत विनम्र जिज्ञासु की तरह प्रश्न किया था कि 'हे भगवन। एक राम अवधेशकुमार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। उन्होंने नारि-वियोग के कारण विविध कष्ट सहन किये थे तथा क्रोध आने पर युद्ध क्षेत्र मे रावण का वध किया था। क्या वह राम जिसे त्रिपुरारि शंकर भजते रहते हैं, यही हैं अथवा अन्य कोई हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज मुनि की रामकथा सुनने की उत्सुकता पहिचान ली तथा ठीक इसी तरह की भवानी की शंका पर भगवान शंकर के उत्तर का उल्लेख किया। इसके बाद ऋषि ने शंकर का कुंभज के यहाँ गमन, सती सहित फिर कैलाश आगमन, वनवेषधारी विरही राम को शिव का प्रणाम, सती की शंका तथा परीक्षा, शिव-संकल्प, सतीमरण, शैलसुता पार्वती के रूप मे सती का जन्म, तपस्या एवं विवाह और कुमार जन्म की विस्तृत कथा भारद्वाज को सुना दी और इसी बहाने उन्हे रामकथा का अधिकारी भी पहिचाना। ऋषि ने पार्वती के रूप मे अवतरित सती की राम विषयक पुनः उत्पन्न शंका एवं इस सम्बन्ध मे शिव के उत्तर का वर्णन किया। पार्वती की शंका थी कि अजन्मा, अगुण और अगोचर राम अवधनृपति-सुत ही हैं या अन्य कोई हैं। यदि राजपुत्र हैं तो फिर ब्रह्म कैसे यदि ब्रह्म है तो नारि-विरह में उन्मत्त क्यों? इसी प्रकार पार्वती ने निर्गुण रूप मे अवतरित होनें के कारण एवं रामावतार से लेकर राम के प्रजा सहित निज धाम गमन तक की कथा पूछी। आरम्भ मे शिव ने नाना प्रकार से भवानी की शंका को शान्त किया। तत्पश्चात् शेष प्रश्न के लिये काकभुशुंडि एवं गरुण-संवाद सुनाने का आश्वासन दिया। उन्होंने बतलाया कि अगुन, अलख ही प्रेम के वश में सगुण हो जाता है और राम के जन्म के भी अनेक कारण हैं। कुछ कारणों के उल्लेख करने की बात कहकर उन्होने जय-विजय शाप, जलंधर की पत्नी सती के शाप, नारद शाप,

---

१—मानस का कथा—शिल्प—डा० श्रीधर सिंह, पृ० ३१-३२।

प्रतापभानु के शाप और कश्यप-अदिति तथा मनु-शतरूपा के वरदानों की विवृति की और तात्कालिक कारण के रूप में रावण के अत्याचार से त्रस्त पृथ्वीरूपी गौ की आर्त-पुकार का उल्लेख किया। अन्त मे भगवान ने दशरथ एवं कौशल्या के रूप मे उत्पन्न कश्यप एवं अदिति को दिये गये वरदान तथा नारद के शाप को सत्य करने के लिए दिनकर वंश मे अंशों सहित अवतरित होने का वचन दिया। इधर ब्रह्मा के परामर्श से हरिपद सेवा के निमित्त देवताओ ने वानरो का रूप ग्रहण किया।

मूलकथा

यज्ञ से प्राप्त हवि खाकर दशरथ की तीनों रानियाँ गर्भवती हुई। शुभ मुहूर्त में कौशिल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा से क्रमशः राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उत्पत्ति हुई। इन लोगो ने अनेक शिशु लीलायें की। दशरथ के दरबार मे विश्वामित्र आये। यज्ञ रक्षार्थ राम व लक्ष्मण को लेकर, राक्षसो को मरवाकर सीता स्वयंवर मे पधारे। यहाँ राम का सीता से तथा उनके अन्य भाइयो का सीता की अन्य बहनो से विवाह हुआ। दशरथ राम का राज्याभिषेक करनेवाले थे। देवताओ ने स्वार्थवश सरस्वती से मंथरा एवं कैकेयी को साधन बनाकर राम का राज्याभिषेक नहीं होने दिया। कैकेयी के कथनानुसार राम बन जाने लगे। उनके साथ लक्ष्मण और सीता भी गये। राम के वियोग मे पुरवासियो को महान् विषाद हुआ। केवट ने राम को प्रेमपूर्वक गंगा पार कर दिया। फिर उन्होंने प्रयाग मे निवास किया। वाल्मीकि से मिलने के उपरान्त राम चित्रकूट मे रहने लगे। पुत्र शोक मे दशरथ स्वर्ग चले गये। अयोध्या आकर भरत ने राम के प्रति अगाध प्रेम प्रदर्शित किया। बन मे राम के यहाँ जाकर उनकी पादुका लेकर अयोध्या लौट आये। वे नन्दि ग्राम मे ऋषिवत् रहने लगे। सीता के चरणों मे चोच मारने के कारण राम ने जयन्त की एक आँख फोड़ दी। अत्रि से भेंट कर प्रभु ने विरोध का बध किया। राम से मिलकर शरभंग ने शरीर छोड़ दिया। सुतीक्ष्ण एवं अगस्त से मिलकर प्रभु ने दंडक बन मे निवास किया। मुनियों का दुःख दूर करते हुए राम ने लक्ष्मण को उपदेश दिया। खरदूषण का बध किया। रावण ने मारीच की सहायता से माया सीता का हरण किया। सीता को छुड़ाने का प्रयास करने पर जटायु मारे गये। राम ने कबंध को मारा। शबरी को सुगति प्रदान की। राम से हनुमान मिले एवं राम की मित्रता सुग्रीव से हुई। बालि को मारकर राम ने उनको राजतिलक देकर ऋष्यमूक पर वर्षाऋतु व्यतीत करने के लिये प्रस्थान किया। राम ने कपीश पर क्रोध किया। कपिपति ने सीता को ढूँढने के लिए सम्पूर्ण दिशाओ मे बन्दरो को भेजा। सीता को ढूढ़ते हुए बन्दरो ने विवर मे प्रवेश किया, फिर इनसे सम्पाती मिला। इसके द्वारा निर्दिष्ट उपाय से पवनसुत ने समुद्र को लांघ कर लंका में प्रवेश किया तथा सीता

को धीरज बँधाया। वाटिका को उजाडकर रावण का प्रबोधन किया। लंका को जलाया। फिर वे समुद्र लांघकर वानरों के पास चले आये। कपियो ने जानकी का कुशल राम को सुनाया। वे सेना के साथ समुद्र तट पर आ गए। विभीषण राम से वहाँ मिला। सागर पर सेतु बाँध कर सेना पार उतरी। अंगद राम का दूत बनकर रावण के यहाँ गये। निशाचरो एवं वानरो में घमासान लड़ाई हुई। कुम्भकर्ण एवं मेघनाद के बल पौरुष का संहार हुआ। निशाचर बुरी तरह से मारे गये। राम-रावण का भीषण युद्ध हुआ। राम ने रावण को मारा। मन्दोदरी शोकाकुल हुई। राम ने विभीषण को राजतिलक दिया। देवता शोक से मुक्त हो गये। पुनः राम सीता का मिलन हुआ। देवताओ ने राम की स्तुति की। कृपानिकेत अवधपुर आये। सभी हर्षित हुए। राम का राज्याभिषेक हुआ। राम ने नृपनीति का वर्णन किया।

उपसंहार

इस प्रकार महादेव द्वारा राम की कथा तथा उसका माहात्म्य श्रवण कर पार्वती को बहुत हर्ष हुआ। लेकिन इस काकभुशुण्डि तथा गरुड संवाद पर उन्हे आश्चर्य हुआ कि ज्ञानी, वैराग्यवान जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन पुरुषो मे विरला ही ऐसा होता है जो पूर्ण राम भक्त होता है, पुन इस भक्ति को काक ने किस प्रकार प्राप्त किया। उन्होंने शिव से इसके लिये काक शरीर की प्राप्ति, उसकी भक्ति प्राप्ति, गरुड जैसे ज्ञानी द्वारा इसे सुनने का कारण तथा साथ ही स्वयं शिव द्वारा भी यह संवाद किस प्रकार सुना गया, इसे भी पूछा। शिव के बारी-बारी से नाग-पास मे बंधे राम को देखकर गरुड का मोह शमनार्थ काक से कथा-श्रवण, गरुड के सम्मुख काक के कथनानुसार उसके शूद्र-जन्म, गुरु के अपमान तथा शंकर के शाप और गुरु की कृपा से शापोन्मोचन, उसके विप्र के गृह पुनः जन्म तथा भक्ति, लोमस से निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म पर विवाद तथा उनके शाप से काग शरीर की प्राप्ति, उन्ही द्वारा प्रसन्न होने पर भक्ति के वरदान, अयोध्या मे बालक राम की लीला देखते समय उनकी माया से त्रस्त काक का उनके मुख में प्रवेश तथा इस प्रकार अत्यन्त भयभीत होने पर निरन्तर भक्ति के वरदान की प्राप्ति का आख्यान पार्वती को सुनाया। इसी के बीच मे गरुड के आग्रह के अनुसार काकभुशुण्डि के मुख से निर्गुण-सगुण, ज्ञान-भक्ति एवं संत-असंत की महत्ता भी गाई गई है। पुनः ज्ञानदीप के प्राप्ति की कठिनाई तथा भक्ति-चिन्तामणि की सुलभता का वर्णन करके भक्ति पथ का मंडन किया गया है। अन्ततोगत्वा गरुड के सात प्रश्नों का उत्तर देते हुए काक-भुशुण्डि ने अपना उपदेश समाप्त कर दिया है। विविध तरह की शिक्षाओं तथा रामभक्ति सम्बन्धी उपदेशो के साथ मानस की कथा का अन्त होता है।

मानस का काव्यरूप

हिन्दी साहित्य के विद्वान् लेखको तथा आलोचको ने एक मत से रामचरितमानस को हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य सिद्ध किया है। अत. मानस महाकाव्य है या चरितकाव्य या कथाकाव्य या पुराणकाव्य यही यहां विवेच्य है।

महाकाव्य तथा रामचरितमानस

भारतीय विद्वानो द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य का शास्त्रीय लक्षण अधिकतर उसके बाह्य पक्ष को ही उद्घाटित करता है, अन्त पक्ष को प्रकट करने वाले महाकाव्य के लक्षण से ये ग्रन्थ शून्य हैं। जबकि अन्त पक्ष ही किसी भी रचना का प्राण होता है, बाह्य पक्ष तो बाह्य आवरण ही होता है। इस लिये प्राणतत्त्व को आधार बनाकर ही महाकाव्य का विवेचन उपयुक्त होगा। बंगला के अनुपम महाकाव्य 'मेघनाद बध' की समीक्षा करते हुए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने महाकाव्य का जो लक्षण निर्धारित किया है वह महाकाव्य के अन्त: पक्ष की साफ विवेचना करता है, वह लक्षण इस प्रकार हे– 'मन मे जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है, तब कवि उसे गीत काव्य मे प्रकाशित किये बिना नही रह सकते। इसी प्रकार मन मे जब एक महत् व्यक्ति का उदय होता है, सहसा जब एक महापुरुष कवि के कल्पना राज्य पर अधिकार आ जमाता है, मनुष्य-चरित्र का उदार महत्त्व मनश्चक्षुओ के सामने अधिष्ठित होता है, तब उसके उन्नत भावो से उद्दीप्त होकर, उस परम पुरुष की प्रतिमा प्रतिष्ठित करने के लिए कवि भाषा का मंदिर निर्माण करते हैं।············इसी को महाकाव्य कहते हैं।'[1] इससे स्पष्ट है कि नायक का व्यक्तित्व ही महाकाव्य का मुख्य लक्षण है, अन्य उसके बाह्य उपादान हैं। अरस्तू ने 'कार्य' के 'अनुकरण' के सिद्धान्त के आधार पर कथा को ही प्रमुख माना है तथा नायक के व्यक्तित्व को गौण[2] पर आज अरस्तू का यह सिद्धान्त गौण हो गया है। देश-विदेश के साहित्य मे महाकाव्य के लिए मानव का नायकत्व स्वीकृत हो चुका है।[3] इसलिये 'मानस' के 'महाकाव्यत्व' की परख भी नायक के आधार पर ही करनी चाहिए।

१—मेघनाद-बध महाकाव्य की भूमिका, पृ० १५७–१५८।

2—'English Epic and Hereie Poetry- W. M. Dixon, P.21.
'The fable, then, is the Principal past-the soul, as it were-of tragedy, and the manners (characters) are next in rank.........Aristotle. 'Poetics' translated by Thomas Twining, Pt. II, Ch. III.

3—'English Epic and Hereie Poetry-W. M. Dixton, P.21.

मनुष्य की असीम शक्ति में अटूट आस्था होने के कारण चरित नायकों, दुर्दम योद्धाओं तथा आदर्श व्यक्तियों की कभी अलौकिक शक्तियों से व्युत्पत्ति बताई गई है। तो कभी इनके कार्यों के समक्ष देवों को भी निम्न दिखाया गया है। यह सब होते हुए भी काव्य का नायक मनुष्य ही रहा है। ब्रह्म नहीं। जेम्स हेस्टिंग्स ने अपने विश्वकोष मे इसी आशय की पुष्टि करते हुए लिखा है कि महाकाव्यों के नायक होने वाले देव इत्यादि अवरोहित देव अर्थात् मनुष्य ही होते हैं। होमर के नायक एकिलस की उत्पत्ति दैवी शक्ति से हुई है, उसके अद्भुत कार्यों पर देवों द्वारा प्रसन्नता भी अभिव्यक्त की गई है, तब भी वह मनुष्य है।[1] भारवि के किरातार्जुनीय-युद्ध मे अनादि शक्ति शिव के साथ युद्ध करके अर्जुन अपनी अलौकिक शक्ति का परिचय देते हैं, फिर भी मनुष्य हैं। सर्वत्र यही बात है। 'रघुवंश' मे राम विष्णु के अवतार हैं, किन्तु मनुष्य रूप प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य ही रहे। माघ कृत 'शिशुपाल बध' के भी संबंध मे यही बात है। किन्तु मानस का नायक न तो देवता है न मानव, वरन् इन दोनो से परे स्वयं परब्रह्म परमेश्वर राम हैं।[2] यथा—

ग्यान गिरा गोतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानद घन कर नर चरित अपार॥

यह महाकाव्य के नायक से अधिक पुराण काव्य के नायक का ही लक्षण है। मानस का उद्देश्य भी यही था। मानस को मात्र महाकाव्य कहना उचित नही प्रतीत होता। तुलसीदास ने तो ग्रन्थ के उद्देश्य के अनुसार इसका रूप चुनकर तत्कालीन चरित काव्यो की शैली मे इसे रख दिया है। अत: मानस पर विचार भी इसी दृष्टि से होना चाहिए। नाम वही सार्थक होता है जो वस्तु के गुणों का प्रतिनिधित्व करे। लेकिन केवल 'महाकाव्य' कहने से 'मानस' का 'उद्देश्य' प्रतिध्वनित नहीं होता। महाकाव्य न कहने से उसके गौरव पर कोई आंच भी नही लगती। इसलिये प्रत्येक दृष्टि से मानस को महाकाव्य न कहना ही उपयोगी जान पड़ता है।

चरित-काव्य तथा रामचरितमानस

हिन्दी के मध्यकालीन प्रबन्ध काव्यो का विकास अपभ्रंश के चरितकाव्यों की

1—We thus see that epic heroes may be men, historical or fictions...........on the other hand they may be gods and devine beings on the decline. Heroes and Heroic gods, 661. Encyclopaedia of Religion and Ethics, vol. v. l.

२—मानस दर्शन—डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १८६।

परम्परा के अन्तर्गत हुआ है। प्राकृत काल के बाद अपभ्रंश काव्य की दो धारायें स्पष्ट थीं—पहली स्वयंभू के 'पउमचरिउ' आदि की पौराणिक धारा तथा दूसरी जसहरचरिउ, णायकुमार चरिउ आदि की प्रेममूलक काव्य धारा। 'मानस' की गणना प्रथम के अन्तर्गत की जा सकती है तथा पद्मावत की द्वितीय के अन्तर्गत। चरितकाव्यों की विशेषताओ का उल्लेख करने से पूर्व यह विचारणीय है कि प्रायः सभी चरितकाव्यो ने अपने को कथा कहा है तथा यह प्रथा काफी बाद तक जारी रही। रामचरितमानस को गोस्वामी जी ने कितनी ही बार कथा कहा है। विद्यापति ने कीर्तिलता को भी कहाणी या कहानी 'पुरिस कहाणी हउं कहउं ? कहा है। पृथ्वीराजरासो मे भी उसको 'कीर्तिकथा' कहा गया है। अत कथासाहित्य की विशाल परम्परा का चरित-काव्यो पर काफी प्रभाव पड़ा है तथा 'कथा' को इस प्रकार के काव्यो का आधार कहा जा सकता है। कथा तथा आख्यायिका के लक्षणो पर द्वितीय अध्याय मे विस्तारपूर्वक विचार हो चुका है। अत. यहाँ उसके लक्षणो पर विचार करना व्यर्थ है।

चरितकाव्य तथा मानस

पौराणिक शैली के चरित काव्यो की तरह मानस में धर्म कथा तथा प्रबन्धकाव्यत्व का अच्छा सामंजस्य हुआ है। धर्मकथाएं चरित, कथा आदि नाम से लिखी जाती थी। मानस मे चरित, कथा, तथा गाथा तीनो नाम मिलता है। पुस्तक के नाम मे भी चरित शब्द है। चरित, कथा, तथा गाथा कहने का साफ तात्पर्य यही है कि कवि ने इस परम्परा का अनुसरण किया है। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि वस्तुतः तुलसीदास जी ने जब एक बार अपनी रचना को 'कथा' कह दिया तो उन्होंने उन रूढियो का विधिवत् पालन किया जो प्राकृत और अपभ्रंश कथाओ के लिए आवश्यक समझी जाती थी।[1]

ग्रन्थ के प्रारम्भ मे विस्तृत प्रस्तावना की सम्पूर्ण शैली चरित काव्यो की है। यद्यपि आलंकारिकों ने महाकाव्य के लिये मंगलाचरण, सज्जन-दुर्जनचर्चा, वस्तु-निर्देश, पूर्व कवि चर्चा आदि का विधान निर्दिष्ट किया है, परन्तु पूर्ववर्ती महाकाव्यो मे जहां इसका नितान्त अभाव है वहां परवर्ती महाकाव्यो मे अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन। मानस मे प्रारम्भ के ४३ दोहो मे बडे विस्तार से ब्रम्हा, विष्णु, महेश, सरस्वती, गणेश, हनुमान आदि देवो की वन्दना, सत्संग, महिमा, दुर्जन-स्वभाव, राम-नाम माहात्म्य, रामकथा महिमा, वस्तुनिर्देश, आत्म-निवेदन, काव्य का रचना काल तथा कथा की प्रमुख घटनाओ का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् दोहा नं० १०४ तक शिवचरित तथा

१—हिन्दी साहित्य का आदिकाल—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ५८।

फिर दोहा नं० १८७ तक राम की पूर्वकथा का विस्तृत विवरण होता है। निश्चित रूप से यह परम्परा चरित काव्यों की है। पूर्वकथा या सेतु-कथा की परम्परा पुराणों मे भी मिलती है।

बाद के चरित काव्यों मे कथा की तरफ झुकाव कम होने लगा। कवि की दृष्टि इसपर ही गडने लगी। मानस मे भी कथा मुख्य नही है, प्रधान है रस तथा नायक। अयोध्याकाड तक तो कथा की पूरी गति इस प्रकार आगे बढती हे कि कवि को रसोद्रेक के लिये अधिकतर प्रसंग मिलते रहे। इसी कारण उसने वाटिका-प्रसंग, विवाह-प्रसंग तथा बनगमन के समय ग्रामवासियो की व्याकुलता, जिज्ञासा, चिन्ता, तथा प्रेम की इतनी विस्तृत योजना की हे। अरण्यकाड से रस तथा कथा दोनो गौण होने लगते हैं तथा चरित्र प्रधान हो जाता है। हा इतना अवश्य है कि चरित काव्यो मे रसोद्रेक के लिये जिस पद्धति का सहारा लिया जाता था इसके लिये अलंकारो की संश्लिष्ट योजना को जिस तरह महत्व मिलता था, वह प्रवृत्ति मानस मे बहुत कम है।

'कथा का मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्याहरण तथा शत्रुपराजय था। मानस मे भी इसे कुछ दूर तक देखा जा सकता है क्योकि चरितकाव्यो की कुछ छाया तो पडी ही है। मानस मे वाटिका प्रसंग की योजना पर प्रेमलीला की परम्परा की छाप स्पष्ट है। विषयानुकूल मानस मे भी प्रेम एवं वीरता का समन्वय हुआ है। राम द्वारा सीता की उपलब्धि मे प्रेम तथा वीरता दोनो का चरम उत्कर्ष दिखाया गया है। वाल्मीकीय रामायण से भिन्न जनकपुर मे ही परशुराम प्रसंग की योजना पर चरित काव्यो का स्पष्ट प्रभाव है। आचार्य शुक्ल ने भी इसे, नायिका पर नायक के व्यक्तित्व की अधिकाधिक छाप डालने के लिये वीरगाथाओ की परम्परा बताया है[1]। इसी प्रकार से बनवास, हरण, सेतुबन्ध, दीपान्तर यात्रा, पत्नी-प्राप्ति इत्यादि पर भी चरित काव्यो का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। संभवत: इस शैली पर रामायण तथा महाभारत का भी प्रभाव पड़ा हो। किन्तु इतना तो नि.संदेह कहा जा सकता है कि चरित काव्यो की तुलना मे मानस मे मर्यादा तथा आध्यात्मिकता ज्यादा है।[2]

चरितकाव्यो मे 'शांतरस' की प्रमुखता मिलती है। मानस मे भी शान्तरस की धारा प्रवाहित होती है जो बहुत कुछ भक्तिरस के रूप मे है।

'पउमचरिउ' के तरह के पौराणिक चरित काव्य उपदेश की दृष्टि से लिखे जाते थे। मानस भी उपदेश की दृष्टि से लिखा गया है।

१—आचार्य शुक्ल-गोस्वामी तुलसीदास पृ० ७५।
२—मानस का कथा-शिल्प-डा० श्रीधरसिंह, पृ० ७२।

मानस में वक्ता-श्रोता की परम्परा चरित काव्यो की शैली पर ही है। मानस में वक्ता-श्रोता की परम्परा इस प्रकार है—

१—शिव से कुंभज, लोमस, काकभुशुण्डि एवं पार्वती ने प्राप्त किया।
२—लोमस से काकभुशुण्डि ने।
३—कुंभज से सनकादि ने।
४—काकभुशुण्डि से गरुड़ एवं याज्ञवल्क्य ने।
५—याज्ञवल्क्य से भरद्वाज, भरद्वाज से नरहरि तथा नरहरि से तुलसीदास ने प्राप्त किया।

पउमचरिउ मे भी वक्ता-श्रोता की ऐसी ही परम्परा है। राम-कथा रूपी नदी अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के मुख-कुहर से निकली फिर इन्द्र भूति, अनुत्तरवादी कीर्तिधर, कविराज रविषेण आदि द्वारा यह परम्परा आगे बढाई गई है। स्वयंभू ने इसी परम्परा का वर्णन श्रेणिक एवं गणधर गौतम के संवाद के रूप में किया है।

बद्धमाण-मुह-कुहर-विणिग्गय। राम कहा णइ एह कमागय ॥ १
एह रामकह-सरि सोहन्ती। गण हर-देवहि दिट्ठ बहन्ती ॥ ६
पच्छइ इन्दभूइ आयरिएं। पुणु धम्मेण गुणालंकरिएं ॥ ७
पुणु पहवें संसारा राएं। कित्तिहरेण अणुत्तरवाएं।
पुणु रविषेणा-चरिय-पसाएं। बुद्धिएं अवगाहिय कहराएं ॥ ९
पउमचरिउ पढ्यो संधि २-१-११ ॥

जिस तरह मानस के श्रोता अपनी शंका उपस्थित करते हैं ठीक उसी तरह श्रेणिक ने समवयण के समय महावीर के सम्मुख अपनी शंका उपस्थित की थी।

यद्यपि वक्ता-श्रोता परम्परा की दृष्टि से मानस चरितकाव्यों के निकट अवश्य है किन्तु मानस में कई जोडे वक्ता-श्रोता का विधान पुराणों का प्रभाव ही है। आचार्य द्विवेदी ने लिखा है कि मानस-सा वक्ता-श्रोता का जटिल विधान चरित काव्यो मे अभी नही देखने को आया है। मानस मे चरित काव्यों की कथानक-रूढियो (मोटिफ्स) का अधिक प्रयोग हुआ है। इसका विवेचन अन्यत्र किया जायगा।

मानस की कडवक शैली चरित काव्यो की ही है। पं० नाथूराम प्रेमी ने लिखा है कि एक कडवक आठ 'यमको' का तथा एक यमक दो पदो का होता है।[1] आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार चार पद्धड़िया अर्थात् आठ पंक्तियों का कड़वक होता है। कड़वक के अन्त में घत्ता या ध्रुवक होता है। कथा काव्य में इसका पर्याप्त व्यवहार हुआ है।

१—आचार्य द्विवेदी—हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ५८।

तुलसीदास ने रामायण में इसी कड़वक पद्धति को आठ या कुछ कम अधिक चौपाइयों के बाद दोहा का घत्ता देकर स्वीकार किया। मानस में घत्ता के स्थान पर दोहा छंद का प्रयोग हुआ है इसलिए सम्पूर्ण कड़वक को एक दोहा भी कहा जाता है। घत्ता के स्थान पर अन्य छंदों का प्रयोग अपभ्रंश के अन्य चरित काव्यों में भी हुआ है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ,कथा-काव्य में चौपाई-दोहा का क्रम सम्भवतः पूर्वी प्रदेश के कवियों द्वारा आरम्भ हुआ, यद्यपि इसका बीज रूप प्राचीन बौद्ध-सिद्धों की रचनाओं मे मिल जाता है।[1] मानस पर इस कड़वक शैली का प्रभाव पूर्वीय कवियो के अनुगमन पर पड़ा होगा।

इस तरह शैली की दृष्टि से मानस पूर्णरूपेण चरितकाव्यों की परम्परा में आता है।

पौराणिक शैली की विशेषताएं

पुराणो के वास्तविक स्वरूप को लेकर विद्वानों मे बड़ा मतभेद है। यों तो पुराण का शाब्दिक अर्थ प्राचीन आख्यान पूर्वतन[2] आदि ही होता है किन्तु इन अर्थों से पुराणो के स्वरूप पर समुचित प्रकाश नहीं पड़ता। पुराणों में सृष्टि-प्रक्रिया पर विचार होता था, इसका पता शंकराचार्य के 'बृहदारण्यक भाष्य के एक श्लोक से चलता है— 'पुराण-मसद्वाइदमग्र आसीदित्यादि'। 'ऐतरेय ब्राह्मणोपक्रम' मे सायणाचार्य ने थोडा और स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'देवासुराः संमता आसन्नितियादय इतिहासाः। इदं वा अग्रेण व किंचदासीदित्यादिक जगतः प्रागवस्थानुपक्रम्य सर्गप्रतिपादक वाक्य जात पुराणम्।' इसी तरह पौराणिक तत्वो का विश्लेषण करके विभिन्न प्रकार के लक्षण बताए जाते हैं। कुछ विद्वान तो दस लक्षण तक मानते हैं, परन्तु पंचलक्षणों का विशेष स्थान है। ये इस प्रकार हैं—(१, सर्ग का सृष्टि तत्व, (१) प्रति-सर्ग अथवा पुनसृंष्टि और लय, (३) देव तथा पितरों की वंशावली, (४) समस्त मन्वन्तरों का विवरण और, (५) वंशानुचरित या सूर्य और चन्द्रवंशीय राजाओं का संक्षिप्त इतिहास।[3] इन लक्षणों से पुराणो की वाह्य-रूपरेखा का ज्ञान हो हो जाता है किन्तु उस पौराणिक प्रवृत्ति का जरा भी आभास नहीं मिलता जिसको लेकर एक तरफ पुराणों मे ग्रन्थ की रचना की

१—वही, पृ० ६४।

२—Encyclopaedia Indica Vol. XIII, 1927, J, S. A. B. Calcutta.

३—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितंचैव पुराणं पंचलक्षणम्॥

प्रेरणा का उदय हुआ तो दूसरी तरफ जनता मे अनुकरण की अभिलाषा जागृत हुई। साथ ही इनके लक्षणों मे भी स्थिरता नही रह सकी, उसमें क्रमिक विकास होता रहा है। 'बृहदारण्यक भाष्य' के लक्षणो से ये 'पंचलक्षण' एक कदम आगे हैं और पंच-लक्षणो से महाभारत के 'आदिपर्व' मे लिखित महर्षि शौनक का यह लक्षण और भी आगे है—

पुराण हि कथा दिव्या आदिवंशाश्चघीमताम।
कथान्ते हि पुरास्याभिः श्रुतपूर्वं पितुस्तवः॥

इसीलिए यहाँ पर पौराणिक लक्षणो का नही अपितु प्रवृत्तियो का चयन ही अधिक उपयुक्त जान पडता है।

पुराण रचना का मुख्य उद्देश्य अवतारवाद की स्थापना और भक्ति प्रचार करना होता था। इस पर विचार करते हुए विंटरनित्स ने कहा है कि प्रत्येक मे किसी न किसी देवता या अवतार को आधार मानकर किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रचार किया गया है।[1]

मान्यताओ को स्थिर स्वरूप देने के लिए पुराणो ने 'आग्रहमार्ग' का सहारा लिया है। क्योकि इनकी स्थापनाओ की भित्ति का तर्काधार पर अवलम्बिय रहना कठिन था। इसलिए पुराणो ने पाप-पुण्य, नरक-स्वर्ग, दु.ख-सुख आदि का विधि विधान दिखलाकर जनसाधारण के हृदय को आकृष्ट करने का कार्य किया। तत्व चिन्तको द्वारा गृहीत सत्य को पुराणो मे अलौकिक कथा-कहानियो इत्यादि के माध्यम से नवीन रूप मे व्यक्त किया गया तथा उसकी स्वीकृति के लिये जनता मे विश्वास का समावेश किया गया। जैसे—'ऋक्सहिता' के इस सत्य 'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पासुरे' को आधार बनाकर पूरी बामन-कथा का निर्माण किया गया हे।

'आग्रहमार्ग' के लिए आगम-निगम इत्यादि की दुहाई दी गई है। भारतीय चिन्तन-धारा की यह मुख्य विशेषता सदा से रही है कि किसी भी हिन्दू विचारक ने वेदो के आप्त-वचनो पर अद्यावधि प्रश्नवाची चिन्ह नही लगाया है, भले ही वह शंकराचार्य का मायावाद रहा हो, या बल्लभ का द्वैतवाद अथवा दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज—सबने अपने आधार का अवलम्ब वेदो को बनाया है। ऐसा क्यो हुआ ? ठीक ठीक नही कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त पुराणो का सगुण मतवाद तथा विभिन्न विधि-निषेध किसी न किसी रूप मे वेदादि उक्तियों का सहारा लिए बगैर टिक ही न पाता। शायद इसी कारण सम्पूर्ण पुराणो के प्रेणता वेदव्यास ही माने गये हैं।

वक्ता-श्रोता की परम्परा या संवाद-शैली का प्रारम्भ पुराणो से माना जाता है। सूत-शौनक के द्वारा सम्पूर्ण कथा कही जाती थी। पुराणों मे व्यवहृत संवाद शैली की

१-A History of India literature—M. Winternitz, Vol. 1. p. 522.

इसी विशेषता के कारण, वेदों मे वर्णित यम-यमी उर्वशी-पुरुरवा आदि के संवादो को बहुत से विद्वान् पौराणिक मानते हैं।[१] शंकराचार्य ने वृहदारण्यक भाष्य मे जो लिखा है, वह इसी का संकेत है। 'इतिहास इत्यूर्वशीपुरुरवसीः संवाद दिरुर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणम्' यानी उर्वशी पुरुरवा के कथोपकथनादि की शैली के कारण ब्राह्मण भाग का नाम इतिहास है। पहले इतिहास तथा पुराण एक ही अर्थ मे अभिहित होते थे। लोगो के बीच वक्ता-श्रोता की इस पौराणिक शैली की विशेषता मत-प्रतिपादन, कथा-विस्तार तथा-सन्तुलन आदि के रूप मे अच्छी प्रकार स्पष्ट हो गई थी। इसीलिए मध्यकाल तक यह शैली काफी लोकप्रिय रही।

पुराणो मे उपदेशो की अधिकता होती है। कही उपदेश प्रत्यक्ष होता है तथा कही 'जातक' आदि ग्रन्थो की तरह कथा के अलंकार मे समाविष्ट होता है। पुराणो मे देवी-देवताओ की स्तुति के लिए स्तोत्रो की बहुलता रहती है तथा तीर्थ-व्रत, पूजन-उपवास, भजन, धर्मग्रन्थ-पठन आदि का महत्व भी वर्णित होता है।

पुराण का अर्थ है 'पूर्वतन'[२]। 'वायु पुराण' तथा 'पद्मपुराण' मे कहा गया है कि जिसमे पूर्वकाल की परम्परा कही गई हो वह पुराण है[३]। वंश-परम्परा, मवान्तर तथा अवान्तर वर्णनो की पुराणो मे अधिकता होती है।

पौराणिक शैली एवं रामचरित मानस

मानव शक्ति को दुर्बल दिखाकर देवताओ को मनुष्य-भाग्य का निर्माता बनाना तथा उनके विरुद्ध मानवीय पराक्रम को व्यर्थ प्रमाणित करना धार्मिक तथा पौराणिक भावना है। पूरे रामचरित मानस मे इसका उल्लेख मिलता है। ब्रह्म राम त्रिदेवो को भी नचाते हैं पुनः मनुष्य का क्या ?

जग पेखन तुम देखन हारे। विधि हरि शंभु नचावन हारे।

मानस मे विषय प्रतिपादन की दृष्टि से 'आग्रह मार्ग' का सहारा भी कम नही लिया गया है। प्रश्न का उत्तर अधिकतर इधर उधर की कथा कहकर अथवा उस कथा के बीच एक हो तत्त्व की अनेक बार पुनरावृत्ति करके दिया गया है तथा निरन्तर प्रयास रहा है कि जनता पर उसका अमिट प्रभाव पडे। यह आग्रह मार्ग तीन रूपों मे

---

१ —History of Sanskrit Literature—Dr. S. K. De, p. 43-44.

२—'पुराभवमिति पुराढयु'।

३—'पुराणों के महत्व का विवेचन'—रामबहादुर पंड्या बैजनाथ—नागरी प्रचारिणी पत्रिका कोशोत्सव स्मारक संग्रह, पृ० २९१।

देखा जा सकता है। (१) वक्ताओं द्वारा श्रोताओं की शंका समाधान में (२) उद्देश्य प्रतिपादन मे (३) सिद्धान्तों के निर्वाह में।

प्रथम के अन्तर्गत भरद्वाज, पार्वती तथा गरुड़ की शंकाएँ देखी जा सकती हैं। भरद्वाज की शंका थी कि 'अवधनृपति सुत' राम ही परब्रह्म राम हैं या अन्य कोई।[1]

इसके उत्तर मे याज्ञवल्क्य ऋषि ने दो चौपाइयो मे राम-कथा की महिमा कही है, फिर सम्पूर्ण शिवचरित कहा है। शिव-चरित सुनकर भरद्वाज मुनि पुलकित हो गये हैं। द्वितीय श्रोता पार्वती की शंका भी देखिये—

जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि विरह मति भोरि।

इसका उत्तर शिव उत्तेजित होकर यह देते हैं—

कहहि सुनहिं अस अधम नर इत्यादि। यही 'आग्रह मार्ग' है।

उद्देश्य प्रतिपादन के लिये प्रयुक्त आग्रह मार्ग को अगुण की अपेक्षा सगुण तथा ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को उत्तम सिद्ध करने की विधियों मे भी देखा जा सकता है।

अगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा।

× × ×

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥

लेकिन इस तर्क मे आग्रह के सिवा और कुछ नही है। इसी तरह ज्ञान से भक्ति को श्रेष्ठ प्रतिपादित करने के लिए दो तर्क दिये गये हैं। पहला तो यह कि ज्ञान विज्ञानादि पुरुष वर्ग के हैं तथा भक्ति नारी वर्ग की। चूँकि नारी, नारी के रूप पर मुग्ध नही होती इसलिये भक्ति के ऊपर माया का प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरा तर्क है कि ज्ञान का मार्ग कृपाण की धार है तथा भक्ति का सरल। किन्तु यह जरूरी नहीं है कि जो सरल विधान हो वही सर्वोत्तम भी हो। इस प्रकार उद्देश्य प्रतिपादन मे भी आग्रह मार्ग का अवलम्ब लिया गया है।

बात-बात मे आगम-निगम-पुराण की दुहाई देना, स्वर्ग का प्रलोभन तथा नरक का भय दिखाना, सुर सिद्ध तथा मुनियों से दुन्दुभि वादन तथा पुष्प वृष्टि कराना और बीच बीच मे आकाशवाणी का अवलम्ब लेना ये सब पौराणिक शैली की ही घोषणा करते हैं[2]।

मानस की वक्ता-श्रोता परम्परा अथवा संवाद शैली भी पौराणिक है। रामायण की कथा वाल्मीकि को नारद ने, लवकुश को वाल्मीकि ने तथा ऋषियों को लवकुश ने

१—मानस, दो० ४५, ३-, ४६॥

१—मानस दर्शन—डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० २०४।

सुनाई है। महाभारत की कथा व्यास ने अपने शिष्य को सुनाई, उसे वैशम्पायन ने जनमेजय को, तथा सोति ने शौनकादि को बतलाई। 'अध्यात्म रामायण' मे राम-कथा ब्रह्मा ने नारद को सुनाई और उससे पहले हनुमान को सीताराम ने, पार्वती को शिव ने तथा श्रोताओं को सूत ने सुनाई है। ठीक इसी प्रकार की परम्परा मानस मे भी है। इसके अलावा मानस मे पूरी कथा चार वक्ताओं श्रोताओ के प्रश्नोत्तरों के रूप में, संवाद शैली में कही गई है। ये वक्ता तथा श्रोता ये हैं (१) शिव और पार्वती (२) काकभुशुण्डि और गरुड़ (३) याज्ञवल्क्य और भरद्वाज (४) तुलसीदास तथा श्रोतागण। यही मानस के चार घाट हैं।

सुठि सुन्दर संवाद वर, विरचे बुद्धि विचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि॥

इस संवाद शैली का मानस मे आद्यन्त निर्वाह हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन का अर्थ यह कदापि नही है कि मानस काव्य नही है। सच तो यह है कि प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित एवं प्रतिष्ठित काव्य कला का समावेश मानस मे पूर्णरूप से हुआ है। वाणी तथा शब्द की सभी शक्तियाँ अपनी स्वाभाविक गति, संगीत तथा सौंदर्य के साथ मानस मे भरी पड़ी हैं। अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना, प्रसाद ओज एवं माधुर्य, रस, रीति तथा अलंकार सबका उचित समावेश कर मानसकार ने काव्यकला का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का सर्वोत्तम ग्रन्थरत्न है।

डा० शम्भूनाथ सिंह 'मानस' को पुराण काव्य नही मानते तथा मानस को हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य लिखते हैं। वे इसे पुराण काव्य की अपेक्षा अपभ्रंश चरितकाव्य के अधिक निकट बताते हैं।[1]

इसके ठीक विपरीत डा० श्रीकृष्णलाल 'मानस' को जोरदार शब्दो मे पुराणकाव्य सिद्ध करते हैं।[2] उन्होने अपने ग्रंथ की भूमिका में ही इस बात का उल्लेख किया है 'रामचरितमानस' मूल रूप में भक्ति काव्य है, जिसे काव्य रूप की दृष्टि से पुराणकाव्य कहना ही अधिक समीचीन है। परन्तु हिन्दी साहित्य के अधिकांश विद्वान मोहवश अथवा अज्ञान वश इस रचना को महाकाव्य ही मानते आ रहे हैं।' डा० लाल के उपर्युक्त विवेचन से मै सबा सोलहो आने सहमत हूँ। क्योकि पुराणकाव्य सिद्ध करने के पक्ष मे उन्होंने जो तर्क दिये हैं वे अकाट्य हैं।

१—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूपविकास—डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० ४८५, ४८७।
२—मानस दर्शन—डा० श्रीकृष्णलाल।

यहाँ विचारणीय है कि मानस मे पुराणो की सभी शैलिया उपलब्ध होती हैं या नही। पुराणो मे कथा का अनावश्यक विस्तार मिलता है परन्तु मानस मे यह बात नही है। पुराणो मे सम्पूर्ण कथा का परस्पर सम्बन्ध नही मिलता पर मानस मे ऐसा नही है। पुराणो मे मार्मिक स्थलो की पहचान या रसात्मक वर्णन बिल्कुल नही प्राप्त होते। जबकि मानस मे ऐसे स्थल कई हैं। अलंकृत छन्द-योजना, भाषा-सौन्दर्य और इसी तरह के अन्य काव्यात्मक तत्त्वो को पुराणो मे खोजना व्यर्थ है, किन्तु मानस मे कही भी इनको देखा जा सकता है। मानस मे मूर्तिकन्या और प्रेम, उद्यान मे नायक-नायिका मिलन, विवाह के लिये असामान्य कार्य संपादन की शर्तें, राक्षस विद्याधर आदि द्वारा नायिका हरण, जीवन-निमित्त वस्तु, सत्यक्रिया, नायक का अतिप्राकृत जन्म, रूप परिवर्तन, आकाश-गमन, अज्ञान मे अपराध और शाप, भविष्यसूचक स्वप्न आदि कथानक-रूढियो का प्रयोग हुआ है। रामचरितमानस मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढियो का विवेचन सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका प्रयोग करकंडचरिउ मे हुआ है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रतिपाद्य विषय, उद्देश्य एवं शैली की दृष्टि से मानस पुराणों के अधिक समीप है तथा उनसे पृथक भी है और काव्यत्व के निकट भी है। मानस मे पुराण व काव्य का समन्वय हुआ है अतः इसे पुराण काव्य कहा जा सकता है।

अन्त मे सम्पूर्ण अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मानस चरितकाव्यो की शैली मे लिखा गया एक पुराणकाव्य है। चरित-काव्य तथा पुराण-काव्य कहने से मानस की जितनी व्यापकता व पूर्णता का बोध होता है उतनी महाकाव्य कहने से नही। मानस को केवल महाकाव्य कहना इसके दायरे को सीमित करना है। इसकी महत्ता महाकाव्य की अपेक्षा उपर्युक्त नाम से अधिक बढ़ेगी।

प्रेमाख्यानमूलक प्रबन्ध काव्य

हिन्दी साहित्य में अधिकांश प्रबन्धकाव्य की रचना अवधी मे तथा स्फुट काव्य की रचना ब्रजभाषा मे होती रही है। अवधी मे दोहे, चौपाई प्रभृति छन्द ही ज्यादा व्यवहृत हुए। मध्ययुग के सूफी प्रेमाख्यान कवियों ने भी अवधी भाषा मे दोहे चौपाई के क्रम से अपने ग्रन्थो की सृष्टि की है।

मुल्ला दाऊद की 'चंदायन' सर्वप्रथम प्रेमाख्यान होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य का आरम्भ इसी से होता है। इसके विषय मे अब्दुल कादिर बदायूंनी ने अपने इतिहास ग्रन्थ 'मुन्तखबुत्तवारीख' (भाग २, पृ० २५०)

में लिखा है। अब्दुल कादिर के अनुसार इस ग्रन्थ में हिन्दवी की मसनवी द्वारा' नूरक व चन्दा' के प्रेम का वर्णन है। इस रचना का परिचय अधिक नहीं दिया गया, कारण वह 'अत्यन्त प्रसिद्ध' है इसे लेखक दैवी सहायता से भरी समझता है।[१] चंदायन के रचनाकाल का उल्लेख हि० सं० ७७२ फीरोज शाह तुगलक के शासनकाल सं० १४०८-१४४५ ई० मे श्री ब्रजरत्नदास ने माना है।[२] डॉ० रामकुमार वर्मा ने चंदायन का रचनाकाल सं० १३७५ ई० ठहराया है। इस तरह मुल्लादाऊद, अमीर खुसरो का समकालीन (सं० १३१२-१३८१) मालूम पड़ता है। खुसरो की मसनवियाँ ऐतिहासिक होने के साथ ही प्रेम गाथाओं का स्वरूप भी दिखलती हैं।

मुल्लादऊद की 'चंदायन' के पश्चात् ऐसा लगता है कि सूफी प्रेमकथाओ की रचना पर्याप्त मात्रा मे हुई, परन्तु उनमे से अधिकाश नष्ट हो गयी हैं। कुछ का तो, केवल साधारण उल्लेख भर इधर-उधर मिल जाता है। शेख रिज़कुल्ला मुस्ताकी (सं० १५४९-१६३८) की 'प्रेमवन जीव निरंजन' ऐसी ही कृतियो मे है। ऐसा कहा जाता है कि इसका लेखक सूफी था और हिन्दुओ मे पर्याप्त योग्यता रखता था। मुश्ताकी साहब का उपनाम रज्जन था।

इसके बाद सूफी प्रेमाख्यानो की परम्परा मे 'मिरगावति' का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कुतुबन के अनुसार इसका रचनाकाल हिजरी सन् ९०९ यानी सन् १५०३ होता है।

इसके पश्चात् सूफी प्रेमाख्यानो मे सर्वाधिक विख्यात जायसी की 'पद्मावत' की रचना हुई। पद्मावत का रचनाकाल हि० सन् ९२७ तथा १५२० ई० है। जायसी के पश्चात् उसके आदर्श पर लिखी जाने वाली कई सूफी प्रेमकथाएँ प्राप्त होती हैं। हि० सन् ९५२ मे मंझन ने 'मधुमालती' की रचना की। हि० सन्० १०२२ मे उसमान ने चित्रावली' की रचना की।[३] इसके बाद जान कवि ने अपनी लेखनी से २१ सूफी प्रेमाख्यानो की रचना की जिनके नाम क्रमशः रतनावती, लैलेमजनू, रतनमंजरी, नलदमयंती, पुहुपवरिषा, कमलावती, छविसागर, कामलता, कलावती, छीता, रूपमंजरी, मोहिनी, चन्द्रसेनसील निधान, कामरानी, पीतमदास, कथाकलन्दर की, देवलदेवी, कनकावती, कौतूहली, सुमरराइ, बुद्धिसागर हैं। इन्हीं के समकालीन कवि शेख नबी ने

१—सूफी काव्य संग्रह—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ९२।

२—खडीबोली हिन्दी साहित्य का इतिहास—श्रीब्रजरत्नदास, पृ० ९१, ९२।

३—जायसी के परवर्ती हिन्दी-सूफी कवि और काव्य—डॉ० सरला शुक्ल पृ० १३९।

ज्ञानदीप रचना जहांगीर के समय में संबत् १६७६ में की थी। इसमें रानी देवजानी तथा राजा ज्ञानदीप की प्रेमकथा का वर्णन हुआ है। इसके बाद १२ वी शताब्दी मे कवि कासिमशाह कृत 'हंसजवाहिर' नामक पुस्तक प्राप्त होती है। अबतक के प्रेमाख्यानो मे सूफी सिद्धान्तो का प्रतिपादन एवं रति सम्बन्धी विभिन्न भावो की व्यंजना का आधार धर्म की उदार समन्वयवादिनी प्रवृत्ति है।

उन्नीसवी शताब्दी के कवि नूरमुहम्मद ने अपनी 'इन्द्रावती' (हि० सन् ११५७) तथा अनुराग बाँसुरी (हि० सन् ११७८) मे कट्टरपंथी इस्लामी भावनाओं का साफ शब्दों मे समर्थन किया है। कवि निसार ने अपनी रचना 'यूसुफ जुलेखा' (हि० सन् १२०५) की कथा भी शामी परम्परा से ग्रहण करना ज्यादा श्रेयस्कर समझा। 'यूसुफ जुलेखा' के शामी प्रेमाख्यान का महत्त्व परवर्ती कवियो मे काफी बढा। शेख रहीम ने अपने ग्रन्थ 'भाषा प्रेम रस' मे इस प्रेमाख्यान का व्यापक वर्णन उदाहरणार्थ किया है। कवि नसीर ने इसी कथानक को आधार बनाकर अपने ग्रन्थ 'प्रेम दर्पण' का सृजन किया।

ख्वाजा अहमद की 'नूरजहाँ' का रचना काल हि० सन् १३१३ और शेखरहीम की 'प्रेमरस' का हि० सन् १३२३ एवं कवि नसीर के 'प्रेमदर्पण' का रचनाकाल हि० सन् १३३५ है। 'प्रेमदर्पण' मे भी यूसुफ जुलेखा की ही प्रणय गाथा वर्णित है।

अलीमुराद ने अपने ग्रन्थ 'कुंवरावत' मे ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं दिया है। हुसेन अली उपनाम सदानन्द कृत 'पुहुपावती' का रचनाकाल सन् ११३८ दिया गया है। शाहनजफ अली सलोनी की 'प्रेम चिनगारी' का रचनाकाल ई० सन् १८०६ है।

चंदायन

सूफी प्रेमाख्यानो की परम्परा हिन्दी मे मुल्लादाऊद से आरम्भ होती हे। इनका 'चंदायन' सन् १३८० मे लिखा गया।[१] वह डलमऊ के रहने वाले थे तथा अपने यहा की लोक प्रचलित कहानी चनैनी के आधार पर उन्होंने 'चंदायन' की रचना की। १०० वर्ष पूर्व 'गजेटियर आफ दी प्राविंस आफ अवध' मे सर्वप्रथम चन्देनी का उल्लेख मिलता है। डलमऊ के प्रसंग मे गजेटियर मे लिखा गया है कि 'फिरोजशाह तुगलक ने यहाँ मुस्लिम धर्म और विद्या के अध्ययन के लिये एक विद्यालय की स्थापना की थी। इसकी

१—बरस सात सै होइ इक्यासी। तहिया यह कवि सरसउ भासी॥
साह फिरोज दिल्ली सुलतानू। जोना साहिवजीर बखानू॥

उपयोगिता इस बात से प्रकट है कि डलमऊ के मुल्लादाऊद नामक कवि ने सन् ६१७ हिजरी (१२५५ ई०) में भाषा में चन्देनी नामक ग्रन्थ का संपादन किया[1] यद्यपि यह बात अब सिद्ध हो चुकी है कि 'चंदायन' की रचना ७८१ हिजरी मे हुई तथा उसका रचयिता मुल्ला केवल सम्पादक मात्र नहीं है अपितु चनैनी को सूफी साँचे में ढालने वाला मौलिक कवि है, तथापि गजेटियर की यह सूचनाएँ महत्व की थी कि मुल्ला दाऊद डलमऊ के थे और लोकप्रचलित चनैनी को उन्होने अपने काव्य का आधार बनाया। विद्वानों का ध्यान इस तरफ नही जा सका था।[2] इसी कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सूफी प्रेमाख्यानों का आरम्भ कुतुबन की 'मृगावती' से स्वीकार किया।[3] जायसी ग्रन्थावली मे भी उन्होंने 'मृगावती' को ही सूफी परम्परा का प्रथम प्रेम-काव्य माना है।[4] संक्षेप मे चंदायन का कथानक इस प्रकार है—

चंदायन की कथावस्तु

इस काव्य की नायिका चंदा है। वह किसी गोबरगढ के राजा सहदेव की पुत्री है। चार वर्ष की आयु होने पर उस कन्या का विवाह एक ज्योतिषी के कहने पर एक बावन से कर दिया जाता है। १२ वर्ष की अवस्था मे वह युवती होने लगती है। वह पति और सास से असंतुष्ट रहती है। एक दिन एक भिखारी 'बाजुर' गोबर आता है तथा उसका सौन्दर्य देखकर बेहोश हो जाता है। वह राजापुर के राव रूपचंद के यहाँ पहुँचता है तथा रात मे चन्दा के विरह का गीत गाता है, राजा उसे बुलाता है। भिखारी उनसे निवेदन करता है कि वह विक्रमादित्य के धर्म-स्थान उज्जैन का निवासी है। वह चंदा का नखशिख वर्णन करता है। राजा उसके सौन्दर्य का वर्णन सुनकर बेसुध हो जाता है तथा चन्दा के लिये गौबर पर चढ़ाई कर देता है। चन्दा का पिता वीर लोरिक के यहाँ सन्देश भेजता है, वह आकर मुकाबला करता है तथा विजयी होता है। चन्दा उस पर मोहित हो जाती है। लोरिक भी चन्दा को देखकर प्रेम-विभोर हो जाता है। उसे मूर्छा आ जाती है। चन्दा की सखी बिरसपति के प्रयत्न से चन्दा तथा लोरिक शिव-मन्दिर मे मिलते हैं। लोरिक घर जाता है। यहाँ चन्दा से लोरिक की पत्नी मैना क्रुद्ध

डलमऊ नयर बसे नौरंगा, ऊपर कोट तरे वह गंगा।।
(सूफी काव्य संग्रह—परशुराम चतुर्वेदी, (तृ० सं०) पृ० ७८।

१— गेजटियर आफ प्राविंस आफ अवध, भाग १ (१८५८ ई०) पृ० ३५५।
२—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याममनोहर पांडेय, पृ० ६३।
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ८१।
४—जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३।

हो जाती है। एक दिन चन्दा लोरिक के साथ कहीं चली जाती है। रास्ते में चन्दा का पति बावन उसका पीछा करता है। बावन लोरिक को घायल कर आगे बढ़ता है तथा हरदीपाटन चला जाता है। एक वर्ष बाद दक्षिण से व्यापारियो का समूह आता है। एक व्यापारी लोरिक मैना का विरह वर्णन करता है। वह चन्दा को लेकर हरदी-पाटन से गौबरगढ आता है। लोरिक और मैना का मिलन हो जाता है।[1]

कथावस्तु की लोकप्रियता

अब्दुल कादिर अल बदायूनी के 'मुन्तरबबुतवारीख' नामक ग्रन्थ मे जो उल्लेख मिलता है, उससे जाहिर है कि यह रचना हिन्दी मे लिखी हुई एक मासनवी थी जिसमे 'लूरक' तथा 'चान्दा' के प्रणय की कहानी वर्णित है। बदायूनी ने इसके विषय मे और अधिक उल्लेख करना अनावश्यक समझा है कारण इसकी ख्याति पर्याप्त थी। इस रचना के महत्व के विषय मे बदायूनी ने लिखा है कि मरवद्म शेख तकीउद्दीन ख्वानी धर्मोपदेश करते समय इस ग्रन्थ से कुछ पंक्तियाँ उद्घृत करते थे जिन्हे सुनकर श्रोतागण अत्यधिक प्रभावित होते थे। एक बार कुछ लोगो ने शेख से पूछा कि वे इस हिन्दी मसनवी की पंक्तियों को सुनना क्यो श्रेयस्कर समझते हैं तो शेख ने उत्तर दिया कि यह सारी की सारी भगवद् विषयकसत्य से परिपूर्ण है तथा इसका विषय पर्याप्त मोहक है। पुन शेख ने कहा कि यह परमात्मा के प्रेमियो के भावो के अनुरूप है तथा कुरान की कुछ आयतो की व्याख्या के सामान है एवं हिन्दुस्तान के मधुर स्वर वाले गायको के द्वारा गाने योग्य है।[2]

ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर मे मुल्ला दाऊद के चंदायन का बोलबाला घटने लगा क्योकि पुन: उसका पता नहीं लगता। इतना जरूर है कि इस रचना का पता भले ही नही चलता किन्तु इस कहानी की लोकप्रियता पूर्ववत् ही रही। लोरिक और चन्दा की कहानी लोकप्रिय कहानियो मे रही है जिसका प्रचार बंगाल, हैदराबाद तथा हिन्दी प्रदेशो मे था।[3] छत्तीसगढी और भोजपुरी मे इस कहानी की परम्परा आज तक चली आई है। बंगाल के विख्यात कवि दौलतकाजी की रचना 'सती मयना औ लौर चन्द्रानी' मे लोरिक तथा चंदा की कहानी ही वर्णित है। यह भी स्पष्ट है कि दौलत काजी की इस रचना का आधार साधन का मैनासत है। हैदराबाद के किसी अज्ञात

१—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डॉ० श्याम मनोहर पांडेय, पृ० ६३।
२—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—डॉ० रामपूजन तिवारी, पृ० १६८।
३—मा० प्रे० प० पृ० ६१–६८।

कवि की रचना 'मसनवी किस्सा मैना सतवंती' का आधार भी लोरिक और चंदा की ही कहानी है।[१]

चंदायन के दो संस्करण उपलब्ध हैं, जो डा० परमेश्वरी लाल गुप्त एवं डा० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त का सम्पादन वैज्ञानिक सम्पादन प्रणाली पर आधृत है तथा डा० परमेश्वरी लाल गुप्त का सम्पादन सामान्य ढंग से हुआ है।

चंदायन की भाषा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'ध्यान देने की बात है कि ये सब प्रेम-कहानियाँ पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधी भाषा मे एक नियत क्रम के साथ केवल चौपाई दोहे मे लिखी गई हैं।[२] अब तक हिन्दी सूफी काव्यो के विषय मे जितना भी अध्ययन हुआ है सबमे इस तथ्य को स्वीकार किया गया है। परिणामस्वरूप चंदायन की भाषा के विषय मे भी यही अनुमान लगाया जाता है कि उसकी भाषा अवधी ही होगी। डा० श्याम मनोहर पाडेय ने इस विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है 'डलमऊ क्षेत्र मे अवधी बोली जाती थी। अतः जनता मे अपने सन्देश प्रसारित करने के लिए मुल्ला दाऊद ने अवधी का ही चयन करना उपयुक्त समझा होगा। सूफी कवि जिस क्षेत्र मे रहे हैं, वहाँ की भाषा मे काव्य लिखते रहे हैं। पंजाब के सूफी कवियो ने पंजाबी मे 'ससिपुन्नी' 'हीर राझा' आदि कथाओ को सूफियाने ढंग से पंजाबी मे लिखा। इसी प्रकार दौलत काजी, अलाउल आदि कवियो ने जो बंगाल के रहने वाले थे, बगला मे लिखा। अत डलमऊ का कवि अवधी क्षेत्र मे रहकर अवधी में लिखता है तो आश्चर्य नही होना चाहिए।[३] डा० श्याम मनोहर पाडेय ने शुक्ल जी के ही मत का अनुसरण करते हुए चंदायन की भाषा को अवधी ही माना है जो बिल्कुल ठीक प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ मे डा० परमेश्वरी लाल गुप्त का विचार भी उल्लेखनीय है। उन्होने लिखा है 'चंदायन की रचना न तो अवधी वातावरण मे हुई थी और न उसका आरम्भिक प्रचार अवधी क्षेत्र के बीच था।'[४] किन्तु परमेश्वरी लाल गुप्त का यह मत उनकी अल्पज्ञता का ही परिचायक जान पडता है। डा० माताप्रसाद गुप्त चंदायन की भाषा के विषय मे अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं 'चंदायन की भाषा अवधी

१—सू० का० सं० पृ० ६७ और हि० सा० इ०, पु० १०६।
२—जायसी ग्रन्थावली की भूमिका—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४।
३—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० श्याममनोहर पांडेय, पृ० २५६।
४—चंदायन—संपादक डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० ३२।

है और 'जायसी की भाषा से वह मिलती जुलती होते हुए भी किंचित् पूर्व की स्थिति का आभास देती है।'[१]

चंदायन के अध्ययन से जाहिर है कि उसकी भाषा अवधी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि चंदायन की भाषा अवधी ही है। चंदायन मे क्लीब पति को छोड़कर पर पुरुष के साथ भाग जाना, नारी द्वारा पुरुष को भगा ले जाना, रूप-गुण जन्य आकर्षण, अकेले पाकर नायिका का अपहरण, जुए मे पत्नी को दाँव पर लगा देना, पत्नी के सतीत्व की परीक्षा प्रवासी पति के विरह मे पत्नी का झूरना आदि कथानक रूढ़ियो का प्रयोग मिलता है। चंदायन मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढ़ियो का विवेचन सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका प्रयोग करकंड चरिउ मे हुआ है।

मृगावती

मृगावती का रचनाकाल

कुतुबन ने ९०९ हिजरी मे (१५०४ ई०) मे मृगावती की रचना की है। कवि ने तत्कालीन परम्परागत शैली का अनुकरण करते हुए समसामयिक बादशाह हुसेन शाह का भी वर्णन किया है।[२] यह हुसेन शाह कौन है, यह विवादास्पद है।

कुतुबन के गुरू

कुतुबन के गुरू जौनपुर के बूढन थे जो सुहरवर्दिया सम्प्रदाय के थे। किन्तु अब तक कुतुबन को चिश्ती सम्प्रदाय का जाना जाता रहा है लेकिन इस मत का खंडन निम्नांकित पंक्तियो से किया जा सकता है—

> शेख बूढ़न जग साचा पीर, नाउ लेत सुध होय शरीर।
> कुतुबन नाउं ले रे पा धरे, सुहरवर्दि जिन्ह जग निरभरे।

१—चंदायन, संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ७२।

२—मन मह जीभ सहस जो होई, तोर बड़ाई करे जो कोई।
सुन सुन चितलाइ कर कहो बात हुँ एक।
और बाढ़ो हुसेनशाह कि अहजगत की नेक॥
इन्ह के राज यह रे हम कहे,
नौ सै नौ जो संवत् अहै॥
मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० श्याममनोहर पाडेय, पृ० ६४।

पिछलइ पाप धोइ सब गई, जो रे पुरानइ औ सब नई।
नाउ के आज भयो औतारा, सब से उं बड़ा औ पीर हमारा।
जे कन्ह बात दिखायइ होवे, एक निमिख मह पहुंचइ सोवे।
जो इन्ह पंथ दिखाई दिन्ही, जो चल जानइ कोइ।
एक निमिख में पहुंचइ तह तहां, जो सत भावे सोइ[1]।

कुतुबन ने शेख बूढ़न की खूब प्रशंसा की है। उन्होंने उनको सच्चा पीर कहा है। उनका नाम लेते ही शरीर पवित्र हो जाता है।

'मृगावती' की कथावस्तु

संक्षेप मे मृगावती की कथा इस प्रकार है—'चन्द्रगिरि के राजा गनपति देव थे। उन पर लक्ष्मी की अपार कृपा थी, परन्तु वे सन्तान विहीन थे। राजा बहुत चिंतित थे। उन्होने दान-पुण्य करना शुरू किया। ईश्वर ने उनकी पुकार सुन ली। परिणाम-स्वरूप उन्हे पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम राजकुंवर रखा गया। १० वर्ष की उम्र मे ही वह प्रकाड पंडित बन गया।

दसवें बरस महं पंडित अस भा,
पोथा बांच पुरान।
हियकर खेल बीच भल मारइ
नागर चतुर सुजान।[2]

राजकुमार की आखेट मे विशेष रुचि थी। वह एक दिन सौ घुडसवारों के साथ शिकार खेलने के लिये निकला। उसने एक सतरंगी हरिणी देखी। ऐसी हिरणी उसने कभी नही देखी थी। किन्तु काफी प्रयास के बाद भी वह उसे प्राप्त न कर सका। उसके मित्र पीछे ही रह गये। जिधर वह गयी थी कुमार भी उधर चला। वह उस पर आसक्त हो गया। स्नेहातिरेक से वह इतना विह्वल हो गया था कि अपनी सुधि बुधि भी उसे न रही। वह एक तालाब के किनारे गया, जहा एक झाड़ीदार वृक्ष था। हरिणी सरोवर मे कूद पड़ो। राजकुमार सरोवर में स्नान करने का निश्चय किया। हिरणी के लिये हृदय मे अगाध स्नेह होने के कारण वह उसे प्राप्त करने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ हो गया। धीरे-धीरे दिन व्यतीत होने लगा, परन्तु मृगी का पता नही लग सका। रातें आती तथा चली जाती पर कुमार उसकी प्रतीक्षा में पड़ा रहता था। उसकी आँखें आसुओ से भरी थीं। कुमार के साथियो द्वारा इसकी सूचना पाकर उनके पिता अत्यन्त दुखी हुए। राजा तुरंत राजकुमार के यहां आये। कुमार की दशा देखकर वह रो

---

१ — वही, पृ० ६५ से उद्धृत।

२—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याममनोहर पांडेय, पृ० ६६ से उद्धृत।

पड़े। पिता ने बहुत समझाया बुझाया किन्तु कुमार घर लौट कर नहीं आया। राजा ने सरोवर के पास ही एक दिव्य महल बनवा दिया। कुमार वहाँ अकेले रहने लगा। उसकी आंखों से निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती थी। हरिणी को वह भुला नहीं पाता था। इस तरह एक वर्ष व्यतीत हो गया। शीतऋतु आयी तथा चली गई। ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु भी पूर्ववत् ही चली गई। कुंवर के जीवन मे आशा की किरण नहीं दिखाई पड़ी। सहसा एक दिन सात अप्सराएँ स्नान करने आयी। इनमे मृगावती भी थी। सभी एक समान सुन्दरी थी। वे उड़ने की कला मे निपुण थी। कुमार की निगाह मृगावती पर पड़ी। वह आगे बढ़ा लेकिन इसके पहले ही सभी अप्सरायें उड गयी। एक दिन एक स्त्री ने आकर कुमार को बताया कि मृगावती किस तरह उपलब्ध हो सकती है। राजकुमार को यह विधि याद हो गई।

एक दिन मृगावती अन्य सखियो के साथ सरोवर मे स्नानार्थ आयी। राजकुमार छद्म-वेश मे आकर उसके कपड़े चुरा लिये। मृगावती स्नान कर बाहर आयी तो कपड़े गायब थे। उसने राजकुमार को डाटा और फटकारा। राजकुमार ने कहा 'गत दो वर्षों' से जब मैंने पहले तुम्हे हरिणी के रूप मे देखा था, मै यहाँ कष्ट झेल रहा हूँ। मेरे हृदय मे प्रेम का संचार बहुत पहले हो चुका है। तुम्हारे लिए ही मैं पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर तरह-तरह की मुसीबतें झेलते हुए यहाँ पड़ा हूँ'।[1]

मृगावती ने कहा, मृगी का रूप मैंने तुम्हारे लिये ही धारण किया था। दूसरी बार भी तुम्हारे लिये यहाँ आयी। मैंने एकादशी के पवित्र दिन पर ही तुमसे भेंट करने का निश्चय किया था। मृगावती के वस्त्र मागने पर राजकुमार ने कहा 'यदि मैं तुम्हें वस्त्र दे देता हूँ तो भय है, तुम मुझे न मिलोगी।' उसने मृगावती को दूसरा वस्त्र देना ही उचित समझा। दोनो मंदिर मे गये। मृगावती ने आत्म समर्पण किया। दो भिन्न मिलकर एक हो गये।

पिता को इसकी सूचना दी गई। वह पुत्र और वधू को उपहार देने के लिये बड़े उत्साह से पहुँचे। इसके उपरान्त राजकुमार तथा मृगावती एक साथ रहने लगे। मृगावती का वस्त्र राजकुमार छिपाकर रखा था क्योंकि उसे मालूम था कि उसे पाते ही वह उड भी सकती है। राजकुमार एक दिन पिता से मिलने चला गया। इसी बीच मृगावती अपना वस्त्र ढूंढकर वहाँ से उड़ गयी। उसने जाते समय धाय से कहा 'कुमार के लिये मेरे हृदय मे अपार प्रेम भरा है लेकिन मैं परीक्षा लेकर जानना चाहती

१—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याममनोहर पाण्डेय, पृ० ६७।

हूँ कि उसका प्रेम किस तरह का है। तुम राजकुमार से बतला देना कि मैं कंचनपुर की राजकुमारी हूँ तथा मेरे पिता का नाम रूप मुरारि है'।[1]

इधर जब राजकुमार पिता से भेंटकर आता है तो मृगावती को अनुपस्थित पाता है। सेविका द्वारा सम्पूर्ण समाचार सुनकर वह विरहाग्नि मे जलने लगा। एक दिन योगी का वेश बनाकर वह समुद्र से घिरे एक पर्वत पर गया। वहाँ रुकमिन नाम की एक युवती का राक्षस से उद्धार किया। परिणामस्वरूप रुकमिन के पिता ने राजकुमार से उसका विवाह कर दिया। तत्पश्चात् वह कंचनपुर पहुँचा। मृगावती वहाँ अपने पिता के स्थान पर राज्य चला रही थी। वहाँ राजकुमार १२ वर्ष तक निवास किया तथा उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। राजा गनपति देव इधर पुत्र के लिए दुखी रहने लगे। उन्होने पुरोहित को ढूढने के लिये भेजा। राजकुमार मृगावती सहित घर लौट आया। मार्ग मे उसने रुकमिन को भी साथ ले लिया। एक दिन चन्द्रगिरि मे आखेट करते समय कुमार हाथी से गिर पडा तथा उसकी मृत्यु हो गई। उसकी दोनो रानियाँ भी उसी के साथ सती हो गयी।[2]

कुतुबन ने कहा है, यह कथा सर्वप्रथम हिन्दुओ मे प्रचलित थी। हिन्दुओ से तुर्कों मे गई। मैंने इस कथा का रहस्य समझाया है। इसमे योग के अलावा शृंगार और वीर रसो का भी समावेश है।

कवि ने आरम्भ मे मुहम्मद साहब और उनके चार मित्रो—अबूबकर, उसमान, उमर तथा सिद्दीक की वन्दना की है। इस रचना मे सूफी साधना पद्धति की सफल अभिव्यक्ति मिलती हे। कवि ने यहाँ की ऋतुओ तथा लोक-विश्वासो का गम्भीर अध्ययन किया है।

मृगावती नामक अन्य रचनाएँ

कुतुबन की मृगावती के पहले तथा बाद इसी नाम की अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं। इनमे से एक हिन्दी मे मेघराज प्रधान रचित और बंगला साहित्य मे भी कई कथायें कुतुबन को आधार बनाकर लिखी गई।[3] इसके अलावा इससे भी पहले ब्राह्मण, जैन और बौद्ध साहित्य मे मृगावती आख्यान उपलब्ध है। बंगला साहित्य मे कुतुबन के काव्य का अनुगमन हिन्दू और मुसलमान कवियो द्वारा समान रूप से किया गया है। ये

१—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याममनोहर पाण्डेय, पृ० ६८।

२- वही।

३—कुतुबन कृत मृगावती—संपादक डॉ० शिवगोपाल मिश्र, पृ० ६'

कृतियाँ १७-१८वी शती की हैं। इनमे से दो हिन्दू कवियों की रचनायें १७वीं शती की हैं तथा तीसरी एक मुसलमान कवि की रचना इसके पश्चात् की है।[1] मृगावती नामक जो अन्य रचनायें मिलती हैं उनमें मृगावतीचरित्र (देवप्रभसूरि) मृगावतीचौपाई (सकलचन्द), मृगावती चौपाई (विनयसमुद्र), मृगावतीचौपाई (समय सुन्दर), मृगावती कथा (मेघराजप्रधान), चन्द्रावली (द्विजपशुपति), मृगावती चरित्र (द्विजराम) तथा मृगावती यामिनी भान (मुसलमान कवि), मुख्य हैं।

मृगावती का उद्देश्य

मृगावती के अध्ययन से पता चलता है कि 'रस बात' या प्रेम की कथा' कहना ही कुतुबन का केवल उद्देश्य था तथा उसी के लिये 'मृगावती' की रचना की गई,[2] परन्तु मृगावती की रचना के और भी उद्देश्य जान पड़ते हैं। तत्कालीन समाज मे 'प्रेम प्राप्ति के लिये 'जोग' साधना के द्वारा आत्म शुद्धि की तरफ ज्यादा बल दिया जाता था। मृगावती मे भी 'जोग' साधना के द्वारा प्रेम-प्राप्ति की व्यञ्जना मिलती है।

यो तो सूफियो के अनुसार नायिका ब्रह्म की प्रतीक है, नायक भक्तात्मा की तथा दूत गुरु की, लेकिन नायक का बहुपत्नीत्व इन प्रतीको मे बाधक है। मृगावती भी इसका अपवाद नही है।

मृगावती में देशकाल

जिस शाही समाज का चित्रण 'कुतुबन' द्वारा किया गया है वह प्राचीन परम्परा से सम्बन्धित है तथा राजाश्रित होने के कारण कवि को उसका सच्चा अनुभव भी था। मृगावती मे जितने भी वर्णन आये हैं—यथा समाज का वर्णन, छत्रपति राजा, राजा रावो का संगठन, युद्ध की तैयारियाँ, जंगल मे आखेट, मानसरोदक के समीप चन्द दिनो में अद्वितीय महल का निर्माण, दूतो द्वारा संदेश आदि नि.संदेह सामन्तशाही समाजों के द्योतक हैं। जिन सहस्र रजनियो से अरब और फारस के ही लोग पहले भिज्ञ थे, शायद उनसे भारतीयो को अवगत कराने के लिये ही कोरी कल्पना की गई है—यथा समुद्र का एक डोगे मे पार करना, बाघ-सिहो से एक जोगी का बच निकलना, गड़रिये के चक्र से जोगी का भाग जाना, राक्षस के आकाश तक ले जाने पर भी राजकुमार का जीवित रहना, राक्षस के सिरों का चक्र द्वारा उच्छेदन ये ऐसी घटनायें हैं जिनपर सर-

---

१—इस्लामी बंगला साहित्य—सुकुमार सेन, पृ० १०।

२—"मैं रस बात कही रस तौ सो जो रस कीजै बात
सो रस रहै दुहूँ जग जौ रस सो रंगरात।"
मृगावती, कुतुबन।

लता से विश्वास नहीं होता ।[1] पुनः अन्त मे हाथी से गिरकर राजकुमार का मरना उसे एक साधारण प्राणी प्रमाणित करता है। रानियों का सती होना तत्कालीन प्रथा की याद दिलाती है। मृगावती की कथावस्तु ऐतिहासिक नहीं अपितु काल्पनिक है। इस कथा के पहले भी इसी नाम से बहुत सी कथायें इस देश मे प्रसिद्ध थी जिनका उल्लेख पहले किया गया है। 'कुतुबन' के बाद भी मेघराज ने 'मृगावती कथा' नामक ग्रन्थ की सृष्टि की।

मृगावती मे 'वर्णित जोगी' का वेष गोरखपंथियों का वेष है। निश्चित रूप से साधक की जोगसाधना गोरखपंथी है। इसके अतिरिक्त गुरु गोरखनाथ का वर्णन भी आया है। आरम्भ मे कवि ने अल्लाह के अवतार मोहम्मद साहब की वन्दना की है तथा उसे वर्णनातीत, अजर एवं अमर कहा है। इसके बाद चार यारो (मित्रो) या पीरो का वर्णन है। इसके पश्चात् अपने पीर का वर्णन करते हुए कुतुबन ने उसे ही सर्वोत्तम कहा है।

"सबसो बड़ा जो पीर हमारा।"

भाषा-शैली

प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य मे प्रबन्ध काव्य सर्गबद्ध शैली मे लिखे गये हैं परन्तु सूफी तथा अन्य हिन्दू प्रेमाख्यानक कवियों ने इस प्रथा को त्याग कर फारस की मसनवी शैली का आधार बनाकर अपने प्रेमाख्यानकों की सृष्टि की। इसमे कथा सर्गों या अध्यायों मे विभक्त नही होती अपितु एक ही शैली मे प्रारम्भ होकर समाप्त होती है। कही-कही घटनाओ को रुचिकर बनाने के लिये शीर्षक भी मिलते हैं। सूफी कवियो ने रचना के लिये जो छन्द चुना वह दोहा चौपाई है। अपभ्रंश मे दोहा के स्थान पर घत्ता तथा चौपाई के स्थान पर 'पद्धड़ियो' का व्यवहार इन सूफियो द्वारा दोहा-चौपाई के व्यवहार के पहले ही हो चुका था। पाँच-पाँच, सात-सात अथवा नौ-नौ चौपाइयो के बाद दोहे या सोरठे का प्रयोग 'अर्द्धाली-दोहा' शैली के नाम से जाना जाता है। यही मसनवी शैली है। इस सन्दर्भ मे आचार्य शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है, इन प्रेम-गाथा-काव्यों के सम्बन्ध में पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बिल्कुल भारतीय चरित-काव्यो की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियो के ढंग पर हुई है, जिनमें कथा सर्गों और अध्यायो मे विस्तार के हिसाब से विभक्त नही होती, बराबर चली चलती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसंगो का उल्लेख शीर्षक के रूप मे रहता है। मसनवी के लिये साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जाता है

१—मृगावती—कुतुबन कृत, संपादक डॉ० शिवगोपाल मिश्र, पृ० ३०।

कि सारा काव्य एक ही मसनवी छन्द मे हो पर परम्परा के अनुसार उसमें कथारंभ के पहले ईश्वर स्तुति, पैगम्बर की वंदना और उस समय के राजा (शाहेवक्त) की प्रशंसा होनी चाहिए। ये बातें पद्मावती, इन्द्रावती, मृगावती इत्यादि सब मे पाई जाती हैं।

शुक्ल जी पुन. आगे लिखते हैं दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि ये सब प्रेम-कहानियाँ पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधी भाषा मे एक नियत क्रम के साथ केवल चौपाई दोहे मे लिखी गई हैं। जायसी ने सात-सात चौपाइयो (अर्द्धालियो) के बाद एक-एक दोहे का क्रम रखा है। जायसी के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' के लिये यही दोहे चौपाई का क्रम ग्रहण किया।[1] और यह तो निर्विवाद ही है कि इस शैली की प्रेम-कहानियाँ मुसलमानो के ही द्वारा लिखी गई।

हिन्दू प्रेमाख्यानक कवियो मे ईश्वरदास ने इस निश्चित अर्द्धाली-दोहा शैली से काम नही लिया।

कुतुबन और मंझन ने पाँच-पाँच चौपाइयो के बाद एक दोहा या सोरठा का विधान रखा है, लेकिन 'जायसी' ने सात-सात 'निसार' ने नौ-नौ चौपाइयो के बाद एक दोहे का क्रम रखा है। कुतुबन तथा मंझन के मध्य जायसी ने चौपाइयो की संख्या बढाकर थोडी स्वतंत्रता दिखलाई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भाषा के विषय मे हिन्दी इतिहास लेखक एक मत हैं कि सूफियो ने अवधी भाषा मे अपने काव्यो की रचनायें की। यह निश्चित है कि जो काव्य ग्रन्थ जितना ही प्राचीन होगा, वह विशुद्ध तथा साहित्यिक अवधी से उतनी ही दूर एवं भिन्न होगा जितना कि परवर्ती कोई भी ग्रन्थ उसके समीप एवं समान। इसलिये हमे मुल्लादाऊद या कुतुबन के द्वारा व्यवहृत अवधी मे उस परिष्कार की खोज नही करनी चाहिए जो उनके परवर्ती कवियो की भाषा मे मिलती है। तुलसीदास या दूसरे हिन्दू कवियो ने अवधी को साहित्यिक तथा अत्यन्त संस्कृतनिष्ठ रूप प्रदान किया उनका लक्ष्य भी यही था, परन्तु इसके विपरीत सूफियो ने हमेशा जनता से सम्पर्क रखकर उन्ही की बोली को अपनाया। इसी कारण अवधी के श्रेष्ठ कवि 'जायसी की भाषा ठेठ अवधी है, इसमे तथा तुलसीदास की भाषा मे पर्याप्त भेद पाया जाता है। मृगावती मे प्रिया-प्राप्ति के लिये योगी बनना, सप्त समुद्रो की यात्रा, ज्योतिषियो द्वारा अनुरक्ति की पूर्व सूचना, वन मे सरोवर के पास सुन्दरी कन्या का दर्शन, कक्ष निषेध, वस्त्र-हरण द्वारा अप्सराओं और परियो की प्राप्ति आदि कथानक-रूढ़ियो का प्रयोग हुआ है। मृगावती मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढियो का विवेचन सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका प्रयोग करकंडचरिउ मे हुआ है।

१—जायसी ग्रन्थावली—सं० आचार्य शुक्ल, पृ० ४।

कुतुबन ने 'मृगावती' मे अवधी भाषा का प्रयोग किया है जिसका रूप दूसरे सूफी रचनाओं की भाषा के ही सदृश लौकिक अथवा बोलचाल की भाषा जैसा है। उसमें ग्रामीण शब्दों की बहुलता है तथा उन शब्दों मे वह अनगढ़पन है, जो उन्हें प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल आदि से उपलब्ध हुआ।

पद्मावती

मलिक मुहम्मद जायसी

पद्मावती की रचना जायसी ने ९२७ हिजरी में की थी।[1] वह जायस के रहने वाले थे।[2] शेरशाह के समय मे कवि ने इस काव्य की सृष्टि की थी।[3] उन्होंने दो गुरु परम्पराओं का वर्णन किया है। एक के अनुसार उनके पीर सैयद अशरफ[4] थे।

जायसी ने एक अन्य परम्परा का भी जिक्र किया है। उन्होने कहा है 'गुरु मोहदी सेवक हैं, मै उनका सेवक हूँ। शेख बुरहान अगुआ थे। उन्होने पंथ पर लाकर मुझे ज्ञान दिया। उनके गुरु अलहदाद थे। अलहदाद के गुरू सैयद मुहम्मद थे। सैयद मुहम्मद दानियाल के शिष्य थे।

पद्मावती की कथावस्तु

पद्मावती की कथावस्तु संक्षेप मे इस प्रकार है—

सिंहल दीप पदुमनी रानी,
रतनसेन चितरउ गढ़ ज्ञानी।
अलाउदी दिल्ली सुलतानूँ,
राघौ चेतन कीन्ह बखानूँ।
सुना साहि गढ़ छेंका आई,
हिन्दू तुरकहिं भई लराई।

१—सन् नव सै सत्ताइस अहा। कथा आरम्भ-बैन कवि कहा॥
—जायसी ग्रन्थावली, संपादक आचार्य शुक्ल स्तुति खंड, पृ० ६।

२—जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।
—वही।

३—सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू॥
ओहि छाज छात और पाटा। सब राजै भुइं धरा लिलाटा॥
—वही, पृ० ५।

४—पद्मावत—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद १८, १९।

आदि अंत जस कथा अहै,
लिखि भाषा चौपाई कहै[1]।

'पद्मिनी सिंहल द्वीप की रानी थी। रत्नसेन उसे चित्तौड़ ले आये। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन से राघवचेतन ने उसकी चर्चा की। उसने आकर गढ़ घेर लिया। हिन्दू मुसलमानो मे लडाई हुई।' इसी कथा का जायसी ने विस्तार दिया है।

मुख्य रूप से कथा के दो भाग हैं। एक भाग में रत्नसेन अपनी विरह विकल पत्नी नागमती को छोडकर योगी बन जाता है तथा सिंहल जाकर पद्मिनी को प्राप्त करता है। इसके पहले जायसी ने पद्मावती का जन्म और उसके यौवन का बड़ा ही मनोहर चित्र खीचा है। पद्मिनी का जन्म सिंहल के राजा गंधर्व सेन के यहाँ होता है। छठी रात को विशाल उत्सव होता है। पंडित आकर जन्मपत्री तैयार करते हैं। धीरे-धीरे समय व्यतीत होता है। पद्मावती बारह वर्ष की होती है। सात मंजिलो वाला महल पद्मावती को अलग से दिया जाता है। साथ मे सखियाँ भी रहने लगती हैं। भवन मे एक पंडित, शास्त्रवेत्ता तथा चतुर तोता है। पद्मावती से उसका बहुत अधिक स्नेह है। पद्मावती तथा तोता दोनो एक साथ रहते हैं। वेदशास्त्र का अध्ययन भी करते हैं। पद्मावती के पिता को सुग्गे से चिढ़ हो जाती है। वह उसको मारने का आदेश देता है। नाऊ-बारी उसे महल मे पकडने जाते हैं, परन्तु पद्मावती उसे छिपा देती है। सुग्गा समझ जाता है कि अब यहाँ प्राण बचना मुश्किल है। पद्मावती से कहकर वह महल त्याग देता है। पद्मावती रोती-चिल्लाती रहती है। भटकते हुए सुग्गे को बन मे बहेलिया पकड़ता है तथा उसे एक ब्राह्मण को बेंच देता है। सुग्गा चित्तौड पहुँच जाता है। रत्नसेन उसे विद्वान समझकर खरीद लेता है। रत्नसेन एवं पद्मावती का विवाह इस तोते के प्रयत्न से सफल होता है।

कथा का द्वितीय भाग उस समय आरम्भ होता है जिस समय चित्तौड से निष्कासित एक ब्राह्मण राघव चेतन दिल्ली पहुँचता है तथा अलाउद्दीन खिलजी से उसके रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा करता है। यह सुनकर बादशाह पद्मावती को उपलब्ध करने के लिये लालायित हो जाता है। वह चित्तौड पर आक्रमण करता है। रत्नसेन कैद कर दिल्ली लाया जाता है। पद्मावती के जीवन मे दुख के बादल छा जाते हैं। वह गोरा तथा बादल के घर जाकर प्रार्थना करती है।

उसकी प्रार्थना सुनकर गोरा बादल द्रवित हो जाते हैं। उनकी आंखों मे आँसू भर

१—पद्मावत—डा० माताप्रसाद गुप्त, छंद २४।

आते हैं। पद्मावती को आश्वासन एवं धैर्य देकर वे युद्ध की तैयारी करके दिल्ली जाते हैं और रत्नसेन को छुड़ाते हैं। गोरा बादल के साथ रत्नसेन को चित्तौड़ वापस कर देता है। अपने साथ मात्र एक हजार को रखकर वह शेष सैनिकों को बादल तथा रत्नसेन के साथ भेज देता है। दोनों सेनाओं मे भयंकर युद्ध होता है एवं गोरा को वीर गति प्राप्त होती है। बादल राजा रत्नसेन को लेकर आगे बढ़ता है तथा चित्तौड़ पहुँच जाता है। घर पहुँचते ही पद्मावती द्वारा सूचना प्राप्त होती है कि कुंमलनेर के राजा देवपाल ने दूती भेजकर किस तरह कुदृष्टि का परिचय दिया है। उसका बदला लेने के लिये रत्नसेन देवपाल पर आक्रमण करता है। वह घायल हो जाता है। घर लौटते समय ही उसकी मृत्यु हो जाती है। पद्मावती तथा नागमती दोनो रानियाँ शव के साथ सती हो जाती हैं। इसी बीच अलाउद्दीन की सेना दुर्ग पर चढ़ाई करती है। अलाउद्दीन को मात्र निराशा ही हस्तगत होती है। वह कह उठता है 'यह सारा संसार झूठा है।'

छार उठाइ लीन्ह एक मूठी,
दीन्ह उड़ाइ परिथमी झूठी।'[1]

उपसंहार

जायसी ने पद्मावत मे कथानक तो इस देश का लिया ही है साथ ही कहानी कहने मे भी भारतीय परम्परा का अनुसरण किया है उनके समक्ष अपभ्रंश के कथा काव्य की परम्परा और कुतुबन की 'मृगावती' आदर्श के रूप मे थी जिसकी लोकप्रियता का जिक्र बदायूनी ने किया है।[2] पद्मावत मे जायसी ने ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ लोक-प्रचलित कहानी तथा वातावरण का बहुत ही सुन्दर समन्वय किया है। पद्मावत की कहानी बड़ी ही सुपरिचित है। कहानी के पूर्वार्द्ध मे कल्पना की पूर्ण प्रधानता है तथा उत्तरार्ध मे इतिहास का भी योग हुआ है।

'पद्मावत' का वातावरण पूर्ण रूप से भारतीय है। मुसलमान इतिहास लेखकों ने इस प्रकार के प्रेमाख्यानकों को 'हिन्दी मसनवी कहा है। शायद इसी कारण और मुसलमान कवियों द्वारा लिखे जाने के कारण कह दिया जाता है कि वे मसनवी शैली पर लिखे गये हैं। सचमुच इस पर फारसी की मसनवियों का प्रभाव नही के बराबर है। इसके विपरीत अपभ्रंश चरित-काव्यों की परम्परा का अत्यधिक अनुसरण इन सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में किया गया है।[3]

---

१ —मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्याम मनोहर पांडेय, पृ० ७५ से उद्धृत।
२ —हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—डा० रामपूजन तिवारी, पृ० १०७।
३—वही, पृ० १८२।

जायसी ने 'पद्मावत' मे सर्व प्रथम 'करतार' का स्मरण किया है जिसने संसार की रचना की तथा सबसे पहले 'ज्योति' का प्रकाश किया तथा फिर उसी की प्रसन्नता के लिये कैलाश की सृष्टि की।

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू॥

इस तरह से कथा आरम्भ करने की परम्परा भारतीय है। फारसी की मसनवियो मे सामान्यत. यह परम्परा नही मिलती। फारसी मसनवियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि कथा कहने की शैली, वातावरण आदि की दृष्टि से हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानको का इनसे किसी तरह का साम्य नही है। यहाँ कुछेक मसनवियो की आरम्भिक पंक्तियो को लेकर देखना चाहिए कि कथारंभ के पहले भगवान को स्मरण करने की परम्परा की ओर कहातक उन फारसी कवियो का ध्यान था।[1] (निजामी जन्म सन् ११४१ ई०—मृत्यु सन् ११९९ ई० से १२०२ ई० के बीच) की मसनवी 'लैली मजनू' का आरम्भ निम्नलिखित ढग मे हुआ है। साकी, तू जानता है मैं शराब की उपासना करता हूँ। मदहोश करने वाला वह प्याला मुझे दे[2]। इसी तरह से शराब की प्रशंसा मे बहुत सी पंक्तियाँ लिखी गई हैं तथा उसके बाद कथा आरम्भ हो जाती है। जामी की मसनवा 'यूसुफ-जुलेखा' (रचनाकाल सन् १४९२ ई०) मे कवि भगवान से प्रार्थना करता है कि 'हे खुदा, मेरी आशा की .गुलाब की कली को खिला। स्वर्गीय बाग से मुझे एक गुलाब दिखा। उस कली के होठो की मुस्कान से मेरे बाग को पूर्ण कर और मेरे दिमाग मे उस गुलाब की सुगन्धि को भर।[3] इसके विपरीत हम देखते हैं कि शायद ही ऐसा कोई भारतीय कथा-काव्य हो जिसमे पहले ही स्पष्ट रूप से भगवान या अपने इष्ट देवता का स्मरण न किया गया हो।[4]

अपभ्रंश के कथा-काव्य मे इस परम्परा को प्राय: ही अपनाया गया है। जैन कवियों ने जिन तथा तीर्थंकरो की वन्दना के बाद ही कथा का आरम्भ किया है। उदाहरणार्थ 'जिणदत्तचरिउ' तथा 'बाहुबलि चरित' को देखा जा सकता है। कुतुबन के समकालीन कवि ईश्वरदास ने सत्यवती कथा के आरम्भ मे सर्वप्रथम गणपति तब मुरारी, सरस्वती, भवानी आदि की वन्दना की है।[5]

१—हिंदी सूफी काव्य की भूमिका—डा० रामपूजन तिवारी, पृ० १८२।
२—लै०म० पृ० १।
३—यू०जु०, पृ० १।
४—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—डा० रामपूजन तिवारी, पृ० १८२।
५—वही, पृ०६५।

यह सब होते हुए भी इतना अवश्य है कि रचना शैली, कथानक, वातावरण आदि में तो जायसी और अधिकाश सूफी कवियो ने भारतीय परम्परा को अपनाया किन्तु जहाँ तक उनकी विचारधारा का प्रश्न है उन्होने सूफी विचारधारा को ही ग्रहण किया क्योकि सूफी विचारधारा का बहुत सी बातो मे भारतीय विचारधारा से साम्य है। पद्‌मावत को उपर्युक्त उद्‌धृत प्रारंभिक दो पंक्तियो में भी यह बात देखी जा सकती है। वैसे दूसरी पंक्ति मे सूफी विचारधारा की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। सूफियों का कथन है कि परमात्मा को जब सृष्टि के द्वारा अपने आपको अभिव्यक्त करने की इच्छा हुई तब परमात्मा ने अपनी ही ज्योति से एक ज्योति का निर्माण किया जिसे 'नूरे मुहम्मद' या 'नूरे अहमद' कहते हैं। सूफियो का यह भी कहना है कि परमात्मा स्वयं उस ज्योति पर मुग्ध हो गया तथा उसी ज्योति के लिये ही सृष्टि की रचना की। इस प्रकार से यह ज्योति ही सृष्टि का आदि कारण है।[1] इसी बात को जायसी ने अन्यत्र भी कहा है–

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाऊं मुहम्मद पूनिऊं करा।
प्रथम जोति विधि तेहि कै साजी। ओ तेहि प्रीति सिष्टि उपराजी॥[2]

हिन्दू विचारधारा मे भी परमात्मा को ज्योति स्वरूप माना गया है तथा आत्मा को परमात्मा का अंश स्वीकार किया गया है।

वैसे फारसी के सूफी कवियो ने भी इस प्रकार के भावो को व्यंजित किया है। कुरान मे भी उसी प्रकार का वर्णन आया है।

परमात्मा के गुणगान के पश्चात् जायसी ने चार खलीफो और तत्कालीन दिल्ली के बादशाह शेरशाह की प्रशंसा की है। शाहे वक्त की प्रशंसा के बाद जायसी ने अपने दो गुरुओं तथा गुरु परम्परा का उल्लेख किया है। इसके बाद ही जायसी ने अपनी जीवन-सम्बन्धी बातो, अपने जन्मस्थान, कथा का निर्माणकाल आदि की चर्चा की है। जायसी ने अपने पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानों का जिक्र किया है। मसनवियो के विवेचन के समय देखा गया है कि सभी मसनवियों मे उपर्युक्त बातो का समावेश नही है। अधिकांश मसनवियों मे ये बातें नहीं मिलती। फारसी मसनवियो मे कुछ मसनवियाँ जरूर ऐसी हैं जिनमे शाहेवक्त या कवि के आश्रयदाता अथवा कवि के मित्र की चर्चा है जिसकी प्रेरणा से वह रचना मे प्रवृत्त हुआ। अधिकांश मसनवियों मे रचनाकाल का भी उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु ईसवी सन् की सोलहवी शताब्दीके पूर्व की ऐसी किसी भी विख्यात मसनवी का पता नहीं चलता जिसमें कवि ने अपने आध्यात्मिक गुरु या गुरु परम्परा का जिक्र किया

१—सत्यवती कथा—ईश्वरदास, पृ० ६५।
२—सू०सा०सा०, पृ० २६३।

हो। इसके साथ ही फारसी की मसनवियों में अपने पूर्ववर्ती रचनाओ या रचयिताओं के नाम देने की प्रथा भी नहीं दिखलाई पडती। परन्तु अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यों में ये सम्पूर्ण बातें मिल जाती हैं। हमने यह पहले ही विचार किया है कि अधिकाश अपभ्रंश के प्रबन्ध काव्यो मे इस परम्परा का पालन किया गया है। इस दृष्टि से लाखू या लक्खण का 'जिनदत्त चरिउ' (सन् १२१८ ई०) धनपाल के 'बाहुबल-चरित' (सन्१३९७ई०) और ईसवी सन् की पन्द्रहवीं शताब्दी के कवि जिन हर्षगणि की रचना 'रयण सेहरी कहा' विशेष उल्लेखनीय हैं। 'जिनदत्तचरिउ' मे कवि ने जिन वंदना, सरस्वती वंदना, और अपने आश्रयदाता का उल्लेख कर पूर्ववर्ती कवियो का स्मरण किया है एवं विनय प्रदर्शित की है। 'बाहुबल चरित' में कवि ने जिन वंदना के पश्चात् चौबीस तीर्थंकरो को स्मरण किया है। अपना परिचय देते हुए कवि ने बतलाया हैं कि वासद्धर की प्रेरणा से उसने ग्रन्थ की रचना की है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों, कवियो और उनमे कुछ की कृतियो का उल्लेख किया है। वैसे इसवी सन् की दसवी ग्यारहवी शताब्दी के मध्य की रचना धवल कवि के 'हरिवंशपुराण' मे ग्रन्थ के प्रारम्भ मे बहुत से कवियो तथा उनके काव्यो का उल्लेख मिलता है। जायसी के पद्मावत के कथानक का 'रयण सेहरी कहा' के कथानक से बहुत कुछ साम्य है। अतः यह कहना अनुचित नही होगा कि अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यो के माध्यम से आती हुई कथा कहने की परम्परा हिन्दी के सूफी कवियो के सामने विद्यमान थी जिसका उन्होंने अनुसरण किया।[1] पद्मावत मे रूप-गुण-श्रवण जन्य आकर्षण शुक-शुकी, प्रिया-प्राप्ति के लिये योगी बनना, सप्तसमुद्रो की यात्रा, समुद्र-पार किसी दूर देश की कन्या से प्रेम और विवाह, सिंहलद्वीप की कन्या से विवाह, मन्दिर मे नायक-नायिका मिलन, समुद्र यात्रा के समय जलपोत का टूटना, उप-श्रुति, रूप-परिवर्तन, देवी, देवता (शिव-पार्वती) आदि कथानक-रूढियों का प्रयोग हुआ है। पद्मावत मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढियो का विवेचन सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका प्रयोग करकंडचरिउ मे हुआ है।

मधुमालती [मंझन कृत]

मधुमालती नामक अन्य रचनाएँ

मंझन की 'मधुमालती' हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानो मे एक विशिष्ट स्थान रखती है। इसकी कथा का आधार लोक प्रचलित कहानी है। जायसी के पद्मावत की तरह इसमे ऐतिहासिक व्यक्तियो या घटनाओ का योग नही है। इसमें कल्पना की प्रधानता मिलती है। 'मधुमालती' बहुत ही लोकप्रिय रही है किन्तु यह कहना मुश्किल है कि मंझन की

१—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—डॉ० रामपूजन तिवारी, पृ० १८५-१८६।

लिखी हुई रचना को ही यह लोकप्रियता प्राप्त हुई क्योंकि 'मधुमालती' नाम की और भी रचनाएँ प्राप्त होती हैं तथा उनमे वर्णित कहानी का मंझन की 'मधुमालती' से साम्य नही है। किन्तु 'मधुमालती' नाम की इतनी अधिक कृतियो के प्राप्त होने का मतलब यही है कि यह एक ऐसी लोकप्रचलित कहानी रही है जिसने भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लिए। 'मधुमालती' नाम की रचनाओं में एक 'चतुर्भुजदास' कायस्थ की रचना-है जिसका बहुत अधिक प्रचार हुआ। गार्सादतासी ने 'मधुमालती' के रचनाकार का नाम चतुर्भुजदास मिश्र माना है। चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' के विषय मे अगरचन्द नाहटा ने बताया है कि उसकी नौ प्रतियां उन्होंने देखी हैं जिनमें सबसे प्राचीन प्रति सं० १७८५ (सन् १७२८ ई०) की है। दखिनी के कवि नुसरती की रचना 'गुलशने इश्क' मे भी मधुकर मालती की कहानी वर्णित है। इसकी भी मंझन की 'मधुमालती' से विशेष समता नही है। इसी तरह जान कवि की 'मधुकर मालति' से भी मंझन की 'मधुमालती' का मेल नही बैठता। मधुमालती के दो गुजराती संस्करणों का भी पता लगता है जो इस समय अनुपलब्ध हैं।[१] बंगला मे भी मनोहर-मालती की कहानी का अवलम्ब लेकर काव्य-रचना हुई है। कई कवियो ने इस कहानी को अपने काव्य का विषय बनाया है। मुसलमान कवियो मे मोहम्मद कबीर का नाम सर्वप्रथम आता है, इन्होंने अपने काव्य का परिचय देते हुए बताया है कि यह सुन्दर किस्सा पहले हिन्दी मे था और उन्होने उसे देश भाषा यानी बंगला मे पांचाली (छन्द) का रूप दिया। मोहम्मद कबीर ने लिखा है—

एहि से सुन्दर केच्छा हिन्दी ते आछिल।
देश भाषाए मुञि पाञ्चाली वरिल।

इनके अतिरिक्त सैयद हामजा ने भी 'मधुमालती की रचना की है। यह रचना सन् १८०६ ई० से कुछ पूर्व की है। इस ग्रन्थ को आधार बनाकर गोविन्द्र चन्द भट्टाचार्य ने मधुमालती उपाख्यान की रचना सन् १८४५-४६ ई० मे की। साकेर मामूद के विषय में कहा गया है कि उन्होने सन् १७८१ ई० मे 'मधुमाला-मनोहर' नामक काव्य का रचना की थी।[२]

मधुमालती की लोकप्रियता

मधुमालती की लोकप्रियता का आभास इससे भी होता है कि प्रेमाख्यानकारों में कई कवियों ने इसका जिक्र किया है। जायसी ने 'पद्मावत' मे इस कहानी का उल्लेख

१—ना० प्र० प० (हीरक जयंती अंक सं० २०१०), पृ० १८७-१९२।
२—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—डॉ० रामपूजन तिवारी, पृ० ८३।

करते हुए कहा है :

साधा कुँवर मनोहर जोगू। मधुमालति कहं कीन्ह वियोगू।

बनारसी दास जैन ने 'अद्धं कथानक' में इसका विवरण इस प्रकार से दिया है जिससे प्रतीत होता है कि जन मानस पर इसका विशेष प्रभाव था। बनारसी दास तो इस ग्रन्थ मे इतना तन्मय थे कि सारा काम-काज छोडकर इस 'पोथी' को साथ लिये रहते थे तथा इसे सुनने के लिये 'दस बीस' लोग रात मे एकत्रित हो जाते थे—

तब घर मे बैठे रहे, जाइं न हाट बजार।
मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उदार॥

ते बाँचहि रजनी समै, आवहि नर दस बीस।
गावहि अरु बातै करहि, नित उठ देहि असीस॥[1]

इसकी ख्याति इतनी बढी थी कि इस कथा को बाचकर सुनाने से बनारसी दास को एक कचौरी वाला छः सात महीने तक बिना पैसे के खिलाता रहा।[2] बनारसीदास ने सं० १६६० (सन् १६०३ ई०) की अपनी जीवन सम्बन्धी घटनाओ का जिक्र करते हुए उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखी हैं। उसमान ने भी अपनी 'चित्रावली' मे मधुमालती की कहानी का संकेत किया है—

मधुमालति होइ रूप दिखावा। प्रेम मनोहर होइ तहं आवा॥[3]

मधुमालती का रचनाकाल एवं कवि का परिचय

मंझन की 'मधुमालती' जायसी के पद्मावत' से पूर्व की रचना है या बाद की इसे लेकर पर्याप्त विवाद रहा है। जायसी ने 'पद्मावत' मे 'मधुमालती' का उल्लेख किया है इस कारण इस रचना को पद्मावत के पहले की रचना मानना स्वाभाविक है।[4] किन्तु सम्पूर्ण 'मधुमालती' उपलब्ध होने के बाद से अब यह निश्चित हो गया है कि पद्मावत के पच्चीस वर्षों बाद इसकी रचना हुई। अत जायसी ने 'पद्मावत' मे जिस मधुमालती कथा का जिक्र किया है वह मंझन का मधुमालती से भिन्न कोई दूसरी रचना थी या यह भी संभव है कि साधारण लोगो मे प्रचलित मधुमालती की कहानी की ओर जायसी

१—'अद्धं कथानक' दोहे ३३५-३३६। बनारसीदास जैन।
२—वही, पृ० ३१-३२।
३—हि० प्रे० गा० का०, पृ० १०९।
४—हि० सा० इ०, पृ० १११।

ने संकेत किया है। यह पहले ही देखा जा चुका है कि यह कहानी लोकप्रिय थी। डा० शिवगोपाल मिश्र ने 'मधुमालती' का जो संपादन किया है उसमे कहा गया है—

संवत नौ सें बावन भेऊ, सती पुरख कलि परिहरि गेऊ॥
तौ हम चित उपजा अभिलाखा, कथा एक बांधउ रस भाखा॥[1]

अतः इन पंक्तियो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मधुमालती की रचना हिजरी सन् ९५२ (सन् १५४५ ई०) मे हुई। डा० सरला शुक्ल,[2] रामपूजन तिवारी[3] परशुराम चतुर्वेदी,[4] डा० श्यामममनोहर पांडेय,[5] तथा डा० कमलकुलश्रेष्ठ[6] आदि विद्वानो ने भी मधुमालती का रचनाकाल ९५२ हिजरी यानी १५४५ ई० ही स्वीकार किया है। अतः मधुमालती का रचनाकाल सन् १५४५ ई० मान लेने मे कोई हर्ज नही है। कवि ने रचना का आरम्भ सलीम शाह के राज्यकाल मे किया। यह सलीम शेरशाह सूरी का पुत्र था और ९५२ हिजरी (१५४५ ई०) मे शेरशाह के मरणोपरान्त शासक हुआ था।[7]

मंझन के जीवन के विषय मे पर्याप्त सामग्री का अभाव है। परशुराम चतुर्वेदी ने मधुमालती की निम्नलिखित पंक्तियो के आधार पर मंझन के निवास स्थान आदि का अनुमान किया है।

गढ़ अनूप बस नग्र चनाढ़ी, कलिजुग मों लंका जो गढ़ी।
पुरब दिस जगरो फिरि आई, उत्तर पछिम लंकागढ़ खाई।

चतुर्वेदी के अनुसार मंझन का निवास स्थान या तो अनूपगढ था या 'ढी' से अन्त होने वाला कोई नगर। 'मधुमालती' के संपादक शिवगोपाल मिश्र इससे असहमत हैं। अपने विषय मे मंझन ने जो कुछ सकेत किया है उससे प्रतीत होता हे कि अपने निवास स्थान को छोडकर वे दूसरी जगह रहने लगे थे।

तब हम भौ दोसर बासा, जब रे पितै छोड़ा कविलासा॥

१—मधुमालती, मंझनकृत, संपादक, डा० शिवगोपाल मिश्र, पृ० १४।
२—जायसी के परवर्ती हिन्दी-सूफी कवि और काव्य—डा० सरला शुक्ल, पृ० ३३५।
३—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, रामपूजन तिवारी, पृ० २१८।
४—सूफी-काव्य-संग्रह, परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १३४।
५—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, डा० श्याम मनोहर पांडेय, पृ० ७६।
६—हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमलकुलश्रेष्ठ, पृ० ३६।
७—प्रिन्स ' राइज आव दी मुहमडन पावर, भाग २।

मंझन के विषय मे बस इतना ही मधुमालती के आधार पर कहा जा सकता है।

मधुमालती का कथानक

कनेसर नगर के राजा सूरजमान के पुत्र मनोहर को सोते समय कुछ अप्सरायें रातो-रात महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्रसारी मे रख आई। वहाँ जगने पर दोनो मिले और एक दूसरे पर मुग्ध हो गये। राजकुमारी के पूछने पर मनोहर ने अपना परिचय दिया तथा कहा—'मेरा प्रेम तुम्हारे ऊपर कई जन्मो का है। जिस दिन मैं इस संसार में आया, उसी दिन से तुम्हारा प्रेम मेरे हृदय मे उत्पन्न हुआ। बातचीत करते हुए दोनो एक साथ सो गये तथा अपप्सरायें राजकुमार को उठाकर पुनः उसे घर रख आई। जागने पर दोनो प्रेम मे व्याकुल हो उठे। राजकुमार वियोग से दु.खी होकर घर से निकल पडा। उसने समुद्र की यात्रा आरम्भ की। तूफानो के कारण उसके मित्र उससे अलग हो गये। राजकुमार एक पटरे पर बहता हुआ एक जंगल मे जा लगा। जहां पलंग पर एक सुन्दर स्त्री को देखा पूछने पर पता चला कि वह चितबिसराम पुर के राजा चित्रसेन की कुमारी प्रेमा थी, जिसे एक राक्षस उठा लाया था। यह जानकर मनोहर ने राक्षस को मारकर प्रेमा का उद्धार किया। प्रेमा ने मधुमालती को अपनी सखी बतलाकर उसका पता दिया तथा दोनो को मिलाने का वादा किया। वे दोनो प्रेमा के पिता के नगर मे आये प्रेमा के पिता ने मनोहर का प्रेमा के प्रति किया गया उपकार जानकर उसका विवाह मनोहर से करना चाहा, किन्तु मनोहर को अपना भाई कहकर प्रेमा ने इसे अस्वीकार कर दिया।

दूसरे दिन मधुमालती अपनी माता रूपमंजरी के साथ प्रेमा के घर आई तथा प्रेमा ने उसके साथ मनोहर का मिलन करा दिया। सबेरे रूपमंजरी ने चित्रसारी मे जाकर मधुमालती को मनोहर के साथ देखा। जगने पर मनोहर ने अपने को अन्य स्थान पर पाया, किन्तु रूपमंजरी ने अपनी कन्या को ऐसे व्यवहार पर बुरा भला कहकर प्रेम छोड़ने को कहा। किन्तु मधुलालती के न मानने पर माता ने उसे पक्षी हो जाने का शाप दिया। जब वह पक्षी होकर उड़ गई तब उसकी माता अत्यन्त विह्वल हुई। परन्तु मधुमालती का कहीं भी पता नही लगा। मधुमालती पक्षी रूप मे उड़ती बहुत दूर चली गई तब ताराचन्द नामक एक राजकुमार ने उसे सुन्दर पक्षी जानकर पकड़ना चाहा। इधर मधुमालती भी ताराचन्द को मनोहर समझ कर रुक गई तथा वह पकड़ कर एक सोने के पिजरे मे बन्द कर दी गई। एक दिन पक्षी रूप मधुमालती ने अपने प्रेम की सम्पूर्ण कहानी ताराचन्द को कह सुनाई, इसपर उसने इसे मनोहर से पुनः मिलाने के लिये प्रतिज्ञा की। अन्त मे वह उस पिजड़े को लेकर महारस नगर मे

पहुँचा। मधुमालती की माता पुत्री को पाकर बहुत प्रसन्न हुई और उसने मंत्र पढ़कर उसपर जल छिड़का। वह पुनः पक्षी से मनुष्य हो गई। मधुमालती के माता-पिता ने उसका विवाह ताराचन्द के साथ करना चाहा, किन्तु ताराचन्द ने कहा, 'मधुमालती मेरी बहन है और मैंने उससे कुंवर मनोहर को मिलाने की प्रतिज्ञा की है।' इसके बाद मधुमालती तथा उसकी माता ने यह सम्पूर्ण विवरण प्रेमा को लिख कर भेजा। प्रेमा यह सुनकर खिन्न होती है लेकिन उसी समय उसे अपनी सखी द्वारा मनोहर का एक योगी के वेश मे आने का समाचार प्राप्त होता है। अन्ततोगत्वा मधुमालती के पिता ने राजा चित्रसेन के यहाँ आकर मधुमालती का मनोहर के साथ धूमधाम से विवाह कर दिया। मनोहर मधुमालती और ताराचंद काफी दिनो तक प्रेमा के यहाँ अतिथि रहे। एक दिन आखेट से लौटने पर ताराचंद प्रेमा और मधुमालती को एक साथ भूले पर भूलते हुये देखकर प्रेमा पर मोहित होकर मूर्छित हो गया। मधुमालती और मनोहर के प्रयास से ताराचंद का विवाह प्रेमा के साथ हो जाता है। कुछ दिनो तक आनन्द से रहकर चारो साथ ही विदा होते हैं और फिर अपनी-अपनी पत्नियो के साथ मनोहर तथा ताराचंद अपने-अपने नगर को चले जाते हैं।

मंझन की 'मधुमालती' की कहानी जटिल एवं उलझनपूर्ण है। निःसंदेह इसमे मंझन ने लोक प्रचलित किसी कहानी को अपनाया है। मंझन ने इसका संकेत भी किया है कि पूर्व से चली आती हुई कहानी को उन्होने 'भाखा' मे गाया है।

आदि कथा द्वापर मो भई, कलिजुग मो भाखा जो गाई।[1]

कहानी कहने मे कवि ने भारतीय कथानक-रूढ़ियो का पूर्ण रूप से उपयोग किया है।

रस

'मधुमालती' कथा मे पूर्ण रूप से रसराज शृंगार का साम्राज्य है। इसमे मात्र शृंगार के ही उभय पक्षों-संयोग एवं वियोग का वर्णन मिलता है।

भाषा

अन्य सूफी प्रेमाख्यानो की तरह 'मधुमालती' की भाषा भी बोलचाल की अवधी ही है।

छन्द

इसकी रचना दोहे चौपाई में हुई है। पाँच अर्द्धालियों के बाद एक दोहे का प्रयोग किया गया है।

१—मधुमालती, पृ० १५।

अलंकार

अलंकारो पर कवि का विशेष ध्यान नही है। कथा प्रवाह के बीच जो अलंकार आये हैं, वे सरल एवं स्वाभाविक हैं। ऐसे अलंकारो में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक, अनन्वय आदि का उल्लेख किया जा सकता है। मधुमालती मे स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-संघटन, प्रिया-प्राप्ति के लिए योगी बनना, समुद्र की यात्रा, ज्योतिषियो द्वारा अनुरक्ति की पूर्व सूचना, उद्यान मे नायक-नायिका मिलन, मंदिर मे नायक-नायिका मिलन, समुद्र-यात्रा के समय जलपोत का टूटना, उजाड़ नगर, जीवन-निमित्त वस्तु, नायक का अतिप्राकृत जन्म, रूप-परिवर्तन आदि कथानक-रूढियो का प्रयोग मिलता है। मधुमालती मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढियो का विवेचन सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका प्रयोग करकंडचरिउ मे हुआ है।

माधवानल कामकंदला

माधवानल कामकंदला की कथाएं-रचना काल एवं रचयिता

माधवानल कामकंदला की कथा मध्ययुग मे अत्यन्त लोकप्रिय रही है। गणपति ने इस कथा के आधार पर संवत् १५८४ विक्रमी (१५२७ ई०) में 'माधवानल कामकंदला प्रबंध' नामक ग्रन्थ की रचना की।[१] तत्पश्चात् माधव शर्मा ने संवत् १६०० विक्रमी मे (सन् १५४३ ई०) 'माधवानल कामकंदला रस विलास' की रचना ब्रजभाषा मे की।[२] इसकी एक खंडित प्रति हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग मे सुरक्षित है। इस कथा को लेकर कुशललाभ ने संवत् १६१६ विक्रमी (सन् १५५६ ई०) मे 'माधवानल कामकंदला चउपई' लिखी।[३] इसके अलावा पुरुषात्तम वत्स ने 'माधवानल कथा चउपई'

१—वेद भुयंगण वाण शशि, विक्रम बरस विचार।
श्रावणनी शुदि सप्तमी, स्वाति मंगलवार॥
गायकवाड ओरियंटल सीरिज, बडौदा, पृ० ३३६।

२—संवत् सोला सै वरसि जैसलमेर मझारि।
फागुन मास सुहावने करी बात विमतारि॥
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की प्रति से उद्धृत।

३—संवत् सोल सोलोत्तरइ जेसलमेर मझारि।
फागुन सुदि तेरसि दिवसि बिरची आदितवारि॥
माधवानल कामकंदला प्रबंध, गा०ओ०सी०, पृ० ४४१।

लिखी।[१] इसी कथा के आधार पर दामोदर कवि ने भी 'माधवानल कथा' लिखी जिसकी एक प्रति का प्रतिलिपि काल संवत् १७३७ विक्रमी (सन् १६८० ई०) है।[२] आलम कवि ने संवत् १६४० विक्रमी (सन् १५८३ ई०) इस कथा को अवधी में लिखा।[३] इसके पहले लाल कवि ने भी 'माधवानल कथा' की रचना की थी, किन्तु इसकी कोई भी प्रति अभी प्राप्त नही हो सकती है।[४] संवत् १५८४ मे जैसलमेर के जोशी गंगाराम के पुत्र जगन्नाथ ने 'माधवचरित' लिखा।[५] कवि राजकेस ने भी संवत् १७१७ मे माधवानल की रचना की है।[६] कुछ प्रमुख ग्रन्थो का परिचय संक्षेप मे यहाँ दिया जा रहा है।[७]

गणपतिः माधवानल कामकंदला प्रबन्ध

रचयिता

माधवानल कामकंदला प्रबंध के रचयिता गणपति कायस्थ जाति के थे। इनके पिता का नाम नरसा था तथा बडौच जिले के आमोद (आम्रपद) के रहने वाले थे।[८]

रचनाकाल

इसका रचनाकाल संवत् १५७४ है।

१—हिन्दी- अनुशीलन (अक्तूबर-दिसम्बर १९५८) मे श्री अगरचन्द नाहटा का लेख-माधवानल कामकंदला संबंधी कुछ अन्य रचनाएं, पृ० ४०।

२—माधवानल कामकंदला प्रबंध, गा०ओ०सी०, बडौदा, पृ० ५०६।

३—सन नौ से इक्यानुवै आहि, करौ कथा अब बोलो गाहि।
हिन्दी प्रेमागाथा काव्य-संग्रह (द्वि०सं०) पृ० १८५, हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

४—हिन्दी अनुशीलन (अक्टूबर-दिसम्बर, १९५८) पृ० ४०।

५—सवत मतरै से बरस बोते चउतारीख। जेठ शुक्ल पूनिमि दिवसि रच्यौ वारिदिन ईस हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४, अंक २, प्रेमकथासंबंधी दो अज्ञात ग्रन्थ।

६—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० २७७।

७—माधवानल कामकंदला प्रबंध—संपादक एम०आर० मजूमदार, ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा, १९४२)।

८—कवि कायस्थ कथा कहई, नरसा सुत गणपति।
ढाढर कंठइ ढुकड, आम्रदरि अधिवास।
मध्य पंथि मही नर्मदा, जल कूणि जल राशि॥ १६
माधवानल कामकंदला, प्रबन्ध, प्रथम अंक।

'माधवानल कामकंदला प्रबंध' २५०० दोहों में लिखा एक विशुद्ध प्रेमाख्यान प्रबन्ध काव्य है, जो कवि की रचना शैली, उसकी बहुज्ञता, प्रबंध पटुता तथा रसज्ञता का सर्वोतम उदाहरण है। इसकी कथा आठ अंगो मे विभक्त है। इसमें मुख्यतया माधव ब्राह्मण एवं कामकंदला गणिका की प्रणय कहानी उल्लिखित है। ग्रन्थ का प्रारम्भ कामदेव की वंदना से होता है।[1]

कथावस्तु

माधव रुक्मांगदपुरी के राजा रायचन्द के राजपंडित कुरंगदत्त का लडका था। पांच वर्ष की अवस्था मे ही एक यक्षिणी उसे उठाकर ले गई और पुष्पावती के राजा गोविन्द चन्द्र के पुरोहित ने उसका पालन-पोषण किया। युवक होने पर उसके सौन्दर्य पर पटरानी रुद्रदेवी मोहित हो गई तथा माधव के समक्ष काम-प्रस्ताव रखा। उसके इस आचरण पर माधव ने रानी की भर्त्सना की जिससे क्रुद्ध होकर रानी ने माधव पर दुश्चरित्रता का झूठा आरोप लगाकर राज्य से निष्कासित करा दिया। रुक्मागदपुरी पहुँचने पर वहाँ की युवतिया भी उसके रूप से कामातुर हो गई, इसलिए माधव को वहाँ से भी जाना पड़ा। घूमता-फिरता वह कामवतो नगरी पहुँचा उसनें वहाँ अपनी कला निपुणता से प्रभावित कर राजा कनकसेन की राजसभा मे श्रेष्ठ स्थान उपलब्ध कर लिया। माधव राज सभा मे नृत्य करती गणिका कामकदला पर इतना मोहित हो गया कि उसने राजा द्वारा प्रदत्त पुरस्कार कामकंदला को दे दिया, इसे राजा ने अपना निरादर समझकर उसे अपना राज्य छोडने का निर्देश दिया। कामकंदला माधव के प्रणय सूत्र मे बँध चुकी थी। परन्तु राजा के भय से वहाँ रुकना उसके लिए दुष्कर था। इसलिए वह कामकंदला को वियोग से छटपटाती छोड वहाँ से चल दिया तथा अनेक कष्टो को सहता हुआ राजा विक्रमादित्य की राजधानी उज्जैनी मे पहुँचा। वहाँ महाकाली के मंदिर मे, दीवाल पर अपनी बिरह व्यथा का श्लोक लिखकर मूर्छित हो गया। किन्तु राजा विक्रमादित्य को जब गणिका से उसकी विरह-व्यथा का कारण ज्ञात हुआ तो वह माधव को कामकदला दिलवाने के लिए प्रस्तुत हो गया। लेकिन उन दोनो प्रेमी-प्रेमिका को मिलाने से पहले राजा ने दोनो के प्रेम की परीक्षा लेने के लिये उनको एक दूसरे की मृत्यु के मिथ्या समाचार कहे जिससे दोनो की मृत्यु हो गई। इससे राजा दु:खी होकर आत्महत्या करना चाहा, इस पर देवी ने प्रकट होकर, दोनो प्रेमी-प्रेमिका को पुन: जीवित कर दिया। राजा विक्रमादित्य ने कामसेन से युद्ध करके गणिका कामकंदला माधव को दिला दिया।

---

१ क—कुंअर कमला रत्ति रमण, मयण महाभउ नाम।
पंकजि पूजिय पत्र-कमल प्रथम तिकरुं प्रणाम।

कथा का अन्त दोनों प्रेमियों के मिलन और भोग विलासमय जीवन के वर्णन एवं प्रेम की एक निष्ठा के साथ होता है—

माधव महिला थी ठहई, महिला माधव दीठ।
अन्यो अन्यइ श्यां थमां, चटकु चोल मजीठ॥

विशेषतायें

मध्ययुगीन प्रेमाख्यानक काव्यो मे 'माधवानल कामकंदला प्रबन्ध का स्थान अद्वितीय है। भाव पक्ष एवं कलापक्ष दोनो ही दृष्टियो से यह काव्य उत्कृष्ट है। प्रेम का जैसा रूप इस काव्य मे प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। श्री एम० आर० मजूमदार ने कहा है कि इस ग्रन्थ मे अद्वितीय रोचकता के साथ सच्चे प्रेम का प्रतिपादन इस रूप मे हुआ है कि प्रेमी युगल एक दूसरे के पूरक जान पडते हैं।[1] इसमें गणिका कामकंदला के चरित्र का विकास, उसकी सच्ची प्रेमनिष्ठा के कारण सती दमयन्ती और सीता के चरित्र तक पहुँच गया है।[2] धार्मिक स्थलो की पहिचान, सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति तथा चित्रोपमता इस काव्य के मुख्य गुण हैं।

कुशल लाभ : माधवानल कामकंदला चौपई[3]

रचयिता

इसके रचयिता कुशललाभ हैं। इनके जीवन के बारे मे केवल इतना ही ज्ञात होता

1—"Madhavadnal Kamkandla Katha however has unique interest of its own where true love is illusterated, though two persons who were each another's counter Part as it were".
राजस्थानी के प्रेमाख्यान परम्परा और प्रगति—डा० रामगोपाल गोयल, पृ० २५ से उद्धृत।

२—माधुव ! करि माहरूं कहिउं जु मुझ वंछइ खेम।
सास लगई सेवा करिसि, सोत दमयन्ती जेम॥

३—(क) चतुर्भुजदास कृत मधुमालवी वार्ता तथा उसका माधव शर्मा कृत संशोधित रूपान्तर सम्पादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, का० ना० प्र० सभा।

है कि ये खरतरगच्छीय वाचक अभयधर्म के शिष्य थे। अगरचन्द नाहटा ने इनका जन्म अनुमानत सवत् १५८० माना है।[1]

रचनाकाल

नाहटा जी ने माधवानल कामकंदला का रचना काल सं० १६१७ फा० ब० १३ रविवार लिखा है।[2] डा० हरिकान्त श्रीवास्तव ने इसका रचनाकाल सं० १६१३ माना है।[3] लेकिन जैन श्वेताम्बर मन्दिर अजमेर मे प्राप्त इसकी हस्तलिखित प्रति मे इसका रचनाकाल स० १६७२ फा० शुक्ला १३ रविवार दिया हुआ है, जो अधिक उपयुक्त जान पडता है।[4]

इस कृति की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि यह रचना गाहा, दूहा, कवित्त, चौपाई इत्यादि ५५० छंदो मे वर्णित है। पुष्पिका से विदित होता है कि उसकी रचना जैसलमेर

(ख) सचित्र मधुमालती संपादक—पं० लक्ष्मीनारायण शर्मा, रा० प्रा० विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

१—(क) माधवानल कामकंदला चौपाई (ह० लि०) श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर, अजमेर।

(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य—डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० २५६।

(ग) माधवानल कामकंदला प्रबध (ओरियंटल इन्स्टीट्यूट, बडौदा-१६४२) परिशिष्ट-२ (वाचक कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला चउपई)

(घ) श्री अगरचन्द नाहटा का लेख—राजस्थान भारती (जनवरी १६४७) पृ० २२।

२—वही, पृ० २२।

३—भारतीय प्रेमाख्यान पृ० ४७७।

४—संवत् सोलह सौ मोत्तरइ जैसलमेर मंझारि।
फागुण सुदि तेरसि दिवसि विरचि आदित वार॥
गाहा, दूहा, चौपई, कवित कथा-सम्बन्ध।
कुशललाभ वाचक कहै, सरिस चरित सुपबित्त॥
जे वाचे जे संभले, ते नर सदा सु चित।
गाथा साढि पाचसइ ए चउपई प्रमाण॥
भणतां गुणता सरस बीई, ते नर सदा सुजाण।
राउल माल सु पह धर कुंवर श्री हरिराज।
विरच्यो ए शृंगार रस, तासु कुतुहल काज॥

के राजकुंवर हरिराज के मनोरंजनार्थ की गई थी। पुष्पिका से इसका लिपिकाल संवत् १७८२ प्रतीत होता है।[1]

कथावस्तु[2]

कुशललाभ कृत माधवानल कामकंदला की कथावस्तु गणपति कृत माधवानल कामकंदला प्रबन्ध से समता रखती है। भेद मात्र इतना ही है कि कुशललाभ कामकंदला को पूर्व भव मे इन्द्र की अप्सरा जयन्ती बताते हैं। यह जयन्ती इन्द्र के शाप से दो बार स्वर्ग से च्युत होती है। पहली बार, शिला बनती है तथा माधव के द्वारा खेल-खेल मे ही फेरा करने पर शाप मुक्त हो फिर अप्सरा होकर स्वर्ग में चली जाती है। दूसरी बार इन्द्र की सभा में नृत्य करते समय माधव को भौरा बनाकर अपनी कंचुकी मे छिपाकर रखने के अपराध मे इन्द्र की कोप भाजन बनकर शाप ग्रस्त हो वेश्या बनती हे। माधव का जन्म अलौकिक रीति से भगवान शंकर के वीर्यविन्दु से बताया गया है। इसके अतिरिक्त शेष कथानक लगभग गणपति कृत माधवानल कामकंदला प्रबन्ध जैसा ही है।

कुशललाभ का माधवानल कादकदला चौपई काव्य की दृष्टि से एक सरस एवं प्रौढ रचना है। श्रृंगार रस का नियोजन इसमे बहुत सुन्दर हुआ है। विरहिणी नायिका की मानसिक दशा का चित्रण बडा ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और हृदय-स्पर्शी हुआ है। ग्रन्थ की भाषा सरल, सुबोध तथा लोक-प्रचलित राजस्थानी है।

दामोदर : माधवानल कामकंदला[3]

रचयिता

'माधवानल कामकंदला' के रचयिता दामोदर हैं। इनका जीवन परिचय अज्ञात है।

रचनाकाल

"माधवानल कामकंदला' का लिपिकाल संवत् १७३७ है तथा रचना-काल नहीं

१—"संवत् सत्तर बयासिइं ग्रांम देवलिया माहि।
माधवा ताणि थए वा्ता लागि चितइं माहि।
काती बदी एकादसी तिथि लिखि परत सुप्रसन्न॥"

२—विस्तृत—कथावस्तु के लिये देखिए—भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य, डा० हरिकांत श्रीवास्तव, पृ० ४४७।

३—माधवानल कामकंदला प्रबन्ध, सं० एम० आर० मजूमदार (ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा) परिशिष्ट ३, कवि दामोदर कृत माधवानल कथा।

दिया हुआ है। इसलिये इसका रचना-काल सं १७३७ से पहले माना जा सकता है।[१]

कथावस्तु

दामोदर रचित माधवानल कामकंदला की कथावस्तु थोड़े हेर-फेर के साथ गणपति तथा कुशललाभ के 'माधवानल कामकंदला' काव्य के अनुरूप ही है। दामोदर ने माधवा नल तथा कामकंदला के पूर्व भव को कथा नही दी है। इसके अलावा पुष्पावती से आने के पश्चात् कवि ने माधव को अमरावती मे रुकने और मनोवेगी मंत्री की पत्नी के गर्भपात की घटना का आयोजन कर माधव की लुभावनी शक्ति का विस्तार से वर्णन किया है।

इसकी रचना दोहा छंद मे हुई है। काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से यह एक प्रौढ़ रचना है।

आलम कृत माधवानल कामकंदला

रचयिता

'माधवानल कामकंदला' के रचयिता आलम हैं।

रचनाकाल

इसका रचनाकाल संवत् १६४० विक्रमी (सन् १५८३ ई०) ठहरता है।[२]

कथावस्तु

पुष्पावती नगरी मे गोपीचन्द नाम का एक राजा था, उसके यहाँ माधवनल नाम का एक ब्राह्मण था जो सम्पूर्ण शास्त्रो में निष्णात कामदेव के समान सुन्दर था। वह राजा के यहाँ पुराण बाचने, शिक्षा देने आदि का कार्य करता था। उसे देखकर पुरनारियाँ अधीर हो उठती थी। उसके वीणा-वादन से पनिहारिनें विह्वल हो उठती थी तथा कुलवधुएँ चंचल। जब पुरवासियो द्वारा राजा तक उसकी शिकायत पहुँची तो राजा ने परिस्थिति की जाँच पड़ताल की। बीस तरुण दासिया कमल पत्र पर बिठा दी गयीं और माधव के वीणा के प्रभाव से उनका मदन बह चला तथा जब वे उठी तो वे कमलपत्र उनके शरीर से चिपक गये थे। राजा ने माधव को राज्य निष्कासन का दंड

१—वही, (रचना की पुष्पिका)

'इति श्री कवि दामोदर कृत माधवानल कथा समपुरण लखु छि। संवत् १७३७ नेवर ने जेठ दुतीय वद ६ वार बुध संपूर्ण बड नगर मध्ये लखुछि।'

२—सन् नौ से इक्यानुवै आहि, करौं कथा अब बौलों गाहि।

—हिन्दी-प्रेम गाथा काव्य-संग्रह (द्वि० सं०) पृ० १८५
हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग।

दिया और परिणामस्वरूप माधव वीणा बजाता हुआ कामवती पहुँचा। वहाँ का राजा कामसेन रसिक एवं कलाप्रेमी था। एक दिन उसकी राजसभा मे नृत्य संगीत का विशद आयोजन हुआ। माधव भी अनाहूत ही वहाँ पहुँचा। पहले तो उसे राज्य सभा मे प्रवेश ही नही मिल सका लेकिन उस कलाविज्ञ ने जब राज्य सभा के बाहर से ही राजा के पास यह संदेश भेजा कि तेरी सारी सभा मूर्ख है, १२ मृदंग बादको मे एक जो ७ और ४ के बीच बैठा हुआ है उसके दाहिनी हाथ में ४ ही उंगलियां हैं जिससे संगीत का सारा रस भंग हो रहा है तो राजा और राजसभा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह बड़े सम्मान के साथ सभा मे बिठाया गया। विपुल धन एवं रत्न उसे प्रदान किये गये। उसका रूप और वेश सबको मुग्ध कर रहा था। अनेक कार्यक्रमो के बाद राजनर्तकी कामकंदला का अनुपम कौशल नृत्य हुआ जिससे माधव अत्यन्त प्रभावित हुआ और जल-भरा कटोरा सिर पर रखकर हाथो से चक्र घुमाते हुए उसने जिस प्रकार नृत्य दिखलाया तथा कुचाग्र पर बैठे भ्रमर को जिस प्रकार स्तन स्त्रोत द्वारा प्रताडित वायु से उडा दिया उसे देखकर तो वह दंग रह गया। उसने सारी प्राप्त वस्तु कन्दला को भेंट कर दी तथा राजा को अविवेकी एवं सभा को मूर्ख बतलाते हुए उसने कंदला के कौशल की प्रशंसा की। कामसेन ने उसे राज्य से निष्कासित कर दिया और उसे राज्य मे शरण देने वालो के लिये दण्ड की घोषणा भी कर दी। कन्दला राजा के आदेश का तिरस्कार कर माधवानल को अपने घर ले जाती है तथा सम्भोग व्यापारो मे थक-थक कर दोनो बहुत दिन तक शिथिल पड़े रहते हैं। राजा की भय के कारण माधव जाना चाहता था परन्तु कन्दला आरजू मिन्नत करके उसे रोक लेती थी। अन्ततोगत्वा एक दिन वह रवाना होता है तथा कन्दला के विरह मे वन-वन ठोकरें खाता उज्जयिनी नगरी मे पहुँचता है। वहाँ एक ब्राह्मण का आतिथ्य स्वीकार करता है। विरही माधव एक दिन उज्जयिनी के महादेव मंदिर के भीतर की दीवाल पर एक दोहा अंकित कर देता है—

कहा करौं कित जाउँ मैं राजा रामु न आहि।
सिय बियोग संताप बस राघो जानत ताहि।

उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य ने जब यह दोहा पढा तो उसने इस विरही को ढूँढ निकालने के लिए एक लाख मुद्राओ के पुरस्कार की घोषणा की। ज्ञानवती नाम की दूती के प्रयास से विरही माधव विक्रमादित्य को सभा मे लाया जाता है। राजा ने उसको सारी कहानी सुनी और उसे वेश्या का प्रेम त्यागने के लिए कहा। अनेक सुन्दरियो के प्रलोभन दिये परन्तु माधवानल ने कामकंदला को छोड़कर अन्य किसी की ओर देखने तक की इच्छा व्यक्त नहीं की। 'मांगों यही बात सुन लीजै, मों कहं कामकंदला दीजै।' इसके बाद विक्रमादित्य ने सेना सहित कामावती नगरी की ओर प्रस्थान

किया। कामावती से कुछ दूर ही शिविर डालकर विक्रमादित्य छिपकर कामावती नगरी में पहुँचा तथा कामकंदला की प्रेम परीक्षा लेने के लिए उसके पास गया।

कामकंदला विक्षिप्तावस्था में पड़ी माधव का नाम जप रही थी। राजा ने पास जाकर उससे प्रेम प्रदर्शित करना आरम्भ किया परन्तु कामकदला के रूखे व्यवहार एवं अन्य मनस्क दशा में क्रुद्ध होकर उसने कामकंदला के वक्षस्थल पर लात मारी। लात खाकर कामकंदला ने उसके पैर पकड़ लिये। राजा ने उसके इस व्यवहार का कारण पूछा तब कामकंदला ने उत्तर दिया कि मेरे हृदय में विप्र माधवानल का निवास है जिनसे आपका चरण छू गया है, इसलिये वह मेरे लिए पूज्य है। कामकदला के इस उत्तर ने राजा को द्रवित कर दिया परन्तु उसने दूसरा प्रहार किया और बतलाया कि माधवानल नाम का एक ब्राह्मण विरह में तड़प-तड़प कर कुछ दिन पहले उसकी नगरी में मर गया।

यह समाचार सुनते ही कामकंदला बेहोश होकर गिर गई और उसका प्राणान्त हो गया। कामकंदला की मृत्यु से राजा बहुत दुखी हुआ तथा अपने शिविर में वापस आकर राजा ने माधवानल को कामकंदला की मृत्यु की सूचना दी जिसे सुनते ही माधवानल का भी प्राणान्त हो गया।

दोनों की मृत्यु से विक्रमादित्य बहुत दुखी हुआ तथा अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए उसने चिता बनाई और जलकर मर जाने के लिए उद्यत हुआ। चिता में अग्नि लगाकर वह बैठने हा वाला था कि इतने में ही 'वैताल' ने आकर उसे रोका तथा राजा से ऐसा करने का कारण पूछा। राजा ने सम्पूर्ण विवरण वैताल को सुनाया। सब सुनने के पश्चात् वैताल पाताल पुरी से अमृत ले आया और दोनों को पुनः जीवित किया।

इसके बाद विक्रमादित्य ने 'बसिठ' (दूत) को कामसेन के यहाँ भेजकर कामकंदला को मागा परन्तु कामसेन ने कामकंदला को भेजने से अस्वीकार कर दिया। परिणाम-स्वरूप दोनो पक्षो में भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में कामसेन ने विक्रमादित्य से क्षमा मांगी तथा कामकंदला को दे दिया। इस तरह माधवानल कामकंदला का संयोग हुआ और दोनो आनन्दपूर्वक विक्रमादित्य के राज्य में रहने लगे।

इस प्रबन्ध के प्रारम्भ में परब्रह्म की वंदना की गई है। इसके बाद तत्कालीन सम्राट अकबर की प्रशंसा की गई है तथा आगरे के स्वामी टोडरमल का भी उल्लेख किया गया है। ग्रन्थ का रचनाकाल सन् ९५१ (हिजरी) कहा गया है और वस्तु निर्देश करते हुए प्रबन्ध को विप्रलंभ शृंगार की कथा कहा गया है। कवि प्रबन्ध रचना में निपुण था। उसकी कथा की धारा निरन्तर बिना अवरोध के चलती है, बीच-

बीच मे आने वाले वर्णन इतने सरस हैं कि मन उनमें मुग्ध होता चलता है तथा थोड़ी देर के लिए कथा का रुक जाना मालूम नहीं हो पाता।

काव्य-सौन्दर्य

नख-शिख वर्णन

कवि द्वारा नारी सौन्दर्य का वर्णन उपमाओ एवं उत्प्रेक्षाओ के आधार पर बहुत ही लालित्यपूर्ण एवं मनोमुग्धकारी बन पडा है। नख-शिख वर्णन में परम्परागत उपमाओ को ही अपनाया गया है।

संयोग शृंगार

शृंगार काव्य मे नारी का सौन्दर्य उपभोग की भी वस्तु है अत: इस कवि ने रति क्रीडाओ का वर्णन भी किया है, तथा उससे उत्पन्न शारीरिक विकारो का भी जिक्र किया है लेकिन शालीनता एवं मर्यादा का ध्यान हमेशा रखा गया है।

विप्रलंभ शृंगार

प्रिय के वियोग से बढ़कर दु:ख संसार में नारी के लिए और कुछ नही होता। माधव के वियोग मे कंदला मूर्छित हो जाती है[1]। मूर्छा के बाद वह अपने को ही सारे दोषो का कारण मानकर अपने को ही कोसती है[2]। पानी के वियोग से तालाब जैसे निर्जीव पदार्थ का वक्ष तक फट जाता है परन्तु मेरा हृदय क्यों नही फट जाता। सच-मुच ये प्राण बडे निर्लज्ज हैं नही तो प्रिय का वियोग मैं कानों से सुनती ही क्यों[3]। प्रिय के साथ जीवन के सम्पूर्ण सुख चले गये मात्र नेत्र, प्राण एवं तन विरह का दुख झेलने के लिए रह गये।[4] प्रिय के अभाव में मन को एक क्षण भी शान्ति नहीं मिलती है। हमेशा उसके लिये ही तड़फड़ाता रहता है।[5]

१—'काम मूर्छित धरनि महँ परी। सखी आइ करि अंक भरी॥'

२—'यह हिय बज्र-बज्र ते गढा। पाल्यो बज्र बज्र में बढ़ा॥
जा दिन मीत विछोह भयऊ। तब किनि खंड खंड ह्वै गयऊ॥
—माधवानल कामकंदला—आलम।

३—'बिछुरन जल ताल तरके। पापी हियें नेंक नहिं मुरके॥
ऐसे निलज रहत नहि प्राना। मीत विछोह सुनत किनि काना॥
गए न प्रान मीत के संगा। ऐसे निलज रहत गहि अंगा॥'
× × ×

४—'आलम मीत विदेसिया ले गयो संपति सुख।
नैन प्रान विरह बस रहे सहन को दुख॥'

५—'खिन माधौ माधौ गुहिरावै। खिन भीतर खिन बाहर आवै।
विरह ताप निसि सेज न सोवै। कर मीड सीउ धुनि धुनि रोवै

वियोग की पीड़ा केवल नारी को ही नहीं अपितु पुरुष को भी उतनी ही व्यग्र एवं व्याकुल बना देती है। कन्दला के वियोग में माधव भी दुख की साँसे लेता पागलों की भाँति भटकता हुआ केवल कन्दला के ध्यान में ही उन्मत्त था।[1]

अन्य रस

संयोग और वियोग शृंगार के अतिरिक्त आलम ने वीर तथा भयानक रस का चित्र भी उतनी ही सफलता के साथ उरेहा है जिनको युद्ध के प्रसंग मे देखा जा सकता है।

रचना का उद्देश्य

प्रस्तुत काव्य मे कवि का उद्देश्य जीवन मे प्रेम की महत्ता प्रतिपादित करना है। उसने प्रसिद्ध प्रेमियो माधव और कामकंदला के माध्यम से सच्चे प्रेम का सफल चित्रण किया है। कवि के अनुसार प्रेम यदि सच्चा है तो कुल तथा जाति का बन्धन नही मानता, लोक-परलोक की उसमे परवाह नही की जाती, मन जिसका हो जाता है उसी का ही रहता है, संसार की बडी से बडी शक्ति भी प्रेम को विचलित नही कर सकती, परन्तु वह प्रेम होता बहुत कठिन है। उसमे प्राणांतक वेदना सहनी पडती है, वियोग होता है, दारुण सन्ताप मिलता है। जो इन्हे सहन कर सकता है वही इस अमृत पंथ का पथिक कहा जा सकता है।[2] माधव एवं कामकंदला प्रेम की विविध परीक्षाओ को पारकर ऐसे ही प्रेमी सिद्ध होते हैं। उनका स्नेह कुल तथा जाति के बंधनो को तोड़कर आगे बढ़ने वाला है। एक ब्राह्मण और वेश्या मे भी प्रेम संभव है। उनकी प्रेम-निष्ठा में कुल, जाति, धर्म आदि सबकुछ पवित्र हो जाता है। जहां प्रेम मे निष्ठा नही वहा प्रेम एक मजाक और छिछली रसिकता से अधिक कुछ नही।[3] वेश्या से पंडित माधव का प्रेम प्रदर्शित कर आलम ने प्रेम की स्वच्छन्दता का परिचय दिया है। सच्चा प्रेम निर्बन्ध होता है, उसमें लज्जा नाम की कोई चीज नही होती। इसमे प्रेम का स्वरूप भी सूफियाना नही हे। पुरुष मे न तो प्रेम को अधिकता चित्रित की गई है और न प्रेमियो को ईश्वर का ही रूप प्रदान किया गया है। प्रेम का भारतीय स्वरूप ही इस काव्य मे चित्रित मिलता है। प्रेम का रूप बहुत कुछ सम है किन्तु जहातक प्रेम

१—जैसे सूख पात जु डोले। सूल सहे माधो नहि बोले ॥
छिन-छिन टेर टेर के रोवै। बन पँछी नींद न सोवहिं ॥
बाघ सिंह कोउ निकट न आवै। चहुँ दिसि बिरह अगिनि उठि धावै ॥

२—रीति स्वच्छन्द काव्यधारा—डा० कृष्णचन्द्र वर्मा, पृ० ३१५।

३—वही, पृ० ३१५।

की अधिकता का प्रश्न है वह तो कंदला के ही मत्थे मढना अधिक उचित प्रतीत होता है। माधवानल कामकंदला मे रूप-गुणश्रवणजन्य आकर्षण, मूर्तिकन्या और प्रेम, नायिका अप्सरा का अवतार, किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार और मिथ्या लांछन, मृत व्यक्ति का जीवित हो जाना आदि कथानक-रूढियो का प्रयोग मिलता है। माधवानल कामकंदला मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढियो का विवेचन सातवें अध्याय में किया जायगा जिनका प्रयोग करकंड चरिउ मे हुआ है।

रसरतन

रचनाकाल और रचयिता

पुहकर, पौहर, पौहकर, पुहुकर, पहुकर पुष्कर आदि भिन्न-भिन्न नामो से सूचित कवि पुहकर रसरतन के कृतिकार थे।[1] ये कश्यप वंशी कायस्थ थे तथा जहांगीर काल के कवि थे। कवि ने छत्र सिंहासन वर्णन के अन्तर्गत जहागीर की प्रशंसा की है।[2] रसरतन का रचनाकाल संवत् १६७५ बिक्रमी (सन् १६१८ ई०) बताया जाता है।

रसरतन की कथावस्तु

चम्पावती का राजा विजयपाल नि:संतान रहने के कारण अत्यन्त चिन्तित रहता था। एक दिन एक सिद्ध आया और उसने बताया कि राजा यदि चंडी की उपासना करे तो उसे संतान हो सकती है। ऐसा करने पर ९ महीने मे राजा की पटरानी पुहुपावती के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम रंभा रखा गया। ज्योतिषियों ने कहा कि कन्या को ११ वर्ष मे व्याधि उत्पन्न होगी पुनः एक युवक से वह प्रेम करेगी, जिससे कुटुम्ब की अभिवृद्धि होगी। रति के पूछने पर एक दिन कामदेव ने उससे बताया कि रम्भा संसार की सबसे सुन्दरी युवती थी तथा वैरागर का राजकुमार सोम सर्वाधिक सुन्दर युवक था। रति ने उसके परस्पर विवाह का निश्चय किया। कामदेव रति का आग्रह टाल न सके। उन्होने 'सोम' का रूप धारण कर रम्भा को स्वप्न दिखाया तथा रति ने रम्भा का रूप धारण कर सोम को स्वप्न मे दर्शन दिया। दोनों एक दूसरे को पाने के लिये विह्वल हो गये।

रम्भावती की दशा क्रमशः दयनीय होती गई जिससे समूचा घर चिन्तित हो गया। मुदिता नामक दासी ने सारी स्थिति समझ ली। कुमारी ने अपने प्रेम का भेद उसे बता दिया। एक साल बाद पुन: कामदेव ने रम्भा को कुंवर के रूप मे दर्शन दिया तथा वह

१—रसरतन—डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० ४।

२—वही, पृ० ४४।

प्रसन्न हो उठी। इस बार उसने यह भी स्वप्न देखा कि कुंवर इसी लोक का वासी है। मुदिता ने पुष्पावती से सम्पूर्ण बातें बतायी और उसने सभी दिशाओं के दिव्य पुरुषो एवं राजकुमारों के चित्र अंकित करने के लिये चित्रकारों को भिजवाया।

चम्पावती का बोधिचित्र नामक एक चित्रकार वैरागर पहुँचा तथा एक ब्राह्मण के यहाँ ठहरा। वहां उसे ज्ञात हुआ कि वहां के राजा सूरसेन का पुत्र बहुत सुन्दर तथा बुद्धिमान था, किन्तु एक वर्ष आठ महीने से वह विक्षिप्त हो गया है। ऐसा सुना जाता है कि उसने स्वप्न मे किसी सुन्दरी को देखा, तभी से उसका हृदय विह्वल हो गया है। उसे रम्भा की स्थिति का स्मरण हो गया। उसका चित्र अंकित कर उसने राजकुमार को दिखाया। राजकुमार अपने प्रिय का चित्र देखकर हर्षित हो गया। उसका चित्र लाकर बौधिचित्र ने रम्भावती को दिया, उसे पाते ही वह प्रसन्न हो उठी। उसके स्वयंबर की व्यवस्था की गई। राजकुमार सोम ने भी वहा के लिए प्रस्थान किया। एकादशो के दिन वह मानसरोवर पहुँचा, जहाँ अप्सराएं स्नान करने आयी। राजकुमार स्नान करके शिविर में सो रहा था। आकाश मार्ग से उसे अप्सराएं उठा ले गयी तथा उसे कल्पलता नामक युवती के पास रख दी। कल्पलता उस पर मुग्ध हो गई। दोनो प्रणय व्यापार मे लग गये। किन्तु कुमार उसको विरह में तड़पते छोड़कर चम्पावती की ओर बढ़ा। उसकी वीणा के प्रभाव से पशु-पक्षी आह्लादित हो उठते थे। राजकुमार चम्पावती पहुँच गया। चम्पावती मे उसकी वीणा सुनकर सब लोग मुग्ध हो गये। एक दिन शिव मंडप के पास उसने सम्मोहन राग बजाना आरम्भ किया। उसकी एक गाथा से मुदिता की एक सखी को ज्ञात हुआ कि योगी किसी सुन्दरी के प्रेम का भिखारी है। मुदिता ने रम्भावती को यह सूचना दी। माँ से अनुमति लेकर रम्भा शिव मंदिर मे पूजा करने गई तथा दोनों ने एक दूसरे का दर्शन किया एवं योगी ने अपना वेश परिवर्तित कर दिया। स्वयंबर के दिन रम्भा ने उसके गले में जयमाल पहनायी। दोनो आनन्द-पूर्वक रहने लगे। इसी बीच कल्पलता ने विद्यापति सुग्गा को चम्पावती भेजा। उसके कहने पर कुमार रम्भा के साथ मानसरोवर आकर कल्पलता से मिला। दोनो रानियो को साथ लेकर राजकुमार वैरागर आया। उसने तीन वर्ष राज्य करके, फिर अपने चार पुत्रो मे राज्य को बाट कर सन्यास ग्रहण कर लिया।[१]

इस काव्य की रचना कवि ने जहागीर के समय में की थी। मसनवी शैली मे लिखा हुआ यह एक शुद्ध प्रेमाख्यान है। प्रारम्भ मे कवि ने निर्गुण और सगुण दोनो ब्रह्म की उपासना की है। आरम्भ के एक छप्पय में कवि ने वर्ण्य विषय भी लिखा है।

१—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डा० श्यामनोहर पाडेय, पृ० ११२।

'छत्र सिंहासन पौहमिपति धर्म धुरन्धर धीर।
नूरदीन आदिल बदी सबल साहि जहंगीर ॥'
× × ×
सगुन रूप निर्गुन निरूप बहुगुन विस्तारन।
अविनासी अवगति अनादि अघ अटक निवारन॥
घट-घट प्रगट प्रसिद्ध गुप्त निरलेख निरंजन॥
तुम त्रिरूप तुम त्रिगुन तुमहि त्रैपुर अनुरंजन॥
तुमहि आदि तुम अंत हौ तुमहि मध्य माया करन॥
यह चरित नाथ कहं लगि कहौ नारायन असरन सरन॥

यद्यपि रसरतन का अन्त शान्त रस मे हुआ है किन्तु यह काव्य एक लौकिक प्रेमाख्यान है जिसमे शृंगार रस की प्रधानता है। वैरागर के राजकुमार सोम एवं चम्पावती की राजकुमारी रम्भा की प्रेम कहानी इसका वर्ण्य विषय है। प्रेम के संयोग तथा वियोग की दशाओ का विस्तृत वर्णन करने और कथानक मे आश्चर्य तत्व एवं लोकोत्तर घटना के सन्निवेश के लिये कवि ने अभिशप्त अप्सरा कल्पलता की कहानी का समावेश किया है।[1]

'रसरतन' एक काल्पनिक आख्यान काव्य है। कवि स्वयं कहता है—

पहले दंत कथा हम सुनी। तिहि पर छंद बंद हम गुनी॥
श्रवनन सुनी कथा हम थोरी। कछुवक आप उकति तैं जोरी॥
(आदि० खंड ८८)

इससे साफ जाहिर है कि कवि ने इसे 'दंतकथा' यानी काल्पनिक कथा स्वीकार किया है।

कहानी का आरम्भ कुमार के जन्म की लोकोत्तर घटना से होता है। रंभा तथा कुमार सोम का प्रेम 'रति और कामदेव' से संबंधित होने के कारण लोकोत्तर घटना पर आश्रित है। नि.संदेह कहा जा सकता है कि कथानक के विकास मे सहायक प्राय: सभी घटनाएं आश्चर्यतत्व एवं लोकोत्तर घटनाओ पर अवलम्बित हैं। कथानक के बीच मे आये हुए रसात्मक स्थलो का वर्णन लौकिक हुआ है। इस तरह इस रचना मे लौकिक तथा अलौकिक तत्वो का सुन्दर सामंजस्य हुआ है।

रस

रसरतन मे शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षो का सफल चित्रण हुआ है।

१—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० १९७।

भाषा

रसरतन की भाषा चलती हुई अवधी है लेकिन कहीं-कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दो के पुट से वह बहुत परिमार्जित हो गई है। सेना के संचालन एवं युद्ध के वर्णन मे कवि ने भाषा मे डिंगल का पुट देकर उसे ओजपूर्ण बना दिया है।

छन्द

इस काव्य की रचना दोहा तथा चौपाई मे हुई है परन्तु इस छंद के अलावा छप्पय, सोमक्रांति, घटक, सारदूल, त्रौटक, पद्धरि, भुजंगी, सोरठा, कवित्त मोतीदाम, मालती, भुजंगप्रयात, प्रवनिका, दुमिला तथा सवैया छंदो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे हुआ है।

अलंकार

रसरतन मे कवि पुहकर ने उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति आदि अलंकारो का ही प्रयोग अधिक किया है।

रसरतन का उद्देश्य एवं प्रतीक संकेत

रचना के अन्त मे कवि ने उसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि यह संसार असार है। इससे मुक्ति पाना ही जीवन का लक्ष्य है। इसी कारण अन्त मे पुहकर इस प्रेमकाव्य को केवल प्रेम काव्य ही नही रहने देना चाहते, अपितु एक भिन्न प्रतीकार्थ भी देना चाहते हैं। उनके अनुसार वैरागर वैराग्य का रूप है। सूरसेन जीव है। उसकी दो पत्निया सत्संगति तथा सद्बुद्धि हैं और इनके सहारे प्रीति की ज्योति जलाकर कवि ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है।

> वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम।
> प्रीत जोत जिय जगमगे, हरे त्रिबिध तनु ताप।
> सतसंगति सतबुद्धि उर, विव घरनी संग लाय।
> ज्ञानवान प्रस्थान करि, तजे विर्वे सुख पाय॥
>
> (वैरागर० ३५१-३५२)

इस प्रतीक संकेत को सूफी प्रेमाख्यानकों के प्रभाव का द्योतक मानना बहुत उचित नहीं जान पडता, क्योकि प्रतीक शैली का प्रयोग हिन्दू, बौद्ध, जैन कवियो ने भी पर्याप्त किया है। वैराग्य का यह रूप हिन्दू वर्णाश्रम व्यवस्था का एक अविभाज्य अंग रहा है। इसी कारण रसरतन का अन्त भी शान्त रस मे ही होता है।[1] कवि को अन्त मे जैसे

१- रसरतन- सं० डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० ८२।

अपने जीवन की निरर्थकता का सहसा आभास हो जाता है और वे उसके परिमार्जन के लिये व्याकुल हो उठते हैं -

चला जात पृथ्वी संसारा। विनसत देहन लागे वारा॥
सुर नर नाग राय अरु राने। जे उपजे ते सबे समाने॥
आगे पाछे सबे समाहीं। हमहीं बैठे मारग माहीं॥
अच्छिर चार कहै ईंहि ठाउं। रहै हमार पृथी में नाऊं॥
(वैरागर- ३४५-४६)

रसरतन में स्वप्न-दर्शन-जन्य प्रेम, स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-संघटन, शुक-शुकी, प्रिया-प्राप्ति के लिये योगी बनना, ज्योतिषियो द्वारा अनुरक्ति की पूर्व सूचना, मंदिर में नायक-नायिका मिलन, नायक का अतिप्राकृत जन्म, आकाशवाणी, अभिज्ञान या सहिदानी आदि कथानक-रुढ़ियो का प्रयोग मिलता है। रसरतन मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रुढ़ियों का उल्लेख सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका प्रयोग करकंडचरिउ मे हुआ है।

इन्द्रावती

रचयिता और रचनाकाल

कवि नूर मुहम्मद ने अपनी रचना 'इन्द्रावती' के अन्तर्गत बतलाया है कि जिस को उसने अपना निवास स्थान बनाया था वह 'सबरहद' था।[1] सबरहद मे वह अपने जन्म का होना नही कहता और न किसी अन्य स्थान को अपनी जन्मभूमि मानता हुआ जान पडता है। वह कहता है —

कवि अस्थाम कीन्हजेहि ठाऊं। सो वह ठाऊं सबरहद नांऊ॥
पूरब दिस कइलास समाना।बहै नसीरुद्दी को थाना॥

किन्तु बहुत संभव है कि कवि की भाषा तथा वाच्य के कारण यह शंका हो, और कवि स्वयं सबरहद को निवास स्थान बनाया' के स्थान पर 'सबरहद' मेरा निवास स्थान है' कहना चाहता हो।[2]

कवि 'सबरहद' स्थान का परिचय देने का प्रयत्न भी करता है। 'सबरहद' की पूर्व दिशा मे 'नसीरुद्दीन' का थाना या स्थान है, और सबरहद मे पहुँचकर मनुष्य को उसी प्रकार आनंद एवं शान्ति मिलती है जिस प्रकार एक राही को कठिन यात्रा के बाद घनी छाया मे मिलती है। कवि यह भी कहता है कि इस संसार मे पथिक की तरह

१- सूफी काव्य-संग्रह : परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १८१।
२- जायसी के परवर्ती हिन्दी-सूफी कवि और काव्य-डा० सरला शुक्ल, पृ०४५१।

रहना ही उचित है तथा यहा से 'आगम' लाभ करने का प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर है। 'यदि 'इहासो' शब्द का सम्बन्ध 'सवरहद से किया जाय तो यह निश्चित होता है कि नसीरउद्दीन भी कोई सूफी सन्त रहे होगे जिनका या तो निवास स्थान सवरहद के पूर्व में विद्यमान होगा अथवा कोई समाधि या मजार होगी। 'अनुराग बासुरी' के सम्पादक अपनी 'बीतीबात' के अन्तर्गत कहते हैं कि 'आपका स्थान सवरहद (शाहगंज जौनपुर) था।[1] यह सवरहद गांव जौनपुर जिले की शाहगंज तहसील मे वर्तमान है लेकिन इसके पूर्व की और किसी नसीरुद्दीन का स्थान वर्तमान होनेकी सूचना नही मिलती। चन्द्रबली पांडेय का कहना है कि कवि अपने अन्तिम दिनो मे भादों (फूलपुर, आजमगढ) रहने लगा था। यही उसकी ससुराल थी। वह फारसी में 'कामयाब' नाम से कविता करता था तथा लगभग सन् १७८५ ई० तक वर्तमान था। अपने इस सन् का आधार लेखक ने अपनी स्मृति के अनुसार कवि के लिखे हुये किसी फारसी दीवान मे लिखे हि० सन् ११९३ (सन्१७७९ ई०) माना है। इन्द्रावती में 'कामयाब' उपनाम का प्रयोग कई स्थलो पर किया गया है।[2]

रचनाकाल

नूरमुहम्मद की 'इन्द्रावती' का रचनाकाल हिजरी सन् ११५७ अर्थात् सन् १७४४ ई० है। नूरमुहम्मद ने जैसा कि स्वयं ही कहा है।[3]

इस ग्रन्थ की रचना करते समय कवि नवयुवक था। इसका उल्लेख करते हुए कवि कहता है—

है कवि समै नई तरुनाई, छूट न अबही कवि लरिकाई ॥[4]

अतएव इन्द्रावती को कवि की आरम्भिक रचना कहा जा सकता है। 'इन्द्रावती' के पश्चात् उसने 'नलदमन' प्रेमाख्यान और उसके बाद 'अनुराग बासुरी' की रचना की।[5] अनुराग बांसुरी का रचनाकाल कवि ने सन् ११७८ ई० लिखा है।[6] नलदमन

१- अनुराग बासुरी, 'बीतीबात' पृ० ६।

२- जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य- डा० सरला शुक्ल, पृ०४५२।

३—सन् इग्यारह सै रहेउ, सत्तावन उपनाह।
कहै लगेउ पोथी तबै, पाय तपीकर बांह ॥ इन्द्रा०, पृ० ४।

४—इन्द्रावती, पृ० ४।

५—आगे हिंद समुद्र तिराना, भाखा इन्द्रावति जो जाना।
फेर कहा नलदमन कहानी, कौन गनावै दूसरि बानी।

६—यह इग्यारह सै अठहत्तर, फेर सुनाएउ बचन मनोहर।

की रचना सन् ११५७ हि० और हि० सन् ११७८ के बीच में की गई है। ये कट्टर मुसलमान तथा सिया सम्प्रदाय के थे। यथास्थान ये अपने पक्के मुसलमान होने, तथा भाषा के माध्यम से मात्र दीनें इस्लाम के प्रचारक होने की पुष्टि करते हैं। अनुराग बांसुरी में वे सफाई देते हुए लिखते हैं—

जानत है वह सिरजन हारा। जौ कछु है मन मरम हमारा।
हिन्दू मग पर पांव न राखेउं। काजों बहुते हिन्दी भाखेउं॥
मन इसलाम मसल के मांजेउं। दीन जेवरी करकस भानेउं॥

यानी मेरे हृदय की बातें परमेश्वर जानता है। मैं ऐसा कर हिन्दुओ के मार्ग का अनुसरण नही कर रहा हूँ। मैंने अपने मन को 'मजहबे इसलाम' के मसलके पर मांज कर उज्ज्वल तथा चमकदार बना लिया है और अपने उस दीन को रस्सी की भाति मांज कर अत्यन्त दृढ़ भी बना लिया है। मेरी धार्मिक मनोवृत्ति पर इस प्रकार हिन्दी भाषा को उसके प्रचार का साधन मात्र बनाने से कोई विपरीत प्रभाव नही पड़ सकता।

यह सब होते हुए भी नूरमुहम्मद तरुणावस्था मे लिखी गई इन्द्रावती मे विनय-पूर्वक अपनी अशुद्धियों की ओर इशारा करके ग्रन्थ को मात्र अपनी बालक्रीड़ा स्वीकार करता है।[1]

कथावस्तु

कालिजर के 'भूपति' नामक राजा के पुत्र का नाम 'राजकुंवर' था। शिक्षा के बाद कुंवर का विवाह एक सुन्दर कन्या से हुआ। वह अपने पिता के बाद सिंहासन पर बैठ कर योग्य शासक हुआ। स्वप्न मे किसी सुन्दरी का प्रतिबिम्ब देखकर उसपर मुग्ध होकर, राजकाज से उदासीन होकर वह उसी का चिन्तन करने लगा। इससे दुःखी होकर मंत्री बुद्धसेन ने चतुर चित्रकारो से सुन्दरियो का चित्र बनवाया। इनके सौन्दर्य का विवरण सुनकर भी वह अहर्निश उसी की चिन्ता मे निमग्न रहने लगा। एक तपस्वी ने बताया कि राजा की स्वप्नसुन्दरी समुद्र पार बसे हुए आगमपुर के

१—कवि है नूर मोहम्मद नाऊँ, है पछलग सबको जग ठाऊँ।
हौ हीना विद्या बुधि सेती, गरब गुमान करौं केहि नेती।
हौं मैं लरिकाई कौ खेला, कहौं न पोथी खेलऊँ खेला।
गुरुजन सो यह बिनतिय मोरी, कोप न मानहिं भौंह सिकोरी।
मोहि विवेक कछु नाहीं, नहिं विद्या बल आहि।
खेलत हौ यह खेल एक दिष्टा देय निबाहि।

—इन्द्रावती, पृ० ४।

'जयपति' नामक राजा की इन्द्रावती नाम की पुत्री है। शिव की कृपा से एक रत्न से ज्योतिर्मयी इन्द्रावती का जन्म हुआ था।

इन्द्रावती का सौन्दर्य-वर्णन सुनकर, तपस्वी 'गुरुनाथ' को अपना गुरु बनाकर कुंवर इन्द्रावती के लिए घर छोड़कर, योगी होकर आठ साथियों को लेकर आगमपुर के लिए चल पड़ा। मार्ग के साथ बीहड़ बन में मिलने वाले रसभोग के प्रति राजा की कोई आसक्ति नहीं थी। रास्ते मे कायापति नामक बनजारे से भेंट हुई। बुद्धसेन से इतर साथियों को छोड़कर, समुद्र पार कर वे दोनों 'जिउपुर' पहुँचे। बुद्धसेन को भी वहीं छोड़कर वियोग विह्वल राजकुमार सारंगी लेकर चल पड़ा। मार्ग में ही यती द्वारा निर्दिष्ट आगमपुर के शिवमंदिर मे शिव की उपासना करते समय राजकुंवर को आकाशवाणी के द्वारा प्रेमपुर मे स्थित इन्द्रावती की मन फुलवारी मे जाने का आदेश हुआ। वह दूसरे दिन वहाँ पहुँच गया।

होली के पर्व पर इन्द्रावती ने आँखों मे काजल लगाया। वह दर्पण मे अपना सौन्दर्य देख स्वयं अपने ऊपर मुग्ध हो गयी। उसे अपने सौन्दर्योपासक का अभाव खटका। उसने दो स्वप्न देखे। पहले स्वप्न में उसने अर्धविकसित कमल को भ्रमर के साथ जाते हुए एवं दूसरे मे समुद्र से प्राण मोती निकालने वाले एक योगी को अपने मांग मे सिन्दूर भरते देखा।

राजकुंवर से मन फुलवारी मे मिलने वाली 'चेता' मालिन ने कुंवर को व्यथा की सूचना इन्द्रावती को देकर उसे राजकुवर के दर्शन के लिए उत्साहित किया। वाटिका मे निश्चित समय पर इन्द्रावती के पहुँचने पर उसके मुख पर एक लट को देखकर राजकुंवर मूर्छित हो गया। प्रयत्न करके वह हार गयी, पर वह जग न सका। अतः वह जीव कहानी लिखकर उसके पास छोड गयी।

जीव कहानी मे मन की प्रीति की उपासना का भाव था, तथा 'दुर्जन' शत्रु के परास्त करने के लिए बुद्धि, क्रिया, साहस एवं आनन्दादि सद्गुणो की प्रशंसा थी। संयोगवश बुद्धसेन ने आकर जीव कहानी का मर्म कुंवर से बतला दिया। कुंवर और इन्द्रावती मे प्रेम-पत्र का चलना प्रारम्भ हुआ। चेता उनके बीच सन्देशवाहक का काम करती रही।

अचानक इन्द्रावती के झरोखे से झाँकने पर स्नेहपादप के नीचे बैठे राजकुंवर से पारस्परिक दर्शन हुए। समुद्र से प्राण मोती निकालने के लिए जाते समय कुंवर को दुर्जन राय ने बन्दी बना लिया। इस सन्देश को राजकुंवर ने तोते से इन्द्रावती के पास भेजा। इन्द्रावती ने उसी से कृपा नामक राजा की सहायता से मुक्त होने का उपाय

लिख भेजा। कृपा नामक राजा ने कुर्जन नामक राय को मार कर राजकुँवर को बन्धन से मुक्त किया।

जगपति के परामर्श दाताओं ने राजकुँवर को अपने क्षत्रियत्व को प्रमाणित करने को कहा। गुरुनाथ ने इस कठिनाई से मुक्ति दिलायी। प्रेम की परीक्षा मे उत्तीर्ण हो उसने कमला से उस मोती को प्राप्त किया। इन्द्रावती के पिता ने दोनों का विवाह कर दिया।

इन्द्रावती उत्तरार्ध

कथा सारांश

राजकुँवर और इन्द्रावती संयोग सुख मे लीन थे। राजकुँवर को कालिंजर से प्रस्थान करते समय उसकी रानी सुन्दर गर्भवती थी। उसने कीर्तिराय नामक पुत्र को जन्म दिया। एक और तो उसे शासन का भार सम्हालना पड़ता था दूसरे तरफ पुत्र के लालन-पालन का भार। एक सखी ने एक तोते की कहानी रानी को सुनाई जो वर्जित फल खाने के कारण आगमपुर से पृथ्वीपुर में आ पड़ा। उसने वही पिंजडे में से एक पक्षी द्वारा आगमपुर सन्देश भेजवाया था।

रानी ने स्वप्न मे शुभसूचक सूर्य, चन्द्र और ग्यारह तारे देखे। जगने पर रानी का विरह तीव्र हुआ। रानी को सुलाने के लिए एक सखी ने कहानी कहना शुरू किया। राजा हंस के राज्य मे गणिका रम्भा आयी। राजा ने उसे सुन्दर मोती का माला भेंट की। रम्भा ने उसे एक शुक दिया। उसने हंसपुर के राजा दम्पति चित्रसेन और रूपवती की पुत्री मालती के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर राजहंस उस पर मोहित हुआ। तोते के समझाने पर वह राजकाज मे दत्तचित्त हुआ। बनजारे के मुँह मे मालती के सौन्दर्य की चर्चा सुनकर वह योगी होकर घर से निकल पड़ा। उसे मार्ग मे राजा महाबली मिला जो उदयपुर के राजा इन्द्र की पुत्री राजबल्लभी के लिये घर छोडकर चल दिया था। इन्द्र ने राज बल्लभी का विवाह महाबली से कर दिया। राजहंस ने हंसपुर जाकर मालती का पाणिग्रहण किया। उसकी पहली पत्नी चन्द्रबदन उसके विरह मे दुःखी थी। उसके सन्देशा भेजने पर राजा हंस मालती के साथ अपने देश लौट आया। सखियों ने कहा कि चन्द्रबदन की भाँति तुम्हारा भी पति मिलेगा। कालिंजर की 'लोभ' नामक कुटिल स्त्री ने कीर्तिराय पर टोना किया जिसके परिणामस्वरूप रानी ने उसे देश से निकाल दिया। उससे रानी के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर जैतपुर के राजा कामसेन ने मोहिनी मालिन को रानी सुन्दर के पास भेजा। रानी के यहाँ जाकर उसने जाल फैलाना चाहा पर रानी ने उसे तिरस्कृत करके उसे हटा दिया। इससे कामसेन ने कालिं-जर पर आक्रमण किया। रानी ने उसका सफलतापूर्वक सामना किया। कामसेन मारा

गया। रानी ने अपना सन्देश पवन से राजाकुंवर के पास भेजा जिससे कुंवर इन्द्रावती को लेकर अपने देश लौट आया। इन्द्रावती बहुत प्रसन्न हुई। सुन्दर और इन्द्रावती प्रेमपूर्वक रहने लगी। पेड़ के नीचे बैठे कुंवर ने एक विरह कथा सुनी कि बल्लभ नामक कुंवर से प्रेमा का विवाह हुआ। दोनो आनन्द मग्न थे पर बल्लभ के मर जाने से प्रेमा सती हो गयी। इसको सुनकर दुःखी हो कुंवर मर गया। दोनो रानियाँ भी सती हो गई।

कथारूपक

इसकी कथा वस्तु एवं पात्र पूर्णरूपेण काल्पनिक हैं। पात्रो के भावात्मक नाम से ही रूपक स्पष्ट हो जाता है। 'राजकुंवर' साधक, 'गुरूनाथ' मार्ग प्रदर्शक तथा आठ सखा शारीरिक इन्द्रिय विकार हैं। राजकुंवर की रानी सुन्दर सांसारिक मोह का आकर्षण है जिसकी उपेक्षा करके साधक साध्य रतन जोति इन्द्रावती का प्रयास करता है। साधना पथ मे पड़ने वाले सात बीहड़ इन्द्रिय विकार रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि हैं। इन पर विजय करना शारीरिक वासनाओ पर विजय करना है। शरीर की इन वासनाओ पर विजय का उपाय मात्र नाम स्मरण मे संलग्नता अथवा जिक्र है। सातो बनो को पार कर जाने के बाद राजकुंवर कहता है :—

तिस्ना मारि पंथ जो चला ताकर होइ पंथ मंह भला!

तथा

हौ में तासु गलिय कर जोगी, जा सुमिरन सों जगत संयोगी।

विषय वासनाओ की आकांक्षा लेकर साधना मे सफलता नही मिलती इसी सत्य का उद्घाटन कुंवर अपने शब्दों मे करता है—

'तुम सब कहं मैं साथ लगाएउँ, जाइ न सकउं लाज मैं पाएउं।

वह देहन्तपुर मे अपने आठ साथियो को छोड़ देता है। देहन्तपुर वह स्थान है जहाँ से आगे साधना के क्षेत्र मे शरीर को भुलाकर वह मात्र प्राणो एवं श्वासो मे उसी का स्मरण करता हुआ आगे बढता है।

देहन्तपुर मे वासनाओ के त्याग के बाद आगे के मार्ग मे साधक का सहायक काया पति है। कायापति के साथ समुद्र पार करके, साधना पथ मे अग्रसर होकर—'जाइ बसा जिउपुर वियोगी' ही साधक की स्थिति हो जाती है। वह निरन्तर परमात्मा के वियोग का अनुभव करता हुआ हृदय दर्पण मे उसके दर्शन का प्रयास करता है।[1]

१—जिउपुर माँहि प्रेमी राजा, गुपुत जाप घट में उपराजा।
जेह मूरत तेहि प्रेम बढाएउ, स्वात पत्र पर ताहि बनाएउ।
तेहि ऊपर अस लाएउ ध्याना, रहि गई मूरत आप हैराना।
(इन्द्रावती पृ० ३०)

साधक का मन मात्र गुप्त जाप में लीन रहता है। उसकी अन्य चेष्टायें समाप्त हो जाती हैं। वह हृदय में आराध्य का दर्शन करने में मग्न रहता है। इसी गुप्त जाप को सूफी 'जिक्रे खफी' कहते हैं।

परम सौन्दर्य का आभास पाकर साधक चेतना विहीन हो जाता है। प्रेम के मार्ग में बुद्धि या तर्क सबसे बडा बाधक है। अत: इसे छोडकर के साधक परम प्रेम की भावना से उस साध्य तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। बुद्धि मनुष्य का सबसे बडा साथी होने पर भी सांसारिकता से ग्रसित रहने के कारण सबसे बडी परमार्थ विरोधी भी है। इसीलिये कुँवर जिअंतपुर के आगे अपनी बुद्धि का भी त्याग कर देता है।[1]

जिअन्तपुर मे त्यक्त बुद्धि स्वयं अपने को परिमार्जन करके राजा कुँवर के परमार्थ मार्ग मे सहायक भी बन जाती है।

तर्क वितर्क को छोडते ही साधक को परम तत्व निवास स्थान का आभास मिलता है। आगमपुर पहुँच कर कुँवर शिव के ध्यान में मग्न होकर, ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञानोदय की भावना आकाशवाणी से स्पष्ट है। आकाशवाणी से उसे ज्ञात होता है कि 'चेता' मालिन के सहयोग से मन फुलवारी में इन्द्रावती के दर्शन प्राप्त होगे। मन के पूर्ण चेतन होने पर सजग होकर आराध्य की अराधना करने से उसके दर्शन सम्भव हैं। दूसरे शब्दो मे प्रेमपुर की मन फुलवारी मे ही आराध्य के दर्शन संभव हैं।

मन फुलवारी मे 'चेता' के सहयोग से साधक का दर्शन होता है। इन्द्रावती भी राजकुँवर का वियोग अनुभव करती है। आत्मा के प्रेम मे परिपक्व हो जाने पर परमात्मा भी आत्मा को अपने पास बुलाने के लिए आतुर हो जाता है लेकिन उसके लिए सबसे बडी आवश्यकता 'मरजीया' होने की होती है। प्रेम के समुद्र मे अहंभाव का पूर्ण रूप से त्यागने वाला ही साधना की पूर्णता को प्राप्त कर आराध्य को प्राप्त कर पाता है। 'मरजीया, होने के मार्ग मे सबसे बडी बाधा अनिश्चयात्मक बुद्धि एवं दुर्जन की संगति होती है।

यह अनिश्चय की भावना भी रूपाकर्षण के द्वारा ही आरम्भ होती है। इसके स्पष्टीकरण के लिए कवि ने दुर्जनराय और मोहिनी का उपयोग किया है। दृढ़ प्रतिज्ञ साधक

१—जप जागा मोहा अनुरागी, अधिको प्रेम अग्नि मन लागी।

× × × ×

जब जिअन्त पुर पहुँचा राजा, बुद्धिहि छाड़ तहाँ सो भाजा।

आप जिअन्तपुर मह रहा, धीर्ज गहा बिछुरन दु:ख सहा।

(इन्द्रावती पृ० ३०)

राजकुंवर अन्तोगत्वा सबपर विजय प्राप्त कर 'मरजीया होकर आराध्य की प्राप्त करता है ।

रस

अन्य सूफी प्रेमाख्यानों की भांति इन्द्रावती मे भी शृंगार रस की प्रधानता है। काव्य-शास्त्र में वर्णित विरह की दशो दशाओं यथा-अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता एवं मरण का वर्णन भी इन्द्रावती मे मिलता है।

अलंकार

इन्द्रावती मे उपमा, रूपक, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, यमक, सन्देह इत्यादि अलंकारो का प्रयोग मिलता है।

भाषा

नूर मुहम्मद की भाषा मिली जुली अवधी भाषा है जिसमे ब्रजभाषा के शब्दों का भी पुट है।'इन्द्रावती' की भाषा 'अनुराग बांसुरी' की अपेक्षा सरल और स्वाभाविक है। कहावतो एवं मुहाविरों के प्रयोग से भाषा अधिक स्पष्ट और सजीव हो गई है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं।

सुख सम्पत सब दीन्हा दाता, मारु न छीर भात मो लाता।
रहै न एको अन्त कंह, नारंग दाड़िम दाख।
देवस चार की चाँदनी, फिर अंधियारो पाख।
जाके गोड़ न गई बेवाई, सो का जाने पीर पराई।
बातहिं हाथी पाइयो, बात हिं हाथी पाव।

इसके अलावा फारसी के शब्द फौव्वारा, सीना ,दिमाग आदि के साथ ही कवि ने स्वयं संज्ञा या विशेषण से क्रिया बनाई है जैसे विरधाही, अंदाही आदि।

छंद

इन्द्रावती मे पाच अर्धालियों के बाद एक दोहे का प्रयोग मिलता है। इन्द्रावती में स्वप्न-दर्शन-जन्य प्रेम, चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम, रूप-गुण-श्रवण-जन्य आकर्षण, स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-संघटन, शुक-शुकी, प्रिया प्राप्ति के लिये योगी बनना, ज्योतिषियों द्वारा अनुरक्ति की पूर्व सूचना, नायिका अप्सरा का अवतार, उद्यान में नायक-नायिका मिलन, समुद्र यात्रा के समय जलपोत का टूटना, वन मे मार्ग भूलना, उपश्रुति, नायिका का अतिप्राकृत जन्म, योगी के नेत्रों में प्रिया देश का दर्शन आदि कथानक-रूढ़ियाँ का प्रयोग

हुआ है। इन्द्रावती में प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढ़ियों का विवेचन सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका उल्लेख करकंडचरिउ मे मिलता है।

विरह वारीश

सामान्य परिचय

बोधा कवि का 'विरह-वारीश' एक प्रेमाख्यानक प्रबन्ध-काव्य है, जिसमे प्रेमी माधवानल एवं उसकी प्रेमिका कामकन्दला की प्रणय कहानी वर्णित है। इसीलिये, इस कृति का एक दूसरा नाम 'विरह-वारीश माधवानल कामकन्दला चरित्र' भी है। माधवानल कामकंदला की प्रेम-कथा बोधा के बहुत पूर्व से ही चली आ रही थी तथा वह संस्कृत भाषा मे लिखी जा चुकी थी। आलम कवि द्वारा सं० १६४० मे लिखा उसका एक हिन्दी संस्करण भी विख्यात हो चुका था। आलम प्रेमी हिन्दी कवि थे। बोधा कवि की प्रेयसी सुमान एक मुस्लिम वेश्या थी और उसके साथ उनका प्रेम प्रकट होने पर उन्हे देश निकाले का दण्ड दिया गया तथा एक वर्ष तक दर-दर की ठोकरें खाने के पश्चात् अन्त मे किसी तरह उसे प्राप्त कर सके। बोधा कवि के धर्म परिवर्तन और उनके अन्तिम समय की बातो का स्पष्ट विवरण नही प्राप्त होता। किन्तु उनके जीवन गाथा सम्बन्धी उपलब्ध विवरण से जाहिर है कि माधवानल तथा काम-कन्दला की कथा के ढाचे मे स्वयं भी कवि ने अपने जीवन को ढाला था। इस तरह बोधा माधवानल के समीप 'प्रेम की पीर' के कारण आलम से भी ज्यादा अधिक थे। कृति के आरम्भ में अपनी 'प्रिया बाला' सुमान द्वारा 'प्रीति की रीति' जानने के लिये अपने प्रति प्रश्न कराये हैं। उसके उत्तर मे वे प्रेम पंथ की कठिनाइयों का वर्णन करते हैं एवं स्पष्ट घोषणा करते हैं कि प्रेम-भाव के उत्पन्न होने पर उसका अन्त तक निर्वाह करना प्रायः असम्भव है। कवि के अनुसार सच्चा प्रेम वहाँ ही समझना चाहिए, जहाँ लौकिक प्रेम के भीतर ही आध्यात्मिक प्रेम का भी अस्तित्व बना रहे। वास्तव मे वह प्रेम स्वयं 'ब्रजराज' या भगवान स्वरूप है जिसे बोधा अपना महबूब कहते हैं।

होय मजाजी में जहा, इश्क हकीकी खूब।
सो साँचो ब्रजराज है, जो मेरा महबूब॥[1]

बोधा कवि के अनुसार माधवानल तथा कामकंदला सच्चे प्रेम की आदर्शमूर्ति हैं। इसी कारण उन्होने उनकी कथा को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। सम्पूर्ण काव्य का प्रणयन विरही बोधा और बाला सुमान के संवाद के रूप मे हुआ है।

१- विरह वारीश, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, पृ० ४।

कवि ने माधवानल तथा कामकंदला की प्रेम-कथा की एक परम्परा का भी उल्लेख किया है—

सुन सुभान अब कथा सुहाई। कालिदास बहु रुचि सह गाई॥
सिंहासन बत्तीसी मांही। पुतरिन कही भोज नृप पाही॥
पिंगल कहं बैताल सुनाई। बोधा खेत सिंह सह गाई॥[1]

किन्तु 'सिंहासन बत्तीसी' की प्राप्त प्रतियो मे लीलावती वाला अंश नही मिलता। 'विरह्-वारीश' मे कवि ने नवखंड किये हैं और प्रत्येक मे एक से अधिक तरंग हैं। प्रत्येक तरंग का नाम नही दिया गया है, लेकिन खंडो का नामकरण उनमे कही गई मुख्यकथा के अनुसार ही किया है, जैसे—

प्रथम शाप पुनि बाल द्वितीय आरन्य खंड गुनि।
पुनि कामावति देस वेस उज्जैन गवनि भनि॥
युद्ध खंड पुनि गाह रुचिर सिंगार बखानो।
पुनि बहुधा वन देस नवम वर ज्ञान बखानो॥
कहि प्रीति रीति गुन की सिपत, नृप विक्रम को सरस जस।
नव खंड माधवा कथा में, नवरस विद्या चतुरदस॥[2]

अर्थात् इस 'विरह-वारीश' ग्रन्थ के नव खण्ड क्रमशः शाप, बाल, आरण्य कामावती उज्जैन, युद्ध, शृंगार, वनदेश एवं ज्ञान हैं तथा इनमे से हरेक के अन्तर्गत विभिन्न तरंगो की रचना की गई है। पूरा ग्रन्थ अभी तक कही से प्रकाशित नही हुवा है। सबसे पहले यह जून सन् १८६४ ई० मे लखनऊ के 'नवल किशोर प्रेस' मे छपा था जो केवल 'पूर्वार्द्ध' था। किन्तु इसमे सात खण्ड तक की कथा सम्मिलित हैं। केवल अन्तिम दो खंड यानी 'बन देश खण्ड' और 'ज्ञानखण्ड' बच जाते हैं। इनके तरंगों की संख्या या विस्तार की कोई जानकारी नही हो पाती। इसमे आये हुए खण्डो मे से प्रथम पाँच मे चार-चार तरंगे हैं। छठें मे केवल तीन हैं तथा सातवें में इनकी संख्या आठ है। इस ग्रन्थ के आरम्भ मे कवि ने गणेश, श्रीकृष्ण, शिव, तथा सूर्यकी वंदना की है और कथा-वस्तु का निर्देश किया है। स्वयं कवि के कथनानुसार यह रचना कवि ने अपनी महबूबा की स्मृति मे ऊब डूब होते हुए विरह की महादशा में लिपिबद्ध की है। इसी कारण इसमे शैथिल्य भी मिलेगा और विशेष अर्थवत्ता भी न मिलेगी, परन्तु फिर भी जो सज्जन होंगे वे इसे पढ़कर अवश्य सुख पाएंगे।[3]

२- वही, पृ० ६।
१- विरह वारीश-नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, पृ० २।
२- रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा- डा० कृष्णचन्द्र वर्मा, पृ० ३१६।

कथावस्तु

श्रीकृष्णचन्द्र के गोकुल छोडकर द्वारका चले जाने पर जब गोपियां विरह से पीडित हुई तो उन्होने कामदेव को शाप दिया कि कलियुग मे जन्म लेकर तुम्हें भी हमलोगों की भाँति विरहाकुल होना पड़ेगा। इसीलिए कामदेव को माधवानल के रूप मे जन्म लेना पडा तथा उसकी पत्नी रति भी राजकन्या हुई। किन्तु राजकन्या से भी पुनः शापित होकर उसे दूसरे जन्म मे पुहुपावती नगरी के रघुदत्त नामक ब्राह्मण के घर उत्पन्न होना पडा जो वहाँ के राजा का कर्मचारी था। माधवानल भी उसी पुहुपावती नगरी मे एक ब्राह्मण के घर पैदा हुआ था जिसका नाम विद्याप्रसाद था। माधवानल संगीत मे अत्यन्त निपुण तथा सुन्दर था जिस कारण उक्त रघुदत्त की कन्या लीलावती उस पर मोहित हो गई। माधवानल भी उससे उसी तरह प्रभावित था। इसलिये समाज मे निन्दा की बातें फैलने पर वहाँ के राजा गोविन्द चन्द्र ने उसे देश से निष्कासित कर दिया। माधवानल वहाँ से विरही बनकर निकला और किसी तमोली के घर रुका। एक दिन वहाँ के राजा की ड्योढी पर उसे पता चला कि भीतर नाचरंग हो रहा है। उसके मृदंगियो मे से एक के ताल देने मे बाहर से दोष निकाल कर उसने राजा भीतर को इसकी सूचना दी। राजा कामसेन ने उसकी बातो को सत्य पाकर उसे बुलाया तथा उसका आदर-सम्मान भी किया एवं वहाँ की नर्तकी कामकन्दला और माधवानल के बीच पारस्परिक कला प्रदर्शन भी हुआ।

कामकंदला के कला नैपुण्य से माधवानल इतना प्रभावित हुआ कि उसने राजा द्वारा प्रदत्त सारा पारितोषिक उसे दे दिया। इसपर अपमानित होकर राजा ने उसे अपने यहाँ से चले जाने का दंड दिया। माधवानल वहाँ से चलकर १३ दिनो तक चोरी-चोरी कामकंदला के घर रहा। परन्तु एक दिन राजदंड के भय से उसे छोड देशान्तर के लिए चल पडा। वह कामकंदला के विरह में व्याकुल था, इसलिये पुनः सुआ से राय लेकर वह उसे प्राप्त करने की आशा मे उज्जैन गया। उज्जैन मे राजा विक्रमादित्य का राज्य था, इसलिये माधव ने वहाँ के महाकाल मंदिर मे अपनी दशा को उसकी दीवार पर लिख दिया। राजा विक्रमादित्य को जब उसकी सूचना मिली तो उन्होने माधवानल को बुलाकर उससे भेंट की तथा उसका पूरा वृत्तान्त जानकर उसकी सहायता के लिए कामावती नगरी की ओर सेना सहित प्रस्थान किया। राजा ने फिर भेष बदल कर कामकंदला तथा माधवानल के प्रेम की परीक्षा ली और सन्तुष्ट होकर कामसेन राजा के यहाँ कामकन्दला के लिये संदेश भेजा। कुछ समय तक युद्ध होने पर कामसेन ने उसकी बात मानी और दोनो राजाओ ने मिलकर उन दोनो प्रेमियो को मिला दिया। किन्तु कामकंदला के विहार करते हुए भी माधवानल ने एक दिन स्वप्न

में लीलावती को देखकर उसकी सुध की। जब राजा विक्रमादित्य को इस बात का पता चला तो उन्होंने इस ओर भी उसकी सहायता करनी चाही। इस कार्य मे राजा कामसेन ने भी उसका साथ दिया तथा उनके प्रस्ताव को मानकर पुहुपावती के राजा गोविन्द चन्द्र ने माधवानल और लीलावती का विवाह करा दिया। सभी बातो के सकुशल सम्पन्न हो जाने पर महाराजा विक्रमादित्य तथा राजा कामसेन अपने-अपने देश चले गये। इसके आगे की कथा ग्रन्थ के 'उत्तरार्द्ध' भाग मे हो सकती है, और उसका कुछ अनुमान शेष 'वनदेश खण्ड' और 'ज्ञान खण्ड' के नामो से किया जा सकता है। बहुत संभव है कि किसी दु.खद घटना के कारण माधवानल को पीछे वन जाना पड़ा हो और अन्त में उसे ज्ञान हुआ हो।

प्रेम व्यंजना

विरह वारीश की कथा विरही और बाला के संवाद के रूप मे कही गई है। कवि ने आरम्भ मे प्रेम मार्ग और उसकी कठिनाइयो तथा बीच-बीच मे प्रेमी के धर्म का वर्णन किया है। जैसे प्रेम कोई स्थूल वस्तु नही, वह मृणाल के तार से भी झीना तार है जिस पर होकर प्रेमी को चलना पडता है, इसलिये इस पंथ के पथिक को बडी कठिनाइयो तथा मानसिक परेशानियो का सामना करना पडता है।

> अति छीन मृणाल के तारहु ते, तेहि ऊपर पाँव दे आवनो है।
> सुई वेह ते द्वार सकीन जहाँ, परतीति को टाडो लदावनो है।
> कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते, चढ़ि तापे न नेकु डरावनो है।
> यह प्रेम को पथ कराल महा, तरवार की धार पै धावनो है।[1]

बोधा आगे कहते हैं कि एक सच्चा प्रेमी इस बात की परवाह नही करता कि उसका प्रेमास्पद भी उसे उसी प्रकार चाहता है या नही। ऐसा प्रेमी अपने प्रेमपात्र को सदा अपनी प्रेम-पिपासा का तृप्त करने वाला मानता है तथा उसे स्वयं चाहता रहता है—

> उपचार औ नीच विचारने ना, उर अन्तर वा छवि को घर है।
> हमको वह चाहे कि चाहे नही, हम चाहिए वाहि बिथाहर है।[2]

बोधा ने ऐसे प्रेम को आदर्श माना है जो अन्त तक निभ सके। जैसे—

१—इश्कनामा : बोधा।
२—वही।

याते सुन यारी दिल दायक। कीजे प्रीति निबहि बे लायक॥
प्रीति करें पुनि और निबाहै। सो आशिकसब जगत सराहै॥[1]

बोधा के अनुसार प्रेम के साम्राज्य मे लोक-लज्जा के लिये कोई स्थान नही है। वे डंके की चोट पर कहते हैं—

लोक की भीत डरात जो मीत तौ।
प्रीति के पैंडे परे जनि कोऊ॥[2]

बोधा ने जिस प्रकार सोचा है, सीधा उसी प्रकार कह दिया है। उसमे कृत्रिमता नाम की कोई चीज नहीं है। बोधा स्पष्ट कहते हैं—

एक सुभान के आनन पै, कुरबान जहाँ लगि रुप जहाँ को।

× × ×

जान मिले तो जहान मिले नहिं जान मिले तो जहाँन कहां को।

बोधा ऐसे प्रेम के पथिक थे जिसमे अविश्वास के लिये कोई स्थान नही था। वे लिखते हैं—

मन मोहन एसो मिलावत है जो फंदे तो कुरंग फंदैती करे।
तब लौ छल जानी न जात कछू जबलौ अधमी वह मारि धरै॥
कवि बोधा छुटे सब स्वाद सवे बिन काजहू नाहक जीव जरे।
विषखाइ मरे कि गिरे गिरि ते दगा दार ते यारी कभी न करे॥[3]

अलौकिकता

बोधा कवि ने लौकिक (मजाजी) प्रेम मे इश्क हकीकी अर्थात् आध्यात्मिक प्रेम का होना भी आदर्श प्रेम का स्वरूप माना है तथा इसे ही 'मेरा महबूब' 'ब्रजराज' तक की संज्ञा दी है। उनका यह मत सूफियो की उस विचारधारा से मेल खाता है जिसके अनुसार वे अपनी प्रेम-कहानियो मे लौकिक प्रेम-कथाओ के रूपक बाधा करते हैं। वे किसी काल्पनिक, पौराणिक या ऐतिहासिक कथा का आधार लेकर चला करते हैं और बीच-बीच मे प्रसंग वश अपने प्रेमसिद्धान्त के अनुकूल दृष्टान्त तथा उपदेश देते चलते हैं। अन्त मे अपने रूपक को स्पष्ट करके उसके परिणाम भी निकालते हैं। 'इश्क मजाजी' तथा 'इश्क हकीकी' की चर्चा छेड़कर और 'सुआ' को पथप्रदर्शक बना-

---

३—'बिरह-बारीश' पृ० ५।

४—'इश्कनामा'।

१—इश्कनामा, २, ३५।

कर बोधा ने अपने को कुछ अंश तक सूफियों द्वारा भी प्रभावित होना बतला दिया है[1]। किन्तु बोधा के साथ इस अलौकिकता को दूर तक घसीटना बहुत उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि 'विरह-वारीश' एक शुद्ध प्रेमाख्यानक काव्य है। अत. नि.संदेह' शुद्ध प्रेमाख्यानक काव्यो की परम्परा का प्रतिनिधित्व बोधा का 'माधवानल कामकंदला' ही करता है।[2] 'माधवानल कामकंदला' की कथा को अपना काव्य विषय बनाकर बोधा ने अपने स्वच्छंदमार्गी होने का प्रमाण दिया हे।[3]

भाषा-शैली

बोधा रचित 'विरह-वारीश' की भाषा चलती हुई ब्रज है, जिसके बीच-बीच में संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग मिलता है, यथा-कुलिश, बज्र, घृक, अमृत, पिनाक, उन्नत, विष, वल्लभा, द्रुम आदि। काव्य मे उर्दू एवं फारसी का प्रयोग भी मिलता है। उदाहरणार्थ—महबूबा, दिल-माहिर, जाहिर, एतराजी, गुस्सा, इश्क, आशिक, गुस्सा, दगा, दगादार आदि।

भाव के अनुकूल भाषा कोमल और कठोर, गंभीर एवं चंचल होती चलती है। शब्दचयन भी अत्यन्त लालित्यपूर्ण तथा भावव्यंजक हे। जैसे—

"सरकि-सरकि सारी सरखि सरखि चूरी मुरकि मुरकि कटि जाय
यों नवेली की।
बोधा कवि छहर-छहर मोती छहरात थहर थहर देह
कम्पित नवेली की॥"

प्रसंगानुसार यही कोमल पदावली युद्ध वर्णन मे कठोर और वातावरण के अनुकूल हो गई है—

इतहि वीर हम्मीर हंकित। हूंक सुनत पुरहूत कम्पित॥
धराधर-धराधर धर धरखत धर। भूमि शैल दिग्गीश धर॥
बजत तरपड़ मुन्ड भट-भट। शूल खंड कृपान हट्ट-खट्ट॥
झरत शोणित बुन्द झल्लन। पड़े शोणित कुण्ड रुन्डहि॥
भक-भक भभकन्त सुंडह। सरासर सरसंत सरबर॥

नृत्य करते समय तबले के थाप एवं घुघरू से निसृत शब्द बडे सुन्दर प्रतीत होते हैं—

१—मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तिया—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १६३–६४।
२—रातिकालीन कवियो की प्रेम व्यंजना—डा० बच्चन सिंह, पृ ४७२।
३—घनानंद और स्वच्छंद काव्य धारा—डा० मनोहर लाल गौड़, पृ० २७५।

"था-था-था थृगादिक थृकन्त थुंगी थुनि युगिरट।
फं-फं-फं फृगादिक फृकंत बोलत संगीनट।

साधारण चलती फिरती भाषा का भी एक नमूना देखिए—

"तिय की गही पिय ने बाँह। तब तिय कही नाही नाँह।
मोको दरद होइ है मित्त। ऐसी अनिये नहिं चित्त॥
नही कहत बारम्बार। टूटत जलज मणिय हार॥
कुच के छुवत झुकि झहरात। तकिया ओर टरकत जात॥"

कहीं-कहीं कहावतो और मुहावरो का प्रयोग भी मिलता है।

जैसे—'धोबिन सो जीतें नही मलत खरी के कान।

× × ×

परखाइयों को खोटका घर को खोटो दाम।

× × ×

उगलत बात बनै ना साँप छछूंदर की कथा।

दक्खिनी हिन्दी के भी कुछेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

"नशा कभी न खाते है। अये हम इश्क मदमाते है॥
गए थे बाग के ताई। उतें वे छोकरी आई॥
उन्ही जादू कुछ कीन्हा। हमारा दिल कैद कर लीन्हा॥

अलंकार

अलंकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, संदेह और लोकोक्ति का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है।

छंद

काव्य मे दोहा और चौपाई की प्रधानता है, परन्तु अन्य छन्दो का प्रयोग भी किया गया है जिसमें त्रोटक, सोरठा, संधारका, दुविला, दंडक, छप्पय, सुमुखी, कुण्डलिया, तोमर, गाथा, हरिगीतिका तथा मोतीदाम मुख्य हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भाव, भाषा, छन्द अलंकार-योजना सभी दृष्टियो से स्वच्छन्द प्रेमाख्यानो की परम्परा मे बोधा का विरह-वारीश सर्वोत्कृष्ट रचना है। विरह-वारीश मे अज्ञान मे अपराध और शाप, उद्यान मे नायक-नायिका मिलन, नायक का देश-निष्कासन, शुक-शुकी, रूप-परिवर्तन, प्रेम-परीक्षा, स्वप्न-दर्शन-जन्यप्रेम, नायिका अप्सरा का अवतार, ज्योतिषयो द्वारा भविष्यवाणी, मृत व्यक्ति का जीवित हो जाना आदि कथानक-रूढियो का प्रयोग मिलता है। विरह-वारीश मे प्रयुक्त उन सभी कथानक-रूढ़ियो का विवेचन सातवें अध्याय मे किया जायगा जिनका प्रयोग करकंड चरिउ मे हुआ।

पौराणिक और प्रेमाख्यानक काव्यों का स्वरूप

पौराणिक और प्रेमाख्यानकमूलक काव्यो मे बहुत सी विशेषताएँ एक समान मिलती हैं। सबसे पहले इनके प्रेमी और प्रेम पात्रों मे से या तो दोनों ही किन्हीं राजपरिवारो के सदस्य हुआ करते है या इनमे से एक अर्थात् कम से कम प्रेमी का सम्बन्ध निम्न वर्ग के परिवार से होता है। इसके अपवाद केवल वही मिलते हैं, जहां प्रेम पहले किसी नारी हृदय में उद्‌भूत होता है। उदाहरणार्थ उर्वशी एक अप्सरा है जो अर्जुन के प्रति पहले आकर्षित होती है तथा हिडिंबा एक राक्षसी है जो भीम को चाहती है। इस दूसरी दशा में यह बात उल्लेखनीय है कि यहा प्रेम भाव की परिणति का वैवाहिक सूत्र में भी बंध जाना निश्चित नही रहता। प्रेम की शुरुआत प्राय. प्रत्यक्ष भेंट, स्वप्न दर्शन या गुण-श्रवण से होती है तथा इसके विकास मे साधारणतः सखी, सखा, पक्षियो और देवी शक्तियो तक से सहायता ली जाती है। इसके उलट-फेर मे कभी-कभी आकस्मिक घटनाओ का भी भरपूर हाथ रहता है।

इसी तरह प्रेमी और प्रेमिका के वैवाहिक सम्बन्ध का रूप ज्यादातर गान्धर्व का रहता है तथा इसके पूर्व बहुधा स्वयंवरो की भी रचना कर दी जाती है। किन्तु ऐसे प्रेमाख्यानो मे अक्सर ऐसे मौके भी देखे जाते हैं, जहा प्रेमी को प्रेमिकाओ के लिए भयंकर युद्ध तक करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रसंगो का अन्त कभी-कभी इस रूप में भी होता है कि इन सुन्दरियो का कई विरोधियो के बीच मे हरण भी करना पड़ता है। फिर भी जहाँ तक सामाजिक या परम्परागत सम्बन्धो का प्रश्न है, अपनी मर्यादाओ को सुरक्षित रखने के लिए पूरी चेष्टा भी की जाती है। इस प्रकार के भारतीय प्रेमाख्यानो के उदाहरण हमे वैदिक साहित्य से लेकर प्रान्तीय भाषाओ के मध्ययुगीन साहित्यो तक में सदा मिलते हैं।

किन्तु हमारे यहां प्राप्त प्रेमाख्यानो का क्षेत्र मात्र यहीं तक सीमित नहीं है: बौद्धों के पालि साहित्य तथा जैनियो की प्राकृत एवं अपभ्रंश कथाओ के अन्तर्गत बहुत से प्रेमाख्यान मिलते हैं जो इनसे कई बातों मे भिन्न लगते हैं। इस प्रकार के प्रेमाख्यान ज्यादातर लोक गाथाओ के स्रोतो से आये हुए हैं, इसलिए उनमे अधिक सरलता एवं निर्व्याजता भी मिलती है। उनके लिए यह जरूरी नही है कि उनकी कथावस्तु का सम्बन्ध मुख्यतः राजघरानो से ही हो। उनके पात्र प्रायः वैश्यो या शूद्र आदि जाति के लोगो मे से चुने जाते हैं। उनमे आये हुए राजाओ को किसी भी साधारण वर्ग की स्त्री के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते कोई संकोच नही होता। उदाहरणार्थ बौद्धों के कट्टहारि जातक' मे राजा ब्रह्मदत्त बन मे गा-गाकर लकड़ी बिनने वाली लड़की पर मोहित हो जाता है। इसी तरह उन्हीं के 'मणिचोर जातक' वाला

वाराणसी नरेश सुजाता नामक स्त्री पर आसक्त हो, उसके पति पर मणि की चोरी का अपराध लगाता है और उसका सिर तक कटवा लेना चाहता है, लेकिन उस साध्वी की प्रार्थना पर वह इन्द्र द्वारा स्वयं मारा जाता है।

'कट्टहारि जातक' वाले प्रेमाख्यानो में एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि उसका राजा ब्रह्मदत्त भी अपनी प्रेमिका लकड़हारिन के गर्भ से पैदा हुए पुत्र को सामान्यतः उसी प्रकार स्वीकार करता है, जिस प्रकार शकुन्तला के गर्भ सेउत्पन्न बालक को अपनाने से राजा दुष्यन्त कतराते हैं तथा वहीं की भांति यहाँ भी एक अँगूठी दिखला कर याद दिलाने का प्रयास किया जाता है और अन्त मे सफलता हाथ लगती है।

जैनियो की प्राकृत गाथाबद्ध रचनाओं तथा उनकी अपभ्रंश धर्म कथाओं मे भी अनेक प्रेमाख्यान मिलते हैं। इनमे लीलावती कथा विख्यात है जिसमे प्रतिष्ठान तथा सिंहल के क्रमश राजकुमार एवं राजकुमारी के प्रेम तथा विवाहादि का वर्णन है। इस कथा मे मनुष्य योनि के अलावा देव-योनि के भी पात्र भाग लेते दिखलाई देते हैं तथा इसका रूप दिव्य मानवो बन जाता है। इसी तरह अपभ्रंश की प्रेम कथा 'पउमसिरी चरिउ' के रचयिता ने उसमे प्रेमी एवं प्रेमिका के उनके पुनर्जन्मो के ही बाद सफल बनाया है।

इन प्रेमाख्यानो मे जैन धर्म मे विहित साधनाओ के महत्व तथा कर्मवाद के निश्चित प्रभावो पर भी विशेष जोर दिया गया मिलता है। इनमे से हरेक के अन्तर्गत एक प्रधान कथा मे अनेक उपकथाएं क्रमशः गुंथी चली जाती हैं तथा अन्त मे परिणाम निकल आता है। कभी-कभी ऐसा भी पाया जाता है कि कथावस्तु जहाँ अपने सीधे-सादे रूप मे रहती है लोकगाथा मे गिनी जाती है, परन्तु जैनियो के यहाँ उनको धर्म कथा का आधार बनकर वही एक अद्‌भुत रूप धारण कर लेती है। उदाहरणार्थ सदयवत्स सावलिंग की जो एक प्रेम कथा राजस्थानी भाषा मे उपलब्ध है, वह एक विशुद्ध प्रेमाख्यान के रूप मे प्रचलित है। परन्तु उसीका गुजराती रूपान्तर जैन रचनाकारो के हाथ में पड़कर एक बृहद् आकार धारण कर लेता है तथा श्रावक धर्म के उपदेश का साधन भी बन जाता है।

इसी तरह एक दूसरे ढंग का दृष्टान्त तमिल साहित्य मे प्राप्त होता है, जहाँ जैन कवि इलंगो द्वारा निर्मित शिलप्पदिकारम् मे कण्णकी और कोवलन की कथा अपने पूर्वार्द्धमे, एक दिव्य लोक गाथा के रूप मे चलती है। परन्तु अपने मणिमेखले वाले उत्तरार्द्ध रूप मे शाहनार कवि के हाथो मे जाकर बौद्ध धर्म के प्रचार का माध्यम बन जाती है तथा उसमें इतनी सरलता नहीं रह पाती।

लोकगाथाएँ जहां भी अपने शुद्ध आरम्भिक रूपों मे उपलब्ध होती हैं, बहुत ही मार्मिक तथा सरस होती हैं। राजस्थान, गुजरात, पंजाब, काश्मीर तथा अन्य कई

प्रान्तों की भाषाओं मे ऐसी रचनायें पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हैं। राजस्थानी का 'ढोला मारूरा दूहा' नामक प्रेमाख्यान एक ऐसी ही प्रेमगाथा के दृष्टान्त में दिया जा सकता है। इसके प्रेमी और प्रेमिका के निश्छल उद्गार, उनका भोलापन और उनकी आस्था एवं उत्साहपूर्ण प्रयत्न अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेते हैं।

'ढोला मारूरा दूहा' पर अपभ्रंश तथा चारणकाल का प्रभाव स्पष्ट है तथा यह अपने ढंग की निराली प्रेमगाथा है। ससि व पूणो, हीर व रांझा, मैनासत, माधवानल काम कंदला इत्यादि भी प्राय. इसी वर्ग मे आती हैं। इन लोकगाथा परक प्रेमाख्यानो में न तो पात्रो का आधिक्य होता है और न इनकी विभिन्न घटनाओ मे ही कोई जटिलता आती है। इनके कथानक का विकास अपने आप स्वाभाविक ढंग से होता चलता है तथा इनके बीच के वर्णन भी कथानक के विकास मे बाधा नही पहुँचाते।

लोक गाथा का प्रभाव

यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो अधिकाश साहित्यिक प्रेमाख्यानों को भी किसी न किसी लोकगाथा से प्रभावित देखा जा सकता है। साहित्यिक प्रेमाख्यानों मे से जिनकी कथावस्तु काल्पनिक है, उनका कलेवर इन लोकगाथाओ के समान ही निर्मित रहा करता है जो पौराणिक हैं, उनमे जीवन्तता लाने के लिए इन प्रचलित प्रेम-कहानियों का ही रंग भरना पडता है। जो प्रेमाख्यान ऐतिहासिक घटनाओ पर निर्भर हैं तथा जिनके पात्र कभी जीवित रह चुके हैं उनपर भी इनके रोमास की पालिश करनी पडती है।

अधिकाश ऐतिहासिक पात्रो पर तो इन आख्यानो का रंग इतना गहरा हो जाता है कि वे वास्तविक व्यक्तियो को ओझल कर देते हैं तथा लोगो के मानस पर उनकी छाया हमेशा के लिए अमिट हो जाती है। उदाहरणार्थ पद्मिनी के प्रेमाख्यान मे जिस अलाउद्दीन के दर्शन मिलते हैं उसका पता इतिहासकारो की रचनाओं से नही लगता। उनमे मात्र कुछ संकेत भर प्राप्त होते हैं जिनकी प्रामाणिकता के विषय में मतैक्य नही है। पृथ्वीराज तथा संयोगिता की कहानी जिस रूप मे गढ़ी गई है उसका मिलना किसी भी इतिहास ग्रन्थ मे कठिन है, लेकिन वही रूप हमारे लिये अधिक उपादेय है।

इनके अतिरिक्त प्रेमाख्यानो का एक रूप वीरगाथा काल की प्रेमकथाओ मे भी उपलब्ध होता है, जिसमे कोई राजपुरुष या बादशाह किसी सुन्दरी का वर्णन सुनकर उसकी तरफ आकर्षित होता है तथा उसकी प्राप्ति के लिये अनेक उपाय करता है। उसके यहाँ दूत भेजना, प्रलोभन दिखाना तथा उसके पति एवं पिता को डराना, धमकाना शुरू हो जाता है। इसके निमित्त विभिन्न राजनीतिक दाँव-पेंच खेले जाते

हैं। भयंकर युद्ध होते हैं। उनको प्राप्त करने के लिये प्रेमी अपने जीवन की बलि भी देने को तत्पर रहता है।

परन्तु ऐसे प्रेमाख्यानो मे शुद्ध प्रेम का स्थान कामुकता ले लिया करती है तथा प्रेमाख्यान का रूप गौण हो जाता है। उदाहरणार्थ मुसलिम शासको से सम्बद्ध या बहुत से राजपूत राजाओं पर आश्रित प्रेमाख्यानों को देखा जा सकता है।

नई प्रणाली का आरम्भ

सूफियो के भारत मे आकर अपना मत प्रचार करने पर एक नवीन प्रेमाख्यान-प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। सूफी प्रेम की पीर को महत्व देते थे तथा वे इश्क मजाजी में भी इश्क हकीकी का बीज प्राप्त करते थे। इसलिए उन्होने भारतीय प्रेमाख्यान की प्रचलित परम्पराओ का सूत्र पकड़कर उसे अपने 'मजहबी नुक्ते नजर' के मुताबिक मोड़ने के प्रयत्न किये। उन्होने अधिकाश ऐसे प्रेमाख्यानो को अपनाना शुरू किया जो बहुत प्रसिद्ध थे तथा उन्हे उपमिति कथाओ के रूप दे दिये। उन्होने अनेक ऐतिहासिक तथा अर्द्ध पौराणिक प्रेम कथाओ को भी अपनाया तथा उनको अपने रंग मे रंगा। इनकी प्रमुख विशेषता यह थी कि उन्होंने प्रेम कथाओ की कथावस्तु का विकास अपनी प्रेम-साधना पद्धति के ढाँचे पर करना चाहा। इस प्रकार के कार्य मे पूर्णतः सफल होना तो कठिन ही था। तो भी विरह-यातना, कष्ट-सहन और सौन्दर्यादि के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनो द्वारा उन्होने प्रेम-साहित्य के एक नये अंग की पूर्ति की। अपनी इसलामी विचारधारा के सुन्दर चित्रो को चित्रित कर उन्हे भारतीय वाङ्मय मे एक महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी बना दिया। उनका परमात्मा को प्रेयसी मानकर चलना विरह को प्रेम से भी ज्यादा महत्व देना और एक रचना-पद्धति विशेष को अपनाकर उसे प्रचलित करने मे प्रयत्नशील होना, भारतीय न होने पर भी आज स्थायी रूप ग्रहण कर लिया है।[1]

करकंड चरिउ के साथ तुलना

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राय. सभी प्रेमाख्यानक काव्यो मे प्रेम की महत्ता का एक स्वर से प्रतिपादन किया गया है। काव्य के आरम्भ मे तथा सामान्यतः उसके बीच-बीच मे प्रेम मार्ग की उत्कृष्टता एवं कठिनाइयो का प्रसंगानुसार वर्णन हुआ है।

प्रेम के आलंबन के रूप मे राजा या राजकुमार तथा राजकुमारी को ग्रहण किया गया है। कोई राककुमार किसी अलौकिक सौन्दर्य से युक्त राजकुमारी की रूप

---

१. *मध्यकालीन प्रेम साधना :* परशुराम चतुर्वेदी; पृ० २३६।

चर्चा सुनकर व्यथा से बेचैन हो जाता है पुनः उसे प्राप्त करने के लिए असाधारण प्रयत्न करता है। अन्त मे उसे सफलता प्राप्त होती है। विविध प्रकार के प्रतिबन्धों के कारण प्रेमी प्रेमिका का संयोग शीघ्र नहीं हो पाता। प्रेमी को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए दुर्लंघ्य पर्वतों, निबिड़ जंगलो, बीहड़ मार्गों, असीम समुद्रों को पार करना पड़ता है। उसे योग साधना पड़ता है, देवताओ की अर्चना करनी पड़ती है, इधर-उधर भटकना पड़ता है।

प्रेमी-प्रेमिका के मिलन मे सहायता पहुँचाने के लिए तीन वर्गों से प्राणियों का चुनाव किया जाता है। मनुष्य, देव एवं पशु-पक्षी। मनुष्य वर्ग मे राजकुमार के सखा तथा राजकुमारी की सखियो के अतिरिक्त योगी, जादूगर, मालिन, भाटिन आदि देव वर्ग मे महादेव, पार्वती आदि तथा पक्षी वर्ग में तोता, मैना, हस नायक-नायिका के बीच मे प्रेम घटक का कार्य करते हैं। अन्त मे इन प्रेमियो की तरह अन्य लोगो की मंगल-कामना के साथ काव्य का अन्त होता है।

आध्यात्मिक प्रेमाख्यानक काव्यो और शुद्ध लौकिक प्रेमाख्यानको मे ये विशेषतायें समान रूप से पायी जाती हैं परन्तु दोनो के प्रेम मे एक मुख्य अन्तर दिखाई पड़ता है। जहाँ पहले मे लौकिक प्रेम की सारी शब्दावली मुख्य रूप से प्रतीकात्मक अर्थ मे प्रयुक्त होती है वहाँ दूसरे मे कवि का मुख्य प्रतिपाद्य लौकिक प्रेम होता है। आध्यात्मिक प्रेमाख्यानक काव्यो मे लौकिक प्रेम गौण होता है जबकि लौकिक प्रेमाख्यानक काव्यो मे पारलौकिक प्रेम।

एक अन्य भेद इनमे यह है कि जहाँ आध्यात्मिक प्रेमाख्यानकों के प्रारम्भ मे प्रेम विषम होता है वहाँ शुद्ध प्रेमाख्यानको मे प्राय सम। आध्यात्मिक प्रेमाख्यानको मे वर्णित प्रेम को परोक्ष सत्ता के पक्ष मे भी बैठाना अनिवार्य होता है। इसलिए वहाँ पर प्रेम पहले साधक के मन मे उद्भूत होता है और बाद मे उस प्रेम के प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रिय या ईश्वर मे भी साधक या भक्त के प्रति प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। शुद्ध लौकिक प्रेमाख्यानो मे इस प्रकार का कोई दुहरा लक्ष्य न होने के कारण प्रेम का प्रारम्भ मे विषम होना अनिवार्य नहीं था।

करकड चरिउ में नायक करकंडु की सिंहल द्वीप की यात्रा, राजकुमारी रतिवेगा से विवाह, समुद्र में करकंडु का वियोग, रतिवेगा को पद्मावती देवी द्वारा अरिदमन का दृष्टान्त सुनाकर पुन. मिलन का आश्वासन आदि घटनाओ का परवर्ती साहित्य पर जबरदस्त प्रभाव परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए यहाँ जो करकंडु के सिंहलद्वीप जाकर वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा का परिणय कर लौटने की घटना वर्णित है उसकी छाया जिन हर्षगणि कृत रयणसेहरी कहा (रत्नशेखरीय कथा लगभग वि०सं० १४४५ में रचित) में पायी जाती है जहाँ रत्नपुर के राजा रत्नशेखर के सिंघल की राजकुमारी रत्नावती पर मुग्ध होकर उसके विवाह करने की कथा वर्णित है। इसके

बाद हिजरी सन् ९४७ (ई० १५४०) के लगभग मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित हिन्दी काव्य पद्मावत पर करकंड चरिउ और रयणसेहरी इन दोनों कथाओं का प्रभाव साफ दिखाई देता है। सिंहलद्वीप की राजकुमारीपद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन हीरामन तोते के मुख से सुनकर चित्तौड़ का राजा रत्नसेन उसपर मोहित हो गया तथा वह योगी का वेष बनाकर सिंहल पहुँचा, वहाँ महादेव के मन्दिर में उसकी पद्मावती से भेंट हुई, दोनों का विवाह हुआ, समुद्र मार्ग से लौटते हुए नौका विच्छिन्न हो गयी, दोनों का विछोह हुआ और फिर उनका मधुर मिलन हो गया। पद्मावत का यह कथानक करकंड चरिउ में वर्णित अरिदमन नरेश के आख्यान से बहुत कुछ मिलता-जुलता है और सिंहल द्वीप में योगी के वेष व राजकुमारी से मिलन का वृत्तान्त रत्नशेखरी कथा से मेल खाता है। फिर इसके बाद के प्रेमाख्यानक काव्यों के नायकों के लिए तो सिंहल की यात्रा जैसे आवश्यक रूढ़ि हो गई थी। इसपर विस्तारपूर्वक विचार आगे के अध्यायों में किया जायगा। करकंड चरिउ में जो अपभ्रंश काव्य की घत्ता-कडवक छन्दात्मक टकसाली रचना पायी जाती है उसी शैली में पद्मावत की दोहा-चौपाई रूप हिन्दी रचना का आविष्कार हुआ है। यह शैली हिन्दी काव्य में बहुत लोकप्रिय हुई तथा तुलसीदास कृत रामायण द्वारा उसे बड़ा गौरव प्राप्त हुआ।[1]

---

१. करकंडचरिउ—सं० डा० हीरालाल जैन, पृ० २९–३०।

छठाँ अध्याय

करकंडचरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की कथावस्तु और वस्तुयोजना की तुलना

सामान्य परिचय

'अपभ्रंश के कवियों को विस्मरण करना हमारे लिए हानि की वस्तु है। यही कवि हिन्दी काव्यधारा के आदि स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाण की सिर्फ जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्र की तरह हमारे काव्य क्षेत्र मे नया सृजन किया है; नए चमत्कार, नए भाव पैदा किये, यह स्वयंभू आदि की कविताओ से अच्छी तरह से मालूम हो जाएगा। नए-नए छन्दों की सृष्टि करना तो इनका अद्भुत कृतित्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि कई सौ ऐसे नए-नए छन्दो की उन्होने सृष्टि की, जिन्हें हिन्दी कवियो ने बराबर अपनाया है, यद्यपि सबको नहीं। हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसी के ये ही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं। उन्हे छोड़ देने से बीच के काल में हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी संभावना है।'[1] राहुल जी के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है और हिन्दी साहित्य अपभ्रंश साहित्य का ऋणी है। परन्तु कहने का अभिप्राय यह कत्तई नहीं है कि हिन्दी साहित्य मे अपना कुछ नहीं है और हिन्दी कवियों ने केवल अपभ्रंश से ही सब कुछ लिया है। जिस प्रभाव की चर्चा आगे की जायेगी उसके द्वारा यह विदित होगा कि जो रूप, शैली आदि हिन्दी के मध्ययुगीन प्राचीन साहित्य में प्राप्त होता है उसका एकाएक १४वीं अथवा १५वीं शती से ही आरम्भ नही हुआ अपितु वह धीरे-धीरे विकासशील कुछ अपभ्रंश काव्यधाराओ का विकसित एवं प्रौढ़ रूप है। मध्यकाल के प्राप्त हिन्दी साहित्य के सम्पूर्ण रूपो का आरंभ सचमुच कई सौ वर्ष पहले अपभ्रंश के कवियो ने किया था यही दर्शाना, इस अध्ययन का लक्ष्य है। 'प्रभाव' से यह अभिप्राय नहीं है कि किसी खास कवि ने सीधे अपभ्रंश की किसी कृति को पढ़कर अपनी कृति की सृष्टि की, या कोई खास अपभ्रंश काव्यधारा हूबहू हिन्दी में ग्रहण कर ली गई। अपभ्रंश के विभिन्न काव्य रूपों मे से कुछ का सम्बन्ध प्रत्यक्ष जनता से था तथा समयानुकूल उस सम्बन्ध को कायम रखने के लिये उन्हीं काव्यरूपों मे मात्र परिवर्तित भाषा का व्यवहार होने लगा जिसे हिन्दी काव्यधारा की संज्ञा दी जा सकती है।[2] भावधारा के निमित्त मध्यकालीन अनेक हिन्दी कवियों ने संस्कृत साहित्य की तरफ झाँका है परन्तु काव्य के बाहरी सभी रूपो के लिए वे अपभ्रंश की तरफ झुके हैं। आगे की पक्तियो मे अपभ्रंश तथा हिन्दी काव्य की इन्हीं सामान्य विशेषताओ की ओर संकेत करने का प्रयास किया जायगा। अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन करके हिन्दी काव्यधाराओ की पूर्ववर्ती सभी अदृश्य कड़ियो का पता लगाया जा सकता है।

१—हिन्दी काव्यधारा-राहुल सांकृत्यायन, अवतरणिका, पृ० १२-१३।

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव डा० रामसिंह तोमर, पृ० २१०।

अपभ्रंश-साहित्य और हिन्दी के काव्य-रूप

हिन्दी साहित्य मे (अपभ्रंश की) प्रायः पूरी परम्परा ज्यो की त्यो सुरक्षित हैं। शायद ही किसी प्रान्तीय साहित्य मे ये सारी विशेषताएँ इतनी मात्रा मे और इस रूप मे सुरक्षित हो। यह सब देखकर यदि हिन्दी को अपभ्रंश साहित्य से अभिन्न समझा जाता है तो इसे बहुत अनुचित नहीं कहा जा सकता। इन ऊपरी साहित्य रूपों को छोड़ भी दिया जाय तो इस साहित्य की प्राणधारा निरवच्छिन्न रूप से परवर्ती हिन्दी साहित्य मे प्रवाहित होती रही है।[1] अपभ्रंश रचनायें ज्यादातर पुराण, महापुराण, चरिउ, कथा (कहा), रास, पद आदि रूपो मे मिलती हैं।[2] हिन्दी में भी 'चरिउ' शब्द अपने तत्सम शब्द के रूप मे बहुत अधिक अपनाया गया है। रामचरितमानस, देवचरित, सुदामाचरित, सुजानचरित और बुद्धचरित इत्यादि ग्रन्थों के नाम हिन्दी मे भी विख्यात हैं। अपभ्रंश के चरिउ ग्रन्थो मे किसी जैन धर्मावलम्बी महापुरुष के चरित का वर्णन, अनेक पूर्वजन्म सम्बन्धी कथाओ एवं अलौकिक घटनाओ से समन्वित प्राप्त होता है। ठीक इसी तरह हिन्दी साहित्य मे भी कई चरित ग्रन्थो मे किसी महापुरुष को लेकर उसके चरित का वर्णन किया गया है तथा अपभ्रंश के चरित ग्रन्थो की तरह इनमे भी धार्मिक भावना मिलती है। मानस मे वैष्णव धर्म से प्रभावित होकर तुलसी-दास, अपने चरित नायक का ईश्वर की कोटि मे बैठा देते हैं।

अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्य हिन्दी-साहित्य मे जायसी के पद्मावत के रूप मे प्रकट हुए[3] अपभ्रंश मे ये प्रेमाख्यान धार्मिक आवरण मे लिपटे थे। हिन्दी साहित्य मे इन प्रेमाख्यान के काव्यो मे अध्यात्म तत्व का व्यंग्य रूप मे समावेश हुआ[4]। इसीलिए जायसी ने स्पष्ट किया है कि—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धधा। बाचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत, सोई सतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू॥

हिन्दी-साहित्य को इन सूफी प्रेमकथाओ के लिए अपभ्रंश का ऋणी कहा जा सकता है। परन्तु इन कथाओ के व्यंग्य विधान या आध्यात्मिक अभिव्यंजना के लिए वह सूफी साहित्य का ऋणी तथा 'मसनवियो' से प्रभावित है।

१—हिन्दी साहित्य—पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १५।
२—अपभ्रश काव्य परम्परा और विद्यापति—डा० अंबादत्त पंत, पृ० ४५०।
३—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १८८।
४—जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ० ३३२।

हिन्दी साहित्य मे प्रबन्धात्मक वीर काव्य रासो के रूप में भी प्राप्त होते हैं जिनका प्रतिनिधि काव्य पृथ्वीराज रासो कहा जा सकता है। रासो का आधुनिक रूप जिस भी भाषा में हो किन्तु वह अपने प्रारम्भिक रूप में अपभ्रंश काव्य ही था। इसी को आधार बनाकर आगे अन्य रासो ग्रन्थो की सृष्टि हुई। अपभ्रंश रास रचनाओं की लोकप्रियता के परिणामस्वरूप हिन्दी में यह धारा प्रवाहित हुई। हिन्दी के कुछ कवियो ने आगे चलकर आश्रयदाताओ से सम्बन्धित चरित काव्यो को रास या रासो नाम दिया। चारण काव्य की दो धारायें मिलती हैं एक रास परम्परा, दूसरी वीर रसात्मक चरित काव्य परम्परा। दोनों के आदि रूप अपभ्रंश में उपलब्ध हैं।[१] किन्तु इनका यहा पर पूर्ण विवेचन हमारे लिए न तो सम्भव ही है और न आवश्यक हो। इसी के आधार पर आगे अन्य रासो ग्रन्थ लिखे गये।

अपभ्रंश काव्यो मे घटना-बाहुल्य तो चलता रहा लेकिन काव्यत्व कुछ दब गया। धार्मिक वातावरण के सीमित क्षेत्र मे रमने के कारण कवि की स्वच्छन्दता का भी लोप हो गया। हिन्दी काव्यो मे घटना वैचित्र्य का रूप तो प्राप्त होता है लेकिन धर्म का वह आग्रह कवि के सामने नही रहा। उसकी गति निर्बाध रूप से आगे बढ़ती जाती है रामचरितमानस मे कथा का पूरा विस्तार मिलता है तथा काव्यमय वर्णनो का पूर्णतः साचार भी। पद्मावत मे भी दोनो तरह के तत्व विद्यमान हैं।

हिन्दी मे अपभ्रंशयुगीन गीतों की परम्परा में गीतिकाव्य की सृष्टि भी हुई। गेयता, संक्षिप्तता, विचारो की एकरूपता और आत्माभिव्यक्ति ये चार गीतकाव्य की मुख्य विशेषतायें हैं। संस्कृत मे जयदेव का गीतगोविन्द प्राप्त है परन्तु उसे भी कई विद्वानो ने अपभ्रश की छाया के रूप मे स्वीकार किया है। अपभ्रंश में भी अनेक गीत उपलब्ध हैं। सिद्धो के गीतो मे गेयता तथा भावतीव्रता दोनो ही है। अपभ्रंश में गीतों के महत्व को गोवर्द्धनाचार्य ने भी अपनी आर्यासप्तसती में स्वीकार किया है।

ग्रन्थिलतया किमिक्षोः किमपभ्रंशेन भवति गीतस्य।
किमनार्जवेन शशिनः किं दारिद्रयेण दयितस्य॥ २१५॥

इस प्रकार हिन्दी के गीतकाव्यो को अपभ्रंश की इन गीतो का विकसित रूप कहा जा सकता है। इसके विनय के पद संस्कृत के स्रोतो की आत्मा को लिए हुए राग-रागनियो में बंधे प्रचार में आये लेकिन उनका रूप अपभ्रंश के ढांचे में ही ढला। विद्यापति ने कीर्तिलता मे अपभ्रंश (अवहट्ट की लोकप्रियता का जिक्र किया है।

सक्कय वाणी बहुअ न भावइ, पाउंअ रस को मम्म न पावइ।
देसिल वअना सब जन मिट्ठा, तं तेसन जम्पओ अवहट्ठा॥

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव-डा० रामसिंह तोमर, पृ० २२५।

यह सब होते हुये भी पदावली पर सिद्धों के अपभ्रंश गीतों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। यही गीत परम्परा आगे तुलसी की गीतावली तथा सूर के पदो मे दृष्टिगोचर होती हैं। यह जरूर है कि गीतबद्ध कथात्मक काव्य अपभ्रंश मे नहीं प्राप्त होता लेकिन इसका बीज सिद्धो के गानों मे ढूँढ़ा जा सकता है।

प्रेमाख्यानक काव्य रूप

हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक रूप विविधता प्रेम कहानियो मे प्राप्त होती है। इन कथाओं के प्रकार तथा स्तर भिन्न-भिन्न हैं। उद्देश्यो में भिन्नता होने के कारण प्रेम कथाओं के रूप भी भिन्न हो गये हैं। कुछ मे भावधारा की भिन्नता के कारण भेद हो गया है। सभी प्रेम कथाओं मे परिचित साहसपूर्ण प्रेम कथाओ को स्थान प्राप्त है। भावधारा की दृष्टि से इन प्रेम कथाओं को दो वर्गों मे रखा जा सकता है। एक वर्ग मे वे रचनायें आती हैं जिनमे कवियो ने जीवन के गम्भीर पक्ष का भी ख्याल रखा है एवं कहीं कही आध्यात्मिकता को जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष समझकर स्थान दिया है। दूसरे वर्ग में उन रचनाओं की गणना की जा सकती है जिनमे प्रेम की परीक्षा कराते हुए अन्त मे प्रेमी-प्रेमिका के सुखपूर्ण संयोग का चित्रण हुआ है। पहिले वर्ग मे मृगावती, पद्मावती, मधुमालती, चित्रावली इन्द्रावती और पुहुपावती आती हैं।

उपर्युक्त सभी कवियो ने कल्पित कथायें ली हैं, केवल जायसी ने अपनी कृति के उत्तरार्द्ध में इतिहास के वृत्त को रखा है। सम्भवत: प्रेमियों की परीक्षा के लिए जायसी ने कल्पित कथा के साथ ऐतिहासिक घटना को मिलाया है। इन सभी रचनाकारों को अपेक्षा जायसी मे कवि प्रतिभा है तथा काव्य की दृष्टि से पद्मावती सर्वश्रेष्ठ है। उसमें प्रबन्धात्मकता भी अधिक है।

इन रचनाओं के अलावा कुछ ऐसी प्रेम कथायें भी हैं जो सचमुच ऐहिकता मूलक हैं जिनका लक्ष्य मात्र एक प्रेमकथा कहना है किसी प्रकार की अन्य व्यंजना करना नहीं। वाह्य काव्य रूप के लिहाज से पद्मावती के समान ही चतुर्भुजदास निगम कायस्थ कृत मधुमालती है। कुछ ऐसी भी प्रेम कथायें हैं जिनमें केवल दोहा छंद का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ गणपति कृत माधवानल कामकन्दला तथा ढोला मारूरा दूहा को देखा जा सकता है। इन कथाओ के अतिरिक्त अन्य अनेक पौराणिक तथा लौकिक प्रेम कथायें मिलती हैं जिनमें सत्यवती कथा, उषा अनिरुद्ध, नलदमयन्ती कथा, पदमतिलक कृत सदैवच्छ चरित एवं सदैवच्छ सावलिंगा की चौपाई विशेष उल्लेखनीय हैं। भद्रसेन रचित दोहा बद्ध चदनमलयागरी की कथा भी प्रसिद्ध हे। इनमे से कई कथायें समय की सीमाओ को लांघती हुई रूप परिवर्तन के साथ आज भी लोक मे प्रचलित हैं। उदाहरण के लिये सुदैवच्छ (सदयवत्स) सावलिंगा की कथा को देख सकते हैं। नल तथा दमयन्ती की प्रेमकथा और सुदयवत्स कथा की लोकप्रियता का जिक्र संदेशरासक में इस प्रकार मिलता है—

कह व ठाइ सुदयवच्छ कत्थ व नलचरिउ । २.४४

इसी तरह इन प्रेमकथाओं की लोकप्रियता के विषय मे जायसी ने पद्मावती में और बनारसीदास ने अर्द्धकथा में उल्लेख किये हैं। उपयुक्त प्रेमकथाओं के रूपों पर संक्षेप में यहाँ विचार किया जायगा। पद्मावती, मधुमालती, मंझनकृत चित्रावली, पुहुपावती, हंस जवाहिर, इंद्रावती आदि प्रेमकथाओ का रूप एक तरह का माना जा सकता है। इन रचनाओ में एक ही तरह की शैली का अनुसरण किया गया है। अर्थात एक ही मुख्य कथा वर्णित है। छंदो का क्रम भी सामान्यत: एक ही प्रकार का मिलता है। प्रेमी-प्रेमिकाओं के एक दूसरे के प्रति प्रेम की एक निष्ठता एवं दृढ़ता की परीक्षायें भी एक ही प्रकार से ली गई हैं। चतुर्भुजदास कृत मधुमालती कथा का रूप दूसरे प्रकार का है। उसमें प्राकृत में लीलावती कथा, करकण्डुचरिउ, एवं पंचतन्त्र की कथा शैली का अनुसरण किया गया है। मुख्य कथा चलती रहती है उससे सम्बन्धित अनेक अवातर कथायें भी कृति मे कही गई हैं। माधवानल कामकन्दला एवं चन्दनमलयागिरी की कथा के रूपो मे कुछ भिन्नता है। वे शुद्ध प्रेम कथाएँ हैं। धार्मिक या आध्यात्मिक व्यंजना उनमे जरा भी नहीं है। माधवानल कामकंदला मे प्रेमकथा के अनुरूप ही आरम्भ मे कामदेव की वंदना है, सरस्वती, गणेश आदि की वंदना बाद मे की गई है। रचना का आरम्भ प्रेम के सर्वोच्च देवता, सुर, नर, ब्रह्मा सबको वश मे करने वाले रतिरमण कामदेव के स्मरण से किया गया है।

कुंअर कमला रति रमण, मयण महाभउ नाम।
पंकजि पूजिय पय कमल, प्रथम जी करूं प्रणाम।।

ढोलामारूरा दूहा मे किसी भी देवता की वंदना नही की गई है। बिना किसी भूमिका के सहसा कृति का आरम्भ नरवर के राजा तथा पूगल के राजा के परिचय से होता है। कथा कहने का सीधा मार्ग ग्रहण किया गया है। ढोला तथा मारू (मारवणी) का बचपन मे ही विवाह हो जाता है। तरुण होने पर मारू के हृदय मे ढोला के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और कवि ने विरहादि का उल्लेख करके संयोग का वर्णन किया है। प्रेमियो के प्रेम की परीक्षा का वर्णन भी कवि ने बडे सरल ढङ्ग से किया है।[1]

इन सभी प्रेमकथात्मक रचनाओं के रचनाकारो का मुख्य उद्देश्य कथा कहना रहा है। जीवन के दूसरे पक्ष प्रेमकथा के अंग होकर आये हैं। इन सभी कवियों ने

१ —एक साँप के काटने से रास्ते में मारवणी की मृत्यु हो जाती है। लोग ढोला से और मारवणी स्त्री से विवाह करने के लिये कहते हैं परन्तु उसका प्रेम दृढ़ रहता है। एक योगी आकर मारवणी को फिर जिला देता है तथा दोनो प्रेमी प्रसन्न होते हैं। ढोला मारूरा दूहा, पद्य ६११।

प्रेम की व्यंजना को प्रभावशाली बनाने के लिये नायको के चरित्रों को साहसपूर्ण चित्रित किया है। सभी नायक अत्यन्त सुन्दर तथा उद्योगी हैं। इनके काव्य की नायिकायें भी नायकों में एकनिष्ठ प्रेम रखने वाली हैं। इम प्रेम कथाओ में से कुछ मे कवियों की विशेष विचारधारा के कारण अलौकिक सत्ता की व्यंजना भी प्राप्त होती है तथा कुछ शुद्ध सरल प्रेमकथाएँ हैं। डा० रामसिंह तौमर के मतानुसार इन प्रेमकथाओ को किसी भी प्रकार प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत महाकाव्यो की कोटि मे नही रखा जा सकता है।[1] क्योंकि प्रबन्धात्मकता, कथा प्रवाह इनमे अवश्य मिलता है किन्तु जो वस्तु व्यापार की महानता, जटिलता तथा भव्यता, वर्णनो की उत्कृष्टता और पुन: एक सुसंबद्ध प्रबन्धपटुता महाकाव्यो के लिये अपेक्षित है वह इन प्रेमकथाओ मे नहीं उपलब्ध होती। उत्सुकता के तत्व के साथ प्रेमी एवं प्रेमिका को कथा प्रस्तुत करना इन कृतियो का मुख्य उद्देश्य है। प्रसंगानुसार यत्र तत्र सुन्दर वर्णन तथा संयोग वियोग के दृश्य भी मिलते हैं। इन सम्पूर्ण प्रेम आख्यानक प्रधान कृतियो को कथा साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

यहाँ लगे हाथो कथा के सम्बन्ध मे थोडा विचार कर लेना चाहिए। अपभ्रंश साहित्य मे इस तरह को प्रबन्धात्मक अनेक प्रेमकथायें प्राप्त होती हैं जिन्हें धर्म का आवरण पहनाकर प्रस्तुत किया गया। जैन लेखको ने कथा के विषय में विशेष उल्लेख किये हैं, वसुदेव हिंडी (छठी शती ई०) मे इस किस्म की अनेक गद्यबद्ध कथाये मिलती हैं। एक स्थल पर कथा (चरित) के सम्बन्ध मे उल्लेख भी मिलता है१ जिसमे कहा गया है कि कथा दो प्रकार की होती है--चरिता (सत्य) तथा कल्पिता। चरिता चरित पर आधृत दो तरह की होती है स्त्री की एव पुरुष की। धर्म, अर्थ तथा काम विषयक कार्यो मे दृष्ट, श्रुत और अनुभूत वस्तु चरिता कहलाती है। इसके अतिरिक्त पहिले जिसका कुशल पुरुषो के द्वारा उपदेश किया गया हो और फिर स्वमति से उसकी योजना की गई हो वह कल्पित है। पुरुष स्त्री तीन प्रकार के होते हैं उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट। उनके चरित भी तीन प्रकार के होते हैं। इस प्रकार अद्भुत, शृंगार, हास्य रस से पूर्ण चरित तथा कल्पित आख्यान होते हैं।

दशवैकालिक नियुंक्ति मे भी कथाओ के विषय मे विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है। कथाओ के भेदो का जिक्र करते हुए अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा तथा मिश्रित कथा भेदो की चर्चा की गई है तथा कहा गया है कि इनमे से एक एक के अनेक भेद होते हैं। कथा के अलावा विकथा की भी चर्चा की गई है जिसमें स्त्री, भक्त, राजा

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० राम सिंह तोमर, पृ० २२९।

तथा चोर आदि की कथा हो सकती है।[1] हरिभद्र (७५० ई०) ने समराइच्चकहा के आरम्भ में कथा के विषय मे विस्तृत ढंग से विचार किया है। उन्होने कथावस्तु के तीन भेद किये हैं—दिव्य, दिव्यामानुष, तथा मानुष। दिव्य में मात्र देवचरित का वर्णन होता है। दिव्यामानुष मे देव तथा मनुष्य दोनो का चरित्र वर्णित रहता है और मानुष में केवल मनुष्य का चरित्र वर्णित रहता है। कथावस्तु के आधार पर उन्होने कथा के चार प्रकार माने हैं–अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा संकीर्ण कथा[1] और आगे हरिभद्र ने श्रोताओं के प्रकारो का भी जिक्र किया है।[2] उद्योतन (७७६ ई०) ने कुवलयमालाकथा मे कथाओ का उल्लेख करते हुए सकलकथा, खंडकथा, उल्लावकथा, परिहासकथा, सकीर्णकथा आदि भेदों का नाम गिनाया है तथा पु.न. उपभेदादि की चर्चा की है। सिद्धर्षि की उपमितिभव प्रपंचाकथा,[3] कौतूहल कृत लीलावती कथा,[4] कथासरित्सागर[5], काव्यानुशासन आदि रचनाओं मे भी कथा के विषय मे इसी प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। वसुदेव हिंडी, समराइच्चकहा, लीलावती कथा, इसी प्रकार के कथा

१—दुविहा कहा चरिया य कप्पिया य। तथ्य चरिया दुविहा इत्थीए पुरिसस्स वा, धम्मत्थ कामकज्जेसु दिट्ठं सुयमणु भूयं चरियं ति वुच्चति। जं पुण विवज्जासिय कुसलेहिं उवदेसियपुव्वं समतीए जुज्जमाणं कहिज्जइ तं कप्पियं, पुरिसा इत्थीओ य तिविहा बबुद्धसु उतिमा, मज्झि मा णिक्ट्ठिा य, ते सिहु चरियाणि वि तिविहाणि। ततो सो एवं वोतूण चरिय कप्पियाणि अक्खाणयाणि अब्भुय सिंगार हासरसबहुलाणि वण्णेंति।

वसुदेव हिंडी, दसमो लंभो, पृ० २०८-६।

१ क—धम्मो अत्थो कामो उपइस्सइ जत्थ सुत्त कलेसु। लोगे वेए समए सा उकहा

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(गत पृष्ठ का शेषांश)

मीसिया नामा, २१२।

इत्थिकहा भत्तकहा रायकहा चोर जणवय कहा य। नउ नट्टजल्ल मुट्ठिय कहा उ ऐसा भवे विकहा, २१३।

इत्यादि दशवैकालिक निर्युक्ति, अर्नस्ट लायमन्न-जेड० डी० एम० जी० भाग ४६, पृ० ६५२-५३।

२—समराइच्चकहा, पृ० २-४; याकोबी सस्करण।

३—उप० पृ० ३-६, याकोबी सस्करण, कलकत्ता १६१४।

४—लीला० पद्य ३५ आदि।

५—कथा० १. २. ४७-४८।

६—कथा० १. २. ४७-४८।

ग्रन्थ हैं। अपभ्रंश मे इस तरह की कथाकृतियों में भविष्यदत्त कथा, सुदर्शन चरित, उपमश्रीचरित, जिनदत्तचरिउ आदि कृतियां रखी जा सकती हैं। सब में दिव्य मानुष पात्र आते हैं। लीलावती कथा (प्राकृत) मे देव श्रेणी के पात्र मनुष्यों की मदद करते हैं तथा मनुष्यो कीं भांति ही प्रेम आदि व्यापारों में लीन रहते दीखते हैं। लीलावती कथा विशुद्ध प्रेमकथा है। अपभ्रंश मे भविष्यदत्त कथा को उसके रचयिता ने कथा कहा है। रचना के अधिकांश भाग मे भविष्यदत्त तथा भविष्यानुरूपा की कथा है। दोनों के प्रेम की परीक्षा भी होती है। समुद्र में असह्य कष्ट झेलकर भी अपने पति तथा प्रेमी भविष्यदत्त को वह नहीं भूलती। यक्ष मणिभद्र आकर भविष्यदत्त की सहायता करता है। जैन कवि ने लोक प्रचलित साहसपूर्ण प्रेम कथा को धार्मिक रंग मे रंग दिया है। पद्मश्री चरित मे पद्मश्री एवं समुद्रदत्त की प्रेम कहानी है, जिसको पूर्वजन्म के कर्मों से सम्बन्धित कर धार्मिक रूप प्रदान किया गया है। अन्य अधिकांश अपभ्रंश चरित काव्यो में किसी न किसी रूप मे मुख्य अंश प्रेम कथात्मक ही रहता है, रचना के अंश को सद्परिणाम से युक्त बनाने के लिये मुख्य पात्रो को धार्मिक भावना से ओतप्रोत चित्रित किया गया है तथा इस तरह रचनाओ को धर्म कथा का रूप दे दिया गया है। इन कृतियो का भी प्रधान उद्देश्य कथा कहना मालूम होता है। प्रसंगानुसार काव्यमय वर्णन भले ही मिल जायें, परन्तु पूर्ण काव्यत्व का तो अभाव ही इन कृतियो मे मिलता है।

बाहरी आकार प्रकार, छंदो का गठन, घटनाओ के आधार पर ग्रन्थ का विभिन्न संधियो मे विभाजन इन कृतियो मे एक समान है। सम्पूर्ण ग्रन्थ कड़वकों मे विभक्त मिलते हैं। इससे सहज ही कथा कहने के लिये इस शैली की ख्याति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। हिन्दी के अधिकांश कवियो ने अपनी कथाकृतियो मे इसी शैली का व्यवहार किया है तथा उन तमाम कहने के प्रकारो को भी अपनाया है जिनके संकेत अपभ्रंश ग्रन्थों मे प्राप्त होते हैं। जैनेतर पद्यबद्ध अपभ्रंश कथा ग्रन्थ अभी तक अनुपलब्ध है। लेकिन जैन अपभ्रंश चरितात्मक कृतियो के आधार पर उनके स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है। निःसन्देह हिन्दी के प्रेमाख्यानक दोहा चौपाई वाले काव्य रूप का पूर्ववर्ती रूप अपभ्रंश की यही कृतियां हैं।[१] घत्ता के स्थान पर दोहा का प्रयोग करने वाली अपभ्रंश कृतियाँ जरूर रही होंगी, परन्तु इस समय वे प्राप्त नहीं हैं। केवल दोहे वाला अपभ्रंश रूप भी पूर्णरूपेण इस समय उपलब्ध नहीं है। परन्तु हेमचन्द्र द्वारा उद्धृत पद्यो मे जो शृंगार भावना प्राप्त होती है उसके आधार

---

१. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव डा० रामसिंह तोमर, पृ० २३२।

२. कहीं-कहीं अपभ्रंश ग्रन्थों मे घत्ता के स्थान पर दोहा भी प्रयुक्त हुआ मिलता है।

पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमकथाओं के लिये अपभ्रंश में दोहा छन्द का भी व्यवहार होता था। माधवानल कामकंदला एवं ढोला मारूरा दूहा वाले प्रेम कथा रूप के पूर्ववर्ती रूप की कल्पना हेमचन्द्र द्वारा संग्रहीत शृंगारिक दोहों में की जा सकती है। जगह-जगह पर इन पद्यो मे ऐसे संकेत दिखलाई पड़ते हैं—

ढोला सामला घण चंपा वराणी
या प्रा० व्या० सूत्र ३३०।

ढोल्ला मइं तुहुं वारिया मा कुरु दीहा माणु।
निद्दए गमिही रत्तडी दडवड होइ विहाणु।
—वही, ३३०।

इसी तरह के दूसरे पद्यो मे किसी काल्पनिक (ढोल्ला-दुल्हा-दुर्लभ) की कहानी के संकेतो की कल्पना की जा सकती है।

इन तमाम प्रेमकथाओ (अपभ्रंश एवं हिन्दी) की कथाएं काल्पनिक हैं। यत्र तत्र ऐतिहासिक पात्रो का समावेश किया गया है लेकिन उसमे परम्परा के सिवाय ऐतिहासिकता ढूंढ़ना निरर्थक है। प्रेम परीक्षा के लिये जायसी ने अलाउद्दीन का प्रसंग ला दिया है, उसमे ऐतिहासिक सत्य हो सकता है लेकिन अन्य सभी नाम मात्र कथा कहने के लिये व्यवहृत हुए हैं। इसी तरह अन्य प्रेम कथाओ मे पात्रो तथा स्थानो के नाम मात्र ऐतिहासिक हो सकते हैं। घटनायें लोक-प्रचलित या बिल्कुल कल्पित हैं। ढोला मारू नाम भी ऐतिहासिक है परन्तु कथा का रूप काल्पनिक है। हिन्दी प्रेम-कथाओं के इन विविध रूपो की झाँकी प्राप्त अपभ्रंश साहित्य मे सरलता से मिल जाती है।

अपभ्रंश चरित काव्यो का जैसा बाह्य रूप उपलब्ध है ठीक उसी तरह का बाह्य रूप हिन्दी मे तुलसीदास के रामचरितमानस का कहा जा सकता है। अपभ्रंश साहित्यमें रामचरित पर आधृत स्वयंभू का ग्रन्थ पउमचरिउ उपलब्ध है। पुष्पदन्त के महापुराण मे भी रामायण की कथा है। ऐसे कोई ठोस प्रमाण नही हैं जिनके आधार पर यह माना जा सके कि तुलसीदास को इस रामकथा साहित्य की जानकारी थी या नही। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कडवकबद्ध अपभ्रंश साहित्य की शैली की किसी विकसित साहित्य धारा से उनका परिचय था तथा चरित काव्यो के लिये उस शैली के महत्व को उन्होंने स्वीकार किया तथा रामचरितमानस मे उसे अपनाया। कुछ विद्वानो ने स्वयंभू के पउमचरिउ तथा रामचरितमानस मे कुछ समानताओ का जिक्र किया है परन्तु वे समानतायें कहने मात्र को हैं।[1] स्वयंभू के ग्रन्थ के आरम्भ तथा मानस के आरम्भ में कुछ प्रसंग एक समान हैं। स्वयंभू ने रामकथा की नदी से समानता की है—

---

१. हिन्दी काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन।

राम कहाणइ एह कमागय।
अक्खरपास जलोहमणोहर सुअलंकार सद्दमच्छोहर।
दीह समासपवाह वंकिय सक्कयपाययपुलिणालंकिय।
देसीभाषाउभय तडुज्जल कवि दुक्कर घणसद्दसिलायल।
अहयवहलकल्लोला णिट्ठिय आसासयसमतूहपरिट्ठिय।
एह राम कहसरिसोहंतो··· · ··········· ··········

यह रामकथा नदी क्रमागत है। अक्षर समूह ही मनोहर जल समूह है। अच्छे अलंकार तथा शब्द मत्स्यादि हैं। दीर्घसमासादि वक्र प्रवाह है। संस्कृत प्राकृत रूपी अलंकृत पुलिन हैं। देशी भाषा दोनो उज्ज्वल तट हैं। कवि दुष्कर-सघन-शब्द समूह शिलातल है। अर्थबहुलता कल्लोल है। आश्वासक रूपी तीर्थो मे विभक्त यह रामकथा-सरिता शोभित है।

पुनः कवि ने बड़े ही नम्रतापूर्ण शब्दो मे अपनी असमर्थता जाहिर की है।

बुहयण सयंभु पए विन्नवइ मइं ससिसउ अराणु णत्थि कुकइ।
वायरणु कयावि न जाणियउं न वि वित्ति सुत्तु वक्खाणियउं।
ण उ पच्चाहारहो तत्तिकिय ण उ संधि हे उप्परि बुद्धिथिय।
पउमचरिउ १.३

'बुधजन। स्वयंभू आपसे विनती करता है 'मेरे समान अन्य कोई कुकवि नहीं है। व्याकरण मैं कदापि नही जानता और न वृत्ति सूत्र का ही वर्णन किया, न प्रत्याहार के तत्व का ज्ञान है और न सन्धि के ऊपर बुद्धि स्थिर हुई।'

कवि ने दुर्जनो का स्मरण भी किया है।
छुड्डहोतु सुहासियवणणाइं गामिल्ल भासपरिहरणाइं।
एहुसज्जणलोयहो किउ विणउ जंअवुहुपदरिसिउ अप्पणउं।
जइएम विरुसइ को वि खलु तहो हत्थुत्थल्लिउ लेउछलु।
घत्ता-पिसुणे किं अब्भत्थिएण जसु कोवि न रुच्चइ।
किं छण चंदुमहागणेह कंपंतुवि मुच्चइ।
अवहत्थिवि खलयणु निखसेसु·········वही १. ३ ४।

'ग्रामीण भाषा से युक्त वचन युक्ति के कारण सुभाषित वचन हो जाते हैं। सज्जनो से विनय करता हूँ जो मैं अपने अबोध को प्रदर्शित किया है, यदि इस पर भी कोई खल रुष्ट होता है तो उसके हाथो को छल ही मिलेगा। पिशुन की अभ्यर्थना करने से क्या लाभ जिसको कोई भी अच्छा नही लगता, महाग्रह से ग्रसित चन्द को क्या। वह मुक्त हो ही जाता है। समस्त खलजनो की अभ्यर्थना करके········'

तुलसीदास के रामचरितमानस में भी रामकथा-सरोवर का रूपक[1], उनका विनय प्रदर्शन तथा दुर्जनो का स्मरण ऐसे ही प्रसंग हैं। बहुत सम्भव है कि अपभ्रंश की इस परम्परा से उनका परिचय रहा हो। अपभ्रंश का विद्वत्समाज में आदर नही होता होगा इसीलिए अपभ्रंश कवि अपनी कृति के आरम्भ मे इन निन्दक पण्डित-खलो का स्मरण करता है। यही दशा भाषा के कवियो की भी रही होगी अतएव उसी तरह के उद्‌गार हिन्दी के कवियो ने भी व्यक्त किये हैं। अथवा बाद में परम्परा के रूप में इसका पालन होने लगा होगा। तुलसीदास के मानस और 'पउमचरिउ' मे मिलने वाली ये समानतायें इसी कवि परम्परा द्वारा आई कही जा सकती हैं। इन समानताओं के अलावा तुलसी की रचना मे छदो की रूपरेखा प्राय. अपभ्रंश चरित काव्यो के समान ही है। उसका मूल उत्स अपभ्रंश के इन चरित काव्यो को स्वीकार किया जा सकता है तथा किसी तरह का प्रभाव जैन अपभ्रंश की कृतियो का पडा होगा यह स्वीकार्य नहीं है। पद्धडिया-घत्ता शैली का ही परिवर्तित रूप चौपाई-दोहा शैली को कहा जा सकता है।[2]

हिन्दी मे विशुद्ध साहित्यिक महाकाव्य लिखने का प्रयत्न केशवदास की रामचन्द्रिका मे मिलता है।[3] इस तरह के दृष्टान्त अपभ्रंश मे प्राप्त होते हैं जहाँ कवियो ने अनेक तरह के छन्दो का प्रयोग एक ही रचना मे किया है। नयनन्दि का सुदर्शनचरिउ तथा लाखू का जिनदत्त चरिउ इसके उदाहरणार्थ देखे जा सकते हैं। २१२ कडवको (चौपाइयो) मे समाप्त सुदर्शन चरित मे सत्तर विभिन्न मात्रिक तथा वर्णिक छन्दो का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार जिनदत्तचरिउ मे लगभग ३० विभिन्न छन्दो का प्रयोग हुआ है। निश्चित ही केशवदास के सामने इस प्रकार की अपभ्रंश रचनायें रही होगी। तुलसीदास की कवितावली मे भी सुदर्शनचरिउ वाले रूप का अनुकरण किया गया है।

सूरदास के सूरसागर मे भी कथा का हल्का सा सूत्र प्राप्त होता है। पदो का रूप बौद्ध सिद्धो के 'गानो' मे मिलता है। बौद्ध सिद्धो ने रागबद्ध पदो की रचना की है तथा इस तरह के पद हिन्दी कवियो की कृतियो मे भी उपलब्ध होते हैं। किन्तु पदो के रूप में प्रबन्ध रचना का कोई भी दृष्टान्त अपभ्रंश साहित्य मे नही प्राप्त होता। छन्दो की दृष्टि से पदो के पूर्ववर्ती रूप का ढाँचा प्राप्त अपभ्रंश साहित्य मे मिलता है

---

१. रामचरित मानस १.३७ सरोवर का रूपक, १.४०-४१ सरिता का रूपक, विनय १.६.१२-१४, दुर्जन स्मरण १.४६।

२. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० रामसिंह तोमर, पृ० २३६।

३. केशव कौमुदी दो भाग, सं० लाला भगवानदीन, इलाहाबाद १९३१ ई०।

लेकिन सूरसागर में कथा कहने के लिये जिस ढंग से पदों का प्रयोग मिलता है वह अप-भ्रंश मे अभी तक नहीं मिल सका है। हो सकता है कि पदों का स्फुट विषयों के लिये प्रयोग होता रहा हो परन्तु कृष्ण कथा के लिये उनका प्रयोग सूर आदि भक्तों का मौलिक प्रयोग अथवा किसी दूसरी अज्ञात धारा के प्रभाव स्वरूप हो सकता है।[1]

मुक्तक रूप : पद शैली

पदों का बाह्यरूप गोरखबानी, कबीर, विद्यापति, कृष्ण भक्त कवियो, तुलसी दास, मीरा आदि सभी में लगभग एक समान है। विषय का विवेचन कुछ कवियों में मुख्य है। गोरखबानी, कबीर, कृष्ण भक्त कवियों में से कुछ के पदों मे, तुलसीदास की विनयपत्रिका के अधिकांश पदो में विषय विवेचन की मुख्यता है। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है कि गेय पदो का रूप बौद्ध सिद्धों के पदो मे मिलता है। सिद्धों के इन पदों में गीतितत्व कम प्राप्त होता है, जबकि विषय के विवेचन का प्रयत्न अधिक है। भावधारा की दृष्टि से सिद्धो के पदो एवं गोरखबानी और कबीर के पदों मे बहुत साम्य है।[2] नाद, बिन्दु, रवि, शशि आदि शब्दावली की समानता के अलावा जो खंडन की प्रवृत्ति सिद्धो के दोहाकोष मे मिलती है वही कबीर की वाणियो मे भी मुखरित हुई है। कबीर मे आदि सन्तो का अक्खड़पन उग्रता, फाड़फटकार और रहस्यवादी एवं प्रतीकवादी रचना पर्याप्त मात्रा मे मिलती हैं।[3] चर्यागीतो के कुछ पदो मे गीतात्म-कता की भी झलक मिलती है जहाँ सिद्धो ने परमसुख के अनुभव को व्यक्त किया है। इतना नि.सन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी के पद साहित्य के बाह्य रूप, संगीतात्म-कता आदि के पूर्व रूप का आभास सिद्धों के इन चर्यागीतों मे आसानी से देखने को मिलता है।

स्फुट पद्यों का हिन्दी मे एक अन्य रूप दोहो के रूप मे मिलता है। दोहों का व्यवहार अनेक प्रकार के विषयो के लिये कवियों ने किया है। उपदेश, मत-विवेचन, खंडन-मंडन, शृंगार, नीति आदि विषयो को व्यक्त करने के लिये दोहो का प्रयोग किया गया। सन्तो की साखियो मे दोहो का प्रयोग सिद्धान्त-विवेचन, उपदेश तथा अन्य मतों के खण्डन के लिये हुआ है। तुलसीदास ने दोहे का प्रयोग भक्ति, उपदेश, सुभाषित आदि के लिये किया है।[4] बिहारी ने अत्यन्त सफलतापूर्वक दोहों का प्रयोग नीति,

---

१. प्राकृत और अपभ्रश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० राम सिंह तोमर, पृ० २३८।

२. सन्त कबीर, डा० रामकुमार वर्मा, प्रयाग, १९४७। बीजक, रामनारायण लाल, इलाहाबाद १९२८।

३. अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति—डा० अम्बादत्त, पृ० ४५८।

४. दोहावली—गीताप्रेस संस्करण।

उपदेश, सुभाषित तथा शृंगारिक विषयों के लिये किया है।[1] प्राकृत की गाथासप्तसती तथा वज्जालग्ग में इन्हीं विषयो से सम्बन्धित पद्य हैं। गाथा सप्तसती एवं बिहारी के अनेक पद्यों में पर्याप्त भाव साम्य है।[2] सन्तों की साखियों में जो धारा मिलती है उसका पूर्ववर्ती रूप योगीन्द्र, मुनि रार्मसिह, तथा देवसेन के पद्यो में मिलता है। हेमचंद्र द्वारा उदाहृत अनेक पद्यो से बिहारी के पद्यों की आसानी से समता की जासकती है।

सवैया तथा कवित्त प्राचीन अपभ्रंश रचनाओ मे नहीं प्राप्त होते हैं। अपभ्रंश छन्द ग्रन्थों मे जरूर मिलते हैं। स्फुट पद्यो की इस धारा का पूर्ण रूप प्राप्त अपभ्रंश साहित्य मे नही मिलता है। हो सकता है वह रूप रहा हो तथा अभी तक उस धारा की रचनायें न मिल सकी हो। पीछे इसका उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी साहित्य के प्रमुख काव्य रूपो के बाह्य रूपो के मूल अपभ्रंश साहित्य मे प्राप्त हो जाते हैं। हिन्दी के चरितकाव्यो, रासकाव्यो, प्रेमाख्यानक काव्यो, स्फुट पदो, दोहा आदि सभी के मूल आधार अपभ्रंश मे विद्यमान हैं। अनेक रूपो मे प्रयुक्त भावधारा भी अपभ्रंश साहित्य मे मिलती है। कुछ मे बाह्य रूप को अपनाया गया है परन्तु वर्ण्य विषय दूसरे श्रोतों से ग्रहण किया गया है। काव्य के विविध रूपो की मोटी रूपरेखायें किसी न किसी रूप मे अपभ्रंश मे वर्तमान हैं।[3]

रचना शैली और छंदों पर प्रभाव

रचना शैली

हिन्दी का कौन कवि है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे अपभ्रंश के जैन प्रबन्ध काव्यों से प्रभावित न हुआ हो। चन्द से लेकर हरिश्चन्द्र तक तो उसके ऋणभार से दबे हैं ही, आजकल की नई नई काव्य पद्धतियो के उद्भावक भी विचार कर देखने पर उसकी परिधि के बहुत बाहर न मिलेंगे।[4] डा० भोलाशंकर व्यास ने अपने सुप्रसिद्ध

---

१. बिहारी सतसई संपा० रामवृक्ष बेनीपुरी लहेरिया सराय। सतसई (सं० सप्तशती, प्रा० सत्त सई) अर्थात् सात सौ पद्यो के संग्रह की प्रथा, संभव है, गाथा सप्तसती से ही प्रारम्भ हुई होगी। गाथा सप्तसती की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर प्राकृत से यह रूप संस्कृत मे ग्रहीत हुआ। और उसी से प्रभावित होकर हिन्दी मे यह रूप आया।

२. देखिये—गाथा सप्तसई की भट्ट मथुरा नाथ शास्त्री द्वारा लिखित भूमिका।

३. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० राम सिंह तोमर, पृ० २३६।

४. अपभ्रंश दर्पण, जगन्नाथराय शर्मा।

ग्रन्थ 'भारतीय साहित्य की रूपरेखा' मे इस विषय मे अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है 'अपभ्रंश भाषा और साहित्य का अध्ययन हिन्दी एवं अन्य नव्य भारतीय आर्यभाषाओ के अध्येता के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन भाषाओ को अपभ्रंश का महत्वपूर्ण दाय उपलब्ध हुआ। यद्यपि जैन पौराणिक एवं चरित काव्यों की साक्षात् परम्परा हिन्दी आदि के मध्ययुगीन साहित्य मे नही पाई जाती फिर भी उनमें पाई जाने वाली लोक-साहित्य सम्बन्धी कथानक रूढ़ियो की परम्परा सूफी तथा अन्य हिन्दू कवियो के प्रेमगाथा-काव्यों मे उपलब्ध होती है। इन काव्यो में जिस प्रकार की कडवक' शैली पाई जाती है, वह जायसी तुलसी आदि अनेक हिन्दी-प्रबन्ध कवियो में उपलब्ध होती है। दोहा, चौपाई, रोला, छप्पय आदि अनेक अपभ्रंश छन्द नव्य भारतीय आर्य भाषाओं को अपभ्रश की ही देन हैं। दोहा अपभ्रंश का विशेष छन्द है, जो अपभ्रंग में मूलतः मुक्तक काव्य-परम्परा का छन्द था। आगे चलकर हिन्दी में तो इसका प्रयोग प्रबन्ध काव्य में चौपाई के बाद 'घता' के रूप में होने लगा है। वैसे हिन्दी में यह मुक्तक क्षेत्र में भी समान रूप से प्रयुक्त होता रहा है जो रहीम, बिहारी, मतिराम आदि के मुक्तक दोहो से स्पष्ट है। बौद्ध सिद्धकवियो ने अपभ्रंश मात्रिक छन्दो के अतिरिक्त अपभ्रंश साहित्य को चर्यापदो की परम्परा भी दी थी, जिसके मूल लोकगीत हैं। यह परम्परा इतनी अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई कि इसने एक और जयदेव के 'गीत गोविन्द' और दूसरी और विद्यापति, चण्डीदास, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा आदि मध्ययुगीन भक्त कवियो की साहित्यिक धारा को प्रभावित किया है।[1] निःसन्देह डा० भोलाशंकर व्यास के विचार इस विषय में अबतक व्यक्त किये गये अन्य विद्वानो के विचारो से अधिक प्रौढ़ सशक्त तथा जीवन्त हैं। उन्होने बिल्कुल ही मौलिक ढंग से अपभ्रंश साहित्य एवं हिन्दी के मध्ययुगीन प्रबन्ध काव्यो पर प्रकाश डाला है। डा० नामवर सिंह का मत भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है। उन्होने लिखा है 'इस तरह अपभ्रंश और हिन्दी के कुछ काव्य रूपो के तुलनात्मक अध्ययन से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इस क्षेत्र में अपभ्रंश की देन हिन्दी को सबसे अधिक है।[2]

प्राकृत तथा अपभ्रंश काव्य की रचना पद्धतियो मे भेद है। अपभ्रंश चरित-काव्यो की विभिन्न कृतियो की रचना शैली मे बहुत कुछ समता मिलती है। इसी प्रकार हिन्दी की कुछ काव्यधाराओ की रचना शैली तथा जैन अपभ्रंश के चरित काव्यो की रचना शैली मे थोडी बहुत समानता देखी जाती है। इन चरित काव्यो का आरम्भ जिन वंदना से होता है। इसके पश्चात् सज्जन एवं दुर्जनो का स्मरण करता हुआ कवि अपनी विनम्रता प्रदर्शित करता है। किसी जैन धर्म मे प्रेम रखने वाले विख्यात पात्र के प्रश्न करने पर कथा आरम्भ होती है। कथा का आरम्भ कवि किसी देश के वर्णन से

१—भारतीय साहित्य की रूपरेखा—डा० भोलाशंकर व्यास, पृ० ९०।
२—हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २७५।

करता है तथा पुनः नगर, राजादि के मनोरम वर्णन प्रस्तुत करता है। किसी धार्मिक व्यक्ति का चरित्र प्रस्तुत करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य 'रहता है इसलिए कथा कहता हुआ बीच-बीच में आने वाले स्थलों के रम्य वर्णन भी करता चलता है। पात्रों की संक्षिप्त अथवा विस्तृत कथा के समान भूमिका, वर्णन भी विस्तृत या संक्षिप्त रहते हैं।[1] इसको और अधिक स्पष्ट करने के लिये पुष्पदन्त की दो कृतियों को लिया जा सकता है। उनका महापुराण एक महत्वपूर्ण रचना है। महान् प्रयत्न के अनुरूप ही कवि की भूमिका भी दिव्य एवं विद्वत्तापूर्ण है। ऋषभदेव, सरस्वती की वंदना करके कवि ने अपना परिचय दिया है तथा खल निंदा का बार-बार उल्लेख किया है और सज्जनों के सामने नम्रता प्रकट किया है।[2]

एहु विणउ पयासिउ सज्जणाहं मुहि मसिकुंचउ कउ दुज्जणाहं। १.६

'सज्जनो के समक्ष यह विनय प्रकट की है, दुर्जनो के मुख काले हो।'

इसके बाद कवि ने मगध देश और राजगृह की नैसर्गिक सरलता से संयुक्त काव्यमय सुन्दर विस्तृत वर्णन किये हैं।[3] पुन: श्रेणिक राजा का वर्णन, जिन समागम आदि प्रसंगो के बाद कथा प्रारम्भ होती है। कृति की भूमिका की समाप्ति इक्कीस कडवको मे हुई है। जसहरचरिउ मे भूमिका का विस्तार तीन कडवक है जिसमे मंगलाचरण, देश वर्णन संक्षिप्त है। अपभ्रश काव्यो के आरम्भ की यह शैली हिन्दी के काव्यों मे भी प्राप्त होती है। स्वयंभू विरचित पउमचरिउ के प्रारम्भ मे इसी तरह की भूमिका आई है। तुलसीदास के रामचरितमानस की भूमिका ४३ चौपाइयो मे समाप्त होती है। तथा उसमे पुष्पदन्त एवं स्वयम्भू की रचनाओ के समान ही प्रसग हैं। इसी प्रकार

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० रामसिंह तोमर, पृ० २४०।

२—दुर्जनो के भय सम्बन्धी कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं—

भणु किह करमि कहत्तणु नलहमि कित्तणु जगुजि पिसुणसयसंकुलु। १.७

'कहो क्यो क्या करूँ पिशुन संकुल जगत मे कीर्ति नहीं पा सकूंगा।'

३—कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

जहिं संचरंति दहुगोहणाइं, जब कंगु मुग्ग ण हु पुणु तणाइं
गोवाल बाल जहिं रसु पियंति, थल सररुह सेज्जायलि सुयंति।
मायंद कुसुममंजरि सुएण, हयचचुएण कयमण णु एण।
जहिं समयल सोहइ वाहियालि, वाहय पयहय विल्थर इ धूलि।

'जहाँ बहु गोधन विचरण कर रहे हैं, यव, कंगु, मूग सर्वत्र दिख रही है। गोपाल बाल इक्षुरस पीते हैं, पृथ्वी पर कमल की शय्या बनाकर सोते हैं। कुसुम मंजरी को भ्रमर के साथ देखकर क्रोधित होकर शुक चंचु मारता है। जहाँ समतल राजमार्ग हैं। नाना वाहनों के चलने से धूलि फैली है।'

जायसी ने पद्मावत की भूमिका २४ चौपाइयों में समाप्त की है। जायसी ने कुछ नई बातें अवश्य दी हैं, परन्तु मंगलाचरण, विनय एवं दुर्जनों का उल्लेख अवश्य मिलता है।[१] इन्होंने सिंहलद्वीप का सुन्दर वर्णन भी किया है जिसकी समता इसी तरह के जसहरचरित के आरम्भिक वर्णन से की जा सकती है। चित्रावली में इस भूमिका का विस्तार और भी अधिक है। लेकिन भूमिका के बाद कवि ने नेपाल नरेश की कथा आरम्भ कर दी है। इन्द्रावती में यह भूमिका और अधिक संक्षिप्त है तथा देश आदि के वर्णन नही हैं। जायसी मे देशादि तथा ऋतु आदि के वर्णन मिलते हैं जिनकी शैली अपभ्रंश के चरित काव्यो की शैली से मिलती जुलती है। संदेशरासक के विरह-वर्णन एवं जायसी के विरह वर्णन मे पर्याप्त समता है। कही-कही तो शब्द साम्य भी मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि संदेशरासक को जायसी ने पढ़ा था। संदेशरासक मे पथिक द्वारा जो नगर का वर्णन है उसमे वनस्पतियो के नाम भी दिये हैं।[२] जायसी ने भी सुल्तान के भोजन के समय भोजन तथा मांसो के नामो की सूची दी है।[३] प्रारंभ की वंदना आदि भी संदेशरासक की वंदना से मिलती जुलती है।[४] इसीलिए डा० हरिवंश कोछड़ ने कहा है कि 'अद्यावधि प्राप्त अपभ्रंश सामग्री से ऊपर दिए गए उदाहरणो के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जायसी के पद्मावत की चौपाई दोहा शैली का बीज अपभ्रंश साहित्य मे था और उत्तरकालीन हिन्दी कवियो ने नवीनता की दृष्टि से कड़वको के आरम्भ मे प्रयुक्त दोहे को अन्त मे रखना प्रारम्भ कर दिया।[५] जायसी आदि की कृतियों से ऐसा प्रतीत होता है कि अपभ्रंश कथा साहित्य की शैली से इन कवियों का परिचय जरूर था।'

छंद

अपभ्रंश के छंदो का हिन्दी काव्य पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। अपभ्रंश साहित्य के आख्यान या कथा या चरित प्रधान काव्यो मे कड़वक बद्ध छन्दों का प्रयोग हुआ है। केवल हरिभद्र का नेमिनाहचरित ही इस शैली का अपवाद है। उसमे मात्र एक ही मित्र (द्विभंगी) छंद 'वस्तु' का प्रयोग हुआ है। अनेक अपभ्रंश रचनाओ मे वर्णनो के अनुरूप छन्द भी कवियो ने परिवर्तित किये हैं। उदाहरणार्थ पुष्पदन्त ने

१— दादुर बास न पावई भलहि जो आछे पास।

—पद्मावत, १. २४।

२—संदेशरासक—अब्दुल रहमान, पृ० ५५-६४।

३—जायसी ग्रन्थावली—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २७७-२८२।

४—दे० प्रो० एच० सी० भायाणी का लेख 'अब्दुल रहमान ज़ संदेशरासक एण्ड जायसीज़ पदुमावती . भारतीय विद्या, वाल्यूम १०, १९४८, पृ० ८१-८६।

५—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० ३९६।

सामान्य वर्णन तथा कथा कहने के लिए पज्झटिका या अन्य चतुष्पदी छंदों का प्रयोग किया है। युद्ध, वर्षा आदि के वर्णनो मे भिन्न प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है। कुमारपाल प्रतिबोध के अपभ्रंश प्रसंगों में भी इसी प्रकार छंदो का प्रयोग हुआ है। कुछ रचनाओं में कवियो ने अपनी छद प्रयोग की निपुणता को प्रदर्शित करने के लिये अनेक छंदों के प्रयोग किये है। नयनंदि का सुदर्शनचरित तथा लाखू का जिनदत्तचरित इस प्रकार के उदाहरण हैं।

अपभ्रंश कवियो ने छंद प्रयोग की एक अन्य स्वतंत्रता का उल्लेख किया है वह दो विभिन्न छन्दों को मिलाकर नवीन छन्दों का निर्माण करने की प्रवृत्ति। छप्पय, वस्तु, रड्डा, कुंडलियाँ इत्यादि इसी तरह के मिश्र छंद हैं।

एक दूसरी विशेषता भी अपभ्रंश मे मिलती है। अपभ्रंश कवि चतुष्पदी, षट्पदी छंदो का द्विपदी के समान प्रयोग करते हैं। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी। पज्झटिका अथवा पादाकुलक छंद समचतुष्पदी वर्ग के छद हैं। समान मात्राओ वाले चार चरणो को रखकर एक छंद पूरा होता है। परन्तु अपभ्रंश के कवियो ने इन छंदो का प्रयोग करते समय इसका ध्यान नहीं रखा है। पज्झटिका के या अन्य समचतुष्पदी छंद के दो चरणो को पूरी इकाई मानते हैं तथा ऐसी कई इकाइयां रखकर एक कड़वक पूरा होता है। पुष्पदन्त ने 'महापुराण' के प्रारम्भ मे 'मात्रासमक' चतुष्पदी का प्रयोग किया है जो समचतुष्पदी वर्ग का छंद है। कवि ने २६ चरण रखकर कडवक पूर्ण किया है। छंदशास्त्र के अनुसार २८ चरण अथवा २४ चरण होना चाहिए।

अपभ्रंश कवियों ने संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग भी किया है। लेकिन उसमें भी उन्होने कुछ विशिष्टता रखी है। सभी वर्णवृत्त द्विपदी के समान ही प्रयुक्त हुए हैं तथा सभी मे यमक या अन्त्यानुप्रास का प्रयोग मिलता है। अधिकतर एक कड़वक में एक ही छंद का प्रयोग होता है। परन्तु ऐसे भी अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जहाँ एक कड़वक मे दो छंदो का प्रयोग हुआ है। पुष्पदन्त,[1] कनकामर,[2] धाहिल [1] आदि अनेक कवियों की रचनाओं में इस तरह के प्रयोग प्राप्त होते हैं। अपभ्रंश कवियो के अधिक प्रिय छंद मात्रिक हैं तथा इसका उन्होने अनेक बार जिक्र किया है। स्वयंभू ने पद्धड़िया

१—महापुराण, पुष्पदन्त, संधि २, कड़वक ३ मे ५ मात्रिक रेव का द्विपदी के ५८ चरण हैं एवं पुनः चार द्विपदी के ८ चरण हैं।

२—करकंडुचरिउ, कनकामर, संधि १ कड़वक १७ मे कुछ चरण समानिका महानुभाव छंद के हैं तथा कुछ चरण तूणक के।

१—पउमसिरिचरिउ संधि ३ कड़वक ५ मे पद्धडिका तथा करिकरमकर भुजा द्विपदी छंदों का मिश्रण मिलता है।

आदि बन्धो की तारीफ की है[1] इसी तरह पुष्पदन्त ने मात्रिक छंदों के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया है।[2]

अपभ्रंश कवियो ने जिन छन्दो का प्रयोग किया है उनमे से अनेक छंद गेय हैं तथा मात्रागणो के समान उनकी परिभाषा तालगणो से भी की जा सकती है। दोहा, पज्झटिका, हरिगीतिका आदि छद इसी तरह के मालूम होते हैं। छंद शास्त्रियों ने उनकी शास्त्रीय परिभाषा भी दी है। इसी तरह अपभ्रंश कवि किसी छंद का प्रयोग जब किसी की कीर्ति आदि वर्णन के लिये करता है तो उसका नाम धवल हो जाता है। कीर्ति वर्णन मे कीर्तिधवल, उत्साह वर्णन मे उत्साह धवल। इसी प्रकार जब किसी छंद का प्रयोग मंगल दर्शन के लिये होता है तो उसका नाम मंगल हो जाता है। छंद शास्त्रियो ने इसका उल्लेख किया है।[3] पुष्पदन्त आदि कई कवियो ने प्रकारान्तर से इसका संकेत दिया है। जिनदेव का यश वर्णन करते हुए उन्होने कहा है—

जयविसयसिविगरुल, जय धवल जस धवल

महापुराण २ ३. ३२

इन कवियो ने चरितकाव्यो मे सर्वाधिक प्रयोग समचतुष्पदी वर्ग के छन्दो का किया है तथा उसके साथ समद्विपदी, घत्ता[4] और कुछ अन्य छन्दो के प्रयोग किये हैं। अर्धसम चतुष्पदी (दोहक) एव मित्रवृत्तों (द्विभंगी) का प्रयोग स्फुट रचनाओं में हुआ है किन्तु कुछ कवियो ने इनका प्रयोग भी चरितकाव्यो मे किया है।

अपभ्रंश साहित्य की छन्द विषयक ये सारी विशेषतायें हिन्दी काव्य मे प्राप्त होती हैं। हिन्दी कवियो ने भी विषय के अनुसार छंदो का प्रयोग किया है। कथा अथवा चरित प्रधान काव्यो मे अपभ्रंश चरित काव्यो के तरह ही कडवक शैली का प्रयोग पाया जाता है। हेमचंद्र ने कडवक के अन्त मे घत्ता के प्रयोग का संकेत किया है। उनका कहना है कि चार पद्धडिया छंदो के साथ एक घत्ता जोडकर कडवक पूरा होता है तथा कडवक के समूह को संधि कहा जाता है। पद्धडिका आदि छन्दो के अन्त मे घत्ता का होना ध्रुव है, उससे उसे ध्रुवा, ध्रुवक घत्ता कहा जाता है। संधि के आरम्भ मे भी घत्ता (ध्रुवा) के रहने का हेमचंद्र ने जिक्र किया है।[5] इसी तरह कवि दर्पण मे कडवक मे

१—हरिवंशपुराण २.२। जैसे— छंदडिप दुवइ ध्रुवएहि जडिप,
चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय।

२—महापुराण, १३.६.२२। जैसे—ण मत्ताविसहं मत्ताजुत्तयं णायरई।

३—छंदानुशासन, हेमचद्र, अध्याय ५, सूत्र ३३–४० इसमे उन्होने कहा है कि उत्साहादि वर्णन मे हेला, दोहा आदि का प्रयोग होने से उनका नाम हेला धवल, दोहक धवल आदि हो जाता है।

४—मन्ध्यादो कडवकान्ते च ध्रुवं स्यादिति ध्रुवा ध्रुवक घत्ता वा। छन्दो०, ६, १।

५—षोडशपद्याः कडवकत्वात् तथा प्रायः सानुप्रासा एता इति। कविदर्पण २'१।

१६ पदों के रहने का विवरण प्राप्त होता है तथा वे पद्य सानुप्रास होते थे इसका भी उल्लेख कवि दर्पणकार ने किया है।[1] हेमचंद्र एवं कवि दर्पण के रचयिता दोनों के विचार शास्त्रीय से लगते हैं। उन्होंने कवियों के वास्तविक प्रयोगों को ध्यान में नहीं रखा है। पुष्पदन्त कृत महापुराण के एक संधि के कड़वकों से ज्ञात होता है कि कवि कड़वक में निश्चित पद संख्या के नियम को नहीं मानते थे। महापुराण के एक अंश 'हरिवंश पुराण' की ८१ संधि मे १९ कड़वक हैं। सभी कड़वकों मे समचतुष्पदी छन्दों का प्रयोग पुष्पदन्त ने किया है, पहला कड़वक १३ मात्रिक ज्योत्स्ना समचतुष्पदो मे है, बाकी १८ कड़वक पद्धड़िया छन्द मे है। संधि के अठारह कड़वकों में से ९ मे चतुष्पदी का प्रयोग द्विपदी के समान किया गया है तथा शेष ९ कड़वकों में छन्द का प्रयोग चतुष्पदी के समान हुआ है। मात्र एक कड़वक मे चरणो की संख्या हेमचन्द्र आदि के अनुसार है। परन्तु वह पद्धड़िका नहीं है। दूसरे कवियों ने भी इसी तरह के प्रयोग किये हैं। संधि के आरम्भ में तथा कड़वक के अन्त मे सभी रचनाओ मे घत्ता का प्रयोग हुआ है।[2] इस शैली का व्यवहार हिन्दी साहित्य मे तुलसीदास के मानस एवं प्रेमाख्यानक काव्यो, कुछ वीर काव्य सम्बन्धी रचनाओं और सूर सागर के कथात्मक अंशो मे प्राप्त होता है।

जायसी ने प्रत्येक चौपाई (कड़वक) मे चौदह चरण रखकर अन्त में घत्ता के स्थान पर दोहे का प्रयोग किया है। रचना के अन्त मे या खण्डो के आरम्भ मे दोहे का प्रयोग नही मिलता। चौपाइयों मे प्रत्येक चरण मे १६ मात्रायें हैं जिन्हें दो मात्रिगणो मे विभाजित करना उपयुक्त जान पड़ता है। चित्रावली में भी जायसी के समान ही छन्द क्रम है। इन्द्रावती में हरेक चौपाई में १० चरण प्रयुक्त हुए हैं। इन सभी रचनाओं में अपभ्रंश कवियों के समान चतुष्पदी छन्द का द्विपदी के समान प्रयोग हुआ है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियो ने छन्दशास्त्र का ध्यान न रखकर अपने पूर्ववर्ती कवियों के आधार पर छन्दों का क्रम रखा है। तुलसीदास ने मानस में चतुष्पदी छन्द का प्राय: चतुष्पदी के रूप में ही प्रयोग किया है किन्तु उन्होने उपर्युक्त प्रकार के प्रयोग किये हैं। बालकांड की प्रथम १०० चौपाइयो मे से लगभग १३ चौपाइयाँ ऐसी हैं जिनमें चतुष्पदी छन्द का कवि ने द्विपदी के समान प्रयोग किया है।[3] उन्होंने सुन्दरकांड

१—प्रत्येक चरण मे १३ मात्रा होनी चाहिए, ५ मात्राओं के दो गण तथा अन्त में लघु गुरु। वृत्तजातिसमुच्चय ३'८।

२—संधि के आरम्भ मे ध्रुवक तथा कड़वक के अन्त में ध्रुवक के प्रयोग से ऐसा लगता है कि इस शैली का विकास गेय रूप से हुआ है। आरम्भ का ध्रुवा स्थायी रूप में गाया जाता होगा और फिर परिवर्तन के लिए दूसरे प्रकार के ध्रुव को रखा जाता होगा। वे० वेलंकर का लेख अपभ्रंश मीटर्ज़—भारत कौमुदी।

३—देखिये—बालकांड दो० २, ४, ५, ६, ११, १५, २८, ३५, ३७, ३८, ७८।

के अतिरिक्त सभी काण्डों के प्रारम्भ मे संस्कृत पद्यों के बाद दोहा या सोरठा का प्रयोग घ्रुवक के स्थान पर अवश्य किया है। कवि ने अपभ्रंश रचनाओं के समान यत्र तत्र एक ही चौपाई में दो प्रकार के छन्दों का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार के छन्दों के संबंध में ऐसा आभास होता है कि वर्णन या प्रसंग के अनुरूप जहाँ आलोचना करनी अभीष्ट थी वहीं उन्होंने भिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। तुलसी के मानस के छन्दों की रूपरेखा से ऐसा ज्ञात होता है कि वे अपनी पूर्ववर्ती चरितकाव्य परम्परा से भली-भाँति परिचित थे तथा छन्दशास्त्र का ध्यान रखते हुए भी उन्होंने परम्परा का निर्वाह किया। लालकवि ने छत्रप्रकाश में चौपाई दोहा शैलो का प्रयोग छन्दशास्त्र के अनुसार किया है। दो एक स्थल ऐसे मिलते हैं जहां चौपाई का प्रयोग द्विपदी के समान किया है।[1] अध्यायों के आरम्भ में दोहे का प्रयोग उन्होंने नहीं किया है।[2]

इन ग्रन्थो की छन्दशैली में अपभ्रंश कडवकबद्ध शैली से भेद मात्र इतना है कि इन्होंने घत्ता के स्थान पर दोहे का प्रयोग किया है तथा अपभ्रंश कवियो के पज्जटिका को छोडकर इन कवियों ने पादाकुलक एवं चौपाई का प्रयोग किया है। अपभ्रंश कवियों ने कड़वकों मे पादाकुलक तथा अन्य चतुष्पदी छन्दों का भी प्रयोग किया है। इन चरित काव्य लेखको मे छन्द की विविधता अत्यन्त कम मिलती है। जायसी के श्रेणी के कवियों की रचनाओं में तीसरा छन्द नहीं प्रयुक्त हुआ है। लालकवि ने भी दो ही छन्दों का प्रयोग किया है। तुलसी के मानस मे चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीत, भुजंगप्रयात, तोटक आदि छन्दो के प्रयोग मिलते हैं। अपभ्रंश के अधिकाश चरितकाव्यो मे छन्दो की विभिन्नता ज्यादा नही मिलती। हिन्दी कवियों ने अपभ्रंश चरित काव्यो की छन्दशैली का जैसा अनुगमन किया है वैसा दूसरी शैलियो का नही। गाहा (संस्कृत गाथा) का प्रयोग पृथ्वीराज रासो, सुजानचरित, वचनिका राठौड़ रतनसिंह जी और छन्द राउ जइतसीरउ में मिलता है। ढोला मारूरा दूहा जैसी कृतियो में भी गाथा का प्रयोग मिलता है हालांकि उसके बहुत कम प्रयोग ही हुये हैं। पृथ्वीराजरासो मे गाथा का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है किन्तु अपभ्रंश कवियों ने गाथा छंद का प्रयोग बहुत ही कम किया है। पुष्पदंत, स्वयंभू तथा अन्य जैन अपभ्रंश कवियों ने गाथा का बहिष्कार कर दिया था। संदेशरासक मे भी इसका प्रयोग मिलता है। हिन्दी के इन कवियों ने मात्र छन्दशास्त्र का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए ही गाथा का प्रयोग किया है। अप-

---

१—अध्याय २, छंद २; अध्याय ५, छद ७।

२—कुछ अध्यायो के अन्त में दोहा मिलता है जहाँ मिलना ही चाहिये था। जिन अध्यायों के अंत में दोहा नही मिलता उसके अगले अध्याय के प्रारम्भ में दोहा मिलता है। बहुत संभव है संपादक को कुछ प्रतियों में ऐसा क्रम मिला होगा तथा उन्होंने उसे इस तरह रख दिया है।

भ्रंश कवियों का वह कभी प्रिय छन्द नहीं रहा। गाथा प्राकृत का अत्यन्त प्रिय मात्रिक छन्द था।

दोहा अपभ्रंश का सर्वाधिक प्रिय, प्रचलित एवं प्राचीन छन्द है। इसका प्रयोग जैन अपभ्रंश की स्फुट रचनाओं, परमात्मप्रकाश आदि कथाओं, सिद्धों की अपभ्रंश रचनाओं, कीर्तिलता, सदेशरासक आदि अपभ्रंश की सभी वर्गों की रचनाओं मे मिलता है किन्तु अपभ्रंश प्रबन्धात्मक रचनाओं में दोहे का प्रयोग नही प्राप्त होता। अन्य चरितकाव्यों में भी इसका प्रयोग बहुत कम ही मिलता है।

सोरठा का प्रयोग भी हिन्दी के अनेक कवियो ने किया है। परमात्मप्रकाश आदि अपभ्रंश रचनाओं में इसका प्रयोग मिलता है।

कथानकों पर प्रभाव

विषय प्रधान मध्यकालीन हिन्दी काव्य साहित्य को मुख्यत. दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग मे उस साहित्य को रखा जा सकता है जिसमें पौराणिक कथाओ तथा पौराणिक पात्रो को वर्ण्य विषय बनाया गया है। द्वितीय भाग में उस साहित्य का उल्लेख किया जा सकता है जिसमे लोककथाओ अथवा प्राकृत जनों को काव्य का विषय बनाया गया है। राम एवं कृष्ण काव्य का सम्बन्ध पहले भाग से है तथा वीरकाव्य, रासक रचनाएँ और प्रेमाख्यानक काव्यो का दूसरे से। जैन कवियों ने जैन पुराणो से अपने काव्य विषयो को चुना है तथा लोककथाओ को भी जैन धर्म का रूप देकर ग्रहण किया है। प्राकृत साहित्य मे सेतुबन्ध आदि के समान पौराणिक विषयों से सम्बन्धित ब्राह्मण सम्प्रदाय के अनुयायियो की कृतियाँ प्राप्त होती हैं ठीक उसी प्रकार अपभ्रंश में भी पौराणिक चरित्रों एवं कथाओं मे मौलिक परिवर्तन करके जैनेतर कवियों ने रचनायें की होंगी। इसका अन्दाज अनुपलब्ध अब्धि मथन इत्यादि काव्यों के नामों के उल्लेख के आधार पर लगाया जा सकता है। इसीलिए ब्राह्मण पौराणिक विषयो को आधार बनाकर लिखे गये हिन्दी काव्य के कथानकों पर जैन प्राकृत तथा अपभ्रंश कृतियो में प्रयुक्त विषयो का कोई प्रभाव नही पडा होगा क्योंकि ऐसा सम्भव नहीं जान पड़ता। यद्यपि कि जैन कवियो ने रामायण तथा महाभारत की कथाओ से सम्बन्धित ग्रन्थ लिखे हैं। अतः रामसाहित्य एवं कृष्ण साहित्य पर कथानक की दृष्टि से प्राप्त जैन प्राकृत अपभ्रंश साहित्य का कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता।

अपभ्रन्श साहित्य में लोक कथाओं को पर्याप्त स्थान मिला है तथा अनेक हिन्दी कवियों द्वारा अपनायी गई कथाओं की भांति ही पूर्ववर्ती अपभ्रन्श में भी कथानक उपलब्ध होते हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों पर इस तरह का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर

होता है। लगभग सभी प्रेमकथाओ के मोटिफ् एक ही तरह के हैं तथा इसी तरह की कथानकरूढ़ियाँ अपभ्रंश की रचनाओ मे भी मिलती हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी रचनाओं में उपलब्ध कुछ कथाएँ पूर्ववर्ती कवियो की कृतियों में भी प्राप्त होती हैं। जायसी के पद्मावत में पद्मिनी को सिंहलका कहा गया है। जायसी के पूर्ववर्ती अनेक कवियों ने सिंहल द्वीप की सुन्दरियों को आधार बनाकर कई प्रेमकथाओ की सृष्टि की है। हर्ष (सातवी शती ई०) ने रत्नावली नाटिका में रत्नावली को सिंहल के राजा की पुत्री बतलाया है।[1] कौतूहल ने अपने ग्रन्थ की नायिका लीलावती को सिंहल के राजा की अनुपम सुन्दरी राजकुमारी के रूप में चित्रित किया है और उसका विवाह प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन से कराया है। लीलावती को उपलब्ध करने के लिये सातवाहन को सिंहल की यात्रा नहीं करनी पडती। अनेक राजाओं के चित्रो मे सातवाहन के चित्र को देखकर वह उसपर मोहित हो जाती है। वह स्वप्न में सातवाहन का दर्शन करती है तथा प्रेमव्यथा का अनुभव करने लगती है। ज्ञात होने पर उसके पिता उसे ससम्मान सातवाहन के पास भेज देते हैं। सातवाहन के मन्त्री भी चाहते थे कि सातवाहन का विवाह सिंहल के राजा शिलामेघ की पुत्री से होना चाहिए जिससे बिना युद्ध के सिंहलराज उसका आधिपत्य स्वीकार कर लें। प्रेम कथाओ में कवियो ने प्रेमी प्रेमिका के प्रेम की परीक्षा का प्रसंग रखना आवश्यक समझा है क्योकि इससे नायक की वीरता को प्रदर्शित करने का अवसर भी मिल जाता है। लीलावती कथा में भी सातवाहन तथा लीलावती एक दूसरे के प्रति दृढ हैं और सातवाहन पाताल मे जाकर सिद्धि प्राप्त करता है एवं भीषणानल को मारकर लीलावती से विवाह करता है।

भविष्यदत्त कथा में अनेक व्यापारी समुद्र स्थित द्वीप में व्यापार के लिये जाते हैं तथा रूपवान भविष्यदत्त उस द्वीप की सुन्दरी कुमारी भविष्यानुरूपा से विवाह करके बहुत धन लेकर लौटता है। रास्ते मे समुद्र मे तूफान भी आता है तथा बन्धुदत्त भी बाधा उत्पन्न करता है। पुन. दोनों प्रेमी प्रेमिका मिल जाते हैं तथा गजपुर लौट आते हैं। दूर द्वीप की इस सुन्दरी भविष्यानुरूपा को न देने पर पोदनपुर का राजा गजपुर के राजा पर चढ़ाई करता है परन्तु वह भविष्यदत्त के पौरुष के समक्ष पराजित हो जाता है। कवि ने इस आक्रमण को भविष्यदत्त की वीरता तथा भविष्यानुरूपा की सुन्दरता को प्रदर्शित करने के लिये रखा होगा।

कनकामर के करकंडुचरिउ में करकंडु सिंहल जाता है तथा रतिवेगा से विवाह करता है और जब वे लौट रहे थे तब एक मत्स्य आकर दोनो को अलग कर देता है एवं एक विद्याधरी आकर उन्हे बचाती है। पद्मावती देवी रतिवेगा की सहायता करती है। अन्त मे दोनो का मिलन होता है।[2]

१—रत्नावली नाटिका, हर्ष, अंक ४।
२—करकंडुचरिउ, संधि ७ कड़वक ५-१६।

साधू के जिनदत्तचरित (१२७५ वि०) में जिनदत्त अनेक व्यक्तियों के साथ मणियाँ लेने के लिये सिंहल द्वीप जाता है। वीरतापूर्वक भयानक साँप को मारकर राजकुमारी श्रीमती (लक्ष्मीमती) से विवाह करता है और दूसरे द्वीपों में जाकर और कुमारियों से परिणय करता है। जिनदत्त को उसका दुष्ट मामा समुद्र में फेंक देता है तथा स्वयं लक्ष्मीमती के पास जाकर प्रणय प्रस्ताव रखता है। वह दृढ़ रहती है एवं अन्त मे विमलमती की सहायता से पति से मिलती है।

विक्रम की पन्द्रहवी शती की जिनहर्षगणि की प्राकृत कृति रत्नशेखर नरपति कथा मे रत्नपुरी के राजा रत्नशेखर का विवाह सिंहल द्वीप की राजकुमारी रत्नवती से होता है। रत्नशेखर सिंहल जाता है तथा रत्नवती का दर्शन मन्दिर मे करता है जहाँ वह कामदेव की पूजा के लिए आई थी। राजा को किसी तरह के युद्ध का सामना नहीं करना पड़ता। वह बहुत धन लेकर लौटता है। प्रेम की परीक्षा के लिये कवि ने रत्नवती का अपहरण चित्रण किया है लेकिन अन्त में वह सब इन्द्रजाल सिद्ध होता है।

विक्रम की पन्द्रहवीं शती की एक अन्य रचना नरसेन कृत श्रीपालचरित है। इसमे श्रीपाल एक द्वीप मे जाकर वहाँ की सुन्दर कुमारी मदनमजूषा से विवाह करता है। धवल सेठ कपट करके श्रीपाल को समुद्र मे ढकेल देता है तथा रत्नमंजूषा को प्रसन्न करना चाहता है, लेकिन जलदेवी प्रकट होकर उसकी सहायता करती हैं तथा अन्त मे वह अपने पति से मिलती है। इसके बाद श्रीपाल एक दूसरे द्वीप मे जाता है और आठ कुमारियो को समस्या पूर्ति मे पराजित कर विवाह करता है।

सोलहवीं शती विक्रम में वर्तमान कवि माणिक्कराज ने अपनी कृति में सिंहल की पद्मिनी का जिक्र किया है।

णं पउमिणि सिंहल दीव आय।[1]

नायिका के नखशिख वर्णन में सिंहल की पद्मिनी को रूपवती स्त्रियो का प्रतीक माना है तथा अपनी दूसरी कृति अमरसेन चरित में सिंहल को धन का प्रतीक माना है।

सिंघल कुवलय हुवि सेयमाणु[2]

यानी 'वह सेठ सिंहल कुवलय के लिये भानुवत् था'

इस प्रकार सिंहल द्वीप कवियों का सर्वाधिक प्रिय विषय प्रतीत होता है। अनेक कवियो ने उसका उल्लेख किया है। अपार सपत्ति प्राप्त करने के लिये, सुंदरी स्त्रियों के लिये एवं नायको के लिये एक उपयुक्त पराक्रम स्थल के लिये कवियो का ध्यान बराबर सिंहल द्वीप की ओर गया है।[3] सिंहल द्वीप की कथा कई शतियो तक

१—हस्तलिखित प्रति, माणिक्क राज, १.१६।

२—हस्तलिखित प्रति, अमरसेन चरित, माणिक्कराज, १ ४।

३—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—
डा० रामसिंह तोमर, पृ० २७४।

लोक का अत्यन्त प्रिय विषय रही है। हर्ष से लेकर सोलहवी शती तक संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश कवियों ने अनेक प्रकार से सिंहल को वर्ण्य विषय बनाकर अपनी रचनाओं को सजाया संवारा है। ऐसे लोकप्रिय सरस प्रसंग को जायसी ने भी अपने ग्रन्थ पद्मावत में स्थान दिया। भले ही रत्नसेन ऐतिहासिक पात्र रहा हो, किन्तु सिंहल की अनिन्द्य सुन्दरी पद्मिनी को तो उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों से ही लिया है, इसमे दो मत नही हो सकते। जायसी के पूर्ववर्ती और समकालीन सभी कथा लेखकों ने प्रायः इस प्रकार की कथा को ग्रहण किया है। भविसयत्तकहा, करकंडुचरिउ, नरपतिकथा, श्रीपालचरित के अभिप्राय या कथानकरूढ़ि और जायसी तथा अन्य कथाओ के अभिप्रायो मे इतना ज्यादा साम्य है कि यत्र तत्र तो शब्दावली भी एक सी ही लगती है।

जायसी विरचित पद्मावत के 'जोगी खंड' मे योगी के वर्णन मे उल्लेख मिलता है कि उसके सिर पर जटा एवं अंग मे भस्म थी तथा मेखला, सिंघी चक्र धंधारी, योगपट्ट, रुद्राक्ष आदि धारण किये था।[1] इसी तरह पाशुपत और कौलाचार्यों के वर्णन लीलावती कथा,[2] कपूरमंजरी,[3] जसहरचरिउ[4] मे प्राप्त होते हैं। सभी रचनाओ मे योगी का वर्णन प्रायः मिलता जुलता है। नरसेन कृत श्रीपाल चरित मे समस्यापूर्ति का प्रसंग आया है। माधवानल कामकंदला और ढोला मारूरा दूहा में भी इस तरह के प्रसंगो को देखा जा सकता है। जायसी कृत पद्मावत मे श्रीपाल चरित्र की समस्या का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। जैसे —

जहं साहमु तं सिद्धि॥ श्रीपाल चरित

सत्य जहां साहस सिधि पावा। राजासुआ संवाद, खंड[1]

पद्मावत में पद्मावती तथा रत्नसेन की भेंट वसंत ऋतु मे विश्वनाथ के मंदिर मे होती है। रत्नशेखर नरपति कथा मे राजा को उसकी प्रेयसी का दर्शन कामदेव के मंडप मे हुआ है। बहुत संभव है वसंत ऋतु में ही कामदेव की पूजा होती रही हो। इस तरह इस रूढि का निर्वाह भी अधिकांश प्रेमाख्यानक काव्यो मे देखा जाता है। समुद्र मे राजा 'बोहित' का नष्ट होना तथा लक्ष्मी द्वारा पद्मावती की सहायता भी उपर्युक्त अनेक रचनाओ मे प्रयुक्त इस तरह के प्रसंगो से मिलती जुलती है। जायसी के समान ही प्रसंग दूसरे प्रेमाख्यानो मे भी प्राप्त होते हैं। इन सभी प्रेमकथाओं के अभिप्राय पूर्ववर्ती अपभ्रंश साहित्य मे प्रयुक्त अभिप्रायों के सदृश ही हैं। संभवतः अपभ्रंश कवियो ने किसी लोक-परम्परा से इन कथाओ को ग्रहण किया होगा तथा उसके परवर्ती हिन्दी कवियो ने भी लोकपरम्परा और पूर्ववर्ती साहित्य से इन कथाओं को प्राप्त किया होगा।

१—जायसी ग्रन्थावली--जोगी खंड १।

२—लीलावती कथा, पद्य २०४–५।

३—कपूंर मंजरी प्रथम जवनिकान्तर–भैरवानन्द का वर्णन।

४—जसहरचरिउ, कौलाचार्य का वर्णन १६।

प्रेमकथाओं को छोडकर अन्य काव्य धाराओं पर अपभ्रंश काव्य के कथानकों का प्रभाव नही पड़ा जान पड़ता। अपभ्रंश के कुछ अंशो को देखकर भक्तिकाल मे प्राप्त कृष्णकाव्य की याद ताजी हो जाती है। उदाहरणार्थ सूर की कुछ पंक्तियो को लिया जा सकता है, जिनको देखने से लगता है कि सूरदास कुछ हद तक अपभ्रंश कवियों से प्रभावित अवश्य थे। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण मे एक दोहा इस प्रकार मिलता है—

"बाह विछोडवि जाहि तुहुं हउं तेवंइ को दोसु।
हिअय-दिट्ठ जइ नीस रहि जाण उं मुंज सरोसु॥

इस दोहे की शृंगार भावना को सूर ने भक्ति मे परिवर्तित कर इस तरह का रूप दे दिया—

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानि को मोहि।
हिरदै ते जब जाहुगे सबल जानुंगो तोहि॥

सिद्धो ने बार-बार विषयो की ओर जाते मन की उपमा जहाज पर बैठे पक्षी से दी है, परन्तु सूर ने उसी उपमा का प्रयोग गोपियो के बार-बार कृष्ण की ओर जाते मन को लक्ष्य कर किया है।

सरह का दोहा इस प्रकार है—

विसअ विसुद्धे णउ रमइ, केवल सुण्ण चरेइ।
उड्डी वोहिअ काउ जिमु, पलुटिअ तह वि पड़ेइ।

सूर ने इसे इस प्रकार अपनाया है—

अब मन भया सिंघ के खग ज्यों फिरि-फिरि सरत जहाजन।
(भ्रमरगीत ४६)
थकित सिन्धु नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेरि वहै गुन गावत।
(वही ६०)
भटकि फिर्‌यौ वोहित के खग ज्यो पुनि फिरि हरि पै आयौ।
(वही, ११९)

कृष्ण और राधा सम्बन्धी कुछेक पद्य हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में भी आये हैं। यथा—

हरिनच्चाविउ पंगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ।
एम्वहि राह पओहरहं जं भावइ तं होउ॥[1]

१—प्राकृत व्याकरण—हेमचन्द्र ४, ४२०।

इसके अतिरिक्त पुष्पदन्त ने कृष्ण की बालक्रीडा का जो वर्णन किया है उसमे कृष्ण तथा गोपियो का एक सरस वर्णन दर्शनीय है—

धूली धूसरेण बरमुक्कसरेण तिणा मुरारिणा।
कीलारसवसेण गौवालयगोवीहियय हारिणा।
रंगंतेण रमंतरमेंते, मंथउ धरिउ भमंतु अणंते।
मंदीरउ तोडिवि आवट्टिउं, अद्धविरोलिउं पलोट्टिउं।
का वि गौवि गौविंदहु लग्गी, एण महारी मंथणि भग्गी।
एयहि मोल्लु देहु आलिंगणु णं तो मा मेल्लहु में प्रंगणु।[1]

स्वयंभू ने किसी प्राचीन कवि का एक दृष्टान्त दिया है जिसमें कृष्ण की राधा के प्रति आसक्ति का वर्णन है।

सव्व गोविउ जइवि जाए इ, हरि सुट्ठवि आअरेण,
देह दिट्ठि जहि कहिंवि राहो।
को सक्कइ संवरेवि, उढ्ढणअण णोंहे पलोट्टउ।
—स्वयंभू छंद, ५, ३ पृ० ७४।

स्वयंभू, पुष्पदन्त, तथा हेमचन्द्र के उपर्युक्त उदाहरणो के आधार पर यह माना जा सकता है कि कृष्ण की मर्यादित कथा के आलावा गोपी ग्वालो के प्रिय कृष्ण की कथा का भी एक रूप लोक तथा अपभ्रंश की एक धारा मे प्रचलित था एवं उस धारा का हिन्दी के कृष्ण साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा होगा। जिस मुक्त वातावरण का दर्शन सूर की कविता मे होता है उसकी एक झांकी स्वयंभू, पुष्पदन्त तथा हेमचन्द्र के पद्यों में प्राप्त होती है।

वास्तव मे दो चार उदाहरणो को लेकर भले ही अपभ्रंश के राम और कृष्ण काव्यो का प्रभाव हिन्दी के राम तथा कृष्ण काव्यो पर दिखला दिया जाय, किन्तु अपभ्रंश के राम एवं कृष्ण काव्य का कोई स्पष्ट प्रभाव हिन्दी पर नही दिखाई देता। इस सन्दर्भ मे डा० नामवर सिंह का कथन अधिक उपयुक्त जान पडता है—'अपभ्रंश के राम कृष्ण काव्यो और हिन्दी के राम-कृष्ण काव्यो की भाव धारा मे कोई समानता नही, कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही है, यदि कोई संभव सम्बन्ध हो सकता है तो वह अत्यन्त परोक्ष और पौर्वापर्य का हो सकता है।"[2]

अंत मे सारांश रूप मे कहा जा सकता है कि हिन्दी प्रेमाख्यानको के कथानक अत्यन्त लोकप्रचलित कथानक हैं तथा प्राकृत अपभ्रंश काव्य मे उनके प्रयोग बहुत पहले से हो

१—महापुराण, ८५, ६। पुष्पदन्त।
२—हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २६५।

रहे थे। हिन्दी कवियों की वह मौलिक उद्‌भावना नहीं है। लगभग एक ही तरह के अभिप्राय का प्रयोग सभी प्रेम कथाओ मे हुआ है। हिन्दी कवियों के कथा कहने के ढंग पर भी अपभ्रंश काव्यो का प्रभाव यत्र तत्र दिखाई देता है। कथाओं मे जिस तरह की परिस्थितियों का चित्रण हुआ है उसका आरम्भ अपभ्रंश कवियो ने बहुत पहले ही कर दिया था। हिन्दी कृष्ण साहित्य के स्वच्छन्द वातावरण के लिये भी कवियो को प्रेरणा किसी अपभ्रंश की धारा से मिली होगी जिसके स्पष्ट संकेत प्राप्त अपभ्रंश साहित्य मे मिलते हैं। हिन्दी रामायण से सम्बन्धित कथानक पर संभवतः प्राकृत अपभ्रंश साहित्य का कोई प्रभाव नही पडा। कथानको की दृष्टि से अपभ्रंश का ऐहिकतामूलक साहित्य पर अधिक प्रभाव पड़ा है। धार्मिकता प्रधान हिन्दी ब्राह्मण साहित्य की दृष्टि संस्कृत साहित्य की ओर रही है किन्तु कृष्ण कथा के सम्बन्ध मे ऐसा नही है। पौराणिक वातावरण के साथ उसमे जो स्वतंत्र वातावरण प्राप्त होता है वह लोक मे प्रचलित अथवा साहित्य में प्रयुक्त उसमें किसी श्रोत से आया है तथा उसपर अपभ्रंश का प्रभाव दिखाई देता है। उच्छ्‌वसित प्रेम प्रसंग की परम्परा का विकास गाथा सप्तसती मे संग्रहीत परम्परा से हुआ जान पड़ता है।[१]

करकंडचरिउ और रामचरितमानस

मुनि कमकामर का अपभ्रंश चरित-काव्य 'करकंडुचरिउ' पढडिया शैली मे लिखा गया है। करकंडु जैनो के दोनो मुख्य सम्प्रदायो मे मान्य हैं। वे बौद्ध धर्म के चार प्रत्येक बुद्धों मे से एक हैं। करकंडु के चरित्र को आधार बनाकर इस कृति मे पंचकल्याण विधि का महत्व प्रतिपादित किया गया है। सम्पूर्ण कृति १० संधियो मे पूर्ण हुई है।

करकंडु चंपा के राजा का पुत्र था। उसके हाथो मे कंडु होने के कारण उसका नाम करकंडु रखा गया था। उसका जन्म विषय परिस्थितियो मे होता है तथा वह दन्तिपुर का राजा बन जाता है। उसके सौन्दर्य पर रमणिया मोहित होने लगती थी। वह सौराष्ट्र की राजकुमारी के चित्र को देखकर उसके रूप पर मुग्ध होता है। दोनों का परिणय हो जाता है। समयानुसार करकंडु अपने पिता का राज्य प्राप्त करता है। वह दक्षिण के नरेशो पर प्रमुत्व स्थापित करता है तथा तेरापुर मे जिन लयनो को बनवाता है। उसकी पत्नी मदनावली को पूर्व जन्म के वैर के कारण विद्याधर हर लेते हैं। वह सिंहल जाता है एवं वहां की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह करता है। नववधू

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० रामसिंह तोमर, पृ० २७८।

के साथ समुद्र मार्ग से लौटते समय एक दुष्ट विशाल मत्स्य करकंडु और उनकी पत्नी को अलग कर देता है। एक विद्याधरी उन्हें बचाती है। उधर पद्मावती देवी इसी तरह रतिवेगा को अरिदमन की प्रेम-कथा सुनाकर पति से मिलन का आश्वासन देती है। कुछ सयम के बाद वे एक दूसरे से पुनः मिल जाते हैं तथा मार्ग में अपहृत मदनावली भी मिल जाती है। अंतिम दो संधियो मे धार्मिक प्रसंग है। मुनि शीलगुप्त राजा को उसके पूर्वजन्मो की कथा सुनाते हैं और धर्मोपदेश देते हैं। राजा अपने पुत्र को राज्य देकर घोर तप करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है।

चरित नायक की कथा के अतिरिक्त कथा के अन्तर्गत नौ अवान्तर कथाओ का वर्णन है। प्रथम चार द्वितीय संधि मे आई हैं। क्रमशः मन्त्र शक्ति का प्रभाव, अज्ञान से आपत्ति, नीच संगति का बुरा परिणाम तथा सत्संगति का शुभ परिणाम दिखाया गया है। पाचवी कथा, एक विद्याधर ने मदनावली के विरह से व्याकुल करकंडु को यह समझाने के लिये सुनाई कि वियोग के बाद भी पति पत्नी का मिलन होता है। छठी कथा पाचवी कथा के अन्तर्गत एक अन्य कथा है। सातवी कथा (७.१-४) शुभ शकुन का फल बताने के लिये कही गई हे। आठवी (८.१-१६) कथा पद्मावती ने समुद्र मे विद्याधरी द्वारा करकंडु के हरण किये जाने पर शोकाकुला रतिवेगा को सुनाई। नौवी कथा मुनिराज ने करकंडु की माता पद्मावती को यह बताने के लिये सुनाई कि भवान्तर मे स्त्रीलिंग का परिवर्तन भी हो सकता है।

इनमे से कुछ कथायें तत्कालीन समाज मे प्रचलित रही होगी अथवा कवि कल्पित भी हो सकती हैं। अनेक कथाएं संस्कृत साहित्य मे प्राप्त होती हैं। आठवी कथा को पढकर बाणकृत कादम्बरी के वैशम्पायन शुक का स्मरण हो जाता है। ये कथाएं मूल कथा के विकास मे अधिक सहायक नही सिद्ध होती। किसी भी घटना को समझाने के लिये एक स्वतंत्र कथा का वर्णन, पंचतंत्र के ढंग पर, या अन्य आख्यायिकाकारो की शैली पर, इस कृति मे प्राप्त होता है। कवि ने इन कथाओं के आधार पर कथावस्तु को रोचक बनाने का प्रयास किया है। वस्तु मे रसोत्कर्ष, पात्रो की चरित्रगत विशेषता तथा काव्य मे प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन के अभाव को, कवि ने विभिन्न कथाओ के प्रयोग द्वारा पूर्ण करने का प्रयत्न किया है[1]।

करकंडुचरित की मुख्य कथा कवि ने बड़े ही उतार चढ़ाव के साथ कही है। कई बार करकंडु का सबकुछ नष्ट होता हुआ दिखलाई पडता है, परन्तु अलौकिक व्यक्ति आकर उसकी सहायता करते हैं। प्रेम के प्रसंग स्वाभाविक हैं, यथा करकंडु के पिता

१—अपभ्रंश साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १८३।

राजा वाडीवाहन का पद्मावती को देखकर मुग्ध होना (संधि १), मालिन कुसुमदत्ता की पद्मावती के प्रति ईर्ष्या, (१.१६), करकंडु पर सुन्दरियों का क्षुब्ध होना (३.२), सौराष्ट्र कुमारी के चित्र को देखकर करकंडु के प्रेम का प्रारम्भ एवं विकास (३.४-७) और करकंडु तथा सिंहल की कुमारी का विवाह (७.७)।

कृति मे रति, उत्साह तथा शम के प्रसंगों के सरस वर्णन प्राप्त होते हैं।[1] काव्य का नायक पौराणिक पात्र है परन्तु तेरापुर के लयनो के निर्माण से उसका सम्बन्ध दिखाकर इतिहास तथा पुराण का अद्भुत मेल कवि ने कराया है। करकंडचरिउ एक धार्मिक काव्य है तथा अन्य ग्रन्थों के समान अनेक अलौकिक एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओ से युक्त है। ग्रन्थ मे काव्य प्राचुर्य की अपेक्षा घटना प्राचुर्य अधिक है। पौराणिक, काल्पनिक तथा अलौकिक घटनाओ के कारण कथानक मे सम्बन्ध निर्वाह अच्छी प्रकार नहीं हो सका है। कृति मे कवि का ध्यान यथार्थ की ओर कम और आदर्श की ओर अधिक है।

पात्र

कथा मे प्रधान पात्र करकंडु है जो कथा का नायक भी है। इसके अतिरिक्त करकंडु की माता पद्मावती, मुनि शीलगुप्त, मदनावली, रतिवेगा इत्यादि दूसरे पात्र भी हैं। परन्तु सर्वाधिक विकास करकंडु के चरित्र का ही दिखलाई पडता है। मुनिशीलगुप्त तथा पद्मावती के चरित्र को भी कुछ अंशो मे विकसित करने मे कवि को सफलता मिली है। करकंडु धीरोदात्त गुण विशिष्ट बहुपत्नीक नायक है। काव्य मे उसकी धीरता तो प्रकट अवश्य हुई है किन्तु उदात्तता संदिग्ध ही है। नायक मे वीरता, स्वाभिमान, उत्साह, मातृभक्ति आदि गुणो का विकास अच्छी प्रकार हुआ है। मुनि शीलगुप्त के चरित्र मे एक जैन महात्मा के अन्दर पाये जाने वाले सभी गुण मिलते हैं। पद्मावती मे पुत्र प्रेम, वात्सल्य तथा नारीत्व से छुटकारा पाने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

कृति मे मुख्य छन्द पज्झटिका तथा घत्ता हैं। सम्पूर्ण कृति के २०१ कडवकों मे से २३ कडवको मे भिन्न छन्दो का प्रयोग मिलता है। समानिका (१० कडवक), दीपक (५ कडवक) सोमराजी (२ कडवक), स्रग्विणी (१ कडवक), चित्रपदा (१ कड़वक), प्रमाणिका (१ कड़वक), एवं अन्य दो कडवक।[2] अलंकारो का प्रयोग चम-

---

१—जैसे-वियुक्ता रतिवेगा का प्रलाप ७.११, युद्धवर्णन, ८.१८, और शम भाव की व्यंजना ६.४।

२—विशेष विवरण के लिये देखिए—करकंडुचरिउ की भूमिका, पृ० ३५।

त्कार प्रदर्शन के लिये इस ग्रन्थ मे नही हुआ है। सरल इतिवृत्तात्मक शैली करकंडु-चरित की विशेषता है।[1]

आत्मपरिचय देते हुए कनकामर ने बतलाया है कि वे ब्राह्मणो के चन्द्रऋषि गोत्र मे पैदा हुए थे। तथा पीछे दिगंबर जैन सम्प्रदाय मे दीक्षित होने पर उनका नाम कनकामर हुआ।[2] बुध मंगलदेव इनके गुरु थे। आसाइय नगरी में ग्रन्थ की रचना की थी। अपने भक्त श्रावक, जो विजवाल, भूपाल तथा कर्ण नरेशों के प्रिय व्यक्ति थे, के आग्रह एवं अनुराग के कारण इस कृति की रचना की[3]। कवि ने एक स्थल पर सिद्धसेन, समंतभद्र, अकलंक देव, जयदेव, स्वयंभू तथा पुष्पदन्त का स्मरण किया है।

सामाजिक जीवन

राजाओ का जीवन विलासमय था। उनका अधिकांश समय अनेक रानियो-उपपत्नियो के साथ अन्तःपुर या क्रीडोद्यान मे व्यतीत होता था। राजा बहुपत्नीक होते थे। करकंडु की मदनावलि, रतिवेगा, कुसुमावलि, रत्नावलि, अनंगलेखा, चन्द्रलेखा नामक रानियो का वर्णन कवि ने किया है। राजकुमारो को राजनीति, व्याकरण, तर्कशास्त्र, नाटक, काव्य, कामशास्त्र, गणित आदि शास्त्रो के अलावा नव रसो, मन्त्र तंत्र, वशीकरण इत्यादि की शिक्षा भी दी जाती थी (२. ६)।

स्त्री के विषय मे समाज की धारणा अच्छी नही थी। उसे केवल भोगविलास का साधन समझा जाता था। मदनावलि के वियोग मे विह्वल करकंडु को एक विद्याधर कहता है—

> किं महिलहे कारणें खवहि देहु जणें महिल होइ दुहणिवहगेहु।
> जा कीरइ णारी णरयवासु कह किज्जइ णारीसहुँ णिवासु।
> परिफुरिए चित्ते जा जरु करेइ दुह कारणु सा को अणुसरेइ।
> भव वल्ली वड्ढइ जाहें संगि रामा लायइ दुह मणुय अंगि।
> बलवंता कीरइ बलविहीण सा अबल सेवहिं जेणिहीण।
>
> ५-१६-२-६

इसके अतिरिक्त अन्यत्र भी नारी को चंचल एवं निकृष्ट कहा गया है।[4]

१—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव—डा० रामसिंह तोमर, पृ० १२६।

२—करकंडुचरिउ की भूमिका।

३—करकंडुचरिउ की भूमिका।

४—करकंडुचरिउ, ६. ६. ६।

लोग स्वप्न तथा शकुन में विश्वास करते थे। पद्मावती ने स्वप्न में हाथी के दर्शन किये जिसका फल उसके पति ने पुत्रोत्पति बताया (१.८)। लोगो की आस्था मंत्रों-तंत्रों में भी थी। मंत्र शक्ति के प्रभाव को अवान्तर कथा २.१०.१२ मे देखा जा सकता है। मंत्र के प्रभाव से राक्षस को वश मे करने का वर्णन २.१२.३-४ भी मिलता है। शाप में भी लोग विश्वास करते थे। एक तपस्वी के शाप से मनुष्य के तोता होने का उल्लेख (६ १२ मिलता है। अलौकिक तथा दिव्य घटनाओं में भी लोग विश्वास करते थे। इस तरह की अनेक घटनाओं का जिक्र ग्रन्थ मे है।

समाज मे सदाचार की भी कमी थी। सत्संगति सम्बन्धी एक कथा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि एक सज्जन व्यापारी को राजा ने मंत्री बना दिया था किन्तु एक दिन राजकुमार के सब आभूषण हर कर एक वेश्या के घर मे चला गया (२.१७.२) करकंड के पूर्व जन्म का परिचय देता हुआ कवि ने बतलाया है कि पूर्व जन्म मे उसकी माता नागदत्ता का चरित्र अच्छा नही था। वह अपने दत्तक पुत्र के साथ प्रेम मे फंस गई थी (१० ६ ८-१०)।

तुलसी का मानस चरित काव्यो की परम्परा मे ही लिखा गया है तथा इस पर चरित काव्यो का प्रभाव भी पड़ा है, इस पर पीछे विचार किया जा चुका है। यहाँ पर पुन उसका उल्लेख करना केवल पिष्टपेषण मात्र होगा। अत. यहाँ करकंडुचरिउ को लेकर ही विचार करना अधिक उपयुक्त जान पडता है। करकंडुचरिउ मे मुख्य कथा के अतिरिक्त नौ अन्य अवान्तर कथाएं भी आई हैं जिनका संकेत किया जा चुका है। मानस की सम्पूर्ण कथा को तीन भागो यथाउपक्रम, मूलभाग तथा उपसंहार मे विभाजित कर पीछे विचार किया गया है। करकंडुचरिउ की भाँति मानस मे भी कुछ प्रासंगिक कथाएं आई हैं जिनका उल्लेख यहाँ आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं-

(१) हेतु कथाएं—जैसे-जय-विजय की कथा, हरिण्यकशिपु की कथा, कश्यप अदिति के वरदान की कथा, प्रतापभानु के शाप की कथा तथा आर्त गऊ की पुकार की कथा।

(२) प्रास्ताविक कथाएं—जैसे-भरद्वाज की शंका तथा याज्ञवल्क्य द्वारा समाधान की कथा, पार्वती का संदेह और शिव द्वारा प्रबोध की कथा एवं गरुण के भ्रम और काक भुशुण्डि द्वारा उसके निवारण की कथा।

(३) अंतर्कथाएं—जैसे- नहुष, गालव, हरिश्चन्द्र, ययाति आदि की कथाएं।

(४) आत्मकथा—सम्पाती की आत्मकथा।

(५) चरित—शिवचरित, रावण-चरित तथा काकभुशुंडि चरित।

हेतु कथाओं के अन्तर्गत चार का विस्तृत वर्णन हुआ है इसलिये इन्हीं के सम्बन्ध निर्वाह को देखना आवश्यक है। मनुशतरूपा ने भगवान को पुत्र रूप में पाने तथा वात्सल्य रस की अनुभूति करने का जो वरदान प्राप्त किया था उसका आद्यन्त निर्वाह मानस में हुआ है। नारद-शाप का भी इसी तरह निर्वाह हुआ है। प्रतापभानु की कथा में जिन पात्रों की जो-जो विशेषतायें रही हैं वही-वही विशेषतायें रावण कुल मे उत्पन्न पात्रो की भी हैं। पृथ्वी रूपी गऊ की पुकार का भी आद्यंत निर्वाह हुआ है। पाप तथा पापी के नाश और भक्तों की रक्षा में ही भगवान राम का सम्पूर्ण समय व्यतीत हुआ है। प्रास्ताविक कथा के रूप मे प्रस्तुत भरद्वाज और गरुड के आख्यानका भी मानस मे उचित निर्वाह हुआ है। प्रास्ताविक के रूप मे पार्वती का तो समूचा जीवन-चरित ही मानस मे अंकित है। अन्य कथाओ का मानस मे केवल उल्लेख मात्र हुआ है। अतः इन्हें प्रासंगिक कथा के घेरे से निकला जा सकता है। सम्पाती की आत्मकथा का मानस की मूलकथा से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित नही हो सका है। कवि यदि चाहता तो इसे छोड भी सकता था। मानस मे वर्णित चरितो मे शिवचरित रामकथा की भूमिका के रूप मे आया है तथा काक भुशुण्डि चरित निष्कर्ष कथन के रूप मे। काक भुशुण्डि के चरित द्वारा जिस भक्ति पथ का उल्लेख किया गया है वह तो मानस का प्रतिपाद्य विषय ही है तथा सर्वत्र उसकी आवृत्ति हुई है। मानस की प्रस्तावना मे वर्णित रावण-चरित का परिचय अरण्यकाड से ही मिलने लगता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मानसकार ने प्रासंगिक कथाओ के निरर्थक चक्कर से अपने को बचा लिया है। इन कथाओं द्वारा मूलकथा मे कही अवरोध नही उपस्थित होता। केवल ग्रन्थ के प्रारंभ तथा अन्त मे ही आनेवाली इन प्रासंगिक कथाओं का मूलकथा के साथ उचित निर्वाह हुआ है।

करकंडुचरिउ की प्रत्येक सन्धि के अन्त में रचयिता का नाम मिलता है। कवि आरम्भ मे अपने गुरु पंडित मगलदेव के चरणो का स्मरण करता है। ग्रन्थ मे पूर्ववर्ती कवियों यथा सिद्धसेन, समंतभद्र, अकलंक-देव,जयदेव, स्वयंभू और पुष्पदन्त आदि का उल्लेख मिलता है। मानस के आरम्भ मे मंगलाचरण, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निंदा, आत्म विनय आदि का समावेश हुआ है। प्रारंभ मे कवि ने सरस्वती, गणेश, पार्वती, शंकर-सीता, राम, आदि कवि वाल्मीकि तथा हनुमान की बंदना की है। इसके अनंतर कथा, प्रारम्भ होती है। इस प्रकार करकंडुचरिउ का मानस पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

रामचरितमानस की चौपाई-दोहा पद्धति का बीज अपभ्रंश के चरिउ ग्रन्थो की कड़वक शैली मे निहित है इसका संकेत किया जा चुका है। रस को दृष्टि से करकंडु-

रिउ तथा मानस दोनों ही ग्रन्थों में शान्तरस की प्रधानता है। अलंकारों के प्रयोग में भी दोनों कवियों में समानता पाई जाती है। निरर्थक चमत्कार एवं पांडित्य-प्रदर्शन के लिये अलंकारों का अनावश्यक प्रयोग किसी ने नहीं किया है।

जहां तक दोनों काव्यों के नायको का प्रश्न है, उनमें स्वभाव के कारण कुछ भिन्नता अवश्य दिखलाई देती है। करकंडु स्वभाव से रोमांटिक होने के कारण अधिक स्वच्छन्द प्रकृति का परिचय देता है। वह जहा जहा जाता है वहाँ की कुमारियो पर मुग्ध होकर उनसे विवाह करता है। इसके ठीक विपरीत मानस के नायक राम आचरण करते हैं। वे स्वभाव से पूर्णतया मर्यादावादी और क्लैसिक हैं। परन्तु तरुण हृदय का तरुणी के समक्ष द्रवित होकर बेचैनी का अनुभव करना स्वाभाविक ही है। इसीलिए तो राम ने लक्ष्मण से कहा

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु क्षोभा॥

किन्तु इससे कदापि यह जाहिर नही होता कि राम स्वभाव के चंचल, स्वच्छन्द या रोमांटिक थे। क्योकि उन्होने इसकी सफाई भी दी है।

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥

यह है उनका मर्यादावाद। राम की फिसलन भावी पत्नी सीता के ही प्रति थी, किसी अन्य के नही। वह फिसलन प्रेम के उस एक निष्ठता की प्रतीक है जिसका संकेत निम्नलिखित पंक्तियो मे मिलता है-

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाही। जानु प्रीति रस एतनेहिं माही॥

मुनि कनकामर ने जिस समाज का चित्रण करकंडुचरिउ मे किया है उससे लगता है कि समाज मे बहुपत्नीक प्रथा कायम थी। करकंडु इसका दृष्टान्त है। राजा दशरथ के भी तीन रानियाँ थी। कनकामर ने नारियो की निन्दा की है तथा उनको दुख और नरक का साधन बताया है।[1] ठीक उसी प्रकार गोस्वामी जी ने भी नारियो की घोर निन्दा की है तथा उन्हे सम्पूर्ण कपट, पाप और अवगुणों की खानि कहा है।[2]

करकंडुचरिउ जैन धर्म की महत्ता के लिये लिखा गया है। परन्तु अन्य धर्मों के तत्वो का खंडन या उनके प्रति असम्मान सूचक शब्द काव्य मे नही प्राप्त होते। यह कवि की धार्मिक उदारता की विशेषता है। मानस का उद्देश्य भो राम का परब्रह्मत्व

१- करकंडुचरिउ- ५.१६.२-६।

२- बिधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
मानस, अयोध्याकाण्ड।

प्रदर्शित करना एवं रामभक्ति का प्रचार करना है। किन्तु गोसाईं जी ने कनकामर की तरह धार्मिक उदारता तथा शालीनता का निर्वाह नही किया है।[1]

करकंडुचरिउ और चंदायन

करकंडुचरिउ रोमांटिक चरित काव्य है। सम्पूर्ण ग्रन्थ १० संधियों मे पूर्ण हुआ है। करकंडु को बौद्ध साहित्य मे प्रत्येक बुद्ध माना गया है। प्रत्येक बुद्ध उन्हें कहते हैं जो स्वयं केवल ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु बिना धर्मोपदेश किये ही शरीरांत कर, मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। अत स्पष्ट है कि कथा का चरितनायक पौराणिक पात्र है। काव्य मे मानव जगत् एवं प्राकृतिक जगत् दोनो का वर्णन है। अन्य अपभ्रंश काव्यो की भाति यह काव्य भी वीर शृंगार रस युक्त है जिसका पर्यवसान शान्त रस में होता है।

ग्रन्थ के आरम्भ मे कवि ने जिनेन्द्रदेव के चरणो का स्मरण किया है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियो का उल्लेख भी किया है। ग्रन्थ मे नौ अवान्तर कथाओ का उल्लेख भी मिलता है। इस पर पीछे विचार किया गया है। कवि ने यह ग्रन्थ जैन धर्म की दृष्टि से लिखा है परन्तु जैन धर्म के गंभीर तत्वो का निरूपण कवि का उद्देश्य नही था। जैन धर्म के सदाचारमय जीवन का विश्लेषण ही कवि का अभीष्ट था। उपवास, व्रत, देशाटन, रात्रि भोजन निषेध आदि का उल्लेख कवि ने किया है।

चंदायन मुल्लादाऊद का सूफी प्रेमाख्यान काव्य है। ग्रन्थ का आरम्भ अपभ्रंश चरित काव्यो की ही तरह हुआ है। प्रारम्भ मे कवि ने ईश्वर, पैगम्बर, चार-यार, गुरु, शाहेवक्त आदि की प्रशंसा की है। नगर वर्णन के बाद कथा आगे बढती है।

यह काव्य नायक प्रधान न होकर नायिका प्रधान है। कथा का आरम्भ नायिका के जन्म से होता है तथा उसके जीवन की घटनाओं को लेकर ही कथा आगे बढ़ती है। उसके सम्पूर्ण पात्र नायिका चाद को केन्द्र बनाकर सामने आते हैं। लोरक, जिसे इस

१—कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरिपद विमुख, जानहिं झूठ न साच॥ बालकांड ११४
अग्य अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी।
लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहुँ संत सभा नहिं देखी॥
कहहिं ते बेद असम्मत बानी। जिन्ह के सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना॥
जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥

काव्य का नायक कहा जा सकता है, कहीं भी प्रधान पात्र की भाँति नहीं प्रतीत होता। [illegible] वह पाठक के सामने सहदेव रूपचन्द युद्ध के समय पहली बार सहदेव के सहायक वीर के रूप मे आता है। युद्ध के पश्चात् यदि चाद उसपर मुग्ध न होती, तो उसका कोई महत्व न होता। लोरक चांद द्वारा आकृष्ट किये जाने के बाद ही, उसकी ओर आकर्षित होता है। चाद ही लोरक को साथ लेकर भाग चलने को प्रेरित करती है। वह चाद की प्रेरणा से ही गोबर छोड़कर हरदी की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग मे बावन के उपस्थित होने पर चांद ही उसे बचाने का उपाय बताती है। लोरक से ज्यादा निखरा हुआ रूप तो मैना का है। उसे उपनायिका या सहनायिका कहा जा सकता है।

चंदायन मे सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि इसके नायक, नायिका तथा उपनायिका तीनो ही विवाहित हैं। नायिका चाद का विवाह बावन से हुआ है, जिसका स्थान पूरे काव्य मे नही के बराबर है। उपनायिका मैना माजरि नायक लोरक की प्रथम परिणीता पत्नी है। भारतीय प्रेमाख्यानो मे प्राय नायक-नायिका के रूप मे अविवाहित युवक युवतियो का उल्लेख ही अधिक मिलता है। उनके प्रेम की परिणति विवाह मे होती है। कुछ प्रेम कथाएं ऐसी जरूर है जिनमे नायक विवाहित होते हुए भी किसी सुन्दरी के प्रति आकर्षित होता है तथा उसे प्राप्त करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ पुरुरवा उर्वशी तथा दुष्यन्त-शकुन्तला को लिया जा सकता है। किन्तु भारतीय साहित्य मे ऐसी कहानी का मिलना कठिन है जिसमे कोई नायिका विवाहित होकर किसी पुरुष के प्रति आकृष्ट हुई हो तथा उसे प्राप्त करने को चेष्टा की हो। यह अवश्य है कि चन्द्रकुवरि की बात का कुमार विवाहिता सेठानी के साथ एक वर्ष तक स्मरण करता है। उसे ऐसा इसलिये करना पडा क्योकि उसका पति बारह वर्ष से विदेश गया था और वह काम पीडा से व्याकुल थी।[1] फारसी प्रेमाख्यानो की नायिकाएं यथा लैला-मजनू, शीरी-फरहाद अवश्य विवाहित हैं, परन्तु उनमे कोई नायिका स्वत: किसी नायक की ओर आकर्षित नही होती। नायक ही उसे अपनी और आकृष्ट करने की चेष्टा करता है। इस काव्य मे एक विशिष्टता यह भी है कि अन्य प्रेमाख्यानो की भाति नायिका-नायक के मिलन के उपरान्त इसका अन्त नही होता। बल्कि उपनायिका मैना की विरह पीडा से दुखित होकर, नायिका की बातो की परवा न कर लोरक घर लौटता है।

इस बात का संकेत अन्यत्र किया जा चुका है कि अपभ्रंश के चरित काव्यो का मध्यकालीन हिन्दी के प्रबन्ध काव्यो पर व्यापक प्रभाव पडा है। भाव, भाषा, रस,

---

१—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० २१६-१७।

छन्द, अलंकार आदि सभी दृष्टियों से ये प्रबन्ध काव्य अपभ्रंश चरितकाव्यों के बहुत ऋणी हैं। चंदायन भी इसका अपवाद नही है। इसपर भी चरित काव्यों का व्यापक प्रभाव है। इसमे कथा का प्रारम्भ ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार करकंडुचरिउ या अन्य अपभ्रंश चरितकाव्यो मे। जैन कवियों ने जिन तथा तीर्थंकरों की वन्दना के बाद ही कथा का आरम्भ किया है। मुल्लादाऊद ने भी इसका अनुकरण किया है। करकंडुचरिउ का नायक करकडु बहुपत्नीक है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। चदायन मे मुल्लादाऊद ने भी इसका निर्वाह किया है। चंदायन के नायक लोरक के पास भी दो पत्निया हैं। करकंडु इतना वीर था कि उसने बडे-बडे राजाओ पर विजय प्राप्त की। चंदायन का लोरक भी अपनी वीरता के लिये विख्यात है। करकंडुचरिउ पर लोक परम्परा का पर्याप्त प्रभाव पडा है, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। चंदायन ने भी लोक तत्व की कमी नही है। क्योकि चन्दायन की कथा, लोक जीवन मे प्रचलित कथा का ही साहित्यिक रूप है।[1] लोरक, चाद और मैना की कहानी आज भी पूर्वी उत्तर प्रदेश के गावो में बडे ही प्रेम और उत्सुकता से सुनी तथा गाई जाती है। इसे गावो मे 'लौरिकी' नाम से जाना जाता है। इसका जो रूप गावो मे प्राप्त होता है उसे डा० परमेश्वरी लाल गुप्त ने चदायन के अन्त मे दिया है।[2] करकंडुचरिउ की तरह चदायन भी कथानक—रूढ़ियो की दृष्टि से समृद्ध काव्य है। इस प्रकार करकंडुचरिउ का बहुत कुछ प्रभाव चंदायन पर दिखाई पडता है।

करकंडुचरिउ और मृगावती

अपभ्रंश चरित काव्यो मे करकंडुचरिउ का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे करकंडु महाराज की कथा दस संधियो में वर्णित है। ग्रन्थारंभ में कवि ने अपने गुरु पंडित मंगलदेव के चरणों का स्मरण किया है। ग्रन्थ मे पूर्ववर्ती कवियों का संकेत भी मिलता है।[1] काव्य मे मुख्य कथा के अतिरिक्त नौ अवान्तर कथायें आई हैं। ये कथायें मुख्य कथा के विकास में अधिक सहायक नही हैं। इस काव्य के लक्ष्य हैं–श्रुतपंचमी का फल, पंचकल्याणक विधि की प्रतिष्ठा। कवि आरम्भ मे ही कहता है कि मैं करकंडु के उस चरित का वर्णन करता हूँ जो कल्याणक विधि रत्न से कलित है। यहाँ कल्याणक विधि का अर्थ पंचकल्याणविधान से है। नायक करकंडु, अन्त में यह विधान करता भी है। उसने लयण भी बनवाई।[3] भाषा और काव्यशिल्प के आधार पर यह रचना ११

१—चंदायन—डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृ० ५७।
२—वही, पृ० ३५२।
३—अपभ्रंश भाषा और साहित्य—डा० देवेन्द्रकुमार जैन, पृ० ७६।

वीं के अन्त तथा १२ वीं के प्रारम्भ के मध्य लिखी गयी प्रतीत होती है। कनकामर की केवल एक मात्र यही रचना है। इसका उद्देश्य है 'दुख से रहित सुख-भरी चरितकथा-वस्तु की रचना करना' (क०च० १) रचना में रति, उत्साह तथा शम के प्रसंगों के सरस वर्णन प्राप्त होते हैं। मुख्य छंद पज्झटिका एवं घत्ता हैं। इसके अतिरिक्त समानिका दोपक, सोमराजी, स्त्रग्विणी, चित्रपदा, प्रमाणिका आदि छंदो का प्रयोग भी हुआ है। कथा का नायक बहुपत्नी धारी है।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो मे मृगावतो का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ का नायक चन्द्रगिरि के राजा गणपति देव का पुत्र राजकुमार है, और नायिका कंचनपुर के राजा रूप मुरारि की सुन्दरी कन्या मृगावती हे। इन्ही दोनो के प्रेम की कथा इसमे वर्णित है। ग्रन्थ का आरम्भ करकंडुचरिउ या अन्य अपभ्रंश चरित काव्यो की तरह ही हुआ है। प्रारम्भ मे कवि ने ईश्वर, पैगम्बर, चार यार, गुरु, शाहेवक्त आदि की प्रशंसा की है। इसके पश्चात् नायक के जन्म पर ज्योतिषियो का आना, भविष्य बताना, नायक का नायिका के वियोग मे योगी वेश धारण करना, मार्ग मे कठिनाइयों का आना आदि का वर्णन किया गया है। करकंडुचरिउ की तरह ही ग्रन्थ मे मुख्य कथा के अतिरिक्त कुछ अवान्तर कथाओं का उल्लेख भी मिलता है। इससे ऐसा लगता है कि तत्कालीन साहित्य एवं समाज मे उन कथाओ का पर्याप्त प्रचार था। वे इस प्रकार हैं—'राम, रावण-सीता, सोलह सौ गोपी, अंगद, भीम-कीचक, दुःशासन, भरथरी और पिंगला, अर्जुन-राहु, द्रौपदी, सहदेव, रावण-लंका, गोरख, दंगवै-भीम, पद्मिनि-सिंह, हनुमान, सेतुबंध, जलमदेव, सुवा-राजा, भोज-विक्रम, बलि-बामन, माधव-कामा, पांडौ-मेंहवरा, दमयन्ती-हंस, शक्तिबान, संजीवनी आदि।'[1] उपर्युक्त कथाओ में से अधिकांश कथाएं रामायण और महाभारत जैसे धार्मिक तथा पौराणिक ग्रन्थों से सम्बन्धित पात्रों अथवा घटनाओ की हैं, जिनका सम्बन्ध येन केन प्रकारेण हिन्दू प्रेमाख्यानकों से है। ऐसी कुछ ही कथाएं अवशिष्ट रह जाती हैं जिनका जोगी-सम्प्रदाय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। गोरख, गोपीचन्द एवं भरथरी की प्रेमकथाएं जन-जीवन के मुख्य अंग बन चुकी है। माधवानल कामंदकला और पद्मावती की प्रेमकथाएं भी संस्कृत ग्रन्थों के द्वारा पर्याप्त प्रचलित थी।

मृगावती की कहानी भारतीय कहानियो की परम्परा मे ही आती है। इस पर पहले विचार किया जा चुका है कि प्राकृत तथा अपभ्रंश मे कहानियों का स्वरूप क्या था। मृगावती भी उसी परम्परा में है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मृगावती की कहा-

---

१—मृगावती, संपादक डा० शिवगोपाल मिश्र, पृ० २८ एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० ३१।

नियों मे दो कथानक-रूढियो को इस देश के लिए नया बताया है। उनके अनुसार पुरुष का ऐकातिक प्रेम एवं प्रिया को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना तथा प्रिया का धोखा देकर उड जाना और दूसरे देश मे जाकर राज्य शासन करना ये दोनो कथानक रूढिया इस देश के लिए नई हैं।[१]

किन्तु प्राकृत की 'लीलावईकहा' और अन्य अपभ्रंश काव्यो के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि ये कथानक-रूढियाँ इस देश के लिए सर्वथा नई नही हैं। मुनि कनकामर (सन् १०६५ ई०) के 'करकंडुचरिउ' मे करकंडु के स्त्री वियोग तथा उसकी विह्वलता का उल्लेख है। उसी व्याकुलता मे वह नाना विपत्तियों को झेलता हुआ सिहल द्वीप पहुँचता है। इसी कहानी मे करकंडु के एक विद्याधर की पुत्री द्वारा हरण किये जाने का भी वर्णन आया है जिससे पुनः उसका विवाह होता है। इसी तरह से ईसवी सन् की पन्द्रहवी शताब्दी की रचना 'रयणसेहरी कहा' मे नायक राजा रत्नशेखर सिंहल द्वीप की राजकुमारी रत्नवती के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर व्याकुल हो जाता है और उसकी प्राप्ति के लिए सिंहल की यात्रा करता है। इस तरह के और भी कई प्रसग आये हैं जिनमे नायक नायिका की प्राप्ति के लिए कष्ट उठाता है तथा रास्ते मे और भी कन्याओ से विवाह करता है। मृगावती के राज्य करने का प्रसंग मत्स्येन्द्रनाथ सम्बन्धित त्रियादेश की रानी की याद दिलाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रेमाख्यानक काव्यो की रचना करते समय कुतुबन तथा अन्य सूफी कवियो के सामने अपभ्रंश के कथा और चरित-काव्यो का आदर्श रहा है। मसनवियो की पद्धति उनके लिए आदर्श नहीं रही है।[२]

अधिकाश पूर्ववर्ती अपभ्रंश कवियो की तरह कुतुबन ने भी बारहमासे का वर्णन किया है। कवि ने दोहा सोरठा चौपाई अरिल्ल आदि छन्दो के द्वारा इस कथा को पढने में सुहावना बताया हे, जिसे सुनने के बाद कुछ अच्छा नही लगता।

गाहा दोहा अरेल अरल। सोरठा चौपाई के सरल॥
आस्तर आखिर वहुतै आयें। और देसो चुनि चुनि कछु लाये॥
पढत सुहावन दीजै कानू। इह के सुनत न भावै आनू॥[३]

करकंडुचरिउ की तरह मृगावती का नायक भी बहु पत्नीक है। दोनो ग्रन्थो के उद्देश्य मे कुछ भिन्नता अवश्य दिखलाई देती है। करकंडुचरिउ का उद्देश्य है श्रुत-

१—हि० सा० पृ० २६५।
२—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका रामपूजन तिवारी पृ० १७३।
३—सू० का० सं० पृ० ९७।

पंचमी का फल। पंचकल्याणक विधि की प्रतिष्ठा। जबकि मृगावती का उद्देश्य केवल 'रसबात' या प्रेम की कथा' कहना है।[1] फिर भी करकंडुचरिउ तथा मृगावती मे बहुत कुछ समानता है।

करकंडुचरिउ और पद्मावती

करकंडुचरिउ मुनि कनकामर द्वारा १० संधि मे तथा २०१ कडवको मे राजा करकंडु का यश वर्णन करने के लिये लिखा गया है। कवि ने प्रारम्भ मे अपने गुरु का और प्रत्येक संधि के अन्त मे अपना नाम दिया है। पुस्तक समाप्ति पर कवि ने अपने आश्रयदाता का उल्लेख करते हुए लिखा हे कि ये सज्जन बडे योग्य एवं व्यवहारकुशल थे। प्रधान चरित की कथा के अलावा ग्रन्थ मे प्रसंगानुकूल नौ अवान्तर कथाएं भी हैं। कृति मे रति, उत्साह एवं शम के प्रसंगो की बहुलता है। कृति मे प्रधान छन्द पज्झटिका तथा घता हैं। यह ग्रन्थ जैन धर्म की महत्ता के लिये लिखा गया है।

जायसी का पद्मावत अपभ्रंश के चरितकाव्यो की परम्परा मे ही लिखा गया है। जायसी ने 'पद्मावत' मे सर्वप्रथम 'करतार' का स्मरण किया है। अपभ्रंश के कथा-काव्य मे इस परम्परा का पालन किया गया हे। जैन कवियो ने जिन एवं तीर्थकरो की वन्दना के पश्चात् ही कथा का आरम्भ किया है। 'जिणदत्तचरिउ' मे कवि ने सबसे पहले जिन की वन्दना की है। इसके अनन्तर सरस्वती की। 'बाहुबलि चरित' मे जिनकी वंदना के बाद चौबीस तीर्थकरो और सरस्वती की वंदना है। परमात्मा के गुणगान के बाद जायसी ने चार खलीफो और तत्कालीन दिल्ली के बादशाह शेरशाह की प्रशंसा की है। शाहेवक्त की प्रशंसा के पश्चात् जायसी ने अपने दो गुरुओ एवं गुरू-परम्परा का जिक्र किया है। इसके बाद जायसी ने अपनी जीवन-सम्बन्धी बातो, अपने जन्म स्थान, कथा का रचनाकाल आदि का उल्लेख किया है। जायसी ने अपने पूर्ववर्ती प्रेमाख्यानो का उल्लेख भी किया हे। अपभ्रंश के प्रबन्ध-काव्यो मे ये सभी बातें पूर्णरूपेण मिलती हैं। हमने इस बात का पहले ही जिक्र किया ह कि अधिकाश अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यो मे इस परम्परा का निर्वाह किया गया है। इस सन्दर्भ में लाखू अथवा लक्खण का 'जिनदत्त-चरिउ' धनपाल के 'बाहुबल-चरित' और जिन हर्षगणि की रचना 'रयणसेहरीकहा' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। 'जिनदत्तचरिउ' मे कवि ने जिन वंदना, सरस्वती वंदना एवं अपने आश्रयदाता का उल्लेख कर पूर्ववर्ती कवियो का स्मरण किया है और विनय प्रदर्शित की है। 'बाहुवलचरित' में कवि ने जिन वंदना के पश्चात् चौबीस तीर्थकरो का जिक्र

१—मैं रस बात कही रस तोसों जौ रस कीजै बात
सो रस रहे दुहूँ जग जौ रस सो रंगरात।'

किया है । अपना परिचय देते हुए कवि ने कहा है कि बासद्धर की प्रेरणा से उसने कृति की रचना की है । कवि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों कवियों और कुछ की रचनाओं का भी उल्लेख किया है । इसके अतिरिक्त धवल कवि के 'हरिवंश पुराण' मे कृति के प्रारंभ में बहुत से कवियो तथा उनके काव्यो का संकेत मिलता है । जायसी के पद्मावत के कथानक का 'रयणसेहरीकहा' के कथानक से बहुत कुछ साम्य है । अतः यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि अपभ्रंश के प्रबन्धकाव्यो के माध्यम से आती हुई कथा कहने की परम्परा हिन्दी के सूफी कवियो के समक्ष विद्यमान थी जिसका उन्होने भरपूर उपयोग किया ।[1]

जायसी ने शाहेवक्त की प्रशंसा भी की है । हमने देखा है कि अपभ्रंश के कवियों ने अपने आश्रयदाता या कथा लिखने की प्रेरणा देने वाले का उल्लेख किया है । कुतूहल कवि की 'लीलावईकहा' में भी कवि ने उल्लेख किया है कि 'सावित्री' नामक अपनी प्रियतमा के अनुरोध से उसने कहानी कही है ।[2] मुनि कनकामर के करकंडुचरिउ मे इस परम्परा का पूर्णरूपेण पालन किया गया है । कवि ने अपने गुरु आदि का स्मरण करते हुए कहा है कि किसी भक्त श्रावक के अनुरोध पर उसने ग्रन्थ की रचना की ।

जायसी ने पद्मावत मे सिंहल द्वीप तथा उसके हाट-बाजार का जो वर्णन किया है वह भी अपभ्रंश काव्य परम्परानुसार ही है । अद्दहमाण के संदेशरासक मे पथिक अपने नगर साम्बपुर का जिस तरह से वर्णन करता है उसी परम्परा का पालन जायसी ने पद्मावत मे सिंहल द्वीप के वर्णन मे किया है । इस तरह का वर्णन करकंडुचरिउ में भी मिलता है । इसी प्रकार से विद्यापति ने भी 'कीर्तिलता' मे 'जौनापुर' नगर, उसके हाट-बाजार, वेश्याओ आदि का वर्णन किया है । निश्चित ही जायसी ने अपने पूर्ववर्ती उपरिलिखित अपभ्रंश कवियो का अनुकरण किया है ।

करकंडुचरिउ की भाँति ही पद्मावत में अलौकिक तथा अतिमानवीय शक्तियो एवं साहसिक कार्यों की योजना अधिक हुई है । रतनसेन का सिंहल द्वीप की यात्रा के लिये प्रस्थान तथा मार्ग मे आते समय समुद्र मे नौका का डूब जाना तथा पुनः समुद्र की पुत्री लक्ष्मी द्वारा उसका उद्धार आदि पर निश्चित ही करकंडुचरिउ का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । करकंडुचरिउ की तरह ही पद्मावत में भी प्रेम, वीरता और वैराग्य तीनों का सुन्दर समन्वय हुआ है ।

१—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० १८६ ।
२—लो० क०, पृ० ७-११ ।

पद्मावत के छन्दविधान मे भी चरितकाव्यों की कडवक बद्ध पद्धति को अपनाया गया है। करकंडुचरिउ का नायक करकंडु बहुपत्नीक है। पद्मावत का रत्नसेन भी इसी परम्परा का निर्वाह किया है। पुरुषों के बहु-विवाह की प्रथा से उत्पन्न प्रेम-मार्ग की व्यावहारिक जटिलता को जिस दार्शनिक ढंग से कवि ने सुलझाया है वह उल्लेखनीय है। नागमती तथा पद्मावती को झगडते सुनकर नायक रत्नसेन दोनों को समझाता है।

एक बार जेइ पिय मन बूझा। सो दुसरे सों काहे क जूझा॥
ऐस ज्ञान मन जान न कोई। कबहूँ राति, कबहुं दिन होई॥
धूप छांह दूनौ एक रंगा। दूनौ मिले रहहिं एक संगा॥
जूझब छांड़हु, बूझहु दोऊ। सेव करहु सेवाफल होऊ॥

कवि के अनुसार जिस प्रकार करोडो मनुष्यो का उपास्य एक ईश्वर होता है उसी प्रकार कई स्त्रियो का उपास्य एक पुरुष हो सकता है। पुरुष की यह विशेषता उसकी सबलता और उच्च स्थिति की भावना के कारण है जो बहुत प्राचीन काल से बद्धमूल है। इस भावना के अनुसार पुरुष स्त्री के प्रेम का ही अधिकारी नही है, पूज्यभाव का भी अधिकारी है।[1] इस प्रकार करकंडुचरिउ तथा पद्मावत मे पर्याप्त समानता दिखलाई देती है। अतः पद्मावत पर स्पष्ट हो करकडुचरिउ का प्रभाव पडा है।

करकंडुचरिउ और मधुमालती

करकंडुचरिउ मे करकंडु महाराज का चरित १० सन्धियो मे वर्णित है। कवि आरंभ में अपने गुरु पंडित मंगलदेव के चरणो का स्मरण करता है। चरित नायक की कथा के अतिरिक्त कथा के अन्दर नौ अवान्तर कथाओं का वर्णन है। करकंडुचरिउ की भाँति ही मधुमालती मे मंझन ने गुरू को बडी भक्ति के साथ स्मरण किया है तथा उनका नाम शेख महमंद बतलाया है। करकंडुचरिउ की ही तरह मधुमालती मे भी हेतिम, करन, भोज और बलि, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, विक्रम, सिहलदीप, दशरथ, गोरख, केदलीबन, राजा नल, लखन, हनिवंत, सिया, राम, रावण आदि अन्तर्कथाओ का उल्लेख मिलता है।[2] प्रमुख कथा के साथ-साथ इसमें एक और अन्तरकथा का संगुम्फन है।[3] इस तरह उपनायक तथा उपनायिका की योजना करके कथा को विस्तृत करने के साथ ही प्रेमा एवं ताराचंद के चरित्र के द्वारा सच्ची सहानुभूति, नि:स्वार्थ प्रेम तथा संयम का आदर्श भी प्रस्तुत किया गया है। भाई बहन के इस आदर्श प्रेम को सामने रखकर

१—जायसी ग्रन्थावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३६।
२—मधुमालती—डा० शिवगोपाल मिश्र, पृ० ३३।
३—जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य—डा० सरलाशुक्ल, पृ० ३३७।

कवि ने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष का विवेचन किया है जो उसकी सहृदयता का परिणाम है।

मधुमालती की कहानी कहने मे कवि ने भारतीय कथानक-रूढ़ियो का पूर्णरूपेण उपयोग किया है। मंझन ने अप्सराओ द्वारा मनोहर को उडा ले जाकर मधुमालती तक पहुँचाने की बात कही हे। पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी इस कथानक-रूढ़ि को असीरियन मानते है। उनका कहना हे कि यह काव्य-रूढि ईरानी साहित्य मे गृहीत हो गई थी और फारसी कवियो के माध्यम से भारतवर्ष मे आई।[1] परन्तु अपभ्रंश साहित्य मे इस तरह की कथानक-रूढि का प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश काव्यो मे यक्ष विद्याधर अथवा विद्याधर की पुत्री आदि नायक या नायिका को हर ले जाते हैं या एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्रातिशीघ्र पहुँचाकर सहायता करते हैं। करकंडुचरिउ[2] मे ऐसा उल्लेख मिलता है कि करकडु की पत्नी मदनावली को एक विद्याधर हाथी का रूप धारण कर हर ले गया। एक विद्याधर की पुत्री करकडु को हर ले जाती है ऐसा भी प्रसंग मिलता है। 'भविसयत्तकहा' मे भी भविष्यदत्त के एक यक्ष की सहायता से बात की बात मे अपने नगर मे पहुचने को बात कही गई है। घनेश्वर के मृत्युंजय महात्म्य' मे एक मछली द्वारा भीम के सिंहल पहुँचाने की बात कही गई हे। इस प्रकार जाहिर है कि मनुष्येतर प्राणियो द्वारा नायक, नायिकाओ के स्थानान्तरित किये जाने की कथानक-रूढि की परम्परा भारतीय वाङ्मय मे पहले से ही चली आ रही है।

मनोहर का जोगी होकर निकलना, मधुमालती की खोज मे समुद्र यात्रा करना, नौका का टूट जाना तथा सुनसान जंगल मे एक सुन्दरी को देखना जो एक राक्षस द्वारा वहा लाई गई हे ये सम्पूर्ण बातें अपभ्रंश साहित्य के लिये जानी पहचानी हैं। इनमे से अधिकाश का प्रयोग करकंडुचरिउ मे मिलता है। 'भविसयत्तकहा' मे भविष्यदत्त की समुद्र यात्रा, आंधी से नौका का पथभ्रष्ट होना तथा एक उजडे हुए नगर मे जा एक दिव्य सुन्दरी को देखना आदि बातें आती हैं। वह नगर एक असुर द्वारा नष्ट किया गया था। मंत्र-तंत्र, जादूटोना तो प्राय. ही अपभ्रंश काव्यो मे उपलब्ध होते हैं। मधुमालतीका पक्षी होना तथा रूप परिवर्तन के बाद भी सब कुछ का ज्ञान ज्यो का त्यो बना रहना भारतीय कथा साहित्य के लिये पूर्णरूपेण सुपरिचित हैं। उत्तर भारत मे प्रचलित दन्तकथाओ में यह प्राय: सुनने को मिलता है कि किसी दैत्य के प्राण किसी पेड, फूल अथवा किसी पक्षी मे बसते हैं और उनके विनष्ट होने पर उस दैत्य का विनाश हो जाता है। मधुमालती मे भी राक्षस के सम्बन्ध मे यही देखने को उपलब्ध होता है। मनोहर उसे तभी मारने

१—हि० सा०, पृ० २६८।
२—अ० सा०, पृ० १८२।

में सफल होता है जब उस पेड और उसके फूलो आदि को जलाकर भस्म कर देता है। अनेक तरह की स्त्रियों के वर्णन, नखशिख वर्णन, विवाह मे भोज का ब्यौरेवार वर्णन तथा सुरत क्रीडा आदि का वर्णन तो अपभ्रंश साहित्य मे प्राय: ही मिलते हैं। सुदंसण-चरिउ आदि मे इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं। मंझन ने बारहमासे का वर्णन केवल परम्परा पालन के लिये ही किया है। किन्तु जायसी ने बडी कुशलता से पद्मावत मे नागमती के लिए बारहमासे का प्रयोग किया हे।[1] इसी तरह मनोहर के योगी होकर निकलने का जो वर्णन मंझन ने किया है वह भी मात्र परम्परा पालन के लिये ही। जोग सम्बन्धी तत्वो का जैसा उद्घाटन पद्मावत में देखने को मिलता हे वैसा मधुमालती मे नही।

करकंडुचरिउ मे स्त्री की निन्दा की गई हे। इसका प्रभाव मंझन पर साफ देखा जा सकता है। उन्होने भी नारियो की निन्दा की है तथा स्त्रियो को पाप का घर और कुल मे कलक लगाने वाली कहा है।

पाप क घर जो त्रिया जाती, राखै कुल जो होइ संघाती।
नातरित्रिया राखि को पारा, कुल पै अकरम वज्र निहारा।[2]

इसी तरह मंझन चेतावनी देते हैं कि स्त्री संसार मे किसी की भी नही होती और स्त्री के प्रेम से कोई भी लाभान्वित नही हुआ। स्त्री को राक्षसी कहते हुये मंझन कहते हैं कि उनका विश्वास नही करना चाहिए।

कहै कुँअर जग जीव पदारथ, त्रिआ लागि का खोवसि अकारथ।
त्रिआ जगत भई नहिं काहू, त्रिआ पेम केहु भई न लाहू।
+ × ×
त्रिआ जाति महा राकसिनी, जनि पतिआहि उपर देखि बनी।

मधुमालती मे पाँच चौपाइयो के बाद दोहे रखे गये हैं। कृति मे शृङ्गार रस की प्रधानता है। करकडुचरिउ का मुख्य उद्देश्य है श्रुतपंचमी का फल, पंचकल्याणक विधि की प्रतिष्ठा जबकि मधुमालती का उद्देश्य 'तौ हम चित उपजा अभिलाखा, कथा एक बाँधउँ रस भाखा' के अनुसार स्वान्त: सुखाय हो प्रतीत होता है। करकंडुचरिउ में रति, उत्साह तथा शम की प्रधानता है। कृति मे प्रधान छन्द पज्झटिका तथा घत्ता हैं। अलंकारो मे श्लेष, यमक, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि का वर्णन मिलता है तथा

१—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० २२३।
२—करकंडुचरिउ—डॉ० हीरालाल जैन, ५, १६, २-६।
३—मधुमालती, पृ० ३६।

मधुमालती में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक, अनन्वय का। इस तरह दोनों ग्रन्थों मे पर्याप्त समानता दिखलाई देती है।

करकंडुचरिउ और माधवानल कामकंदला

इस बात का उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है कि माधवानल कामकंदला की कथा को आधार बनाकर मध्यकाल मे अनेक लोगों ने काव्य रचना की है। सभी का कथानक किंचित् हेरफेर के साथ एक जैसा ही है। इनमे सर्वाधिक महत्वपूर्ण आलम कृत माधवानल कामकंदला है। अत. यहाँ उसी को मुख्य आधार बनाकर विचार किया जायगा। गणपति ने अपने काव्यों मे तत्कालीन प्रचलित मान्यता को त्यागकर, मंगलाचरण में सरस्वती तथा गणेश की वंदना न करके, कामदेव की वंदना की है। कुशल लाभ कृत माधवानल कामकंदला की कथावस्तु गणपति कृत माधवानल कामकंदला प्रबन्ध से समानता रखती है। इन दोनो मे भेद मात्र इतना ही है कि कुशललाभ कामकन्दला को पूर्वभव मे इन्द्र की अप्सरा जयन्ती बतलाते हैं। शेष कथानक लगभग गणपति कृत माधवानल कामकदला प्रबन्ध से मिलता जुलता है। दामोदर कृत 'माधवानल कामकंदला' की कथावस्तु भी किंचित् हेर-फेर के साथ गणपति तथा कुशललाभ के 'माधवानल कामकंदला' काव्य के समान ही है। दामोदर ने माधवानल एवं कामकन्दला के पूर्वभव की कहानी नही दी है।

करकंडुचरिउ मुनिकनकामर द्वारा रचित एक रोमांटिक चरित काव्य है, जिसमे करकंडु महाराज का जीवन चरित दस संधियो मे वर्णित है। दस संधियो के इस प्रबन्ध काव्य के तीन-चौथाई भाग मे करकंडु की मुख्य कथा है और शेष चौथाई भाग मे नौ अवान्तर कथाएँ हैं।[1] ये कथाएँ मूल कथा के विकास मे अधिक सहायक नही हो सकी हैं। इन कथाओ के आधार पर कवि ने कथावस्तु को रोचक बनाने का प्रयास किया है। वस्तु मे रसोत्कर्ष, पात्रों की चरित्रगत विशेषता और काव्यों मे प्राप्य प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन के अभाव को, कवि ने भिन्न-भिन्न कथाओ के प्रयोग द्वारा पूरा करने का प्रयत्न किया है।[2] करकंडुचरिउ एक धार्मिक काव्य है तथा अन्य काव्यों के समान ही विभिन्न अलौकिक एवं चमत्कारपूर्ण घटनाओ से परिपूर्ण है। कृति का नायक पौराणिक पात्र है। पौराणिक, काल्पनिक तथा अलौकिक घटनाओ के कारण कथानक में सम्बन्ध निर्वाह अच्छी प्रकार नही हो सका है। ग्रंथ में रति, उत्साह तथा शम के प्रसंगो के वर्णन मिलते हैं। प्रधान छन्द पज्झटिका तथा घत्ता हैं। ग्रन्थ का मुख्य उद्देश्य है—श्रुत

१— हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग—डा० नामवर सिंह, पृ० २११।
२—अपभ्रंश-साहित्य—डा० हरिवंश कोछड़, पृ० १८३।

पंचमी का फल, पंचकल्याणक विधि की प्रतिष्ठा। कवि प्रारम्भ में अपने गुरु पंडित मंगल-देव के चरणों का स्मरण किया है। कथानक रूढियों की दृष्टि से इस काव्य का सर्वाधिक महत्व है। अनेक स्थानों पर कहानी मे लोक-कथाओ की झलक मिलती है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से कृति सामान्य कोटि की ही है।

करकंडु चरिउ के आरम्भ मे जिनेन्द्र देव की वन्दना है। आलम ने भी अपने माधवानल कामकंदला के आरम्भ मे परब्रह्म की वंदना की है। इसके बाद सम्राट अकबर की प्रशंसा की गई है तथा आगरे के स्वामी टोडरमल का भी उल्लेख मिलता है। ग्रन्थ का रचना काल सन् ६५१ (हिजरी) बतलाया गया हैं तथा वस्तुनिर्देश करते हुए प्रबन्ध को वियोग शृंगार की कथा कहा गया है। इस प्रकार माधवानल कामकंदला का आरम्भ भी करकंडु चरिउ के समान ही हुआ है। पुस्तक का आरम्भ करते समय कवि ने अपने समकालीन सम्राट अकबर का उल्लेख किया है तथा अपनी रचना के काल का निर्देश कर उसकी कथा का मूलाधार संस्कृत साहित्य को बतलाया है। इससे ऐसा लगता है कि उन्होने उसकी रचना-शैली के आदर्श मे कुछ हद तक सूफी परम्परा की कथाओ को भी स्वीकार किया है। हालांकि बहुत दूर तक इस तरह की बात को स्वीकर नही किया जा सकता क्योकि माधवानल कामकदला स्वच्छन्द प्रेमा-ख्यानक काव्य है। इसमे स्वच्छन्द प्रेम पद्धति का निरूपण किया गया है। आलम प्रबंध रचना मे बहुत पटु थे। उनकी कथा की धारा निरन्तर बिना किसी अवरोध के आगे बढती है। बीच-बीच मे आने वाले वर्णन इतने मोहक हैं कि थोडी देर के लिये कथा का रुक जाना खटकता नही और मन मुग्ध होता चलता है। प्रस्तुत काव्य मे करकंडु चरिउ की भांति ही अनेकानेक छोटी बडी घटनायें आई हैं। ये घटनायें बडी ही रोचक और सरस हैं किन्तु करकंडु चरिउ की तरह इनमे अतिमानवीय या दैवी शक्तियो का योग भी हुआ है। इस काव्य का मुख्य रस शृंगार है लेकिन वीर एवं वीभत्स के भी कुछेक वर्णन खरे उतरे हैं। प्रेम ही इस कवि का मुख्य वर्ण्य विषय है तथा उसी की व्याख्या उसने अपनी सारी रचनाओ मे बडी कुशलता से की है। 'कामकंदला' मे वह एक स्थान पर कहता है—

> आलम ऐसी प्रीति पर, सरबस दीजै वार।
> गुपत प्रगट अंखियन मिले, दिये कपट पट डार॥

यानी उसी प्रेम-भाव पर अपना सब कुछ समर्पित कर देना चाहिए जिसमे कपट का पर्दा कुछ भी नही रहा करता तथा सभी कुछ (गुप्त या प्रकट) आखो से ही स्पष्ट हो जाया करता है। आलम को सच्चे प्रेम के चित्र उरेहने मे पूर्ण सफलता मिली है। कामकंदला एक नर्तकी है परन्तु जब यह उसे मिथ्या समाचार मिलता है कि उसका

प्रेमी माधव मर चुका है तो वह प्राणहीन हो जाती है। यह है प्रेम की एकनिष्ठता। स्वच्छन्द प्रेम मार्ग का अनुयायी होने के कारण करकंडुचरिउ तथा माधवानल कामकंदला मे समानता बहुत कम मिलती है। करकंडुचरिउ का मुख्य उद्देश्य श्रुतपंचमी का फल है जबकि माधवानल कामकंदला का मुख्य उद्देश्य स्वच्छन्द एवं सच्चे प्रेम का निरूपण करना है। दोनो काव्यो के नायको मे कुछ समानता अवश्य पाई जाती है। करकंडुचरिउ स्वभाव से रोमाटिक था वह जहा-जहां भी गया उसके सौन्दर्य पर युवतिया मुग्ध हो गयी तथा उसने उनसे विवाह भी किया। ठीक यही स्थिति माधवानल की भी है। उसे देखकर पुरनारिया बेचैन हो जाती थी और विवश होकर कामपीड़ा से स्खलित हो जाती थी। यही कारण था कि उसका अत्यन्त रूपवान होना उसके लिये अभिशाप बन गया था। वह जहा जहा जाता था इसी कारण उसका वहा से निष्कासन हो जाता था। इस प्रकार दोनो काव्यो मे बहुत कुछ समानता मिलती है।

करकंडचरिउ और रसरतन

करकंडुचरिउ मे करकंडु महाराज का जीवन चरित १० सन्धियो मे वर्णित है। ग्रन्थ मे मुख्य कथा के अतिरिक्त अन्य नौ अवान्तर कथाओ का संकेत भी मिलता है जो करकंडु को नीति सिखाने तथा मूल कथा को किसी बात को समझाने के लिये कही गयी है। ग्रन्थ मे कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियो यथा—सिद्धसेण, सुसमन्त भद्द, अकलंक देव, जयदेव, सयंभु, पुष्फयन्त आदि का उल्लेख भी किया है। कृति मे रति, उत्साह एवं शम के प्रसंगो की अधिकता है। छन्द पज्झटिका और घता हैं। अलकारो मे श्लेष, यमक, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि का वर्णन मिलता है। काव्य का नायक बहुपत्नीक है। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने जिनेन्द्र देव की वन्दना की है।

रसरतन में पुहकर ने सूरसेन तथा रम्भावती के उस प्रेम का वर्णन किया है जिनमें संयोग कराने के लिये भुवनमोहन पुष्पधन्वा काम को स्वयं दूत बनना पडा।

नृप तनया रम्भावती, सूर पृथ्वीपति पूत।
वरनौ तिनकौ प्रेम-रस, मदन भयौ तहं दूत ॥
(आदि० १.२)

प्रस्तुत रचना की आधिकारिक कथा के अन्तर्गत रम्भा तथा कुमार सोम की प्रेम कहानी आती है। प्रासंगिक कथा के अन्तर्गत कल्पलता अप्सरा का आख्यान, रति एव कामदेव का संवाद तथा उनका रम्भा और कुमार का रूप धारण करना, चम्पावती चित्रकार बोध विचित्र का वृत्तान्त, कुमार के गले में पड़ी हुई माला में गुथे हुए रम्भा के चित्र को कल्पलता के द्वारा देखे जाने की घटनायें आती हैं। जहां तक कल्पलता की प्रेम कहानी का सम्बन्ध है वह एक स्वतंत्र आख्यान है। आधिकारिक कथा से

उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही दिखलाई पडता । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुमार के प्रेम की दृढता को अंकित करने के लिये एवं कथावस्तु में रोचकता लाने के लिये ही कवि ने इसका आयोजन किया है। जहातक अन्य घटनाओ का प्रश्न है सब किसी न किसी तरह मूल कथा की गति मे सहायक होती हैं।[1] इस तरह सम्बन्ध निर्वाह की दृष्टि से यह एक सफल काव्य माना जा सकता है।

करकंडुचरिउ मे कवि ने ग्रन्थारम्भ मे जिनेन्द्रदेव तथा अपने गुरु की वंदना की है। ठीक इसी तरह रसरतन मे भी आरम्भ मे गणेश और गुरु को नमस्कार किया गया है। करकंडुचरिउ का नायक करकंडु बहुत ही सुन्दर तथा वीर है। वह अपने पौरुष से राजाओ पर विजय प्राप्त करता है। रसरतन का नायक सूरसेन भी सुन्दरता एवं वीरता मे अद्वितीय है। करकंडु की भाँति ही वह जहाँ जहाँ जाता है, सुन्दरियाँ उस पर मुग्ध हो जाती है। अपने पराक्रम से वह अपने को चक्रवर्ती भी सिद्ध करता है। करकंडु की तरह ही सूरसेन भी बहुपत्नीक है। कवि ने लिखा है कि कल्पलता और रंभा की भेंट यो हुई जैसे दो बहनें परस्पर मिलीं। इस प्रसंग को देखकर सूरदास का यह प्रसंग—'राधारुक्मिणि ऐसे भेंटी। जैसे बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप को बेटी।' बरबस याद हो जाता है। जिस प्रकार करकंडु को मुनि शीलगुप्त का उपदेश सुनकर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और अपने पुत्र वसुपाल को राज्य देकर मुनि हो जाता है तथा घोर तपस्या करके केवल्ज्ञान एव मोक्ष प्राप्त करता है ठीक उसी प्रकार रसरतन के नायक सूरसेन को भी गुनी नट द्वारा सृष्टि उत्पत्ति का सारा विधान नाटक मे दर्शाये जाने पर तथा गुरु चिंतामणि का उपदेश सुनने पर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। वह सम्पूर्ण राज्य पुत्रो मे बाट कर चिंतामणि को संग ले रानियो के साथ काशीवास का निश्चय करता है। इस प्रकार करकंडुचरिउ का पर्याप्त प्रभाव रसरतन पर दिखाई पडता है। करकंडुचरिउ मे कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियो का उल्लेख किया है। रसरतन मे भी पुहकर ने अपने पूर्ववर्ती कवियो के काव्यो यथा—माधवानल कामकंदला पर आधृत आख्यानक, मधुमालती, नलदमयंती, उषा, अनिरुद्ध, अग्नि मित्र-यौरावत तथा पिंगला भरथरी की कथाएँ आदि का उल्लेख किया है।

करकंडुचरिउ जैन धर्म की महत्ता के लिये लिखा गया है। इसका पर्यवसान भी शान्त रस मे हुआ है। पुहुकर के रसरतन का उद्देश्य भी कुछ इसी प्रकार का प्रतीत होता है। ग्रन्थ के अन्त मे कवि ने इस उद्देश्य पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि यह संसार असार है। इससे मुक्ति पाना ही जीवन का उद्देश्य है। इसी कारण अन्त मे पुह-

१—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य—डा० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृ० १६६ ।

कर ने इस प्रेमकाव्य को केवल प्रेमकाव्य ही नहीं रहने देना चाहते, अपितु एक भिन्न प्रतीकार्थ भी देना चाहते हैं। उनके अनुसार वैरागर वैराग्य का रूप है। सूरसेन जीव है। उसकी दो पत्नियाँ सद्संगति तथा सद्बुद्धि हैं। इनके सहारे प्रीति की ज्योति जलाकर कवि ईश्वर को प्राप्त कर लेना चाहता है।

> वैरागर वैराग वपु, हीरा हित हरिनाम।
> प्रीत जोत जिय जगमगै, हरै त्रिविध तनु ताम ॥
> सत संगति सतबुद्धि उर, विव घरनी संग लाय।
> ज्ञान वान प्रस्थान करि, तजै विषै सुख पाय ॥
> (वैरागर० ३५१-५२)

इस प्रकार रसरतन का अन्त भी करकंडुचरिउ की तरह ही शान्त रस मे होता है। ऐसा लगता है कि कवि को अन्त मे अपने जीवन की निरर्थकता का सहसा आभास हो आता है और वह उसके परिमार्जन के लिये व्याकुल हो उठता है।[1]

> चला जात पृथ्वी संसारा। विनसत देह न लागै वारा ॥
> सुर नर नाग राय अरु राने। जे उपजे ते सबै समाने ॥
> आगे पाछे सबै समाही। हमही बैठे मारग माही ॥
> अच्छिर चार कहैं इहि ठाऊँ। रहे हमार पृथी मे नाऊँ ॥
> (वैरागर० ३४५-४६)

रसरतन मे छप्पय, दोहा, सोमकांति, चाटक सारदूल, चौपही, दंडक, सवैया, तोटक, पद्धरी, प्रयंगम, मोतीदाम, सोरठा, कुंडलिया, कवित्त, प्रवानिक, गीतिका, कंठभूषण, भुजंगप्रयात, सोरठा दोहा, व्यूह, पैडी, गुनदीपक, गीतमालती, मोदिका तोटकी, कामिनीमोहन, नाराच गाथा, भुजंगी, लीलावती, दुमिला, त्रिभंगी, शंखधारा, चंद्रजोति आदि छंदों का प्रयोग हुआ है।[2] अलंकारो में उपमा, उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति की बहुलता है। भाषा चलती हुई अवधी है। इस प्रकार दोनों ग्रन्थों मे पर्याप्त समानता है।

करकंडुचरिउ और इन्द्रावती

करकंडुचरिउ मुनि कनकामर द्वारा रचित १० संधियों का एक रोमांटिक चरित काव्य है। इसमे करकंडु महाराज की कथा वर्णित है। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने

१—रसरतन—डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० ८२।

२—वही, पृ० १२६।

जिनेन्द्रदेव तथा गुरु की वंदना की है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का भी उल्लेख किया है। ग्रन्थ में मूलकथा के अतिरिक्त अन्य नौ अवान्तर कथाओं का वर्णन भी मिलता है जो करकंडु को नीति सिखाने तथा मूल कथा की किसी बात को समझाने के लिये कही गयी हैं। ये कथायें मूलकथा के विकास में अधिक सहायक नही हो पातीं। कृति में रति, उत्साह एवं शम के प्रसंगों की अधिकता है। प्रधान छन्द पज्झटिका और घता हैं। अलंकारों मे यमक, उत्प्रेक्षा, परिसंख्या आदि का वर्णन मिलता है। नगर आदि का वर्णन भी कवि ने अच्छा किया है। अपने पूर्ववर्ती कवियो के समान कवि ने विनय भी प्रदर्शित की है। करकंडुचरिउ एक धार्मिक काव्य है। जैन धर्म की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए ही इसका सृजन हुआ है। काव्य का मुख्य उद्देश्य श्रुतपंचमी का फल, पंचकल्याणक विधि की प्रतिष्ठा है।

जहा तक इन्द्रावती के कथानक का प्रश्न है वह पूर्णरूपेण काल्पनिक है। इसमे कही भी कवि ने इतिहास का सहारा नही लिया है। कविने इस कहानीमें रूपक का पूर्णरूप से योग किया है। कहानी मे पात्रो तथा स्थानो के नाम एक विशेष दृष्टि से रख गये हैं। कवि इन नामो के द्वारा खास-खास भावों को सामने लाना चाहता है, यथा आगमपुर, जिउपुर, जिअन्तपुर, बुद्धिसेन, कायापति, लोभ नाम की कुटिल स्त्री, कामसेन, मोहनी मालिन आदि [1]। इसमे सहस्ररजनी चरित्र के समान उदाहरण स्वरूप छोटी-छोटी कहानियाँ कही गई हैं। कवि ने प्रमुख कथा के साथ करकंडुचरिउ की तरह ही कई अन्तर्कथाओ की संयोजना की है। इनमे से कुछ कथायें मुख्य कथा की गति मे सहायक होती हैं। उनका प्रभाव घटना प्रवाह पर पड़ता है। ऐसी कथाओ के अन्तर्गत रानी सुन्दर की सखियो का तोते की कहानी कहना और सुजान नाम के तोते के द्वारा 'बल्लभ और प्रेमी' की प्रेम कहानी का वर्णन, मुख्य है। 'तोते की कहानी' के द्वारा रानी सुन्दर को राजकुंअर को सदेश भेजने का संकेत मिलता है तथा 'वल्लभ और प्रेमा' की दुखान्त प्रेम कहानी का राजकुंअर के हृदय पर घातक प्रभाव पडता है और यही आन्तरिक शोक उसकी मृत्यु का कारण बनता है। जिव कहानी का वर्णन कवि ने मात्र चातुर्य प्रदर्शन के लिये किया है। अवसर पाते ही कवि नई कथाओ का समावेश करता है। ऐसी ही कथाओ के अन्तर्गत 'मधुकर एवं मालती' 'हीरामानिक', 'हंसराज तथा चन्द्रबदन' की कथायें आती हैं[2]। कवि ने राजकुंअर की पहली पत्नी 'सुन्दर' के जीवन पर कथा के उतरार्ध में पूर्ण प्रकाश डाला है। कथा का अन्त दुखान्त होते हुए भी अपनी विशेषता रखता है। दूसरे के दुख तथा शोक से सहानुभूति प्रदर्शन का भाव इसमे मुख्य है। राजकुंवर 'प्रेमा एवं बल्लभ' की शोक कथा को सुनकर इतना करुणा से भर गया

१- हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, रामपूजन तिवारी, पृ० २६६।

२- जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य-डा० सरला शुक्ल, पृ०४७२।

कि वह पुनः प्रसन्न होकर गति अथवा आनंद को प्राप्ति न कर सका तथा रुग्ण होकर संसार से विदा हो गया। उसकी पत्निया भी उसकी मृत्यु पर सती हो गई।

करकंडुचरिउ के आरम्भ मे कवि ने जिनेन्द्रदेव की वन्दना की है। ठीक इसी प्रकार इन्द्रावती मे नूरमुहम्मद ने भी ईश वन्दना की है। पुन हजरत मुहम्मद तथा चार खलीफो का नाम लिया है और शिया सम्प्रदाय मे अन्तर्मुक्त होने के कारण कर्बला की करुण कहानी का संकेत किया है। करकंडुचरिउ मे कवि ने अपने गुरु की वंदना की है। किन्तु इन्द्रावती मे कवि ने अपनी गुरु परम्परा नही बतलाई है। कहानी का आरम्भ कवि ने बडे ही रोचक ढंग से किया है। कवि ने बतलाया है कि सपने में उसने उसी तपी को समुद्र के किनारे देखा तथा उन्होने जो कुछ कहा उसी से कहानी का सूत्रपात हुआ। इसके बाद कवि ने मन को फुलवारी, बचन को फूल, अर्थ को सुगंधि तथा कवि एवं श्रोता को भौंरा कहा है[1]। इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कथानक का अधार कवि की कल्पना ही है। करकंडुचरिउ मे कवि ने जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, अंग देश, तथा चम्पानगरी आदि का वर्णन बडे ही सरस ढंग से किया है। इन्द्रावती मे भी नूरमुहम्मद ने कालिंजर एवं आगमपुर, हाट तथा जलक्रीडा आदि का वर्णन भी उसी प्रकार से किया है। करकंडुचरिउ की भांति ही इन्द्रावती मे भी अनेक अन्तर्कथाओ का समावेश किया गया है जिससे कथा को शीघ्र समझने मे द्रविड प्राणायाम भी करना पडता है। करकंडु बहुपत्नीक नायक है। सर्वप्रथम उसका विवाह गिरिनगर की राजकुमारी मदनावली से होता है किन्तु सिंहल द्वीप पहुँचने पर अपनी परिणीता पत्नी के रहते हुए उसने वहा की राजपुत्री रतिवेगा का पाणिग्रहण किया। करकंडुचरिउ के नायक के समान इन्द्रावती के नायक को भी समुद्र यात्रा करनी पडती है, लेकिन यहाँ एक विशेषता अवश्य है कि कवि को समुद्र मे डूबकर 'रत्न' खोजना पडा है। इन्द्रावती का मुख्य रस श्रृंगार है। अलंकारो मे उपमा, रूपक, उल्लेख, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, यमक, सन्देह आदि का वर्णन नूरमुहम्मद ने अच्छा किया है। इन्द्रावती मे पाँच अर्द्धालियो के बाद एक दोहे का क्रम मिलता है, नूरमुहम्मद की भाषा मिली जुली अवधी है। इस प्रकार करकंडुचरिउ एवं इन्द्रावती मे पर्याप्त समानता दिखाई देती है। उद्देश्य की दृष्टि से भी दोनो ग्रन्थो में एकरूपता मिलती है। करकंडुचरिउ धार्मिक काव्य है तथा जैनधर्म के प्रचार के लिये लिखा गया है। नूरमुहम्मद भी कट्टर मुसलमान तथा शिया सम्प्रदाय के थे। अवसरानुकूल ये अपने पक्के मुसलमान होने तथा भाषा के माध्यम से केवल दीनेइस्लाम के प्रचारक होने की पुष्टि करते हैं[2]। इन्द्रावती मे कई स्थल ऐसे हैं जहाँ कवि ने अपने धर्म

१- इन्द्रावती, पृ० ५।

२- अनुराग बासुरी, नूरमुहम्मद, पृ०८६।

तथा सम्प्रदाय के प्रति अपनी जागरूकता का परिचय दिया है।[1] कनकामर तथा नूर-मुहम्मद दोनों ने ही अपने ग्रन्थों में विनय प्रदर्शित की है। इन्द्रावती में एक जवाह पवन को संदेश ले जाने वाला दूत बनाया गया है। रानी सुन्दर का संदेश सुनकर ही राजकुँवर इन्द्रावती को साथ लेकर कालिंजर के लिये प्रस्थान करता है। इन्द्रावतीमे षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा का भी पालन किया गया है।

करकंडुचरिउ और विरहवारीश

मुनि कनकामर का करकंडुचरिउ पद्धडिया शैली मे लिखा गया अपभ्रंश चरितकाव्य है। करकंडु के चरित्र को प्रमुख आधार बनाकर इस कृति में पंचकल्याण-विधि का महत्त्व वर्णित है। कृति दस संधियो मे समाप्त हुई है। करकंडु चंपा के राजा का पुत्र था। उसका जन्म विषम परिस्थितियों मे होता है तथा दन्तिपुर का राजा बन जाता है। उसकी सुन्दरता पर रमणियाँ मोहित हो जाती हैं। सौराष्ट्र की राजकुमारी के चित्र को देखकर वह उस पर आकर्षित होता है। दोनो परिणय सूत्र मे बंध जाते हैं। कुछ समय के बाद करकंडु अपने पिता का राज्य भी प्राप्त करता है। वह दक्षिण के नरेशो पर आधिपत्य स्थापित करता है तथा तेरापुर मे जिन लयनो का निर्माण कराता है। पूर्वजन्म की शत्रुता के कारण उसकी रानी मदनावली का विद्याधर हरण कर लेते हैं। करकंडुसिंहल जाता है और वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह करता है। लौटते समय समुद्र में एक दुष्ट मत्स्य उन्हे अलग कर देता है। एक विद्याधरी उनकी रक्षा करती है। उधर रतिवेगा को पद्मावती देवी प्रकट होकर इसी तरह की अरिदमन की प्रेम-कथा कहकर मिलने का आश्वासन देती है। कुछ समय के बाद वे परस्पर आ मिलते हैं तथा आते हुए मार्ग मे मदनावली भी मिल जाती है। अन्तिम दो संधियों मे धार्मिक प्रसंग हैं। मुनि शीलगुप्त राजा को उसके पहले जन्मो की कथा सुनाते हैं एवं धर्मोपदेश देते हैं। राजा अपने पुत्र को राज्य सौंपकर घोर तप करता हुआ मोक्ष प्राप्त करता है।

मुख्य कथा के अतिरिक्त कृति में अन्य नौ अवान्तर कथाओं का उल्लेख भी मिलता है। ये कथायें मूल कथा के विकास मे अधिक सहायक नही हो सकी हैं। कथा में मुख्य पात्र करकंडु है और वही कथा का नायक है। इसके अतिरिक्त करकंडु की माता पद्मावती, मुनि शीलगुप्त, मदनावली, रतिवेगा आदि अन्य पात्र भी हैं। परन्तु उन सबमें करकंडु का चरित्र ही सर्वाधिक विकसित हो पाया है। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने जिनेन्द्रदेव की वंदना की है तथा अपने गुरु मंगलदेव के चरणो का स्मरण भी किया है। कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख भी किया है। प्रधान छंद पज्झटिका तथा घत्ता हैं। अलंकारों मे यमक, उत्प्रेक्षा तथा परिसंख्या का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है।

१- इन्द्रावती, नूरमुहम्मद, पृ०२ ।

बोधा के माधवानल कामकंदला का दूसरा नाम 'विरह-वारीश' भी है। सुभान ने सच्चे प्रेम का लक्षण तथा परिणाम पूछा था। उसके उदाहरण-स्वरूप यह कथा कही गई है।[1] बीच-बीच में दोनो के संवाद भी चलते रहते हैं।

कवि— सुन सुभान यासो दिल दायक।
अब यह कथा न कथिवे लायक॥
सुभान— अहो मीत ऐसी जनि भाखौ।
कथि के कथा न आधी राखौ॥

बोधा कवि की प्रेमिका सुभान संभवत एक मुस्लिम वेश्या थी जिसके साथ उनका प्रेम प्रकट हो जाने पर उन्हे पहले देश निकाले का दड मिला और एक वर्ष की अवधि तक मारे-मारे फिरकर वे अन्त मे उसे किसी प्रकार पा सके।[2] इस प्रकार कला-निष्णात ब्राह्मणकुमार का नर्तकी के साथ स्थायी प्रेम होना सामाजिक स्वच्छन्दता का प्रतीक है।

कथा के प्रमुखपात्रो माधव, कामकन्दला तथा लीलावती के पूर्वजन्म का वृत्त प्रस्तुत करते हुए कवि पुहुपावती नगरी से कथा का आरम्भ करता है। माधव और लीलावती का शंभुवाटिका मे प्रथम मिलन तथा विष्णुदास पण्डित की पाठशाला मे सहाध्ययन और साहचर्य प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है। तरुण माधव का कामदेव सा रूप समस्त पुरनारियो को मुग्ध कर लेता है। परिणामस्वरूप पुहुपावती नगरी उसे छोडनी पड़ती है। लीलावती के विरह मे जंगल-जंगल भटकता हुआ माधव पशु-पक्षियो से अपनी विरह व्यथा कहता हुआ कामावती नगरी पहुँचता है। अपने संगीतकला नैपुण्य के कारण वह राजसभा मे सम्मानित होता है। वही कन्दला नाम की नर्तकी से उसका प्रेम हो जाता है। किन्तु राजा कामसेन और उसकी सभा को कला के परखने मे मूर्ख तथा अज्ञ बतलाने के अपराध मे कामावती से भी उसका निष्कासन हो जाता है। वहाँ से वह तड़पता हुआ उज्जैन राजा विक्रम के राज्य मे पहुँचता है। उसको प्रेम परीक्षा लेकर विक्रम कामावती के राजा कामसेन को पराजित करके कामकन्दला को माधव को समर्पित कर देता है। अब माधव सुखपूर्वक कन्दला के साथ विहार करता है। उधर वर्ष भर से अधिक लीलावती माधव के वियोग मे तड़पती रहती है। उधर एक दिन स्वप्न मे लीलावता को देख माधव भी विकल हो जाता है। कन्दला अपने प्रिय का दुःख दूर करने के लिए राजा विक्रम तथा कामसेन की सहायता प्राप्त करती है तथा

१—घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा-डॉ० मनोहरलाल गौड़, पृ० २७५।
२—मध्यकालीन शृङ्गारिक प्रवृत्तियाँ—परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १५८।

पुष्पावती नरेश गोविन्दचन्द भी माधव का स्वागत करते हैं। माधव और लीलावती का विवाह सौल्लास सम्पन्न होता है तथा लीलावती और कामकन्दला सुखपूर्वक माधव के साथ रहने लगती हैं।[१] बोधा ने प्रमुख पात्रों कृष्ण, लीलावती, माधव और कन्दला के रूप का वर्णन विशेष रूप से किया है। विक्रमादित्य, कामसेन, सुवा, बरई आदि पात्रो का रूप वर्णन नही मिलता। बोधा ने चार प्रकार की नायिकाओं—पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी, और हस्तिनी तथा चार प्रकार के नायकों—शश, कुरंग, वृषभ और तुरंग का भी उल्लेख किया है। काव्य मे रस की दृष्टि से विप्रलंभ शृङ्गार की प्रधानता है। अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और सन्देह का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। मुख्य छन्द दोहा और चौपाई है किन्तु त्रोटक, सोरठा, संचारका, दुविला, दंडक, छप्पय, सुमुखी, कुन्डलिया, तोमर, गाथा, हरिगीतिका और मोतीदाम का भी वर्णन मिलता है।

करकंडुचरिउ के प्रारम्भ मे कवि ने जिनेन्द्रदेव की वंदना की है। ठीक उसी प्रकार विरह वारीश मे भी बोधा ने गणेश, श्रीकृष्ण, शिव और सूर्य की वंदना की है। इसके बाद कवि ने कथावस्तु का निर्देश किया है। करकंडुचरिउ मे कवि ने अपने आश्रयदाता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'ये सज्जन बडे योग्य एवं व्यवहार कुशल थे।' बोधा ने भी विरह वारीश मे अपने आश्रयदाता पन्नानरेश महाराज खेतसिंह का उल्लेख किया है। कनकामर ने करकंडुचरिउ मे जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, अंगदेश तथा चम्पानगरी का वर्णन बडे ही स्वाभाविक एवं सरस ढंग से किया है। बोधा ने भी पुष्पावती, कामावती, बाँदोगड, तथा उज्जैन आदि नगरो का वर्णन बहुत ही अच्छा किया है। करकंडुचरिउ का नायक करकंडु अत्यन्त सुन्दर तथा वीर है। उसे देखकर रमणियाँ मुग्ध हो जाती हैं। विरह वरीश का माधव तो अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात ही है। उसकी सुन्दरता ही उसके लिए अभिशाप बन जाती है तथा प्रत्येक जगह से उसका निष्कासन किया जाता है। क्योकि पुर की नारियाँ उसे देखकर मोहित हो जाती हैं। करकंडुचरिउ का नायक करकंडु बहुपत्नीक है। विरहवारीश का बोधा भी इसी परम्परा का निर्वाह करता हुआ दिखाई देता है। दोनो ग्रन्थो के उद्देश्य में अवश्य कुछ भिन्नता दिखाई देती है। करकंडुचरिउ धार्मिक काव्य है। उसका मुख्य उद्देश्य पंचकल्याण विधि का महत्व वर्णित करना है जबकि विरह वारीश पूर्णरूपेण प्रेम और विरह का ही काव्य है। सच्चे प्रेम की व्याख्या करना ही उसका मुख्य उद्देश्य कहा जा सकता है। क्योकि कवि ने यह स्वीकार किया है कि यह रचना उसने अपनी महबूबा

---

१ रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा—डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, पृ० ३१७।

की स्मृति में डूब डूब होते हुए विरह की महत्ता में निमग्न की है। इसीलिये तो कवि बड़े ही स्पष्ट शब्दों में घोषणा करता है—

एक सुजान के आनन पे कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।

× × ×

जान मिलै तौ जहान मिलै नहिं जान मिलै तौ जहान कहाँ को॥

किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि दोनो काव्यों के नायक रोमांण्टिक हैं। इस प्रकार करकंडुचरिउ और विरहवारीश में बहुत कुछ समानता मिलती है।

卐●卐

सातवाँ अध्याय

करकंड चरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्य

कथानक-रूढ़ियों का तुलनात्मक अध्ययन

करकंड चरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्य

कथानक-रूढ़ियों का तुलनात्मक अध्ययन

कथानक-रूढ़ि

अभिप्राय कहानी का सबसे छोटा, परन्तु स्पष्ट पहचान मे आनेवाला वह तत्त्व होता है जो अपने आप मे एक कहानी तैयार कर देता है । तुलनात्मक अध्ययन के लिये अभिप्रायो का बहुत अधिक महत्त्व है, क्योकि कथाभिप्रायो के अध्ययन से ही यह पता चल सकता है कि किसी वर्ग- विशेष की कहानी के कौन से उपकरण दूसरे वर्ग की कहानियों मे भी समान रूप से प्रयुक्त हुये हैं । वर्गों के अध्ययन से यह पता चल जाता है कि किस प्रकार कथा-सम्बन्धी ये अभिप्राय कथानक-रूढि बन जाते है ।[1]

अभिप्राय शब्द अपनी व्याप्ति के कारण कई अर्थों मे प्रयुक्त होता है तथा भिन्न साहित्य-रूपो के अपने अलग-अलग अभिप्राय होते हैं। सामान्य अर्थ मे अभिप्राय उस शब्द या एक साँचे मे ढले हुए उस विचार (आइडिया) को कहते हैं, जो समान परिस्थितियो मे या समान मन:स्थिति तथा प्रभाव उत्पन्न करने के लिये किसी एक कृति या एक ही जाति की विभिन्न कृतियो मे बारबार आता है ।[2]

साहित्य के क्षेत्र मे अनुकरण और अत्यधिक प्रयोग के कारण जो रूढ़ियाँ प्रचलित हो जाती हैं तथा यात्रिक ढंग से जिनका प्रयोग होने लगता है, उन्हे प्राय· साहित्यिक अभिप्राय के नाम से जाना जाता है। कीथ ने संस्कृत साहित्य मे कवि शिक्षा पर विचार

1—The motif is the smallest recognizable element that goes to make up a complete story. It's importance for comperative study is to show what material of a Particular type is common to other types. The importance of the type is to show the way in which narrative motifs form in to conventional clusters.

Dictionary of World Literature : Shipley.

2—Motif—A word or a pattern of thought which recurs in a similar situation or to evoke a similar mood within a work or in various works of a genre, Ibid.

करते हुये भारतीय साहित्य में प्रचलित कवि समयों के लिये मोटिफ शब्द का ही प्रयोग किया है। काव्य मे अभिप्राय मुख्य रूप से उस परम्परागत विचार (आइडिया) को कहते हैं, जो अलौकिक तथा अशास्त्रीय होते हुये भी उपयोगिता के कारण कवियों द्वारा गृहीत होता तथा बाद में चलकर रूढ़ि बन जाता है। विभिन्न काव्य-प्रसंगों में परम्परागत रूप से एक ही प्रकार के वर्णन से भी कुछ अभिप्राय बन जाते हैं जिन्हे 'वर्णनात्मक अभिप्राय' कहा जा सकता है। भारतीय साहित्य, विशेष रूप से परवर्ती संस्कृत साहित्य तथा हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य, मे इस प्रकार के अभिप्राय बहुत प्रचलित हो गये।[1]

कथा-सम्बन्धी अभिप्राय

कीथ के मतानुसार जिस प्रकार परम्परा-प्राप्त अलौकिक विचारो ने अनेक काव्य-सम्बन्धी अभिप्रायो को उत्पन्न किया, उसी प्रकार कथाओ मे इससे कुछ अधिक व्यापक विचारों की आवृति के कारण भारतीय कथा-साहित्य मे अनेक अभिप्राय बन गये। 'परकाय-प्रवेश', लिंग-परिवर्तन', 'पशु-पक्षियो की बात-चीत', 'किसी वाह्य वस्तु मे प्राण का बसना' आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं।[2] इनका उपयोग प्रमुख रूप से कथा को आगे बढाने और दूसरी दिशा मे मोडने के लिये ही किया जाता है। अधिक प्रचलित तथा रूढ़ हो जाने पर अलंकृति के लिये भी इनका प्रयोग होने लगता है। उदाहरणार्थ स्त्री की दोहद कामना अर्थात् गर्भवती स्त्री की इच्छा स्त्री के जीवन की साधारण तथा परिचित घटना है, परन्तु कहानी कहने वालो के हाथ मे पडकर यही साधारण घटना अद्भुत रूप धारण कर लेती है। पति इस विषय मे बहुत सचेत रहता है तथा वह पत्नी की दोहद-कामना को पूर्ण करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता है। इसी दोहद का कहानीकारों ने 'अभिप्राय के रूप मे उपयोग किया है, जिससे उन्हे अतिरंजित घटनाओ को लाने तथा कहानी को आगे बढ़ाने एवं चमत्कार उत्पन्न करने का अवसर उपलब्ध हो जाता है। कभी स्त्री पति के खून मे स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है, तो कभी चन्द्रपान करने की। कहानीकार जिस दिशा मे कहानी को मोडना चाहता है या जिस तरह का प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है, उसी के अनुरूप स्त्री द्वारा दोहद-कामना करवाता है। उदाहरणार्थ 'कथासरित्सागर' मे मृगावती रुधिर से पूर्ण लीला-वापी मे स्नान करने

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक रूढ़ियाँ—डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० २।

२—ए हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर—कीथ, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४८, पृ० ३४३।

की इच्छा व्यक्त करती है।[1] जैन कथाकारों का यह अत्यन्त प्रिय 'अभिप्राय' है। शायद ही कोई ऐसा जैन कहानी-लेखक हो जिसने किसी अर्हत् या चक्रवर्तिन की उत्पत्ति के पूर्व उनकी माता द्वारा उत्तम और पवित्र कार्य करने की दोहद-कामना न व्यक्त करवाई हो। उनकी यह कोई नई सूझ नहीं है, घिसी-पिटी रूढि के रूप मे ही उन्होंने इसका उपयोग किया है। अपने चरित-काव्यो में वे जब भी ऐसा अवसर पाते हैं, इस अभिप्राय का अवश्य प्रयोग करते हैं। जैन-ग्रन्थ 'समरादित्य संक्षेप मे गुणसेन और अग्निसेन का का जब-जब पुनर्जन्म होता है, उनकी माताएँ कोई-न कोई दोहद-कामना अवश्य व्यक्त करती हैं।[2]

अभिप्रायों की कोटियाँ

कथा-सम्बन्धी अभिप्रायो को मुख्यत दो कोटियो मे बाँटा जा सकता है—

(१) कुछ अभिप्राय प्राय· किसी न किसी ऐसे लोक-विश्वास और धारणा पर आधारित होते हैं, जिन्हे वैज्ञानिक दृष्टि से यथार्थ नही कहा जा सकता। कवि-समयो की तरह वे भी अलौकिक तथा परम्परा-प्राप्त होते हैं। 'परकाय-प्रवेश' 'लिंग-परिवर्तन' 'सत्य-क्रिया' 'किसी बाह्य वस्तु मे प्राण का बसना' आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं। इनका उपयोग प्रमुख रूप से लोक-कथाओ मे होता है तथा साहित्य मे जहाँ कही भी इनका उपयोग हुआ है, लोक-कथाओ के कारण ही हुआ है।

(२) इनके अलावा कुछ अभिप्राय ऐसे भी होते हैं, जिन्हे बिल्कुल तो असत्य नही कहा जा सकता, परन्तु वास्तविकता की दृष्टि से उन्हे बिल्कुल सच्चा भी नही कहा सकता, वैसे यथार्थ से इनका सम्बन्ध कुछ-न-कुछ अवश्य रहता है। 'किसी विशाल पक्षी की पूंछ पर बैठकर यात्रा करना', 'देवदूत श्वेतकेश', स्वप्न मे

१—कथासरित्सागर—२, २।

2—I have since found the Jain writers scarecley ever let pass opportunity of ascribing to noble women pregnant with a future saint or emperor bringing to perform good deeds while in this condition. it is with these authors not a bright invention but a cut and dried cliche. When they arrive at this point in the course of their chronicles they take the motif out of it's pigeon-hole to put it back again for use on the next similar occasion.

—Bloomfield Ocean of Story—Vol.7, Foreword, P. 7.

भावी नायिका का दर्शन', 'समुद्र-यात्रा के समय जलपोत का टूटना या डूबना तथा काष्ठफलक के सहारे नायक-नायिका की जीवन रक्षा', 'उजाड़ नगर का मिलना आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं। इस तरह के अभिप्राय मुख्य रूप से कवि-कल्पित होते हैं। अनुकरण और बहुत अधिक प्रयोग के कारण वे रूढ़ि बन जाते हैं।

कथानक-रूढ़ियों के मूल स्रोत

अभिप्रायो के मूल स्रोतो की जानकारी प्राप्त करने के लिये शिष्ट साहित्य के निर्माण के पूर्व के लोक-प्रचलित परम्परागत अवदानो (मिथ्स), कथाओ, निजन्धरी आख्यानो (लिजेन्डस) तथा गाथाओ (बैलेड्स) पर विचार करना आवश्यक है। क्योकि आधुनिक युग के पूर्व का सम्पूर्ण शिष्ट साहित्य उक्त अवदानो, कथाओ आदि से बहुत प्रभावित है। आधुनिक युग का साहित्य यथार्थोन्मुख तथा बौद्धिकतापूर्ण है। इसलिये उसमे पूर्वप्रचलित कथानक-रूढियो का अभाव है। वे मध्ययुग तथा उसके पूर्ववर्ती युगो के शिष्ट साहित्य मे ही प्रयुक्त हुई हैं, कारण उन युगो का शिष्ट साहित्य भी मूलत. उसी ऐतिहासिक—पौराणिक चेतना और धार्मिक-सामाजिक विश्वासो तथा रीति नीतियो की देन था जो तत्कालीन लोक-कथाओ, अवदानो एवं निजन्धरी आख्यानो का मूलाधार थी। यहा बहुत संक्षेप मे उन अवदानो, लोक-कथाओ आदि की उत्पत्ति के विषय मे विचार किया जायगा।[1]

अवदान और लोककथा

अवदानो एवं लोककथाओ की उत्पत्ति आदिम मानव-समाज मे समानान्तर रूप से हुई थी। अवदान-कथाएं देवताओ के आश्चर्यजनक तथा अलौकिक कार्यों की कहानिया हैं पर उनमें सृष्टि की उत्पत्ति, जातियो तथा वंशो, स्वर्ग, नरक आदि बातों का भी वर्णन होता है। परन्तु लोककथाएं मुख्यत. मानवजीवन की घटनाओ, मानवीय आवेगों तथा आचारगत पाप-पुण्य की बातो का वर्णन करती हैं। ये घटनायें मूलतः यथार्थ पर आधृत होते हुए भी प्रायः कल्पनाजनित अतिशयोक्ति से भरी होती हैं। उनमे यथार्थ मानवीय अनुभूतियो को ही कल्पना द्वारा अतिरंजित करके इस रूप मे उपस्थित किया गया रहता है कि आधुनिक तर्कशील व्यक्ति के लिये वे असम्भव और अमान्य प्रतीत

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक-रूढ़ियां · डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ३१।

होती हैं ।[1] निजन्धरी आख्यानो और लोकगाथाओं में भी यही बात दिखाई पड़ती है। बच्चो के समान आदिम मानव भी बहुत अधिक कल्पनाशील था। सभ्य युगों के मनुष्य की भांति उसके सोचने का ढंग तर्कपूर्ण नही था क्योकि वह मानवविकास के इतिहास की बाल्यावस्था का व्यक्ति था। बालक के लिये जिस प्रकार ज्ञान के विविध क्षेत्र विभक्त नही होते तथा इच्छा-शक्ति एवं क्रियाशक्ति का कार्य-विभाजन स्पष्ट नही होता, अपितु दोनों परस्पर गुम्फित होती हैं, उसी प्रकार आदिम मानव के सम्पूर्ण कार्य उसकी अनुभूतियों तथा इच्छाओ की बाह्याभिव्यक्ति होते थे। वे अनुभूतिया और इच्छाएं, कल्पना, दिवास्वप्न और इच्छापूर्ति की प्रवृत्तियो से पूर्णत: आवेष्ठित होती थीं। इसी कारण आदिम मानव के कार्यों—पूजा-अभिचार (रिचुअल्स), अवदान, कलात्मक कार्य आदि मे भी कल्पना, दिवास्वप्न और इच्छापूर्ति की प्रवृत्तियों का प्राधान्य दिखाई पड़ता है। अवदानो की उत्पत्ति आदिम मानव के पूजा अभिचारो से ही हुई थी। लेकिन स्पेन्स के अनुसार अवदानो का, जो पूजा-अभिचार के साथ संयुक्त होते थे, उद्देश्य उन अभिचारों का रूप स्थिर करना तथा उनके संकेतो और पारिभाषिक शब्दो को सुरक्षित रखना था।[2] लोककथाओ का उद्देश्य यद्यपि मुख्यतया मनोरंजन था, परन्तु उनकी कथ्य-वस्तु भी अवदान कथाओं से सम्बन्धित अथवा गृहीत होती थी। यह सम्बन्ध इतना घनिष्ठ होता था कि प्राचीन अवदानो और लोककथाओ मे अन्तर करना कठिन हो जाता है। एक ही कथा कभी-कभी अवदान के रूप मे दिखाई पड़ती है और कभी लोककथा के रूप में।[3] प्राकृतिक वस्तुओ के मानवीकरण की प्रवृत्ति भी दोनो मे समान रूप से

1—An analysis of folk tales shows that they deal almost throughout with events that may occur in human society, with human passions, virtues and vices. Sometimes the events are quite plausible, but more often they are fantastic and of such a character that they can not have had their origin in human experience but may be understood as the results of the play of imagination with every day experiencc—

General Anthropology, p. 610.

2—'The myth which accompanies the ritual helps to standardize it and preserve it's terms intact so that it will continue to be as efficacious as it was in the hands of these supernatural beings who invented it... The outlines of Mythology, P. 5

3—'It is impossible to draw a sharp line between myths and folk tales because the same tales which occur as myths apPear also in the form of folk tales... Thus the same tale would at one time be classed as a myth and at another time as a fo tale'...

General Anthropology, p. 609.

दिखलाई पड़ती है। इससे जाहिर है कि दोनो का रूप आरम्भ में अविभक्त था तथा उनकी उत्पत्ति एक ही मूल स्रोत-पूजा अभिचारो-से हुई थी।[1] प्राचीन निजन्धरी आख्यानो तथा लोक-गाथाओं का रूप कुछ तो वास्तविक घटनाओं तथा ऐतिहासिक चरित्रो के आधार पर, किन्तु ज्यादातर पूर्ववर्ती अवदानो तथा लोककथाओं के सादृश्य पर या उनकी सामग्री लेकर विकसित हुआ। इस प्रकार अवदान, निजन्धरी आख्यान, लोककथा तथा लोकगाथा, सभी आरम्भिक मानव-समाज के विश्वासो, रीतिरिवाजों तथा कल्पनाओ जिनका प्रतिबिम्बन तत्कालीन पूजा-अभिचारो मे होता था, के आधार पर ही विकसित हुये हैं।

प्राचीन कथाओ मे प्रयुक्त कथानक 'रूढिया भी उन्ही आदिम विश्वासो, रीतिरिवाजों, पूजा-अभिचारो तथा प्रतीक-लाछनो (टोटमो) के आधार पर निर्मित हैं। यद्यपि ये बातें परवर्ती युगो मे समाज के सभ्य हो जाने पर पीछे छूट गयी अथवा उनका रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो गया परन्तु वे कथाभिप्राय प्राचीन अवदानो, लोककथाओ तथा निजन्धरी आख्यानो मे पहले की तरह बने रहे तथा वही से वे शिष्ट साहित्य में भी गृहीत होते रहे। शिष्ट साहित्य मे प्रयुक्त कथाभिप्राय दो कोटियो के होते हैं, लोकाश्रित तथा कवि-कल्पित। लोकाश्रित अभिप्राय प्राय. आदिम मानव-समाज के प्रचलित विश्वासो तथा रीतिरिवाजो के ही परिवर्तित रूप अथवा भग्नावशेष हैं, किन्तु कल्पित अभिप्रायो मे भी उन प्राचीन विश्वासो का आधार सर्वथा छूटा नही है। कविकल्पित अभिप्रायो मे परवर्ती सभ्य युगो की सामन्ती समाज-व्यवस्था मे प्रचलित विश्वासो, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक रीतिरिवाजो और स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धो की अभिव्यक्ति अधिक हुई है तथा साथ ही वे विशिष्ट कवियो की कलात्मक बुद्धि की उपज होने से अधिकतर कल्पना तथा सभावना पर आधृत हैं, जिनके कारण मध्ययुगीन कथा-साहित्य ज्यादा रोमाचक तथा मनोरंजक बन पडा है। करकंड चरिउ तथा मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे लोकाश्रित एव कवि-कल्पित दोनो प्रकार के अभिप्राय प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन अवदानों तथा लोककथाओ मे प्रयुक्त अभिप्राय विशुद्ध रूप से लोकाश्रित है। इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है कि मानव की कल्पना-शक्ति तथा इच्छा पूर्ति की प्रवृत्ति का हाथ उनके निर्माण मे भी उसी तरह है जिस तरह कवि-कल्पित अभिप्रायो के निर्माण मे, किन्तु उनमे कवि-कल्पित अभिप्रायो जैसी कवि की बौद्धिकता-पूर्ण कला-निपुणता नही दृष्टिगोचर होती। ये लोकाश्रित अभिप्राय आदिम युग के मानव समाज की सामूहिक अनुभूतियो की सहज अभिव्यक्ति हैं। अपनी रोमाचकता, आश्चर्य

1—'The ritual existed, and the tale originated from the desire to account for it'—Ibid., p. 627.

तत्व तथा सहज रंजकता के कारण ही वे परवर्ती युगों के शिष्ट साहित्य में भी लगातार प्रयुक्त होते रहे। लोककथाओं मे आज भी वे सभी देशो में समान रूप से प्राप्त होते हैं।[1]

अभिप्रायों की व्यापकता और समानता

आदिम मानव-समाज मे ये धारणायें जीवन-सत्य के रूप मे विद्यमान थी। इसलिये तत्कालीन पूजा-अभिचारो, अवदानो, लोककथाओ तथा निजन्धरी आख्यानो मे इसका मिलना स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। लोककथाओ, अवदानो तथा निजन्धरी आख्यानों मे ये ही धारणायें कथाभिप्राय के रूप मे अभिव्यक्त हुई हैं। विश्व के विभिन्न देशों के अवदानो तथा लोककथाओ के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि इनमें से अधिकाश कथाभिप्राय विश्व के विभिन्न देशो मे थोडे-बहुत रूप-भेद के साथ समान रूप से पाये जाते हैं। जे० ए० मैक्यूलाश ने अपनी पुस्तक 'चाइल्डहुड ऑव फिक्शन' में आदिमानव के लोकविश्वासो पर आधारित अनेक कथाभिप्रायो जैसे-परकाय-प्रवेश, रूप परिवर्तन, जीवन-निमित्त-वस्तु, निषिद्ध कक्ष, मंत्राभिषिक्त अस्त्र आदि-की विश्वव्यापकता पर प्रामाणिक ढंग से सोदाहरण विचार किया है। उन अभिप्रायों के अध्ययन से आदिम युग के मानव की चिन्तन-प्रक्रिया का पता लगता है। यह चिन्तन-प्रक्रिया किसी एक ही देश मे नही थी। जो जातिया आज सभ्य कही जाती हैं, उन सबके पूर्व पुरुष समान धारणाओं से अनुप्रेरित होते थे और आस्ट्रेलिया, अफीका, ग्रीनलैड, मैलेनेशिया आदि देशो की जनजातियो मे आज भी वे उसी रूप मे वर्तमान हैं।[2] इस प्रकार मैक्यूलाश ने यह प्रमाणित किया है कि विकास के समान धरातल पर और समान बाह्य परिस्थितियों मे सुदूरवर्ती मानव-मंडलियों के सोचने-विचारने की पद्धति भी एक जैसी ही होती है, चाहे उनमें प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो या न हो। सर ग्रेफ्टन इलियट स्मिथ तथा उनके मत को मानने वाले अन्य विद्वानो का तो यहा तक कहना है कि सभी अवदानों की उत्पत्ति एक ही देश-मिस्र से हुई और वही से वे विभिन्न देशो मे फैली। यद्यपि बहुत से विद्वान उपर्युक्त विद्वानों के मत से असहमत हैं किन्तु विस्तार भय से सबके

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक-रूढ़िया—डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ३४।

2—'Wherever we trace the working of the savage mind in Australia, Africa, Greenland, Malanesia or elsewhere—these ideas are found unaltered and they are ideas which on governed the minds of the ancestors of all civilised races.'
The Childhood of Fiction, p. 181.

मतो का विवेचन यहा सम्भव नही है। आदिम मानव के विश्वासों, रीति-रिवाजों तथा पूजा-अभिचारो की दृष्टि से लोकाश्रित कथाभिप्रायों को निम्नलिखित वर्गों मे बांटा जा सकता है—

१—सर्वचेतनावादी
२—अतिप्राकृत शक्तियो से सम्बन्धित
३—जातीय सम्बन्धों पर आधारित
४—पूजा अभिचारो से सम्बन्धित
५—रीतिरिवाजो से सम्बन्धित

सर्वचेतनावाद

आदिम युग की बर्बरावस्था मे मनुष्य सर्वचेतनावादी था, अर्थात् वह सृष्टि की सभी वस्तुओ को मानवीकृत रूप मे देखता और उनमे अपने ही समान चेतना, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति का आरोप करता था। इस कारण वह भौतिक वस्तुओ मे आधिदैविक शक्ति की प्रतिष्ठा करके उनके साथ मानवीय व्यवहार करता था।[1] भयंकर बाढ़, आँधी, वर्षा, मेघ-गर्जन, वज्रपात, प्रस्तर-स्खलन आदि प्राकृतिक क्रियाओ मे वह अदृश्य शक्तियो की इच्छा का आरोप करता था। इसी प्रकार उसने नदियो, पर्वतो, शिलाखंडों, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रो मे मानवीय चेतना का आरोप किया जो बाद मे दैवी शक्तियो के रूप मे माने जाने लगे। एक बार जब प्राकृतिक वस्तुओ मे इच्छा-शक्ति की स्थिति मान ली गयी तो मानव-कल्पना के लिए उन वस्तुओ को मानवीय आकृति प्रदान कर देना कोई कठिन नही था। अतः मेघो के देवता इन्द्र की कल्पना की गयी, जो प्रसन्न होकर वर्षा करता तथा कुपित होकर अतिवृष्टि, वज्रपात तथा अनावृष्टि करता है। कई देशो मे यह कल्पना की गई कि मेघो का देवता एक पक्षी है, जिसके पंखो की फड़फड़ाहट से गर्जन होता है तथा आँख खुलने से बिजली चमकती है। इसी तरह आदिम मानव ने अन्य प्राकृतिक वस्तुओ मे अतिप्राकृत शक्तियो वाले देवी-देवताओ-राक्षसो आदि की कल्पना की। आदि बर्बर जातियाँ किसी विशेष पशु, पक्षी या वृक्ष को अपने आदिम पुरुष के रूप मे मानती थी और आज की वनवासी जातियों मे भी यह मान्यता वर्तमान है। आदिम मानव अपने तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं, विशेष रूप

---

1. 'In animistic belief and practice, therefore, man created the universe in his own image. He extended his human attitudes toward his fellows to an anthropomorphic universe.'
—Ruth Benedict, Ibid-, P. 642.

से चेतन प्रकृति-पशु-पक्षी आदि मे कोई अन्तर नहीं देखता था आस्ट्रेलिया और उत्तरी अमेरिका की कुछ जन-जातियों मे यह मान्यता है कि प्रारम्भ में मानव और पशु-पक्षी मे कोई अन्तर नही था, वे एक ही थे। बाद मे दैवी शक्तियो ने असंन्तुष्ट होकर तीनों की अलग जातियाँ बना दी। लेविस स्पेन्स का मत है कि टोटमों का विकास इसी प्रकार के विश्वासो से हुआ होगा।[1]

पहले कहा जा चुका है कि कथाभिप्राय दो प्रकार के होते हैं, लोकविश्वासो पर आधारित और कवि-कल्पित। लोकाश्रित कथाभिप्राय का मूलाधार भ्रममूलक विश्वास होता है जब कि कवि-कल्पित अभिप्राय ठोस वास्तविकतामूलक सम्भावनाओ पर आधारित होते हैं। आदिम समाज के लोक विश्वास, चाहे वे सर्वचेतनवाद से सम्बन्धित हो अथवा प्रथाओ, लोकाचारों तथा मंत्र-तंत्रादि से, मानव की अज्ञात तथा अप्राप्त के प्रति तीव्र जिज्ञासा, उसे जानने की बलवती उत्कण्ठा और उसकी व्याख्या के भावात्मक प्रयत्न तथा उसे प्रभावित करने के लिए व्यावहारिक उद्योग की लगातार क्रियाशील प्रक्रिया के द्वारा निर्मित तथा विकसित होते हैं। इसके विपरीत कवि-कल्पित कथाभिप्राय मुख्यत: जीवन की वास्तविकता का आधार लेकर सम्भावनामूलक अतिशयोक्ति तथा कल्पना के अमर्यादित प्रयोग द्वारा निर्मित हुए हैं। उपयुंक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अनेक कल्पित अभिप्रायो के उपादान परम्परागत सर्वचेतनावादी विश्वासो पर आधृत लोककथाओ तथा निजन्धरी आख्यानो से भी ग्रहण किये गए हैं अथवा किसी धर्म या सम्प्रदाय के उद्देश्यो के प्रचारार्थ पूर्व प्रचलित अवदानो और धर्मकथाओ से लिए गए हैं। कुछ अभिप्राय शरीर वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यो को ग्रहण कर भी निर्मित हुये हैं।[2] इसी प्रकार जीवन के दूसरे क्षेत्रो से भी ये उपादान ग्रहण किये गए हैं, जिनका अलग-अलग विवेचन यहाँ संभव नही है। इसलिए उपादानों की दृष्टि से मुख्य कल्पित कथाभिप्रायो को निम्नलिखित पाँच वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है—

1—'Certain tribes of low culture in Australia and North America believe that at one time men and animals were not yet differentiated that they possessed in ancient times, a common and rather shapeless form. The creative spirits dissatisfied with this, separated these in distinct types into men, animals and birds. It is not possible that in such stories as this. the germ of the Folemic idea may be found ?'

The Outlines of Mythology, P. 22.

२—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक-रूढ़ियाँ—डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ७८।

(१) रोमांचक और साहसिक कार्यों से सम्बद्ध, (२) प्रेममूलक, (३) सामंती आचारों पर आधारित, (४) शरीर वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक, (५) सर्वचेतनावादमूलक।

(१) रोमांचक और साहसिक कार्यों से सम्बद्ध : इस वर्ग के अभिप्रायों का प्रयोग मुख्यतः नायक के साहस, शौर्य तथा अद्भुत कार्यों के प्रदर्शन द्वारा कथा में चमत्कार पैदा कर उसे अत्यधिक मनोरंजक बनाना होता है। ऐसी कथाओं के अभिप्रायों का रोमाचकता से निश्चित रूप से सम्बन्ध होता है। इसीलिए यूरोप मे मध्यकाल मे इस तरह के जो कथा-काव्य लिखे गये उन्हे 'रोमान्स' कहा जाता है। रोमाचकता के लिये सर्वाधिक मौका भयंकर यात्रा, युद्ध, आखेट आदि कार्यों में उपलब्ध होता है। अतएव ये अभिप्राय भी समुद्रयात्रा, वन मे आखेट, अन्य किसी कार्य से भयंकर वन-पर्वत से होकर यात्रा, राक्षस, दैत्य, हाथी से युद्ध आदि की ही घटनाओ से प्राय: सम्बन्धित होते हैं। इन अभिप्रायो की एक अन्य विशेषता यह है कि इनका अन्तिम फल प्राय: राज्य-प्राप्ति या कन्या-लाभ होता है।

(२) प्रेममूलक अभिप्राय : कथाओ मे रोमांचकता लाने के लिये साहसिक कार्यों तथा रोमाचक घटनाओ के साथ-साथ प्रेम सम्बन्धी ऐसी घटनाओ का भी अत्यधिक वर्णन मिलता है, जो कवियों तथा कथाकारो की सम्भावनामूलक कल्पना की उपज हैं। प्रेम एक शाश्वत सत्य है, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति और सहायक साधनो का रूप विभिन्न युगो में परिवर्तित होता रहता है। नायक-नायिका का एक दूसरे को देखकर या साहचर्य से परस्पर प्रेम करना सभी युगो का सामान्य नियम है, लेकिन मध्यकाल मे राजा अथवा राजकुमार किसी राजकुमारी के रूप एवं गुण की प्रशंसा सुनकर ही उसपर आकर्षित हो जाता था अथवा नही भी होता था तो उसमे बलपूर्वक कन्या-हरण की शक्ति होने के कारण किसी दूर देश की राजकुमारी के रूप व गुण के सुनने मात्र से उस पर आसक्त होने और उसे हरण कर लाने अथवा बलपूर्वक व्याह लाने की सम्भावना तो थी ही। अत. इसी सम्भावना के आधार पर रूप-गुण-श्रवण-जन्य प्रेम, चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम और मन्दिर मे राजकुमारी का देव दर्शन के लिये जाना और वहाँ नायक का उससे मिलन तथा बलपूर्वक हरण आदि कथाभिप्रायो का जन्म हुआ है।

(३) सामन्ती सामाजिक आचारों पर आधारित : अधिकांश कल्पित कथा-भिप्राय ऐसे भी हैं, जिनमे कल्पना वास्तविकता का साथ कही नही छोड़ती। ऐसे अभि-प्रायो मे तत्कालीन सामाजिक आचारों तथा प्रथाओं का आधार लिया गया है। सामाजिक आचारो में प्रमुख स्थान यौन आचारो का है। इसी कारण इस वर्ग के अधिकांश अभिप्राय सामन्ती युग के यौन आचारो से ही सम्बन्धित हैं। सामन्ती युग मे स्त्री पुरुष के

विलास का साधन मात्र थी। राजा एवं सामन्त कई विवाह करते थे तथा उनके अन्तः-पुर मे सैकड़ों सुन्दरियों परिचारिकाओं अथवा रखेलियों के रूपमे रहती थीं। समाज मे पुरुष की कामतृप्ति के लिये गणिकाओं की भी अधिकता थी। धनी तथा अधिकारी व्यक्ति किसी भी व्यक्ति की सुन्दर स्त्री को कुटनियों अथवा दूतियों द्वारा बहकाकर बुलवा लेते अथवा बलपूर्वक उसका सतीत्व नष्ट करते थे। राजा बुढापे मे भी विवाह करते थे, इसलिये उनकी अनेक रानियाँ परिचारको तथा राज्यकर्मचारियों से अवैध यौन-सम्बन्ध स्थापित करती थी तथा कभी-कभी अपने सौतेले तरुण पुत्र पर भी आसक्त होकर उससे प्रेम-प्रस्ताव करती थी। एक पुरुष की अनेक पत्नियाँ होने का परिणाम यह होता था कि गुप्त षड्यन्त्र करके किसी स्त्री को कुल्टा अथवा नरभक्षी सिद्ध कर घर से निकलवा दिया जाता था। इन सामाजिक आचारो के आधार पर तत्कालीन कवियों तथा कथाकारों ने अनेक कथा, प्रबन्ध, नाटक आदि का सृजन किये हैं जिनमे तत्सम्बन्धी अभिप्रायों का प्रयोग मिलता है। सामन्ती युग के राजाओ के अन्त:पुरो में सैकड़ो हजारो स्त्रियो के होने का अर्थ ही था, यौन आचारो मे भ्रष्टता की बहुलता।[१]

(४) शरीर-वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक अभिप्राय : कुछ कथाभिप्रायों का सम्बन्ध शरीर विज्ञान तथा मनोविज्ञान से है। गर्भवती स्त्री की दोहद कामना और लिंग परिवर्तन के अभिप्राय शरीरवैज्ञानिक तथ्यो पर आधृत हैं। गर्भिणी स्त्री के मन मे असामान्य वस्तुओ को प्राप्त करने अथवा अखाद्य वस्तुओ-मिट्टी अथवा मिट्टी के पके बर्तन-खाने की इच्छा होती है, यह एक अनुभव सिद्ध तथ्य है। यह भी सत्य है कि गर्भवती स्त्री का बहुत आदर किया जाता है, इसलिये उसकी खाने पीने की इच्छा और अन्य सभी इच्छाओं को पूरा किया जाता है। इस वैज्ञानिक तथ्य को सम्भावना के आधार पर कथाओं मे इतना अतिरंजित किया गया है कि वह कथाओ का प्रिय अभिप्राय बन गया है। लिंग-परिवर्तन तथा नपुंसक बनाने की बात भी अधिकांश कथाओ मे आती है जो आधुनिक शल्य चिकित्सा विज्ञान के अनुसार वैज्ञानिक तथ्य है।

मनोवैज्ञानिक कथाभिप्रायों में प्रतीकात्मक स्वप्न, भविष्य सूचक स्वप्न तथा देवदूत श्वेत केश के अभिप्राय अधिक महत्वपूर्ण हैं। ब्लूमफील्ड तथा फादर एलविन वेरियर ने ऐसे अभिप्रायो को मानसिक कथाभिप्राय (साइकिक मोटिफ) कहा है[२] स्वप्न सम्बन्धी

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक—रूढ़ियाँ—डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ८६।

२—मिथ्स आव मिडिल इंडिया—फादर एलविन वेरियर-दि लाइफ एण्ड स्टोरीज आव जैन सेवियर पार्श्वनाथ—एम० ब्लूमफील्ड।

कथानक-रूढ़ियां मनोवैज्ञानिक हैं। आधुनिक स्वप्न-विज्ञान मे स्वप्न मे सर्प-दंशन को सेक्स का प्रतीक माना जाता है। भारतीय आचार्यों ने भी स्वप्न में सर्पदर्शन या सर्प दंश का बड़ा अच्छा फल माना है।[1] स्वप्न मे चन्द्रमा को देखना या गर्भिणी स्त्री का यह स्वप्न देखना कि चन्द्रमा उसके पेट मे प्रवेश कर रहा है, इस बात का द्योतक माना जाता था कि जो पुत्र होगा वह राजा अथवा चक्रवर्ती होगा। इसी प्रकार स्वप्न में सिंह-दर्शन राज्य-प्राप्ति का सूचक माना जाता था। अतएव इसी विश्वास के आधार पर अवदानों, निजन्धरी कथाओ, लोककथाओ तथा शिष्ट साहित्य, सभी मे प्रतीकात्मक तथा भविष्यसूचक स्वप्नो का कथाभिप्रायो के रूप मे प्रायः प्रयोग हुआ है। देवदूत श्वेतकेश का अभिप्राय बौद्ध तथा जैन कथासाहित्य मे धार्मिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए बहुत प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उसके मूल मे मनोवैज्ञानिक तथ्य विद्यमान है। इसमे सिर मे एक भी श्वेत केश देखकर राजा अथवा और कोई व्यक्ति राज्य अथवा घर छोड़कर विरक्त हो जाता है। सफेद बाल बढ़ती आयु के सूचक हैं तथा वृद्धावस्था मे धार्मिक भावना का उद्भूत होना स्वाभाविक है। इसलिये कथाकारो ने किसी व्यक्ति को विरक्त बनाकर राज-त्याग कराने के लिये इस अभिप्राय का उपयोग किया है।[2]

(५) सर्वचेतनावाद मूलक कल्पित अभिप्राय : इसका उल्लेख पहले विस्तार से किया जा चुका है। बातचीत करने वाले पशु-पक्षियों से सम्बन्धित लोकाश्रित कथाभिप्रायो का जन्म इसी विश्वास के कारण हुआ है।

हिन्दी के कई कवियो ने नायिकाओ या नायक-नायिकाओ के नाम पर प्रेमाख्यानो की सृष्टि की है। भारतीय कथा-साहित्य मे इसके पर्याप्त दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। फारसी की मसनवियो की रचना मात्र नायिकाओ के नाम पर नही की गई है, जबकि भारतीय साहित्य मे नायिका के नाम पर प्रबन्ध-काव्यो की रचना काफी पहले से ही होती चली आ रही है। संस्कृत साहित्य मे सुबन्धु की वासवदत्ता, श्रीहर्ष की रत्नावली बाण की कादम्बरी इत्यादि गद्य काव्य और नाटिकायें विख्यात हैं तथा नायिकाओ के नाम पर भी उनका निर्माण हुआ है। कुतूहल कवि की 'लीलावती कथा' प्राकृत रचना है। उद्योतन सूरि की 'कुवलयमाला कथा' भी विख्यात है। श्वेताम्बर जैन कवि धनपाल की 'तिलकमंजरी' संस्कृत मे लिखी गई है। पादलिप्त सूरि की 'तरंगावती' ईसवी सन् की पाँचवी शताब्दी मे रची गई है किन्तु अभी तक यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है। इसी को आधार

१— उरगो वा जलौका वा भ्रमरो वापि यं दशेत्।
आरोग्यं निर्दिशेत्तस्य धनलाभं च बुद्धिमान। —चरक।

२—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यो मे कथानक-रूढ़ियाँ—डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ८८।

बनाकर सन् ईसवी की सोलहवीं शताब्दी में 'तरंगलोला' की सृष्टि हुई है। इस प्रेमाख्यान का उपयोग जैन कवियों ने धर्म-प्रचारार्थ किया है।[१] इस तरह से प्राकृत में रचित 'मलयसुन्दरी कथा' में राजकुमारी मलयसुन्दरी तथा राजा महाबल की प्रणय-कथा है। सन् ईसवी की पन्द्रहवी शताब्दी मे माणिक्य सुन्दर ने 'महाबल-मलयसुन्दरी कथा' की रचना की है। इसी के आधार पर जयतिलक ने 'मलयसुन्दरीचरित्र' लिखा।[२] मयूर कवि ने दसवी शताब्दी मे 'पद्मावती कथा' का सृजन किया।[३] ठीक इसी तरह से सन् ईसवी की ग्यारहवी शताब्दी के अन्त मे धनेश्वर ने प्राकृत में 'सुर सुन्दरी चरित्रम्' की सृष्टि की। मलधारी देवप्रभ सूरि का 'मृगावती चरित्र भी उल्लेखनीय है। इसमें उदयन और उनकी पत्नियाँ वासवदत्ता एवं पद्मावती सम्बन्धी कहानी वर्णित है। मलधारी देव' प्रभ सूरि का समय संभवत ईसवी सन् की तेरहवी शताब्दी है। देवसेन गणि की कृति 'सुलोचना चरिउ' संभवत तेरहवीं शताब्दी के अन्त मे लिखी गई है। इसमे सुलोचना की कहानी वर्णित है। साधारण कवि की 'विलासवईकहा'[४] (विलासवती कथा,) कुतूहल कवि की लीलावती के समान ही है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि मात्र नायिकाओं के नाम पर ही ग्रन्थो की रचना नही हुई है अपितु नायकों या नायक-नायिकाओं के संयुक्त नामो पर भी ग्रन्थ लिखे गये हैं। भवभूति का 'मालती-माधव' उदाहरण के लिये लिया जा सकता है।

उपर्युक्त नामो के विषय मे एक विशिष्ट बात यह भी है कि नायिकाओ अथवा राजाओ की पत्नियो मे से अधिकाश के नामो के साथ 'वती' या 'मती' प्रत्यय जुडा हुआ है। भास के नाटक मे पद्मावती का नाम आया है। लीलावती नाम से अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं तथा कई ग्रन्थो की नायिका लीलावती ही है। कुतूहल कवि की लीलावती की चर्चा ऊपर की गई है। कथासरित्सागर मे एक असुर की पत्नी का नाम लीलावती है। हरिभद्र की समराइच्चकहा (ईसवी सन् की आठवी शताब्दी से पूर्व) मे एक रानी का नाम लीलावती बतलाया गया है। 'समराइच्चकहा' मे ही सनत्कुमार-विलासवती की प्रेमकथा का भी उल्लेख है।[५] जिनेश्वर सूरि की 'लीलावती कथा' १०३५ ई० की है।[६] नेमिचन्द्र की कन्नड भाषा मे लिखी लीलावती का जिक्र भी मिलता है।[७] नेमिचन्द्र

१—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ५५, ५६।
२—इ० लि० (खण्ड २), पृ० ५२३-५२४।
३—हि० स०, पृ० २६०।
४—के० जे० म०, पृ० १६।
५—इ० लि०, पृ० ५२४।
६—वही, पृ० ५४३ (पादटिप्पणी ३)।
७—ली० क०, पृ० ३२।

के इस प्रेमाख्यान लीलावती मे कहा गया है कि उसकी कुल देवी पद्मावती थी[1] उसके मंदिर मे वह हमेशा पूजा करने जाती थी। उदयन की माता का नाम मृगावती कहा गया है।[2] भवदेव सूरि के पार्श्वनाथ चरित्र से स्पष्ट है कि अवतार लेने के पहले चौथे जन्म मे विद्याधर-राजविद्युद्गति के पुत्र हुए। उनकी माता का नाम तिलकावती कहा गया है तथा पत्नी का नाम पद्मावती। पुष्पदन्त के णायकुमार चरिउ मे लक्ष्मीमती, विमलमती इत्यादि नाम आये हैं। मुनिकनकामर के करकंडचरिउ मे पद्मावती आदि नाम मिलते हैं। इस तरह के और भी पर्याप्त दृष्टान्त मिल सकते हैं जो इसके सूचक हैं कि नायिकाओ तथा रानियो के नाम प्रेमाख्यानक काव्यों मे व्यवहृत हुए हैं एवं यह परम्परा बराबर चलती रही है।

भारतीय प्रेमाख्यान-साहित्य की रूढियो मे राजा का चक्रवर्ती होने के लिये किसी राजकुमारी से विवाह करना काफी पहले से प्रचलित रहा है। इसी तरह से राजाओ का सिंहल की राजकुमारी से विवाह, समुद्रयात्रा और जहाज का डूबना कथा-साहित्य की एक प्रमुख रूढि रही है। श्रीहर्ष की 'रत्नावली' एवं राजशेखर की कर्पूरमंजरी मे इस भविष्यवाणी का उल्लेख मिलता है कि उनकी नायिकाओ से जो कि राजकुमारियां हैं विवाह करेगा वह चक्रवर्ती होगा। कुतूहल की लीलावती मे बतलाया गया है कि उसके साथ जिसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती राजा होगा।[3] रत्नावली और लीलावती दोनो ही सिंहल कुमारियां हैं। कथासरित्सागर की एक कहानी मे कहा गया है कि उज्जयिनी के विक्रमादित्य का विवाह मदनलेखा के साथ हुआ था तथा वह सिंहल के राजा वीरसेन की पुत्री थी। दशकुमार चरित में नौका डूबी का प्रसंग (१.६) मिलता है।

धनपाल के 'भविसयत्तकहा' मे भविष्यदत्त का अपने सौतेले भाई बंधुदत्त तथा उसके साथ के पाच सौ व्यापारियो के कंचन द्वीप मे जाने का उल्लेख मिलता है। मार्ग मे आँधी के कारण नौका पथभ्रष्ट हो मैनाक द्वीप मे जा लगती है। बंधुदत्त उसे धोखे से वही पर छोडकर अपने साथियो के साथ चला जाता है। वहाँ एक उजड़े नगर मे भविष्यदत्त एक रमणी को देखता है। एक असुर को सहायता से जो कि उस नगर को उजाड़ डाला था उसका विवाह उस सुन्दरी से हो जाता है। पर्याप्त धन के साथ वह अपनी पत्नी के साथ घर आ रहा था। रास्ते मे बंधुदत्त अपने मित्रो सहित उससे मिला। वे लोग निष्फल होकर लौट रहे थे तथा बहुत ही बुरी स्थिति मे थे। भविष्यदत्त ने उन

१—वही, पृ० ३५।
२—ए० सं० लि०, पृ० १९३।१९४।
३—ली० क०, गाथा १५८।

लोगों का आदर सत्कार किया किन्तु पुनः बंधुदत्त उसे धोखा देकर उसकी पत्नी को लेकर अपने मित्रों सहित चल देता है। लौटते समय भी उनकी नौका पथभ्रष्ट हो जाती है। किसी तरह वे लोग घर पहुँचते हैं। बन्धुदत्त भविष्यदत्त की पत्नी को अपनी भावी पत्नी बतलाकर विवाह को तैयारी करता है। समयानुसार एक यक्ष की सहायता से भविष्यदत्त भी पहुँच जाता है तथा पुनः अपनी पत्नी धन इत्यादि उपलब्ध करता है।

जिणदत्तचरिउ में भी सिंहल यात्रा तथा वहां की राजकुमारी से विवाह के प्रसंग आये हैं। जिनदत्त मगध राज्य के बसन्तपुर नगर के राजा का पुत्र है। अंग देश की चम्पा नगरी के सेठ की कन्या विमलमती से उसका विवाह होता है। व्यापार के लिये कुछ दिनो के पश्चात् जिनदत्त अनेक वणिकों के साथ सिंहल की यात्रा प्रारम्भ करता है। सिंहल के राजा की पुत्री श्रीमती उसे देखकर मुग्ध हो जाती है तथा उनका विवाह भी हो जाता है। अपार धन-सम्पत्ति के साथ वह अपने मित्रो सहित समुद्र यात्रा करते हुए घर को ओर प्रस्थान करता है किन्तु उसका एक सम्बन्धी धोखे से उसे समुद्र मे फेंक देता है। वह श्रीमती से विवाह करना चाहता है परन्तु श्रीमती अडिग रहती है। जिनदत्त बच जाता है तथा मणिद्वीप पहुँचता है और वहां शृंगारमती से उसका विवाह सम्पन्न होता है। बाद मे वह लौट आता है तथा सब ओर से सफलता प्राप्त करता है।

मुनिकनकामर के करकंड चरिउ मे करकंडु की सिंहल-यात्रा तथा रास्ते की कठिनाइयो का वर्णन है। करकंडु की पत्नी मदनावली को एक विद्याधर हरण कर ले जाता है। करकंडु पत्नी-वियोग से व्याकुल होकर निकल पडता है तथा सिंहलद्वीप मे पहुँचता है। वहां की राजकुमारी रतिवेगा से उसका विवाह होता है। करकंडु उसके साथ नौका से लौट रहा था उसी समय एक मच्छ के आक्रमण से नौका को बचाने के लिये करकंडु समुद्र में कूद पडा। मच्छ को तो वह मार डाला किन्तु एक विद्याधर की पुत्री ने उसका हरण कर लिया। पिता की आज्ञा से उसने उससे विवाह भी कर लिया। रतिवेगा समुद्र तट पर विकल थी। बाद मे करकंडु अपनी नयी पत्नी के साथ उससे आकर मिला।

धनेश्वर (सन् ११०० ई०[1] के लगभग) के शत्रुंजय महात्म्य मे एक भीम की कहानी मिलती है जो चोर तथा गया-गुजरा व्यक्ति था किन्तु था वह साहसी। उसके सिंहल[2] जाने का उल्लेख उस कहानी में आया है जहाँ वह पर्याप्त धन प्राप्त करता है।

---

१ - इ० लि० (भाग २), पृ० ५०३ पाद टिप्पणी २।

२—वही, पृ० ५०४।

कथा-सरित्सागर[1] मे ताम्रलिप्ति के राजा चंडसिंह की कहानी आयी है जिसमे वह अपने आश्रित सत्वशील को लंका द्वीप मे भेजता है कि वह वहाँ जाकर लंका के राजा से प्रस्ताव करे कि वह अपनी लडकी का विवाह राजा चंडसिंह से कर दे।

भवदेव सूरि के 'पार्श्वनाथ चरित' के आठवें सर्ग मे ताम्रलिप्ति नगर के सागरदत्त की कथा आई है जो सात बार सिहल की यात्रा करता है किन्तु नौका डूबने के कारण वहाँ पहुँच नही पाता।[2] आठवी बार उसे सफलता मिलतीहै और वहाँ बहुत अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है। लौटते समय उसकी नौका का एक नाविक उसे समुद्र मे फेंक देता है। एक लकडी के तख्ते पर वह बहता हुआ पाटलापथ नगर मे पहुँचता है। उसके श्वसुर जो व्यापार के लिए वहाँ गए थे उसे देखकर अपने साथ लौटा लाते हैं। घर आकर वह राजा की सहायता से उस नाविक से अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त करता है।

'पार्श्वनाथ चरित' के आठवें सर्ग मे ही बन्धुदत्त की कहानी भी आई है। वह नागपुरी के वणिक का पुत्र था। विवाह होते ही उसकी पत्नियो कीमृत्यु हो जाती है। ऐसा एक हो नही छ. बार हुआ। अततोगत्वा वसुनंद की पुत्री चन्द्रेलखा से उसका विवाह हुआ। किन्तु दुर्भाग्यवश उसकी भी वही गति हुई। स्थिति ऐसी आ गई कि उसे कोई भी अपनी लडकी देने को राजी नही होता था। सब लोग उसे 'बिषहस्त' समझने लगे। उसके पिता ने उसे खिन्न देखकर उसे सिहल भेजा। वहाँ उसने पर्याप्त धन कमाया। लौटते समय उसका जहाज डूब गया तथा वह लकडी के तख्ते के सहारे मणि-मुक्ताओ से परिपूर्ण एक द्वीप मे पहुँचा। एक विद्याधर की सहायता से वह कौशाम्बी पहुँचता है तथा प्रिय दर्शना से बिवाह करता है।

हितोपदेश[3] मे सिहल द्वीप के राजा जीमूतकेतु के पुत्र कन्दर्पकेतु की कहानी आई है। वह जहाज पर जाता है तथा विद्याधरो के राजा कन्दर्पकेलि की पुत्री रत्न-मंजरी को देखकर समुद्र मे कूद पडता है और अपने को सोने के शहर मे पाता है। उससे विवाह कर अधिक दिनो तक वह आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। शिवदास के शालिवाहन चरित मे उल्लेख मिलता है कि शालिवाहन के पुत्र त्रैलोक्य सुन्दर का विवाह सिहल के राजा सूर्यसिह की कन्या पद्मिनी से हुआ था।[4]

१—ओ० स्टो०, पृ० २०९-२११।

२—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ५९।

३—हितो०, पृ० ५७ (कन्दर्पकेतु का प्रसग)।

४—ली० क०, भूमिका, पृ० ५२।

उपर्युक्त वर्णित कथा-साहित्य मे सिंहल के वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि सिंहल द्वीप को समुद्र-स्थित समझा गया है किन्तु उसे एक भौगोलिक स्थान मानना समीचीन नही जान पडता। ऊपर जिन कहानियों का उल्लेख किया गया है उनमें केवल एक कुतूहल कवि की 'लीलावती कथा' ही ऐसी है जिसमें सिंहल जाने के रास्ते मे रामेश्वरम् का वर्णन है। विजयानन्द रामेश्वर[1] को नमस्कार कर सिंहल के लिये समुद्र-यात्रा करने की बात कहता है परन्तु आधी के कारण नौका गोदावरी के संगम पर पूर्वी समुद्र मे पहुँच जाती है। संभवत· यहां सिंहल-यात्रा की बात परम्परा पालन मात्र है। कन्नड भाषा मे लिखित नेमिचन्द्र (सन् ११७० ई०) की लीलावती में नायक कन्दर्प, लीलावती के लिये उत्तर की तरफ यात्रा करता है। कुतूहल कवि की लीलावती मे सप्तगोदावरी, भवानी के मन्दिर और नग्न पाशुपत से मिलने की बात कही गई है। इसी तरह नेमिचन्द्र की लीलावती मे गन्ध नदी, नदी के तट के उद्यान मे अम्बिका की मूर्ति तथा नदी किनारे जिन मन्दिर मे पूजा और एक योगीन्द्र से मिलने के प्रसंग आये हैं। नेमिचन्द्र ने लीलावती का दूसरा नाम वासवदत्ता भी कहा है। दोनो कहानियो मे समानता है तथा ऐसा प्रतीत होता हे जैसे इन दोनो मे कहानी कहते समय तत्कालीन परम्परा को ध्यान मे रखा गया है। जिस प्रकार दक्षिण सिंहल की ओर जाना कथानक-रूढि है उसी प्रकार उत्तर विन्ध्य मे भी आना। दोनो की भौगोलिक स्थिति गौण हे।[2] बहुत संभव है कि इसी कारण से सिंहल बाद मे चलकर त्रियादेश यानी स्त्री देश कहा गया तथा 'योगिसम्प्रदायाविष्कृति' मे वह इसी रूप में स्वीकृत हुआ।[3] मात्र इतना ही नही परवर्तीकाल मे नाथ-अनुश्रुतियो मे सिंहल देश त्रिया देश तथा कजरीवन एक दूसरे से उलझा दिये गये और त्रिया देश को दक्षिण के बदले उत्तर स्थित समझा जाने लगा।[4]

भारतीय आख्यान साहित्य मे पशु-पक्षियो को बहुत पहले से ही महत्वपूर्ण स्थान मिलता रहा है। ये पशु-पक्षी भविष्य को देखने वाले, आने वाले सुख दु.ख की सूचना देने वाले, उपदेश देने वाले इत्यादि अनेक रूपों मे भारतीय कहानियो मे आए हैं। पंचतंत्र मे इनका उपयोग कहानी के पात्र के रूप मे मिलता है। पशु-पक्षियो से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी कहानिया फारसी, अरबी और यूरोप की अन्य भाषाओ में चली गई हैं।

१—ली० क० गाथा १७६।
२—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ६०।
३—हि० आ०, पृ० ७७।
४—वही, पृ० ७७।

जिस प्रकार भारतवर्ष में गरुड को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है ठीक उसी प्रकार से ईरान में सीमुर्ग को, अरब में अन्का पक्षी को तथा तुर्की में ककंस को प्राप्त है। यह सब होते हुए भी भारतीय साहित्य में जितना पशु-पक्षियो को महत्व मिला है उतना दूसरे किसी देश में नहीं।[1]

हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्य में सुग्गे का ही खास तौर से संकेत मिलता है। इस लिये यहा पर देख लेना चाहिए कि भारतीय साहित्य मे कथानक-रूढि के रूप में सुग्गे का किस रूप मे उपयोग किया गया है। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा[2] है कि शुक और सारिका—तोता और मैना-से कथाओ मे तीन काम लिये गये हैं—(१) कथा के कहने वाले श्रोता के रूप मे, (२) कथा की गति को अग्रसर करने वाले संदेशवाहक या प्रेम-सम्बन्ध घटक के रूप मे, (३) कथा के रहस्यो को खोलने वाले अनपराध भेदिया के रूप मे। इनके साथ ही और भी कुछ रुपो मे इसके दर्शन भारतीय कथाओ मे होते हैं—(१ पन्डित और ज्ञानी के रुप में, (२) पथ-प्रदर्शक के रुप मे, (३) विवाहादि के सम्बन्ध मे उचित सलाहकार के रूप मे (४) अपने को खतरे मे डाल उचित न्याय कराने वाले के रूप मेतथा (५) नीति के उपदेश देने वाली कहानियो के पात्र के रूप मे, (६) मनोविनोद करने वाले संगी के रूप मे।

बाण की कादम्बरी मे सुग्गे को पंडित तथा ज्ञानी के रूप मे चित्रित किया गया है। सुग्गे का यह रूप भारतीय लोककथा मे बहुत प्रचलित रहा है जिसका उपयोग बाण या पश्चात् के दूसरे कवियो ने किया है। सोमदेव (सन् १०६३ ई० और सन् १०८१ ई०[3] के बीच) के कथा-सरित्सागर[4] की एक कहानी मे पाटलिपुत्र के राजा विक्रम-केशरिन के सुग्गे का नाम विदग्धचूडामणि कहा गया है जो संपूर्ण शास्त्र का ज्ञाता था। सुग्गे की सलाह से ही राजा ने मगध के राजवंश की कन्या चन्द्रप्रभा से शादी की थी जिसके पास सोमिका नाम की ज्ञानी तथा विचक्षण मैना थी। एक अन्य कहानी[5] मे भोगवती नगर के राजा रूपसेन के सुग्गे का नाम चूडामन बतलाया गया है। राजा ने एक दिन उससे पूछा कि वह क्या जानता है तो सुग्गे ने कहा कि वह सब कुछ जानता हे। राजा के पूछने पर कि उसके योग्य संसार मे कोई सुन्दरी है सुग्गा मगध के राजा मगधेश्वर की कन्या चन्द्रावती का नाम बताता है। राजा उसी के साथ विवाह

१—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ६१।

२—हि०आ०, पृ० ७५।

३—लो० क० गाथा १९८ की टिप्पणी, पृ० ३४१।

४—ओ० स्टो०, पृ० १८३।

५—वही, पृ० २६७।

करता है। चन्द्रावती के पास भी एक मदनमंजरी नाम की मैना है। भवदेव सूरि (सन् १२५५ ई०) के पार्श्वनाथ चरित के सातवें सर्ग में श्रीपुर के राजा श्रीकान्त के धान के खेत तथा सुग्गे के जोड़े की कहानी आई है। अपनी गर्भवती प्रिया की इच्छा पूरी करने के लिये सुग्गा राजा श्रीकान्त के खेत से हमेशा धान की बालियां लाता। एक दिन पकड़े जाने पर राजा उसके वध का आदेश देता है। उसकी प्रिया अपने को दोषी बताती हुई सुग्गे को छोड़ देने की प्रार्थना करती है। व्यंग्य करते हुए राजा सुग्गे से कहता है कि वह तो अपने ज्ञान के लिये विश्व मे विख्यात है फिर भी स्त्री की इच्छा पूरी करने के लिये अपनी जान संकट में डालने की उसने मूर्खता की। पार्श्वनाथ चरित मे भी सुग्गे का वर्णन है।

सुग्गे के जोडो के दूसरो की बातो के सुनने तथा दूसरे व्यक्तियो को उसकी सूचना देकर सहायता पहुँचाने की पर्याप्त कहानियाँ मिलती हैं। विन्ध्य पर्वत मे एक वट-वृक्ष पर रहने वाले सुग्गों के जोडो के एक बच्चे ने अमृत-फल की बात सुनी थी जब उसके पालन करने वाले ऋषि उसकी चर्चा अपने शिष्यो से कर रहे थे।[१] इसी तरह दो राजकुमार वरसेन और अमरसेन के सुग्गे के जोडों की बात सुनकर दो आम के वृक्षो का पता चलता है जिसका फल खाने से एक को राजा होने तथा दूसरे को नित्य पाँच सौ दीनार पाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। सुग्गे के जोड़े उन दोनो की भलाई करने की भावना से दोनो फल वही छोड़कर उड जाते हैं।[२] श्री गुप्त नामक एक जुआड़ी, चोर तथा खूनी वट-वृक्ष पर बैठे सुग्गे के जोड़ो की बात सुनकर और उनके उपदेश मे साधु हो जाता है।[३]

कथासरित्सागर[४] की एक कहानी मे विन्ध्य पर्वत में रहने वाले सुग्गो के राजा हेमप्रभ का उल्लेख है कि कैसे उसने अपने एक आश्रित मूर्ख सुग्गे चारुमति को स्त्रियो से अलग रहने का उपदेश दिया तथा उसे सुमार्ग पर लाया। नेमिचन्द्र की लीलावती[५] मे चूतप्रिय तथा वसन्तदोहला नामक सुग्गो के जोडे का प्रसंग मिलता है कि किस प्रकार एक दिन आम के पेड पर बैठे हुए कुसुमपुर की राजकुमारी वासवदत्ता के सम्बन्ध में

१—ला० स्टो० पा०, पृ० ३४।
२—ला० स्टो० पा०, पृ० १४८।
३—वही, १७६।
४—ली० क० भूमिका, पृ० ३४।
५—हिं०इ०लि०, पृ० ५०४।

बातें कर रहे थे। सुग्गो की इस बातचीत को सुनने से कन्दर्प को स्वप्न में देखी हुई सुन्दरी का पता चल जाता है तथा अन्त मे उसे प्राप्त करने मे वह सफल होता है।[1]

धनेश्वर के 'शत्रुंजय माहात्म्य'[2] मे जिस साहसी भीम की कथा आई है उसमे सिंहल तक पहुचने मे सुग्गा मार्ग दर्शक का कार्य करता है। मुनि कनकामर के करकंड चरिउ' की आठवी कथा मे आया हुआ सुग्गे का प्रसंग कादम्बरी के वैशम्पायन की याद दिलाता है।

चित्र देखकर अथवा स्वप्न मे देखकर मुग्ध होना भारतीय आख्यान-साहित्य की एक प्रसिद्ध रूढि है। अपभ्रंश के चरित-काव्यो मे वर्णित प्रेम की उत्पत्ति साक्षात् दर्शन अथवा गुण-श्रवण अथवा चित्र दर्शन से होती है किन्तु उसका अन्त विवाह मे होता है। पुष्पदंत के णायकुमार चरिउ (नागकुमार चरित) मे प्रेम की उत्पत्ति चित्र दर्शन से हुई है। मगध देश के कनकपुर नगर का राजा जयन्धर था। उसकी पत्नी का नाम विशालनेत्रा और पुत्र का श्रीधर था। अपनी व्यापार सम्बन्धी यात्रा से लौटकर वासव नामक व्यापारी ने राजा को बहुत सा उपहार दिया। उपहार की वस्तुओ मे सौराष्ट्र के गिरिनगर के राजा की पुत्री का चित्र भी था। राजा चित्र देखकर मोहित हो गया। राजा को ज्ञात हुआ कि गिरिनगर का राजा उससे अपनी लडकी का विवाह करना चाहता है। अन्त मे उसके साथ राजा का विवाह होता है।[3]

कुतूहल की लीलावती में सिंहल के राजा शीलामेघ की लडकी लीलावती का चित्र देखकर प्रेम मे पड़ने का प्रसंग मिलता है। लीलावती के पिता को ज्योतिषियो ने बतलाया था कि उसका पति चक्रवर्ती राजा होगा, इसी कारण उन्होंने सभी मुख्य राजाओ के चित्र बनवाकर लीलावती के शयन-गृह मे रखवा दिये थे। लीलावती, सातवाहन अथवा हाल के चित्र को देखकर उससे स्नेह करने लगी तथा उसने जब हाल को स्वप्न मे देखा तभी से वियोग मे अत्यन्त कातर रहने लगी।[4]

स्वप्न मे किसी को देखकर प्रेमोत्पत्ति की कथानक-रूढ़ि का अत्यधिक उपयोग हुआ है। कथासरित्सागर में ऊषा की कहानी आई है कि वह किसी को स्वप्न मे देखकर प्रेम मे पड़ जाती है तथा उसकी सखी चित्रलेखा अनेक विख्यात राजाओ के चित्र बनाती है।

१—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका-राजपूजन तिवारी, पृ० ६४।
२—हि० इ० लि०, पृ० ५०४।
३—अ०सा०, पृ० १३०।
४—ली०क० भूमिका, पृ० २५।

ऊषा अनिरुद्ध को पहचान जाती है। इसी तरह वासवदत्ता स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखकर उसके प्रेम में विह्वल हो जाती है।

'तरंगलोला' (सन् ईसवी की सोलहवी शताब्दी) मे एक परिव्राजिका चित्र की सहायता से ही अपने पूर्व जन्म के पति को प्राप्त करती है।[1]

नेमिचन्द्र कृत लीलावती[2] स्वप्न मे कन्दर्प को देखकर उसपर मुग्ध हो जाती है। कन्दर्प को यह समाचार एक मुर्गे के जोड़े की कहानी से ज्ञात होता है। मकरन्द ने स्वयं स्वप्न मे लीलावती को देखा था। लीलावती निरन्तर अपनी कुलदेवी पद्मावती की उपासना करती है। चन्द्रलेखा तथा विद्युल्लेखा अपनी पर्णलघुविद्या के बल से कन्दर्प को लीलावती की शय्या पर पहुँचा देती हैं तथा पुन: उसे उसके स्थान पर रख देती हैं।

शिव तथा पार्वती, काली, कुलदेवी इत्यादि की पूजा प्राय: ही भारतीय कथाओं में प्राप्त होती है तथा उनके आशीर्वाद से नायक-नायिकाओ के मिलन की बाधाएं समाप्त होती हैं। कथासरित्सागर की एक कहानी मे ताम्रलिप्ति के राजा चण्डसिंह तथा उसके भृत्य सत्वशील के दुर्गा के मन्दिर मे जाने का प्रसंग आया है जहा सत्वशील उस कन्या को देखता है जिससे उसका विवाह होता है।[3] 'भविसयत्तकहा' मे भविष्यदत्त के एक जिन मंदिर मे जाने का वर्णन मिलता है। भविष्यदत्त, एक वैभवशाली परन्तु उजड़े हुए नगर मे चन्द्रप्रभ जिन की पूजा करता है। उसी उजड़े नगर मे उसे एक सुन्दरी का दर्शन होता है जिससे उसका विवाह होता है।[4] उत्तरपुराण मे जीवनधर तथा क्षेमसुन्दरी के विवाह का कारण अनेक चमत्कारो मे यह भी बताया गया है कि वह एक जैन मन्दिर मे पूजा करने जाता है तथा उसके दरवाजे अपने आप खुल जाते हैं।[5]

नायिक-नायिकाओं के जीवन मे भाग्य और अन्य अलौकिक शक्तियो यथा विद्याधर, विद्याधरी इत्यादि का समावेश भारतीय कथाओ मे मिलता है। विद्याधर या विद्याधरी सहायक-सहायिका के रूप मे भी आये हैं तथा कष्ट पहुँचाने वालों के रूप मे भी। समूचा जैन कथा साहित्य ही इन्द्रजाल, जादू, चमत्कार तथा अलौकिक घटनाओं आदि

१—हि० इ० लि०, पृ० ५२२।
२—ली०क० भूमिका, पृ० ३४-३५।
३—औ० स्टो०, पृ० २०९-२१६।
४—अ०सा०, पृ० ९६।
५—हि०इ०लि०, पृ० ५०१।

से भरा पड़ा है। करकंडचरिउ[1] मे करकंडु की पत्नी मदनावली को एक विद्याधर हाथी का रूप धारण कर हर ले जाता है। करकंडु जब नौका पर सिंहल की यात्रा करता है तथा नौका को मच्छ से बचाने के लिये समुद्र मे कूद पड़ता है तब उसे एक विद्याधर पुत्री हर ले जाती है। अपने पिता की अनुमति से विद्याधरी करकंडु से विवाह कर लेती है। सुदंसणचरिउ मे सुदर्शन की रक्षा एक अतिमानव-देव-ने की है।[2] पउमसिरी चरिउ मे एक केलिप्रिय नामधारी पिशाच का वर्णन आया है जो समुद्रदत्त और पद्मश्री मे भेद पैदा कर देता है।[3] भविसयत्तकहा मे जब बंधुदत्त, भविष्यदत्त की स्त्री से विवाह करने को तैयारी करता है तो एक यक्ष की मदद से भविष्यदत्त उपयुक्त अवसर पर पहुँच जाता है तथा उसे उसकी पत्नी मिल जाती है।

भारतीय प्रेमाख्यान-साहित्य में कुटनी की कथानकरूढि का भी प्रयोग प्राप्त होता है। बीसलदेव रास, साधन के मैनासत एवं जायसी की पद्मावत मे कुटनी का उल्लेख मिलता है, किन्तु तीनो मे ही कुटनी के प्रयास निष्फल रहते हैं तथा नायिकाएँ अपने धर्म की रक्षा मे सफल होती हैं।

पार्श्वनाथचरित के छठवें सर्ग मे मदनरेखा की कहानी है। मदनरेखा, अवन्ति प्रदेश के सुदर्शन नगर के राजा मणिरथ के छोटे भाई युगबाहु की पत्नी थी। वह अत्यन्त रूपवती एवं साध्वी थी। मणिरथ उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। उसके पास वह पुष्प और अन्य उपहार की वस्तुएँ भेजता। मदनरेखा इसे बडे भाई का प्रेम समझती। एक दिन उसने एक कुटनो भेजी तथा अपनी रानी बनाने का प्रस्ताव भेजा। मदनरेखा अपने धर्म पर अडिग रही।[4] कथासरित्सागर मे गुहसेन तथा उसकी पत्नी देवस्मिता की कहानी मे कुटनी का कार्य एक योगकरण्डिका नामक बौद्ध भिक्षुणी करती है।

ऋतुवर्णन भारतीय कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। संयोग शृंगार एवं विप्रलंभ शृंगार दोनो के लिये ऋतु वर्णन अपनाया गया है। कालिदास का 'ऋतुसंहार' तो बहुत प्रसिद्ध ही है।[5] अपभ्रंश काव्य मे भी ऋतु-वर्णन मिलते हैं। धवल कवि के हरिवंशपुराण मे मधुमास का वर्णन आया है। इसी तरह नयनंदो के सुदंसणचरिउ

१—अ० सा०, पृ० २८२।
२—वही, पृ० ६०।
३—वही, पृ० १९८।
४—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—रामपूजन तिवारी, पृ० ६७।
५—वही, पृ० ६७।

(सुदर्शनचरित्र) में भी वसन्त ऋतु का वर्णन मिलता है। जिन पद्मसूरि कृत 'सिरि थूलि-मद्द फाग; में वर्षा का सुन्दर वर्णन है।[१]

बाद मे कवियों ने *नायिका के वियोग-वर्णन में षड्ऋतु वर्णन और बारहमासे भी* लिखे। अद्दहमाण के संदेशरासक में विरहिणी उद्गारो को प्रकट करने के लिये ऋतु-वर्णन का सहारा लिया गया है। ढोला-मारू-रा-दूहा मे भी विरहिणी को विरहदशा की अनुभूतियो के चित्रण के लिये ऋतुवर्णन का प्रयोग किया गया है। बीसलदेव रास, साधन का मैनासत और बाद के अन्य सूफो कवियों ने नायिका के विरह वर्णन के प्रसंग मे बारहमासे का उपयोग किया है। बारहमासों की परम्परा अपभ्रंश काव्य में भी उपलब्ध होती है। विनयचन्द्र सूरि के नेमिनाथ चतुष्पादिका मे राजमति या राजुल के वियोग वर्णन के लिये कवि ने बारहमासे का उपयोग किया है। राजमति का विवाह बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ से होने वाला था किन्तु नेमिनाथ से विवाह न हो सका। बलि के निमित्त रखे हुए पशुओ को देख नेमिनाथ को बहुत क्षोभ हुआ तथा उनके मन मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। इसलिये वे गिरिनगर पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। राजमति या राजुल कवि योगदशा का वर्णन बारहमासे[२]के रूप मे किया गया है। श्रावण मास से आरम्भ कर आषाढ़ मास तक सम्पूर्ण वर्ष का वर्णन किया गया है। हरेक मास मे राजुल अपनी वियोगावस्था की वेदना को व्यक्त करती है। सखियां उसे सान्त्वना देता हैं। 'धर्मसूरि स्तुति' मे भी बारहमासे का वर्णन है। इसमे कवि ने हरेक मास के साथ गुरुस्तुति की है। श्रावण मास से इस बारहमासे का प्रारम्भ होता है तथा आषाढ़ मास मे उसका अन्त होता है। इसमें नायिका के विरह-वर्णन के बदले गुरु का स्मरण किया गया है। प्राकृत के अंगविज्जा नामक ग्रन्थ मे बारहमासे का फुटकर वर्णन प्राप्त होता है।

अपभ्रंश रचनाओ मे वृक्षों, फूलो इत्यादि के नाम गिनाने की प्रवृत्ति भी मिलती है। 'रेवंतगिरि रास' में कवि ने एक ही अक्षर से आरम्भ होने वाली वनस्पतियो का नाम गिनाया है।

अंगुण अंजण आंबिलीय अंबाडय अंकुल्लु।
गंबरु अंबरु आमलीय अगरु असोय अहल्लु ॥[३]

तत्कालीन कवियों मे वृक्षों तथा फूलों के नाम गिनाने की विशेष प्रवृत्ति पाई जाती है। अब्दुल रहमान के संदेशरासक में इसी प्रकार से नाम गिनाए गये हैं। परवर्ती

१—अ० सा०, पृ० ३६५।
२—हि० सं० इ०, पृ० ५६।
३—रेवन्तगिरि रास, पृ० १।

सूफी कवियों ने भी इस रूढ़ि का सहारा लिया है। इसी तरह से नगरादि के वर्णन मे भी सूफी कवि भारतीय परम्परा का निर्वाह करते रहे हैं। सरोवर तथा मंदिर का वर्णन भी काव्य मे रूढि जैसा हो गया था। सरोवर मे सखियो सहित नायिका का स्नान करना और मंदिर में पूजा करना कहानी के लिये आवश्यक सा हो गया था।

शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनो पक्षो का वर्णन अपभ्रंश-काव्यों मे उपलब्ध होता है। नख-शिख वर्णन भी अपभ्रंश कवियो मे बहुलता से मिलता है। सूफी कवियो ने इस दृष्टि से भी अपभ्रंश परम्परा का पालन किया है।

हिन्दी के प्रेमाख्यानक काव्यो मे प्राय. दोहे चौपाई का ही प्रयोग मिलता है। अपभ्रंश काव्यो मे अनेक छन्दो का प्रयोग किया गया है। अपभ्रंश चरित काव्यो मे पज्झटिका तथा अलिल्लह आदि छन्दो की दस-बारह अर्द्धालियो के पश्चात् घत्ता रखने की परम्परा थी। इसका अनुकरण परवर्ती प्रेमाख्यानक काव्यो में किया गया। इन छन्दो मे तुक मिलाये जाते हैं। संस्कृत या प्राकृत मे तुक मिलाने का प्रचलन नही था। दोहों मे तुक मिलाने का प्रयत्न अपभ्रंश काव्यो मे शुरू हुआ। परिणामस्वरूप बाद मे जाकर अपभ्रंश की कविताओ मे तुक मिलाने की प्रवृत्ति प्रचलित हो गई। तुकान्त कविता अपभ्रंश की ही विशेषता है। अपभ्रंश के कवियो ने पहले से आते हुए छन्दो मे नवीनता ला दी तथा उसके साथ ही अनेक नये छन्दो की भी सृष्टि की।[1]

हिन्दी सूफी कवियो ने दोहा चौपाई को अपनाया है। इन दोनो छन्दो का प्रयोग तो प्राय. सभी कवियो ने ही किया है। हा यह जरूर है कि क्रम मे कुछ अन्तर आ गया है। कुछ कवियो ने पांच अर्द्धालियो के पश्चात् दोहा रखा है तथा कुछ ने सात अर्द्धालियो के बाद। लेकिन कुछ ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होने नौ अर्द्धालियो के बाद दोहे का क्रम रखा है। दोहा, चौपाई के अतिरिक्त कवित्त, सवैया, प्लवगम, बरवै, सोरठा इत्यादि का प्रयोग भी सूफी कवियो ने बीच-बीच मे अपने काव्यो मे किया है। किन्तु इनके काव्य में चौपाई, चौपई और दोहे की प्रधानता मिलती है। हिन्दी के सूफी काव्य मे चौपाई तथा दोहा का जिस प्रकार का क्रम मिलता है उस प्रकार का फारसी मसनवियो मे नही। इसलिये यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि छन्द योजना मे हिन्दी सूफी कवियो के लिये मसनवियों की छन्द-योजना आदर्श नही थी। छन्दों की इस योजना को अपभ्रंश काव्यो और सिद्धो की रचनाओं मे आसानी से देखा जा सकता

१–हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका–रामपूजन तिवारी, पृ० ७०।

है। हिन्दी के सूफी कवियों ने इसी परम्परा को ग्रहण किया है।[1] पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जिन २१ रूढ़ियो का परिचय दिया है वे इस प्रकार हैं।[2]

१—कहानी कहने वाला सुग्गा।

२—स्वप्न मे प्रिय का दर्शन पाकर आसक्त होना, चित्र मे देखकर किसी पर मोहित हो जाना, भिक्षुकों या बंदियों के मुख मे कीर्ति-वर्णन सुनकर प्रेमासक्त होना आदि।

३—मुनि का शाप।

४—रूप-परिवर्तन।

५—लिंग-परिवर्तन।

६—परकाय प्रवेश।

७—आकाशवाणी।

८—अभिज्ञान या सहिदानी।

९—परिचारिका का राजा से प्रेम और अन्त मे उसका राजकन्या और रानी की बहन के रूप मे अभिज्ञान।

१०—नायक का औदार्य।

११—षड्ऋतु और बारहमासा के माध्यम से विरह-वेदना।

१२—हंस कपोत आदि से संदेश भेजना।

१३—घोडे का आखेट के समय निर्जन वन मे पहुँच जाना, मार्ग भूलना, मानसरोवर पर किसी सुन्दरी स्त्री या उसकी मूर्ति का दिखाई देना, फिर प्रेम और प्रयत्न।

१४—विजन वन मे सुन्दरियो से साक्षात्कार।

१५—युद्ध करके शत्रु से या मत्त हाथी के आक्रमण से, या कापालिक की बलिवेदी से सुन्दरी स्त्री का उद्धार और प्रेम।

१६—गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और गणिका माता का तिरस्कार।

१७—भरुण्ड और गरुड आदि के द्वारा प्रिय युगलो का स्थानान्तरकरण।

१८—पिपासा और जल की खोज मे जाते समय असुर दर्शन और प्रियावियोग।

१९—ऐसे शहर का मिल जाना जो उजाड़ हो गया हो, नायक का हाथी आदि द्वारा जयमाल पाना।

१—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका—राजपूजन तिवारी, पृ० ७१।

२—हिन्दी साहित्य का आदिकाल-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० ७४-७५।

२०–प्रिया की दोहद कामना की पूर्ति के लिए प्रिय का असाध्यसाधन का संकल्प।
२१–शत्रु-सन्तापित सरदार को उसकी प्रिया के साथ शरण देना, और फलस्वरूप युद्ध इत्यादि।

करकंचरिउ और मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे जिन कथाभिप्रायो का प्रयोग हुआ है, वे भारतीय तथा पाश्चात्य साहित्य मे बहुत प्रचलित अभिप्राय हैं। इन अभिप्रायो का वर्गीकरण कई तरह से किया जा सकता है। विषय की दृष्टि से इन्हे सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। उसी प्रकार कथाशिल्प की दृष्टि से कथा संघटक अभिप्राय (आर्गेनिक मोटिफ) पुरस्सरक अभिप्राय (प्राग्रेसिव मोटिफ) तथा प्रेरक अभिप्राय (इनशियेटि मोटिफ) मे तीन वर्ग किये जा सकते हैं। जिन बहुप्रयुक्त घटनाओ, युक्तियो या कथा-कौशलो से कथा का आरम्भ होता है; उसे प्रेरक या प्रस्ताविक अभिप्राय कहा जाता है। उसी प्रकार कथा को आगे बढाने वाले अथवा उसे नयी दिशा मे ले जाने वाले अभिप्रायो को पुरस्सरक तथा अपने आप मे पूर्ण तथा पूरी कथा का रूप धारण कर लेने वाले कथाभिप्राय को कथा-संघटक अभिप्राय कहा जाता है। किन्तु उपर्युक्त विभाजन कथाभिप्रायो के मूल स्त्रोत और उनके साहित्यिक एवं सास्कृतिक महत्व के अध्ययन की दृष्टि से बहुत उपयुक्त नही जान पडते। अत करकंड चरिउ तथा मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे प्रयुक्त कथाभिप्रायो को कवि-कल्पित और लोकाश्रित इन दो वर्गों मे विभाजित करके उन पर विचार करना ज्यादा उपयुक्त होगा। समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से भी यह विभाजन अधिक समीचीन है।

करकंडचरिउ तथा मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे प्रयुक्त कवि कल्पित और लोकाश्रित कथानक-रूढ़ियो की सूची यहा दी जा रही है।[1] इसमे से कवि-कल्पित कथानक-रूढ़ियों को विषय तथा शिल्प की दृष्टि से प्रेममूलक और रोमांचक इन दो वर्गों मे बांटा गया है :—

(१) कविकल्पित

क—प्रेम मूलक अभिप्राय

१—स्वप्न-दर्शन-जन्य प्रेम
२–चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम
३–रूप-गुण-श्रवण-जन्य आकर्षण

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों मे कथानक-रूढ़ियाँ : डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० १११,११२।

४–मूर्तिकन्या और प्रेम
५–स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-संघटन
६–शुक-शुकी—
(क) कहानी के वक्ता-श्रोता के रूप मे
(ख) कथा के पात्र, प्रायः प्रेमसंघटक और संदेशवाहक के रूप मे
७–प्रिया-प्राप्ति के लिये योगी बनना।
८–सप्त समुद्रों की यात्रा।
९–समुद्र-पार किसी दूर देश की कन्या से प्रेम और विवाह
१०–सिंहल द्वीप की कन्या से विवाह
११–नायिका के प्रति नायक की अनुरक्ति की ज्योतिषियों द्वारा पूर्व-सूचना
१२–नायिका-अप्सरा का अवतार
१३–उद्यान में नायक-नायिका मिलन
१४–मंदिर में नायक-नायिका मिलन
१५–किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार और मिथ्या लांछन
१६–वन में सरोवर के पास सुन्दरी-दर्शन

(ख) रोमांचक अभिप्राय

१–समुद्र-यात्रा के समय जलपोत का टूटना
२–गरुण्ड हंस आदि की पीठ पर यात्रा
३–उजाड़ नगर
४–वन में मार्ग भूलना
५–विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व
६–विवाह के लिये असामान्य कार्य-सम्पादन की शर्त
७–राक्षस, विद्याधर आदि द्वारा नायिका-हरण

(२) लोकाश्रित अभिप्राय

१–जीवन-निमित्त-वस्तु
२–सत्यक्रिया
३–परकाय-प्रवेश
४–पंचदिव्याधिवास
५–उपश्रुति
६–कक्ष-निषेध
७–नायक का अतिप्राकृत जन्म

८–वस्त्र-हरण द्वारा अप्सराओ और परियों की प्राप्ति

९–रूप-परिवर्तन

(क) अलौकिक शक्ति या विद्या द्वारा स्वयं रूप परिवर्तन

(ख) किसी मंत्रविद् या तांत्रिक द्वारा रूप-परिवर्तन

(ग) किसी सरोवर में स्नान या कुछ खाने-पीने से रूप-परिवर्तन

१०–दिव्यविद्या-आकाश-गमन

११-अदृश्यता

१२–योगी के नेत्र मे प्रिया-देश का दर्शन

१३–मृत व्यक्ति का जीवित हो जाना

१४–अज्ञान मे अपराध और शाप

१५–शिव-पार्वती

१६–आकाशवाणी

१७–भविष्य-सूचक स्वप्न

करकंडचरिउ में कथानक-रूढ़ियां

(१) कविकल्पित

(क) प्रेममूलक अभिप्राम

१–चित्र–दर्शन-जन्य प्रेम

२–रूप-गुण-श्रवण जन्य आकर्षण

३–स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-संघटन

४–शुक-शुकी–

(क) कथा के पात्र और नायक के सहायक के रूप मे

५–सिंहल द्वीप की कन्या से विवाह

६–किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार और मिथ्यालाछन

७–वन मे सरोवर के पास सुन्दरी-दर्शन

८–दोहद

(ख) रोमांचक अभिप्राय

१–समुद्र यात्रा के समय जलपोत का टूटना

२–वन मे मार्ग भूलना

३–विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व

४–विवाह के लिये असामान्य कार्य-संपादन की शर्तें
५–राक्षस, विद्याधर आदि द्वारा नायिका हरण
६–अभिज्ञान या सहिदानी

(२) लोकाश्रित अभिप्राय

१–पंचदिव्याधिवास
२–रूप-परिवर्तन

क–अलौकिक शक्ति या विद्या द्वारा स्वयं रूप परिवर्तन

३–आकाश-गमन
४–अज्ञान में अपराध और शाप
५–भविष्यवाणी
६–अपशकुन

उपर्युक्त कथानक-रूढियो का जो वर्गीकरण किया गया है वह अन्तिम नहीं है। वस्तुतः सभी कथानक-रूढ़ियो का वर्गीकरण करना संभव भी नही है, क्योकि सबके मूल उत्स का ठीक-ठीक पता नही चलता। इसके अतिरिक्त एक ही कथानक-रूढ़ि मे कई उत्सो का योग भी दिखाई पड़ता है जिससे उसे कई वर्गों मे रखा जा सकता है।[1]

(१) कवि कल्पित

क—प्रेममूलक अभिप्राय

१—चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम   चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम स्वप्न-दर्शन के अभिप्राय से ज्यादा विख्यात है। कथासरित्सागर में मुक्तिपुर द्वीप की राजकुमारी रूपलता का पृथ्वीधर के प्रति आकर्षण तथा प्रेम उसका एक चित्र देखकर ही होता है।[2] विक्रमादित्य की कथा में विक्रमादित्य भी समुद्र पार किसी द्वीप की कन्या मलयवती को स्वप्न मे देखने के पहले चित्र मे देखकर ही मोहित हो जाता है।[3] दण्डी कृत दशकुमार चरित मे कलहकंटक परकीया नायिका अनंतकीर्ति का चित्र देखकर उसकी प्राप्ति के लिये बहुत व्यग्र हो जाता है। वह उसके नगर उज्जैन मे जाकर तथा अनेक वेष धारण कर षड्यंत्र से उसे उपलब्ध कर लेता है। दशकुमार चरित में ही उपहार वर्मा की कथा में उपहार

१–पृथ्वीराजरासो मे कथानक–रूढ़ियां–डा० व्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ७८।
२—कथासरित्सागर, आदित्तरंग, ५१।१४४।
३—वही, आदित्तरंग, १२२।

वर्मा कल्पनासुन्दरी के पास अज्ञात रूप से अपना एक चित्र भेजकर उसके हृदय मे प्रेम एवं मिलन की प्रबल इच्छा पैदा करता है।[१]

प्राकृत तथा अपभ्रंश के अनेक कथा-काव्यो एवं चरितकाव्यों मे भी इस चित्र-दर्शन जन्य प्रेम की पूर्ववर्ती परम्परा का पालन किया गया है। लीलावई कहा, जिनदत्ताख्यान करकंडुचरिउ तथा णायकुमारचरिउ मे नायक-नायिकाओ का पूर्वानुराग तथा विरह-वेदना चित्र दर्शन पर ही आधारित है। लीलावई कहा मे लीलावती सातवाहन हाल को सर्वप्रथम चित्र मे ही देखती है, तत्पश्चात् स्वप्न मे। अपभ्रंश के चरित-काव्यो मे नायक-नायिका के प्रेम का मुख्य आधार स्वप्न-दर्शन अथवा चित्र-दर्शन ही है। करकण्डु चरिउ मे दो प्रेम-प्रसंगो मे इस अभिप्राय का प्रयोग मिलता है—(१) नायक करकण्ड तथा मदनावली की प्रेम-कथा, (२) सरित्सागर के विख्यात नायक नर-वाहन दत्त की उपकथा। करकंड देशान्तरो मे भ्रमण करने वाले एक व्यक्ति से उपलब्ध चित्र मे मदनावली का सौन्दर्य देखकर मदन के बाणो से इस तरह बिंध जाता है कि उसके मुख से दीर्घ निश्वास निकलने लगते हैं तथा वह अपने को विरह-ज्वर के ताप से पीडित अनुभव करने लगता है।[२]

दूसरी कथा मे नरवाहनदत्त को चित्र मे देखते ही खेचरी वेगवती की यह मनोदशा हो जाती है कि वह पृथ्वी पर गिर पडती है तथा विक्षिप्त की भाँति शरीर धुनने लगती है—

> वेगवइहे कहियउ ताएँ सारु णरवाहणु मइँ पिउ एहु चारु।
> अवलोइउ जा त फलहु लेवि धरणियले णिवडिय तणु धुणेवि ॥ ६।१४

उसकी इस स्थिति पर दूसरी खेचरी कनकमती व्यंग करते हुए कहती है कि जिसे अब तक कोई भी वर नही रुचता था वह चित्र मे रूपमात्र को देखकर पृथ्वी पर गिर पडती है—

> णवि रुच्चइ कवणु वि ताहे वरु रुवेण वि दिट्ठइं मय धरहे ॥ ६।१४

अपभ्रंश के दूसरे चरितकाव्य णायकुमार चरिउ मे नायक नागकुमार के पिता जयंधर गिरिनगर की राजकुमारी पृथ्वी देवी का चित्र देखकर इतने आकर्षित हो जाते हैं कि तत्काल विवाह कर लेते हैं।

१—दशकुमारचरित, पृ० ३११, ३१२।

२—सो पंचवण्णु गुणगणसहंतु करकंडइं जोयिउ पडु महंतु।
तहिं कउ सलक्खणु तेण दिट्ठु णं मयणवाणु हियवएँ पइट्ठ।
मुह कमलु सउण्हउ दीहसासु जरु दाहु अरोचक हुयउ तासु ॥ ३।४

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे इन्द्रावती, चित्रावली एवं रत्नावली की प्रेम-कथा का आरम्भ चित्र-दर्शन से ही होता है।

इन दृष्टान्तों से शिष्ट साहित्य मे इस कथानक-रूढ़ि की प्राचीनता एवं व्यापकता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसकी व्यापकता तो इससे भी स्पष्ट है कि इस अभिप्राय ने लोक साहित्य तथा लोक-रुचि को भी समान रूप से प्रभावित किया है। भारतीय लोक-कथाओ के साथ ही साथ तिब्बती तथा सिंहली लोक कथाओं मे भी चित्र-दर्शन अथवा मूर्तिदर्शन-जन्य अभिप्राय का प्रयोग मिलता है। एक तिब्बती कथा[1] मे चित्र के स्थान पर एक स्वर्ण प्रतिमा जैसी कान्ति एवं सौन्दर्य वाली कन्या से ही विवाह के दृढ निश्चय का उल्लेख है। इस अभिप्राय को यहाँ स्वप्न-दर्शन की भाँति ही अत्यन्त चामत्कारिक रूप प्रदान किया गया है। नायक न्यग्रोधज विवाह से अनिच्छा के कारण एक स्वर्ण-स्त्री-मूर्ति का निर्माण स्वयं ही करता है तथा यह विचार कर कि इस कन्या की प्राप्ति दुर्लभ है, यह निर्णय करता है कि वह इसी कन्या से विवाह करेगा, नही तो अविवाहित रहेगा। लेकिन स्वप्न-कन्या की तरह ही इस स्वर्ण कन्या जैसी नायिका भी प्राप्त हो जाती है।[2] चित्र के स्थान पर मूर्ति के प्रयोग के भी शिष्ट तथा लोक-साहित्य दोनो मे कई दृष्टान्त मिलते हैं। टानी द्वारा संग्रहीत 'जैन कथाकोश' मे राजकुमार अमरदत्त पाटलिपुत्र के मंदिर में एक मूर्ति देखकर उस मूर्ति-कन्या के प्रति इतना आकर्षित होता है कि मित्र के अत्यन्त आग्रह पर भी उसे त्याग कर जाने के लिये प्रस्तुत नही होता है[3]। एक अन्य लोक-कथा मे 'वन मे मार्ग भूलना तथा 'जल-पिपासा' के साथ घने वन मे जलाशय के किनारे मूर्ति-कन्या के दर्शन की कथानक रूढ़ि को मुख्य आधार बनाकर सम्पूर्ण कथा कही गई है।[4] भारतीय कथाओ मे वन मे मार्ग तथा प्यास से व्यग्र होने पर जलाशय के किनारे प्रत्यक्ष सुन्दरी-दर्शन का अभिप्राय अत्यधिक प्रचलित है, परन्तु यहाँ साक्षात् सुन्दरी-दर्शन के बदले कथाकार ने 'मूर्ति-दर्शन-जन्य प्रेम' का व्यवहार इस कारण किया है कि उसने उस मूर्ति रूप कन्या की खोज तथा अन्त मे उसकी प्राप्ति को ही सम्पूर्ण कथा का आधार बनाया है। मूर्ति-दर्शन-जन्य प्रेम की प्राचीनता के लिए जातक (३८८) तथा धम्मपद (कमेंटरी १६, ५) को देखा जा सकता है।

चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम स्वप्न-दर्शन की भाँति चामत्कारिक नहीं है। किसी सुन्दरी

1—Ralston's Tibbetan Tales, P. 191.

2—Ibid., P. 193.

३—टानी—कथाकोश, पृ० १४६-५० ।

४—पंजाब की लोक-कथाएँ—श्रीकान्त व्यास, पृ० ७ ।

नायिका अथवा सुन्दर नायक को चित्र में देखकर आकर्षण का उत्पन्न होना बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन कथाकार इस आकर्षण को जब संभावना के आधार पर प्रेम की उस स्थिति तक ले जाता है, जिसमे मात्र चित्र-दर्शन से ही नायक या नायिका विरह की उन्माद तथा मूर्च्छा तक की दशा मे पहुँच जाते हैं, तो निःसन्देह वह वास्तविकता की रेखा को पार कर जाता है तथा कुछ अंशो तक उसे चामत्कारिक रंग दे देता है।[१]

चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम के दृष्टान्त फारसी तथा ग्रीक साहित्य मे भी प्रायः प्राप्त होते हैं। फारसी कथाओ मे सईफ़ुल मुलुक की कहानी एवं बहारे दानिश मे चित्र-दर्शन से ही प्रेम का आरम्भ होता है। गोम्बरविले के पोलम्जेन्डर के सम्बन्ध में डनलप की टिप्पणी को इस प्रसंग मे देखा जा सकता है।[२] मोरक्को के बादशाह का पुत्र अब्दुलमलक अल्सोरिना का चित्र देखकर उससे प्रेम करने लगता है।[३]

२—**रूप-गुण-श्रवण-जन्य आकर्षण :** प्रायः नायक-नायिका किसी दूत से एक दूसरे का रूप-गुण सुनकर आकर्षित होते तथा प्रेम पीडा से विह्वल होकर प्रिय प्राप्ति का व्रत ले लेते हैं। ये दूत अधिकतर पक्षी होते हैं, लेकिन कभी-कभी मनुष्य या मनुष्येतर जीव भी होते हैं।

कथासरित्सागर मे नरवाहनदत्त की अनेक प्रेमकथायें इसी अभिप्राय से आरम्भ होती हैं। अधिकतर किसी भिक्षु, भिक्षुणी अथवा सन्यासिनी द्वारा किसी राजकुमारी या गन्धर्व-कन्या के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर नरवाहनदत्त उसके प्रेम में बेचैन हो जाते हैं तथा उसे प्राप्त करने के लिये प्रस्थान कर देते हैं। जो कार्य मध्यकालीन प्रेमाख्यानो मे शुक अथवा हंस करता है, ठीक वही कार्य कथासरित्सागर की कई कथाओ मे भिक्षुणी अथवा सन्यासिनी करती हैं। ऐसा करना इनके लिये इस कारण भी संभव है कि एक तो पक्षियो की भाँति इनका भी सर्वत्र गमन होता है, दूसरे अपनी दिव्य शक्ति द्वारा ये ऐसी नायिकाओ की जानकारी प्राप्त करती हैं। नरवाहनदत्त को एक सन्यासिनी से व्यंग मे नायिका कर्पूरिका की विशेषता मालूम होती है। अनजान मे गेंद लग जाने पर सन्यासिनी हँसकर कहती है कि यौवन के मद मे अभी यह स्थिति है तो कर्पूरिका पत्नी के रूप में मिल जाय तो क्या स्थिति होगी।[४] नरवाहनदत्त के आग्रह पर सन्या-

---

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे कथानक—रूढ़ियाँ : डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० १२८।

२—हिस्ट्री आव प्रोज़ फिक्शन, भाग २, पृ० २७६।

३—वही, पृ० २७६।

४—एवमेव मदोऽयं चेत्तवतद्यावाप्स्यसि। जातु कर्पूरिकां भार्यां ततः की दृग्-भविष्यति। ४१, १०
मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे कथानक रूढ़ियाँ—डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० १३४ से उद्धृत।

सिनी कर्पूरिका का परिचय बताती हैं, जिसे सुनकर वह उसे प्राप्त करने के निमित्त तत्क्षण प्रस्थान करता है। सात राजकुमार के कथाचक्र में सबसे छोटे राजकुमार को उसकी भाभियों से व्यंग में ही ऐसी मादक नायिकाओं की जानकारी होती है। कथा सरित्सागर के एक दूसरे दृष्टान्त में प्रतिष्ठान के राजा पृथ्वीपुत्र को मुक्तिपुर द्वीप की कन्या रूपलता की विशेषता दो श्रमणों द्वारा ज्ञात होती है। दूसरी कथाओं के शुकों की भाँति ये श्रमण भी यही कहते हैं कि हमलोगों ने सम्पूर्ण पृथ्वी का भ्रमण किया है, परन्तु रूप-लता जैसी सुन्दरी हमे कहीं देखने को नहीं मिली।[1]

'करकंडचरिउ' मे मदनावली खेचरों के मुख से करकण्ड सम्बन्धी गीतों को ही सुनकर प्रेम-व्यथा से मूर्च्छित हो जाती है।[2] एक दिन वह मदनावली सखियो के साथ नन्दन वन को गयी। वहाँ उसने देखा कि लोगों के मनों और नयनो को इष्ट खेचर फूलों मे चढकर मधुर ध्वनि से करकंड की कीर्ति के मनोहर गीत गा रहे हैं। उन मनोहर गीतो को सुनकर मदनावली अपने शरीर को धुन कर धरणीतल पर गिर पड़ी। वह ऐसी विह्वल, कलहीन व क्षीण देह हो गयी जैसे कृष्ण पक्ष मे चन्द्रलेखा। पवन से आहत कली के समान काँपती हुई उसे सखियाँ शोक-सहित घर ले आयी। जनों के मन के दुःखों को हरण करने वाली उसकी समशीला सहचारियों ने विनय से पूछा—'हे सखी, तू विह्वल क्यों हो गयी ? हे प्यारी बहन, हमें कह तो।' तब उस सरल बालिका ने मोहवश अपनी सखियो से अपने विरहानल की बात कही—'जो उन खेचरोंने करकंड-सम्बन्धी गीत गाया, उसे मैंने सुना, उसी से मेरा हृदय प्रफुल्लित हो उठा, और चारों दिशाओं मे उत्सुकता लगने लगी।[3] मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे जायसी के पद्मावत एवं नूरमुहम्मद की इन्द्रावती मे इस अभिप्राय का प्रयोग मिलता है। पृथ्वी-राजरासो मे पृथ्वीराज के अधिकांश प्रेम-प्रसंग रूप-गुण-श्रवण-जन्य आकर्षण से ही आरम्भ होते हैं।

३—स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-संघटन : संस्कृत-साहित्य के कथाकाव्यो तथा नाटि-काओ में संघटक अभिप्राय के रूप मे इसको कथा का आधार बनाया गया है। राजशेखर की नाटिका कर्पूरमंजरी की कथावस्तु इसी अभिप्राय पर आधारित है। लेकिन यहाँ नायक के स्थान पर नायिका का ही योगबल से स्थानान्तरण किया गया है। कापालिक भैरवानन्द कुन्तल देश की कन्या कर्पूरमंजरी को योगबल द्वारा महाराज चंडपाल के पास उपस्थित कर देता है।[4]

१—कथासरित्सागर, ५१, ११६–२१।
२—करकंडचरिउ, ३।६।
३—करकंडचरिउ—डॉ० हीरालाल जैन, पृ० ३७।
४—कर्पूरमंजरी, प्रथम अंक।

कथाकाव्यों मे इस अभिप्राय का सर्वश्रेष्ठ दृष्टान्त दण्डी के दशकुमारचरित में प्रमति तथा नवमालिका की प्रणय-कथा मे दृष्टिगोचर होता है। इस अभिप्राय से सम्बद्ध चित्रावली की कथा का मूल स्रोत भी दशकुमारचरित की यह कथा ही प्रतीत होती है। दोनो ग्रन्थों मे इस अभिप्राय के भीतर आने वाली मुख्य घटनायें और विवरण एक ही हैं।

योगबल द्वारा स्थानान्तरण का अन्य दृष्टान्त दण्डी के दशकुमारचरित मे मंत्रगुप्त की कथा मे प्राप्त होता है। यहाँ मंत्रगुप्त एवं कनकलेखा को एक राक्षस अपनी अलौकिक शक्ति के बल से नायिका के महल मे पहुँचा देता है।[1] किन्तु हिन्दू कथाओ मे देव, अप्सरा, राक्षस, योगी कापालिक इत्यादि दिव्य व्यक्ति या अलौकिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति यथा-योगी कापालिक आदि स्थानान्तरण का कार्य करते हैं, जबकि जैन कथाओ मे विद्याधर, खेचर-खेचरी आदि नायक-नायिका-मिलन मे इसी तरह सहायता करते हैं। जिनदत्ताख्यान मे एक विद्याधर जिनदत्त को अशोक श्री के महल मे पहुँचा देता है।[2]

करकडुचरिउ मे करकंड सिंहल की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह कर अपार धन-सम्पत्ति के साथ समुद्र मार्ग से लौट रहा था। तभी उसने एक महाकाय मत्स्य देखा। उस मत्स्य को देखकर उस दुर्द्धर राजा ने अपना शान्त भाव छोड, क्रोध धारण किया; तथा मल्लग्रन्थि बाँधकर एवं तलवार खीचकर, यान छोड रोष से दौडकर तुरंत समुद्र मे छलाग मारा। वह लपकता हुआ वहाँ पहुँच गया, जहां वह स्थूलकाय मत्स्य था। उसने उसके पेट के मध्य में प्रविष्ट होकर मत्स्य को मार डाला, उसके मर्मस्थल छेद डाले और चर्म फाड डाले। फिर वह वीर उछलता हुआ स्वच्छ जल मे आ गया।[3] उसी समय एक दुर्द्धर राजा को ले उड़ी।

ताव तम्मि खेयरीएं णीउ राउ दुद्धरीसं। ७।१०।१०

इसका परिणाम हुआ कि समस्त जल खलभला उठा, यान परस्पर टकरा गये।

हल्लोहलि हूयउ सयलु जलु अपरंपरि जाणइं संचलहिं।
हा हा रउ उट्ठिउ करुणसरु तहो सोएं णरवर सलवलहिं॥
—करकंडचरिउ संधि, ७।१०।१३

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे मधुमालती, चित्रावली, रसरतन, इन्द्रावती आदि मे इस कथानक रूढि का प्रयोग हुआ है।

१—दशकुमार चरित, पृ० ३२८।
२—जिनदत्ताख्यान, पृ०।
३—करकंडचरिउ डा० हीरालाल जैन, पृ० ९७।

४—शुक-शुकी : प्रेमाख्यानक काव्यों में शुक-शुकी का मुख्यतः दो रूपो में उपयोग किया गया है—(१) कहानी कहने वाले वक्ता-श्रोता के रूप मे (२) कथा के पात्र—प्रायः प्रेम संघटक तथा संदेश वाहक के रूप मे। शुक के कथा कहने की परम्परा शिष्ट तथा लोकसाहित्य मे बहुत प्राचीनकाल से चली आ रही है। कादम्बरी की अधिकांश कथा वैशम्पायन शुक द्वारा कही गई है, जिसका मूल रूप कथासरित्सागर मे शास्त्रगंज शुक की कथा मे प्राप्त होता है।[1] शुकसप्तति की सारी कथायें प्रभावती को पथभ्रष्ट होने से बचाने के लिये शुक द्वारा दृष्टान्त तथा उदाहरण के रूप मे कही गई हैं। शुक के माध्यम से कथावर्णन द्वारा हितोपदेश तथा मार्ग-दर्शन की इस परम्परा का मूल स्रोत भी जातक कथाओ मे मिलता है।[2] पार्श्वनाथचरित मे रानी कमलावती के अनुरोध पर शुक त्रिकालपरीक्षण एवं आत्मशुद्धि की हितोपदेशयुक्त दो कथायें सुनाता है।[3]

इन सभी दृष्टान्तो मे कथा के वक्ता के रूप मे 'शास्त्रज्ञ शुक' के अभिप्राय का उपयोग किया गया है। शुक द्वारा कथा-वर्णन का दूसरा रूप उन कथाओ मे दिखलाई देता है, जिनमे शुक-शुकी अथवा शुक-सारिका के परस्पर संवाद के रूप में कथा कही जाती है। इन सभी कथाओ मे अपनी जिज्ञासु प्रेयसी की जिज्ञासा शान्त करने के लिए शुक कोई कथा कहता है। शुक-सारिका संवाद का साहित्यिक रूप सुबन्धु की वासवदत्ता मे परिलक्षित होता है। उसमे नायिका वासवदत्ता के स्वप्नदर्शन का प्रसंग शुक-सारिका-संवाद के रूप मे ही कहा गया है।[4] नायक द्वारा शुक-वार्ता की उपश्रुति से नायक-नायिका का मिलन सरल हो जाता है। नूरमुहम्मद ने इन्द्रावती मे मधुकर की कथा मे वासवदत्ता की पद्धति का ही अनुसरण किया है। पृथ्वीराज रासो की अधिकाश कथायें इसी तरह शुकी के आग्रह पर शुक-शुकी-संवाद के रूप मे कही गई हैं। वैतालपंचविंशति की 'शुक-कथा' मे पुरुष तथा स्त्री की चंचल वृत्ति पर विचार करते हुए शुक-सारिका अपने-अपने पक्ष के समर्थन में अनेक कथायें कहते हैं।[5]

शुक-शुकी अथवा शुक-सारिका के कथा कहने का अभिप्राय तिब्बत से लेकर दक्षिण भारत तक प्रचलित है। राल्सटन के 'टिबटन टेल्स' मे चरक नामक शुक अपनी प्रिया

१—कादम्बरी—पिटर्सन भाग २, भूमिका, पृ० ८४।

२—राधजातक।

३—पार्श्वनाथ चरित, तृतीय सर्ग २३३-३८, २५२-८६।

४—वासवदत्ता—ग्रे १९१३, न्यूयार्क, पृ० ७८-११०।

५—वैतालपंचविंशति—के० एम० मुंशी, पृ० ४६-५८।

की जिज्ञासा-शान्ति के लिये एक आश्चर्यजनक परन्तु वास्तविक कथा कहता है।[1] फ्रियर के ओल्ड डेकनडेज की एक कथा में शुक नायिका के पूर्वजन्म की कथा कहता है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि अधिकांश काव्यों में प्रेमसंघटक के रूप में परम्परागत 'शास्त्रज्ञ शुक' का अवलम्ब लिया गया है। शुक के शास्त्रज्ञ होने का अभिप्राय तो वृहत्कथा, कादम्बरी, और संस्कृत की अन्य कथाओ तथा अपभ्रंश के कथा-काव्यों मे बारबार प्रयुक्त होकर रूढ़ हो गया है। पद्मावत की भाँति ही वृहत्कथा के गंजाख्य तथा कादम्बरी के वैशम्पायन शुक वक्ता, सकल शास्त्रविद् एवं चतुर्वेदज्ञ हैं[3] तथा राजदरबार मे उपस्थित किये जाने पर शास्त्रोचित ढंग से राजाभिवादन करते हैं। पद्मावत की भाँति पार्श्वनाथचरित मे व्याध के द्वारा शास्त्रज्ञ शुक बेंचा जाता है तथा अवन्ति के राजदरबार में लाया जाता है। रानी कमलावती के समक्ष आने पर वह अपने दक्षिण पंख को फैलाकर विक्रम की प्रशस्ति मे एक श्लोक सुनाता है।[4]

अपभ्रंश चरितकाव्य करकंडचरिउ मे वर्णित अरिदमन-कथा मे व्याध द्वारा राजदरबार मे उपस्थित किये जाने पर शुक पद्मावत के हीरामन की भाँति ही राजा का अभिनन्दन करते हुए सुरसरि की धारा के बने रहने तक चिरायु होने का आशीर्वाद देता है :—

ता सूएं उच्चाएवि पाउ, अहिणं दिउ आसीवाएं राउ।
भो णरवइ करिकरदीहबाहु चिरु जीवहि सुरसरि जामु बाहु। ८।७

लेकिन कथा को गति देने वाले मुख्य पात्र तथा नायक के मुख्य सहायक के रूप मे शुक का उपयोग मात्र करकंडचरिउ मे ही किया गया है। कादम्बरी तथा पार्श्वनाथचरित मे शुक कथा का वक्ता मात्र है, नायक-नायिका का सहायक अथवा मुख्य पात्र नही।

नायक-नायिका के प्रेम-व्यापारो मे सहायक तथा कथा के मुख्य पात्र के रूप में शुक का उपयोग मुख्यत: लोककथाओ तथा लोकवार्ता का प्रसिद्ध अभिप्राय है। इन कथाओ में शुक केवल नायक को नायिका की सूचना ही नहीं देता अपितु नायिका को

१—पृ० १६८-१७२।
२—पृ० २६।
३—चतुरवेद हो पंडित हीरामन मोहि नाउ।

—पद्मावत

देवार्य शास्त्रगंजाख्यश्चतुर्वेदवर: शुक :—कथासरित्सागर, पृ० ५६, २८।
४—पार्श्वनाथचरित, ३।२००–२०६।

प्राप्त करने में उसके सहायक के रूप में अन्त तक विद्यमान रहता है। यदा-कदा अपने पंखों पर बैठाकर वह नायक को समुद्र-पार नायिका के देश में भी ले जाता है।[१] कनकामर तथा जायसी ने शुक के गुण-वर्णन में कादम्बरी की परम्परा को ग्रहण करते हुए भी कथा को गति देने वाले मुख्य पात्र के रूप में शुक की योजना लोक-कथाओं के आधार पर की है।

पक्षियों द्वारा सन्देश भेजने का अभिप्राय मिश्र और ग्रीक के कथा-साहित्य में भी प्राप्त होता है, परन्तु कथाओं में उपर्युक्त विविध रूपों में प्राप्त होने वाले 'शुक शुकी' विशुद्ध भारतीय अभिप्राय ही हैं। पाश्चात्य कथा-साहित्य में किसी पक्षी के शास्त्रज्ञ होने की बात नहीं मिलती। हाँ यह अवश्य है कि व्यापक रूप से सर्वचेतनावाद के आदिम विश्वास के कारण सभी देशों के साहित्य में इस कल्पना को अभिव्यक्ति मिली है कि पशु-पक्षियों की अपनी भाषा होती है तथा मनुष्य उस भाषा को समझ भी सकता है।[२] मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में इस कथानक-रूढ़ि का प्रयोग पद्मावत, रसरतन एवं इन्द्रावती में मिलता है।

५—सिंहल द्वीप की कन्या से विवाह: सिंहल द्वीप की कन्या से विवाह प्रेमाख्यानों के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध अभिप्राय है। कथासरित्सागर की एक कथा में विक्रमादित्य सिंहल देश की राजकुमारी मदनलेखा से विवाह करता है।[३] 'लीलावती कहा' की नायिका लीलावती सिंहल देश की ही कन्या है, जिसके विषय में ज्योतिषियों ने कहा था कि उसके साथ विवाह करने वाला व्यक्ति सकल पृथ्वी का स्वामित्व तथा दिव्य सिद्धि प्राप्त करेगा।[४] नायक सातवाहन उससे विवाह करता है तथा यही इस काव्य की प्रमुख कथावस्तु है। हर्ष की नाटिका रत्नावली में भी नायिका सिंहल देश की कन्या है तथा उसके विषय में भी ज्योतिषियों की भविष्यवाणी है कि *'यासो तत्र भवतः* सिंहलेश्वरस्य दुहिता रत्नावली नानायुष्मती सिद्धा देशेनादिष्टा योऽस्याः पाणि-

---

१—ओल्ड डेकनडेज, पृ० ९९।

२—Birds and beasts have a language of their own which can sometimes be understood by human beings is a most natural and universal motif of folk tales.

—Penzer-Ocean of Story, p. 107

३—आदित्यतरंग, १२१।

४—जइ जो इमीए वरवालियाए होही वरोत्ति वर-समए।
सो सयल-पुहइ-णाहो लहिही दिव्वाउ सिद्धीओ॥

—लीलावईकहा—१५८।

ग्रहणं करिष्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति[१]।' राजशेखर की कर्पूर-मंजरी में भी नायिका कर्पूरमंजरी के विषय में इसी तरह का भविष्य कथन मिलता है।[२] कथाकोश में कुमारी चन्द्र प्रभा के विषय में भविष्यवाणी करते हुए ज्योतिषी बतलाते हैं कि इसका पति ही विजित देशों को फिर जीतेगा[३]। प्राकृत के कथा-काव्य सुमतिसूर कृत जिनदत्ताख्यान में नायक जिनदत्त सिंहल देश की राजकुमारी श्रीमती के साथ विवाह करता है तथा पद्मावत की भाँति इसमें भी लौटते समय समुद्र में नायक-नायिका एक दूसरे से वियुक्त हो जाते हैं[४]।

अपभ्रंश चरितकाव्य 'करकण्डचरिउ' में नायक करकण्ड की सिंहल-यात्रा तथा वहाँ की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह की कथा का उत्तरार्द्ध बहुत कुछ पद्मावत से समानता रखता है। लौटते समय समुद्र में भयंकर राक्षस के उपद्रव के कारण इसमें भी जलपोत टूटता है तथा नायक-नायिका वियुक्त होते हैं। पद्मावती को जिस प्रकार लक्ष्मी द्वारा सहायता मिलती है, ठीक उसी प्रकार इस काव्य में रतिवेगा को जैनियों की देवी पद्मावती से सहायता प्राप्त होती है।[५]

हिन्दी में इस अभिप्राय का एक दूसरा दृष्टान्त जानकृत रत्नावली में प्राप्त होता है, इसमें राजकुंवर रत्नावली से विवाह करके लौटते समय रास्ते में सिंहल देश की कन्या से भी विवाह करता है।[६] शिवदास कृत शालिवाहन चरित में राजा शालिवाहन सिंहल देश के राजा सूर्यसिंह की कन्या पद्मिनी से विवाह करता है।[७]

'सिंहल देश की कन्या से विवाह का अभिप्राय दो कारणों से विशेष लोकप्रिय हुआ। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के चरितकाव्यों में सिंहल देश के वर्णन से स्पष्ट है कि यह द्वीप किसी समय अमूल्य निधियों तथा कन्यारत्नों के लिये अत्यधिक विख्यात था। यहाँ की रमणियों की विशेष ख्याति थी। इन वर्णनों के अनुसार सिंहल की गज-गामिनी स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य से रति को प्रभावहीन कर देती हैं तथा वहाँ के लोगों का ऐश्वर्य देखकर देवलोक का ऐश्वर्य भी भूल जाता है—

१—रत्नावली, अंक ४।
२—कर्पूरमंजरी, अंक ५।
३—कथाकोश-टानी, पृ० १४२।
४—जिनदत्ताख्यान-सं० अमृतलाल मोहनलाल भोजक, १९५३, पृ० १६।
५—करकण्डचरिउ, ७।५।
६—हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य—डा० कमलकुलश्रेष्ठ, पृ० २२।
७—लीलावईकहा—डा० उपाध्ये, भूमिका, पृ० ५२, ५८।

जहिं पाडलपिल्लइं मरगु हुरंति । सुर खेयर किणर जहिं रमंति ॥
गयलीलइं महिलउ जहिं चलंति । णियरुवें रइरुउ वि खलंति ॥
जहिं देक्खिवि लीयहं तणउ भोउ । वीसरियउ देवहं देवलोउ ॥

करकंड चरिउ, ७।५

सिंहल देश की कन्याओं की खोज में कथा-नायकों को भटकाने का दूसरा कारण था, सिंहल का समुद्रस्थित द्वीप होना। सामान्य जलपोत से समुद्र-यात्रा उस समय के लिये सर्वाधिक रोमांचक तथा साहसिक कार्य रहा होगी; इससे नायिका-प्राप्ति के लिए प्रयत्न का वर्णन करते समय प्रयत्नावस्था को रोमांचक वर्णन उपस्थित करने तथा प्रेम की महिमा प्रदर्शित करने का कथाकार को पूरा-पूरा मौका मिल जाता है। लेकिन यह तो गौण कारण प्रतीत होता है, प्रधान कारण है सिंहल-कन्याओ के रूप-सौन्दर्य की ख्याति[1] मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो में जायसी के पद्मावत मे इस कथानक-रूढि का प्रयोग मिलता है।

६—किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार तथा मिथ्या लाछन :—अशोक की रानी तिष्यरक्षिता तथा कुणाल की कहानी इस अभिप्राय का प्रतिमित रूप है। तिष्यरक्षिता तथा कुणाल की भाँति ही जोसेफ तथा पोटिफर की कथा भी विख्यात है तथा इस विख्यात कथा के आधार पर ही पाश्चात्य विद्वानो ने इस अभिप्राय का नाम ही 'जोसेफ एण्ड पोटिफर' मोटिफ रखा है।

पेंजर ने लिखा है 'किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार होने पर उसका प्रतिशोध के लिये षड्यन्त्र करना स्वाभाविक है तथा यह अभिप्राय संसार के प्रत्येक कथा-संग्रह मे किसी न किसी रूप मे मिलता है।[2] कथाओ के साथ ही साथ ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्धित वर्णनो मे भी इस घटना का प्राय: संकेत मिलता है। 'कैम्ब्रिज हिस्टरी आव इंडिया' मे अशोक के सम्बन्ध में इस घटना का जिक्र है। अपनी प्रथम पत्नी असन्धिमित्रा (सीलोनी रेकर्ड के अनुसार) की मृत्यु के पश्चात् अशोक ने अपनी एक सेविका तिष्यरक्षिता से विवाह किया तथा उसे पट्टरानी बनाया। तिष्यरक्षिता अशोक के बड़े लड़के कुणाल पर आसक्त हो गई तथा कुणाल से स्पष्ट प्रेम-निवेदन किया। कुणाल

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक-रूढ़िया—डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० १२७।

2—As is only natural, the motif of the revenge of a woman whose love has been scorned enters into nearly every collection of stories in the world.

—The Ocean of Story, Vol. II, p. 120.

ने इसे अस्वीकार किया तथा अनुचित बतलाया। शीघ्र ही कुणाल को एक विद्रोह दबाने के लिये जाना पड़ा। कुणाल की अनुपस्थिति मे अशोक बीमार हुआ तथा उसने तय किया कि कुणाल को बुलाकर उसका राज्याभिषेक कर दिया जाय। तिष्यरक्षिता ने कुणाल के राजा होने मे अपनी हानि समझी तथा वह सम्राट को रोग-मुक्त करने के लिये स्वयं ही प्रयास करने लगी एवं उसमें उसे सफलता भी मिली। अशोक अत्यन्त खुश हुआ। तिष्यरक्षिता ने इसके उपलक्ष मे सात दिन के लिये राज्याधिकार प्राप्त किया। उसने बलात्कार का आरोप लगाकर कुणाल की आँखें निकलवा दी। बाद मे वीणा-वादक के रूप मे कुणाल वेश बदलकर दरबार मे आता है, रहस्योद्घाटन होता है तथा रानी जला दी जाती है।[1]

इसी तरह की घटना का उल्लेख 'कान्स्टेन्टाइन महान' के सम्बन्ध मे मिलता है। कान्स्टेन्टाइन की दूसरी पत्नी फोस्ता इसी तरह का झूठा आरोप लगाकर प्रथम पत्नी के पुत्र क्रियस तथा लुसिनियस के पुत्र लुसिनियन को मृत्युदण्ड दिलवाती है। जोसेफ के सम्बन्ध मे भी पोटिफर की पत्नी द्वारा इसी तरह का झूठा आरोप लगाया जाता है।[2]

कथासाहित्य मे विमाताओ तथा गुरुपत्नियो के इस तरह के झूठे आरोपों एवं प्रतिशोधो के पर्याप्त दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। पार्श्वनाथचरित मे कलिंगराज सूरसेन की पत्नी जया दूसरी रानी विजयादेवी के पुत्र अमरसेन तथा वीरसेन के सम्बन्ध मे यही आरोप लगाती है कि वे उसके साथ अनुचित सम्बन्ध चाहते थे। माधवानल काम-कंदला मे रुद्र देवी की भाँति जया भी कोप-भवन का सहारा लेती है तथा इस अनुचित प्रयत्न के लिये पुत्रो के प्रति कुलोचित व्यवहार करने की प्रार्थना करती है। सूरसेन पुत्रो के इस आचरण को सुनकर बहुत क्रुद्ध होता है और चंड नामक मातंग को आदेश देता है कि दोनो पुत्रो का सिर काटकर मेरे सामने लाओ। चंड को दया आ जाती है तथा वह दोनो को भगा देता है एवं उनके दोनो अश्वों को राजा के सामने उपस्थित करता है। इसके साथ ही बिल्कुल वास्तविक प्रतीत होने वाले मिट्टी के दो सिर बनवाकर राजा के सामने प्रमाण स्वरूप रख देता है। जया अत्यन्त प्रसन्न होती है।[3]

अपभ्रंश चरितकाव्य करकण्डचरिउ मे वणिक नागदत्त की पत्नी नागदत्त द्वारा पालित ब्राह्मण पुत्र पर आसक्त हो जाती है—

1—Orient and Occident बेनिफी, Vol, III, p. 177.
मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक-रूढियाँ-डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० १६८ से उद्धृत।
२—दी ओसेन आव स्टोरी—पेंजर की टिप्पणी, भाग २, पृ० १२०।
३—पार्श्वनाथचरित सर्ग ७।

सो एक्कहिं दिणि बंभणहो सुओ । कुंजरकरदीहरपीणभुओ ।
घत्ता—फणिदत्तइं सो बंभणसुयउ अवलोयउ पंकयणेत्तियएं ।
अगुराउ पवड्ढिउ तहो उवरि मणि चिंत्तिउ सुललिय गत्तियएं ॥

क० च० १०।६-८

वह प्रेम-व्यथा से विह्वल होकर उससे अपनी विकलता का निवेदन करती है । लेकिन उसके प्रेम-निवेदन को सुनकर वह पालित पुत्र हाथो से अपने कान बंद कर लेता है, आश्चर्य से उसकी आखें फैल जाती हैं तथा अस्वीकृति मे सिर हिलाते हुए वह कहता है 'हा माँ, तुम यह क्या कहती हो ? जैसे तुम अपने होश में नही हो । मैं तुम्हारा पुत्र हूँ तथा तुम मेरी माँ हो ।[१]

कुणाल की तरह ही पूरनमल का लोक-प्रबन्ध विमाता के प्रेम-प्रपंच तथा उसके अभिप्राय को लेकर निर्मित हुआ है । पूरनमल की इस कथा को लेकर ब्रज-प्रदेश मे एक कथा-गीत प्रचलित है ।[२] कुछ कथाओं में विमाता के स्थान पर गुरु पत्नियों का प्रेम तथा प्रतिशोध वर्णित है । कथासरित्सागर में सुन्दरक की कथा में सुन्दरक को कुणाल, माधव तथा पूरनमल की भाँति ही गुरुपत्नी के प्रतिशोध को सहना पडता है ।[३]

शिष्य से गुरुपत्नी के प्रेम-निवेदन तथा उसके प्रतिशोध की एक दूसरी कथा कथासरित्सागर मे वेदकुम्भ नामक उपाध्याय की पत्नी तथा देवदत्त का कथा मे वर्णित है ।[४] लेकिन इस अभिप्राय का उपयोग करने के लिये विमाता या गुरूपत्नी द्वारा ही प्रेम-निवेदन आवश्यक नही है । आवश्यक इतना ही है कि स्त्री द्वारा किसी कर्तव्यपरायण शीलवान व्यक्ति के प्रति काम-भाव प्रकट किया जाय तथा उसके ऊपर उल्टा ही कामुकता तथा अनुचित रूप से प्रेम-प्रपंच फैलाने का आरोप लगाया जाय, जिसके फलस्वरूप वह निरपराध व्यक्ति दण्डित हो । जिस तरह विमातायें अपने सौतेले पुत्र पर, गुरुपत्नियाँ शिष्य पर आकर्षित होती हैं तथा उन्हें दण्ड दिलवाती हैं, ठीक उसी तरह कुछ कथाओ मे रानियाँ प्रेम-निवेदन अस्वीकार करने पर अपने मंत्रियो को दण्डित कराती हैं । उदाहरणार्थ कथासरित्सागर में वर्णित उज्जयिनी के राजा महासेन, उनकी रानी अशोकवती तथा गुणशर्मा नामक विप्र मंत्री की कथा को देखा जा सकता है ।[५]

१—करकंडचरिउ, १०।६-६ ।
२—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, डा० सत्येन्द्र, पृ० २०१ ।
३—६।५७, २०।११८ ।
४—७।५७ ।
५—४६।३० ।

सौतेली माँ के सौतेले पुत्र पर आकर्षित होने तथा प्रतिशोधपूर्वक दण्ड कराने का सर्वाधिक प्राचीन दृष्टान्त जातक कथाओ मे महापद्मजातक में प्राप्त होता है। माधव, पूरनमल, कुणाल तथा पद्मुकार की कथा मे व्यवहृत अभिप्राय का ही एक दूसरा रूप रूपवसन्त अथवा शीत-बसन्त की लोक प्रचलित कथा मे उपलब्ध होता है। इसमे भी रानी अपने सौतेले पुत्र पर आसक्त हो जाती है तथा प्रतिशोध भाव से उसे दंड दिलवाती है; लेकिन अन्ततोगत्वा रहस्योद्घाटन हो जाता है।

जातक (१२०) की ही एक दूसरी कथा मे एक रानी अपने पुरोहित से इस तरह का प्रस्ताव करती है। अस्वीकार करने पर उलटे आरोप लगाती है, परन्तु अन्त में वह निर्दोष सिद्ध होता है। पाश्चात्य साहित्य मे फिएड्रा तथा हियोडिटस की कहानी विमाता के प्रेम तथा प्रतिशोध का दृष्टान्त है।[१] जातक की दूसरी कथा की भाँति पोटिफर की स्त्री भी इसी तरह उलटे आरोप लगाती है तथा अन्त मे उसी का अपराध भी सिद्ध होता है।[२]

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे गणपति मित्र कृत माधवानल-कामकंदला मे इस अभिप्राय का प्रयोग मिलता है।

७—वन मे सरोवर के पास सुन्दरी कन्या का दर्शन : संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश के कथा-काव्यो मे प्रेम-संघटन के लिए इसी अभिप्राय का सर्वाधिक उपयोग मिलता है। कादम्बरी मे पुंडरीक तथा महाश्वेता का प्रथम मिलन अच्छोद सरोवर पर होता है। कुमार चन्द्रापीड भी आखेट के समय वन मे मार्ग भूलकर इस सरोवर पर ही पहुँचता हे तथा यही से कुमार और कादम्बरी की प्रेम-कथा प्रारम्भ होती है।[३] कथासरित्सागर के अनेक प्रेमाख्यान वन मे जलाशय के पास सुन्दरी कन्या के दर्शन तथा प्रेम से आरम्भ होते हैं। अनंगारवती की कथा मे वन मे जल की तलाश करते समय हरिवर को एक सरोवर के पास नायिका अनंगारवती मिलती है तथा वहीं प्रथम-दर्शन-जन्य आकर्षण तथा प्रेम उत्पन्न हो जाता है।[४] जीमूतवाहन के पूर्वजन्म की कथा मे वसुदत्त को नायिका मनोवती का प्रथम-दर्शन वन मे सरोवर पर प्राप्त होता है तथा वही

१—देखिए—पापुलर टेल्स एण्ड फिक्सन, क्लाउस्टन, १८८७ भाग १, पृ० ५७।
हिस्टरी आव प्रोज फिक्सन, डन्लप, पृ० ११२।
२—वही, पृ ११२।
३—कादम्बरी—पिटर्सन, भाग १, पृ० ११६-१३६।
४—कथासरित्सागर-आदिस्तरंग, ५२।

दोनों में प्रेम हो जाता है।[1] प्रतापमुकुट तथा पद्मावती की प्रेम-कथा वन में एक सरोवर पर मिलन से आरम्भ होती है।

लीलावईकहा में सिंहलराज शिलामेघ वन मे एक सूकरी का पीछा करते हुए एक सरोवर के समीप पहुँचते हैं। शूकरी उसी सरोवर मे प्रवेश कर जाती है तथा एक सुन्दरी कन्या के रूप मे सरोवर से निकलती हैं। गन्धर्वी शरदश्री शापग्रस्त होकर वन में शूकरी के रूप मे घूमती रहती है तथा सरोवर मे प्रवेश करते ही वह शापमुक्त हो जाती है।[2] मृगावती की कथा इससे बहुत कुछ मिलती जुलती है। मृगावती भी शापग्रस्त होकर हरिणी के रूप मे वन में विचरण करती है तथा आखेट के समय राजकुँवर द्वारा पीछा किये जाने पर सरोवर में प्रवेश कर जाती है। भेद केवल इतना ही है कि शरदश्री उसी समय शापमुक्त होकर सरोवर से निकलती है तथा वहीं प्रेम आरम्भ हो जाता है तथा मृगावती वर्ष भर बाद एकादशी के दिन स्नान करने आती है और नायक वस्त्र-हरण द्वारा उसे प्राप्त कर लेता है।

जैन कथाकारो ने इस अभिप्राय का अत्यधिक प्रयोग किया है। 'बंभदत्तो' में नायक ब्रह्मदत्त को वन में भटकते समय एक महासरोवर के पास 'वर-कन्या' श्रीकान्ता दिखाई पड़ती है, जो प्रेम भरी दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई चली जाती है। बाद में दोनों परिणय सूत्र मे बँध जाते हैं।

मुनि कनकामर के करकंडचरिउ में प्यास से विह्वल होकर जल की तलाश करते समय करकण्ड का सरोवर के पास स्वर्णकान्ति वाली रत्नलेखा से मिलन तथा प्रेम होता है।[3] सूए ने तत्क्षण राजा से कहा—

> हे णरवइ तुहुँ एह रयणलेह। लइ परिणहि कंचण दिव्व देह॥
> चिरु कहिय मुणिदहिं आरिसेहिं। परिणेवी एह तुम्हारिसेहिं॥
> तं सुणिवि णरिंद सा भणीय। अंभोरुहदीहरलोयणीय॥
> हे सुंदरि सूयउ भणइ जाइं। पडिहासहि तुहुँ वयणाइं ताइं॥
> घता-तं सुणिवि कुमारी पडिलवइ अणुराएं वयणु पडिक्खलइ॥
> मइं केर तुम्हारी मणि धरिय सुयवयणु णरेसरकिं चलइ॥

'हे नरपति, तू इस कंचन के समान दिव्य देह रत्नलेखा का परणिय कर ले। बहुत पहले ही आर्य मुनीन्द्रो ने कह रखा है कि इसका परिणय तुम्हारे—जैसे पुरुष द्वारा ही

१—वही, आदिस्तरंग २२।
२—लीलावईकहा, ६८७-८०१।
३—करकंडचरिउ, ८-१०।

होगा।' यह सुनकर नरेन्द्र ने उस कमलसमान दीर्घनयना कन्या से कहा—'हे सुन्दरि, यह सूआ जो बातें कर रहा है, वे तू पसन्द करती है न ? यह सुनकर उस कुमारी ने उत्तर दिया। अनुराग से उसके वचन लडखडा रहे थे। वह बोली—'मैंने तो अपने मन में आपकी सेवा का भाव धारण कर लिया है। हे नरेश्वर, सूए का वचन कैसे टल सकता है ?'[1]

पउमचरिउ मे सगर तथा तिलककेशा का मिलन एवं प्रेम वन मे सरोवर के निकट होता है।[2] पउमचरिउ के अनुसार एक बार वन मे भ्रमण करते हुए रावण को मेघधर पर्वत पर गन्धर्व सरोवर मे स्नान करती हुई, रक्षको द्वारा रक्षित, छः हजार गंधर्व राजकुमारियाँ दिखलाई पडी। रावण को देखते ही वे सभी उनपर इतना आकर्षित हुई कि वही उन्होने उसके आलावा दूसरे किसी को पति के रूप मे न स्वीकार करने की घोषणा कर दी। रक्षको द्वारा सूचना पाकर गंधर्व सरसुन्दर विशाल सेना लेकर वहाँ पहुँचा, परन्तु रावण ने निद्रा के मंत्र द्वारा सबको बेहोश करके नाग-बन्ध से बाँध दिया तथा उन सभी कुमारियों के साथ उसने विवाह कर लिया।[3] जैन कथाकोश मे तो ज्यादातर प्रेम-प्रसंगो का आरम्भ वन मे जल की तलाश मे जाने पर किसी सुन्दरी के दर्शन से ही होता है। राजकुमार कनकरथ तथा नायिका ऋषिदत्ता की कथा वन मे सरोवर के पास प्रथम दर्शन से आरम्भ होती है।[4] राजकुमार रत्नशिख को वन मे जल की तलाश करते समय एक सरोवर के पास नायिका चन्द्रप्रभा की प्राप्ति होती है।[5] जैन कथाओ के विख्यात नायक सनत्कुमार तथा वकुलमती का प्रेम वन मे सरोवर के पास प्रथम दर्शन से आरम्भ होता है।[6] मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यो मे मृगावती मे इस कथानक-रूढ़ि का प्रयोग हुआ है।

८. **दोहद** : दोहद अथवा गर्भवती नारी की अभिलाषा नामक अभिप्राय में गर्भवती नारी किसी असाधारण वस्तु की प्राप्ति के लिए अथवा अन्य कोई अद्भुत अभिलाषा व्यक्त करती हे तथा पति उसकी इच्छा पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होता है।

१—करकंडचरिउ—डा० हीरालाल जैन, पृ० १११, ११३।
२—पउमचरिउ, संधि ५।
३—वही, संधि १०।
४—कथाकोश, टानी, पृ० १००।
५—वही, पृ० १४१।
६—वहीं, पृ० ३१।

पाश्चात्य विद्वान डा० अल्फ्रेडऐला,[1] प्रोफेसर ब्लूमफील्ड[2] और पेंजर[3] ने इस कथानक-रूढि पर विस्तृत प्रकाश डाला है। पेंजर ने दोहद शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'दोहद' शब्द का तात्पर्य दो हृदय (Two heartedness) अर्थात् ऐसी नारी जिसके दो हृदय हो अर्थात् जिसकी दो इच्छायें हों—एक अपनी और दूसरी गर्भ के बालक की। डा० ब्लूमफील्ड ने 'गर्भवती नारी की अभिलाषा' नामक अभिप्राय की व्याख्या करते हुए इसके विभिन्न छः रूप बतलाये हैं।

१—दोहद अभिप्राय में नारी या तो स्वयं अपने पति को घायल करती है या उसकी यह मनोवृत्ति होती है कि पति संकट-ग्रस्त हो।

२- इसके दूसरे रूप में नारी अपने पति को कुछ साहसिक कार्य सम्पन्न करने, असाधारण दक्षता दिखलाने को प्रोत्साहित करती है।

३—दोहद में पवित्र नारी पवित्र भावनाओं से युक्त पवित्र-कार्य सम्पन्न करने के लिए लालायित रहती है।

४—दोहद का चौथा रूप किसी आख्यान में कृत्रिम घटना के रूप में प्रयुक्त होता है जो आख्यान की मुख्य घटना को प्रभावित नहीं करता।

५—दोहद में गर्भवती नारी किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये या अपनी कोई अभिलाषा की पूर्ति के लिए लालायित रहती है।

६—दोहद अभिप्राय के छठे रूप में गर्भवती नारी को बडे चतुरतापूर्ण कार्य से यह विश्वास दिलाया जाता है कि उसकी अभिलाषा पूर्ण की जा रही[4] है।

दोहद अभिप्राय के प्रथम रूप की पुष्टि के लिए कुछ दृष्टान्त दर्शनीय हैं। प्रथम दृष्टान्त मे, राजा बिम्बसार अपनी गर्भवती रानी को अपने दाहिने घुटने से रक्त निकाल

१—Longing of the pregent, viewed in the light from the East By Alfred Ela (Boston Medical and Surgical Journal, Vol. Clxxx III, p. 576, 1920,

२—The Dohad or Carving of the pregnant women. By Bloom field (Toun Amer, Orient Soc. Vol. IX, Part I, 1920, pI. 24)

३—On the Dohad or Carving of the pregnant women as a Motif in Hindu Fiction (Ocean of the Story)—N. M. Penzer, Vol. I. p. 221-232.

४—राजस्थानी के प्रेमाख्यान परम्परा और प्रगति—डा० रामगोपाल गोयल, पृ० २४७-४८।

कर देता है। इसी तरह रासल्टन द्वारा सम्पादित तिब्बत की लोक-कथाओं में उल्लेख है कि गर्भवती रानी वासवी अपने पति की पीठ का मांस खाने की अभिलाषा व्यक्त करती है[१]। परन्तु पेंजर महोदय ब्लूमफील्ड द्वारा वर्णित दोहद के प्रथम रूप से असहमत हैं। वे पत्नी द्वारा पति को घायल करने का कार्य या अभिलाषा 'दोहद' अभिप्राय के अन्तर्गत नही मानते। उनके अनुसार दोहद अभिप्राय मे केवल गर्भवती स्त्री की विचित्र कामना तथा उसकी पूर्ति ही आनी चाहिए।

भारतीय-साहित्य में दोहद अभिप्राय का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से होता आ रहा है। परशिष्ट पर्वन मे उल्लेख है कि मन्त्री की गर्भवती-पुत्री की मनोकामना पूर्ण करने के लिए कृत्रिम साधनो से दूध मे चाँद की किरणें झलकाकर उसे चाँद पिलाया जाता है। कथासरित्सागर की कहानी राजा सातवाहन तथा मृगावती मे भी इसका प्रयोग मिलता है। इस कथा में गर्भवती मृगावती रक्त से भरी बावडी मे स्नान करने की अभिलाषा व्यक्त करती है तथा रानी की अभिलाषा की पूर्ति के लिए राजा लाख आदि पदार्थों से बावड़ी का पानी रक्त जैसा बनवा देता है और उसमे स्नान करके रानी अपनी अभिलाषा पूर्ति की तृप्ति का अनुभव करती है।[२]

करकंडचरिउ मे रानी पद्मावती की दोहद कामना का वर्णन अत्यन्त सुन्दर बन पडा है—

> सा पेक्खिवि राणी जयहो पहाणी राएं किउ ता सोहलउ।
> तहिं तेहइं अवसरे पयडइ वासरे हूयउ तहिं मणि दोहलउ ॥ १।९

रानी का दोहला इस प्रकार है—

> वरिसंतइं जलहरे मंद मंदे णररूउ करेविणु णियगइंदे।
> पइं सहुं चडेवि णरेसर पुणुपरमेसर पट्टणु भममि सगोउरउ।
> इउ हियवइं वट्टइ जइ ण विघट्टइ तो णिच्छइं एवहिं मरउं ॥ १।१०

'मेघो की मन्द-मन्द वर्षा हो और मैं नररूप धारण करके अपने गजेन्द्र पर आपके सहित, हे राजन्, हे नरेश्वर, चढ़कर फिर गोपुरों सहित पट्टन का भ्रमण करूं। हे परमेश्वर यह (अभिलाषा) मेरे हृदय मे वर्तमान है। यदि यह घटित न हो सकी तो मैं निश्चय से यो ही मर जाऊँगी[३]।'

१—Schiefiner and Ralston's Tibetan Tales, p. 84.

२—कथा-सरित्सागर (सत साहित्य प्रकाशन, दिल्ली) दूसरा खण्ड, पृ० सं० २३।

३—करकंडचरिउ—डा० हीरालाल जैन, पृ० ६।

रानी की दोहद-कामना पूर्ण करने के लिए महाराज धाडीवाहन अपने सर्वश्रेष्ठ गज पर रानी को बैठाकर नगर की परिक्रमा करने निकलते हैं। लेकिन बैठते ही राजा-रानी को लेकर हाथी बन की ओर भाग खडा होता है। रानी के आग्रह पर राजा एक पेड की डाली पकड़ लेते हैं, परन्तु रानी बन मे पहुँच जाती है। वही नायक करकंडु का जन्म होता है। इस अभिप्राय का दूसरा उदाहरण तीसरी अवान्तर कथा के अन्तर्गत प्राप्त होता है। यहाँ चेटी राजा के मोर का मांस खाने की लालसा प्रगट करती है।

ता तुरिउ ताएं सो वणिउ उत्तु। महो एक्कु वयणु तुंहुं करि णिरुत्तु।
एह रायहो वरहिणिमसुएण। महो दिज्जइ जीवमि णिच्छएण॥
क० च० ३।१५

करकंडचरिउ मे रानी पद्मावती स्वप्न मे प्रचण्ड हाथी देखती है—

पिक्खु सामि हत्थि इट्ठु। जामिणीहिं एं तुदिट्ठु। क० च० १।८

यह इस बात का द्योतक हे कि उसका पुत्र तेजस्वी और प्रतापी होगा।

(ख) रोमांचक अभिप्राय

१—समुद्र-यात्रा के समय जलपोत का टूटना : समुद्र-यात्रा के समय जलपोत के टूटने तथा काष्ठफलक के सहारे नायक-नायिका की रक्षा का वर्णन प्रायः सभी प्रेमाख्यानक काव्यो मे हुआ है। इन सभी काव्यो मे प्रिया-प्राप्ति के लिये उद्योग करते समय नायक विभिन्न भयंकर वनो को पार करके किसी समुद्र के किनारे अवश्य पहुँचना है तथा इन काव्यो की नायिकाएं समुद्र पार किसी द्वीप की राजकुमारी हैं, अतएव समुद्र की यात्रा आवश्यक हो जाती है। इस सन्दर्भ मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रिया-प्राप्ति के लिये समुद्र पार करते समय या नायिका को प्राप्त करके उसके साथ लौटते समय समुद्र मे तूफान आने के कारण या अन्य किसी कारण से जलपोत अवश्य टूट जाता है; लेकिन उसी समय अवश्य ही कोई काष्ठफलक पास ही तैरता हुआ दिखलाई पडता है तथा नायक या नायक-नायिका दोनो उसके सहारे समुद्र पार करके उसके किसी तट पर अवश्य पहुँच जाते हैं। अधिकाशतः नायिका के साथ अपने देश को लौटते समय ही यह घटना घटती है। नायक-नायिका एक दूसरे से वियुक्त होकर समुद्र के दो तटों पर पहुँचते है तथा कथाकार को वियोग-व्यथा और नायिका प्राप्ति के पुनः प्रयत्न का वर्णन करने के साथ ही विभिन्न सहासपूर्ण कार्यों की योजना का मौका मिल जाता है।[1]

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे कथानक—रूढ़ियां—डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० १७६।

हिन्दी प्रेमाख्यानो की भांति ही अपभ्रंश तथा प्राकृत के अधिकांश चरितकाव्यों और कथाओं में ऐसे स्थलों पर इस रूढि का उपयोग मिलता है। प्राकृत ग्रन्थ 'लीलावईकहा' मे हाल के मन्त्री विजयानन्द को सिंहल की यात्रा करते समय इसी संकट का सामना करना पडता है। यहा भी समुद्र में तूफान आता है तथा जलपोत एक शिलाखण्ड से टकराकर सैकडो टुकडे हो जाता है। विजयानन्द पास ही बहते हुए एक काष्ठफलक पर बैठकर गोदावरी के मुहाने पर पहुँचता है।[1]

'करकंडचरिउ' मे नायक करकंड को भी सिंहल देश की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह करके लौटते समय, समुद्र-यात्रा करनी पडती है। पद्मावत की भांति यहां भी मत्स्य रूप मे एक राक्षस द्वारा विघ्न उपस्थित किया जाता है, जिसे नायक मार डालता है, लेकिन उसी समय एक खेचरी उसे उडा ले जाती है। नायक तथा नायिका वियुक्त हो जाते हैं। यही कवि का लक्ष्य भी था।[2]

इसके अतिरिक्त करकंडचरिउ की एक प्रासंगिक कथा मे भी इसी अभिप्राय के माध्यम से कथाकार न रुकती हुई कथा को आगे बढ़ाया है। आठवी संधि मे अवन्ति-राज अरिदमन छोहार द्वीप की राजकुमारी रत्नलेखा से विवाह करके लौटते हैं; परन्तु तूफान के कारण नाव दूसरे उजाड द्वीप मे चली जाती है। वहा राजा के आकाशगामी अश्व तथा नाव दोनो को कोई चुरा ले जाता है। अन्त मे कई काष्ठफलको को एक मे बांधकर नायक-नायिका यात्रा आरम्भ करते हैं; लेकिन पुनः भयंकर हवा से रस्सी के टूट जाने के कारण सभी फलक अलग हो जाते हैं तथा नायक-नायिका विपरीत दिशाओ मे बह जाते हैं। नायक कोकण देश मे तथा नायिका खंभायत नगर मे पहुँचती है।[3]

१—तत्थ वि विसम सिलायउ संच्चुण्णिय-संधि-बंधणो सहसा।
सय खण्ड विसंघडिओ असमंजस-कज्ज-बन्धो व्व॥ १८१
भिण्णम्मि तम्मि पोए सव्वेहि वि जाण वत्तिएहिं अहं।
एक्क फलए णिसण्णो गोला-मुह-पारमुवणो ओ॥ १८२

२—जामसिंधुमज्झि जाहिं जाणयाइं। मंडिऊण ताडिऊण सज्जियाइं॥
ताव दिट्ठु राणएण मच्छु फारु। णाइं तेण सायरस्स लद्ध सारु॥
मन्दु मन्दु सुप्पयंन्दु रंगमाणु। रोसएण धाविऊण लग्गमाणु॥७।९
जत्थ अत्थि सच्छणीरु उच्छलंतु णट्ठ वीरु।
ताव तम्मि खेयरीएं णीउ राउ दुद्धरीएं ७।१०

३— तहो लहरिहिं बन्धइं तोडियाएं देसन्तर राएं हिंडियाइं।
ता उड्डिवि सूयउ वडि गयउ णिउ णरवइ लहरिहिं कोकणहो।
तहो घरिणि मणोहर विहिवसइं णिय खंभायच्चहो पट्टणहो॥८।१२

भविसयत्त कहा में भी इसी अभिप्राय का प्रयोग हुआ है परन्तु वहां उपयुंक्त कुछ काव्यों की भांति इस अभिप्राय के दूसरे रूप-भयंकर तूफान मे जलपोत के दूसरे द्वीप, प्रायः उजाड द्वीप, में चले जाने का प्रयोग किया गया है। भविसयत्तकहा मे नायक भविष्यदत्त के साहसिक तथा चमत्कारपूर्ण कार्यों की योजना के लिये कथाकार ने प्रथम यात्रा के समय ही जहाज को भयंकर तूफान मे डालकर उजाड़ द्वीप मे पहुँचा दिया है।

दुप्पवणें घण तरुवर समीवे वहणइ लग्गइं भयणायदीवे। ३।२३

प्राकृत ग्रन्थ जिनदत्ताख्यान में जलपोत टूटता तो नही है, परन्तु स्थिति वही होती है। सिंहल द्वीप से लौटते हुए नायक जिनदत्त को बलपूर्वक समुद्र मे छोड़कर ही, सार्थवाह नायिका श्रीमती को लेकर चल पडता है। समुद्र की भयंकर लहरों में निराधार पडा जिनदत्त जीवन की आशा छोड देता है; परन्तु उसी समय एक काष्ठफलक तैरता हुआ दिखाई पडता है। वह उसी के सहारे डूबने से बच जाता है बाद में उसी रास्ते से जाते हुए विद्याधरों द्वारा वह समुद्र से बाहर निकाला जाता है।[१]

प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के कवियो तथा कथाकारो को ऐसे स्थलो पर इस अभिप्राय के प्रयोग का कथा-कौशल परम्परागत रूप मे संस्कृत साहित्य से मिला है। संस्कृत साहित्य मे शायद ही कोई ऐसी कथाकृति हो जिसमे समुद्रयात्रा का प्रसंग आने पर जलपोत के टूटने तथा काष्ठफलक पर आश्रित होने की घटना न आई हो। उदाहरणार्थ कथासरित्सागर, दशकुमारचरित, पार्श्वनाथ चरित, समरादित्य संक्षेप, रत्नावली आदि कथाकाव्यो तथा नाटिकाओ मे ऐसे अवसरो पर यन्त्र की तरह इस अभिप्राय का प्रयोग किया गया है। जातक कथाओ तक में भी इस अभिप्राय के दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। सुस्सोन्दी जातक (३६०) में रानी का गरुड़राज द्वारा हरण होने पर सर्ग (सग्ग) नामक मन्त्री उसको खोज में निकलता है। समुद्र पार करते समय एक विशाल मत्स्य से टकराकर जलपोत टूट जाता है। मन्त्री एक काष्ठफलक के सहारे समुद्र पार करता है।

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में पद्मावत, मधुमालती, इन्द्रावती, चित्रावली, पुहुपावती आदि मे इस अभिप्राय का प्रयोग किया गया है।

२—वन में मार्ग भूलना : कथा को नयी दिशा प्रदान करने तथा रोमांचक घटनाओं की योजना द्वारा चमत्कार तथा कुतूहल उत्पन्न करने के लिये कथाओ में यह अभिप्राय अत्यन्त उपयोगी माना गया है तथा अपनी इस उपयोगिता के कारण ही

१—जिनदत्ताख्यान, पृ० २८।

कथात्मक रचनाओ तथा कथासंग्रहो मे बिलकुल यांत्रिक ढंग से कथा के पुरस्सरक (प्रोगेसिव) अभिप्राय के रूप मे प्रयुक्त होता आया है। यह इतना महत्वपूर्ण अभिप्राय है कि कथाकार इसका उपयोग करके कथा को अपनी वस्तु-योजना के अनुरूप जिस दिशा मे चाहे मोड़ सकता है।

मध्यकाल के कथानायको के प्रेम तथा साहसिक कार्यो (ऐडवेन्चर्स) का आरम्भ प्राय: इसी घटना (इन्सीडेन्ट) से होता है। सामन्तीयुग के ये कथानायक राजकुमार आखेट के लिये वन मे जाते है तथा किसी वन्य जन्तु का पीछा करते हुए अथवा अन्य किसी कारण से मार्ग भूल जाते हैं। अपने मित्रो से वियुक्त होकर वन मे भटकते हुए वे या तो किसी सरोवर के निकट पहुँचते हैं, जहा कोई सुन्दरी पहले से उपस्थित रहती है अथवा आ जाती है तथा रोमास का आरम्भ हो जाता है, या कोई दूसरी रोमांचक घटना घटित होता है और नायक उसका मुख्य पात्र बन जाता है। इस प्रकार स्वाभाविक है कि कथा अपने आप आगे बढ जाती है अथवा दूसरी दिशा की ओर मोड ले लेती है।

संस्कृत तथा प्राकृत-अपभ्रंश के अलंकृत कथा-काव्यो मे नायक-नायिका का प्रथम दर्शन-जन्य प्रेम प्राय: किसी वन मे सरोवर के किनारे होता है तथा उस सरोवर तक पहुँचने और वहाँ स्नानार्थ आई नायिका का दर्शन करके उसके प्रेम मे आसक्त होने के लिये नायक निश्चित रूप से आखेट के समय किसी वन्य जन्तु का पीछा करते हुए अथवा अन्य किसी तरह मार्ग भूलकर इधर-उधर भटकता हुआ वहा पहुँचता है। बाणभट्ट, दंडी, कुतूहल और कनकामर की प्रेमकथाओ का यह अत्यन्त प्रिय अभिप्राय है। कुमार चंद्रापीड तथा महाश्वेता का मिलन अच्छोद सरोवर पर इस कारण संभव होता है कि कुमार आखेट के समय दो किन्नरो का पीछा करते हुए वन मे मार्ग भूल जाते हैं। दशकुमारचरित मे भी प्राय: सभी नायको की रोमाचक कथाएं घने वन मे मार्ग भूलने तथा अचानक किसी राक्षस, सुन्दरी या कापालिक से भेंट होने अथवा सरोवर मे प्रवेश करने से आरम्भ होती है। 'लीलावई कहा' मे सिंहलराज शिलामेघ तथा शरद्श्री का मिलन तथा गान्धर्व विवाह वन मे शिकार के समय एक शूकर का पीछा करते हुए मित्रो से बिलग होकर घने अज्ञात वन मे जाने के कारण संभव होता है। वही शूकर सरोवर मे प्रवेश करके नायिका शरद्श्री के रूप मे प्रकट होता है।[1]

मुनि कनकामर कृत करकण्डचरिउ मे तो निरुद्देश्य ही कवि ने वन मे नायक को मार्ग-भ्रम मे डाल दिया है। यह अभिप्राय के यान्त्रिक तथा सहज रूप से अपने आप आ

१—छन्द, ६८७-८०।

जाने का श्रेष्ठ दृष्टान्त है।[१] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वन तथा आखेट के साथ यह अभिप्राय वैसे ही अकारण भी आ सकता है।

परन्तु वन में मार्ग भूलने के कारण घटित होने वाली आश्चर्यजनक तथा रोमांचक घटनाओं का वास्तविक सौन्दर्य तथा चमत्कार लोककथाओं में ही उपलब्ध होता है। लोककथाओं में ऐसे मौके पर सामान्यतः रोमांचक तथा दुखद घटनायें ही घटती हैं। कभी नायक वन मे भूलकर किसी उजाड नगर मे पहुँचता है तथा भयंकर राक्षस से उसका संघर्ष होता है तो कभी वन मे हरिणी के रूप मे भ्रमण करती हुई कोई राक्षसी उसे दूर ले जाकर एक सुन्दरी के रूप मे प्रकट होकर और विभिन्न शर्तों पर पासे मे जीतकर बंदी बना लेती है।[२] राजकुमार का जीवन-निमित्त वृक्ष सूखने लगता है, इससे उसके संकट मे होने की सूचना सबसे छोटे राजकुमार को मिलती है तथा वह उसकी खोज में निकल जाता है।[३] ऐसी परिस्थिति मे ऐसे कापालिको के हाथ मे भी नायक पड सकता है, जिन्हे अपनी सिद्धि-पूर्ति के लिये किसी सुन्दर राजकुमार की बलि की आवश्यकता है। कभी-कभी तो संकट मे पड़े हुए राजकुमार को वन मे भटकते हुए पशु-पक्षियो की कथावार्ता सुनने का भी मौका मिल जाता है, जिससे उनको ऐसी अमूल्य निधियाँ, मंत्राभिषिक्त वस्तुयें या दिव्य गुणवाली वनस्पतियाँ प्राप्त हो जाती हैं, जो उनके रोमाचक तथा साहसिक कार्यों मे और अधिक आश्चर्य का तत्व ला देती हैं।[४]

इन दृष्टान्तो से यह जाहिर है कि कथाकार अपनी कथानक-योजना के अनुरूप किसी भी रोमाचक तथा आश्चर्यजनक घटना की तरफ कथा को ले जाने के लिये इस अभिप्राय का अवलम्ब ले सकता है। मध्यकालीन हिन्दो प्रबन्ध काव्यों मे इन्द्रावती मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है।

३ – विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व : विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व यानी ऐसा अश्व जिसे विपरीत शिक्षा मिल गई हो। यह जैनकथाकारो तथा कवियो का अत्यधिक प्रिय अभिप्राय है। विपरीतशिक्षा प्राप्त होने के कारण ऐसे अश्व नायक को लेकर प्रायः वन की ओर भाग जाते हैं तथा उन्हे नियन्त्रित करने और रोकने के सभी प्रयास निरर्थक हो जाते हैं। ऐसे अश्वो की खास विशेषता यह होती है कि इन्हे जिधर ले आया जाय उधर न जाकर विपरीत दिशा की ओर ही जाते हैं। नायक अश्व की इस विशेषता से

२—करकण्डचरिउ, १।१६।

१—फोक टेल्स आव बंगाल—डे, लाल बिहारी, द्वितीय संस्करण, पृ० १८१।

२—वही, पृ० १८२।

३—रोमेंटिक टेल्स आव पंजाब—स्विनर्टन, पृ० ५६ तथा ओल्ड डेकनडेज, पृ० १०६।

अनभिज्ञ होता है, इसलिये अप्रत्याशित रूप से ऐसे स्थानों पर पहुँच जाता है जहां पहुँचने की उसने कभी कल्पना भी नही की थी। बृहत्कथा और अन्य हिन्दू कथा-संग्रहों में नायक के नियन्त्रण को न मानने वाले तथा उन्हे भयंकर आपत्ति में डालने वाले अश्वों का उल्लेख प्रायः प्राप्त होता है परन्तु ऐसे अश्व जिन्हें आरम्भ से उलटी शिक्षा ही दी गई हो, जैन कथाकारो की ही सूझ जान पड़ते हैं। जैन कथाओ तथा प्राकृत-अपभ्रंश के जैन कथा-काव्यों तथा चरितकाव्यों मे इसका सर्वाधिक उपयोग मिलता है तथा उसके बाद से ही यह अभिप्राय परवर्ती कथाओं मे निरन्तर प्रयुक्त होता आ रहा है।

रोकने के लिए वल्गा खींचने पर भयङ्कर गति से भागने वाले इस तरह के अश्वों के लिए कथा-संग्रहो तथा कथाकाव्यो मे कई शब्दो का प्रयोग मिलता है। पार्श्वनाथ चरित में 'विपरीत शिक्षित' तथा 'प्रतीप शिक्षित' शब्द का प्रयोग हुआ है।[1] प्रबन्ध चिन्तामणि मे विपर्यस्ताम्यस्त शब्द आया है[2]। कथासरित्सागर मे 'कशाघातेनो तेजित वाजी'[3] शब्द प्रयुक्त हुआ है। जैन कथाकारो ने कथासरित्सागर के अश्ववेगा-त्प्रयातः को विपर्यस्ताम्यस्तेन अश्वेन हृतः का रूप देकर इस अभिप्राय का नवीनीकरण कर दिया है। ऐसे अश्व पर बैठाकर कथाकार अपने उद्देश्य के अनुसार नायक को इच्छानुसार कही भी ले जा सकता है।

पार्श्वनाथचरित मे कवि को शकुन्तला-दुष्यन्त कथा के ढंग की प्रेम-कथा की योजना करनी है। वन में आश्रमवासिनी कन्या पद्मा तक महाराज सुवर्नबाहु के पहुँचने पर प्रथम दर्शन-जन्य-प्रेम उत्पन्न हो सकता है। लेकिन प्रश्न उठता है कि इस अज्ञात स्थान पर नायक पहुँचे कैसे ? किन्तु इस अभिप्राय का सहारा लेकर सुवर्नबाहु को विपर्यस्ताम्यस्त अश्व पर बैठाकर आसानी से कवि नायिका के आश्रम तक पहुँचा देता है। तत्पश्चात् वन मे सरोवर के पास नायिका-दर्शन, प्रथमदर्शन-जन्य प्रेम आदि प्रेमपरक अभिप्रायों के उपयोग से कथा-विकास सहज हो जाता है।[4]

वीरतापूर्ण तथा साहसिक कार्यों द्वारा मध्यकालीन नायक की अजेय शक्ति तथा उसके असाधारण पौरुष के चित्रण के लिए भी यह अभिप्राय अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी के जैन कवि जटमल नाहर ने जैन परम्परानुसार ही इस अभिप्राय का प्रयोग

१—पार्श्वनाथचरित ३,५००।

२—प्रबन्ध चिन्तामणि, पृ० २८६।

३—स वाजी तेन च कशाघातेनोत्तेजित भृशम्......वनान्तरं ततोऽन्वेषीद्वाताधिक जवो नृपम्। ६४,१३-१४।

४—लाइफ ऐंड स्टोरीज आव जैन सेवियर पार्श्वनाथ—एम० ब्लूमफील्ड १९१९, पृ० १०४।

नायक की विलक्षण शक्ति से प्रभावित तथा चमत्कृत करने के लिए अपने काव्य 'प्रेम विलास प्रेमलता कथा' में किया है।[1]

चरित्रांकन के लिए कथाकोश में भी इस अभिप्राय का प्रयोग मिलता है।[2] हिन्दू टेल्स में संगृहीत एक प्राकृत कथा में नायक ऐसे अश्व के कारण वन में भटकता हुआ एक जैन मुनि के आश्रम मे पहुँचकर जैन धर्म मे दीक्षित हो जाता है।[3] स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' मे चक्रवर्ती सम्राट सगर तथा तिलककेशा के प्रेम के प्रसंग में ऐसे ही एक अश्व पर चढ़कर सगर के वन में सरोवर के समीप पहुँचने तथा उनपर तिलक-केशा के आसक्त होने का उल्लेख किया है। लेकिन यहाँ अश्व को केवल दुष्ट कहा गया है।

'दुट्ठु तुरङ्, गमु चञ्चल छायहो, गयउ पणासेवि पच्छिम-भायहो।' ५।४

हम्मीर महाकाव्य[4] तथा प्रबन्ध चिन्तामणि[5] में भी इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से इनमे वर्णित घटनायें असत्य हैं।

आरम्भ मे इसका उल्लेख किया गया है कि विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व जैन कथाकारो की देन है। इतना अवश्य है कि दुष्ट अश्वों अथवा हाथियो के कारण आरोही के भयंकर स्थानो मे पहुँचने या संकट मे पडने की धारणा ही इसके मूल मे निहित है। कथा के अभिप्राय के रूप मे इसका प्रयोग जातक कथाओ तथा बृहत्कथा से ही कथाकार करते आ रहे हैं। एक जातक कथा मे[6] दुष्ट हाथी द्वारा नायक के वन में से ले जाए जाने तथा वहाँ उसके विपत्ति मे पडने का उल्लेख किया गया है। 'करकंडचरिउ' मे रानी पद्मावती की दोहद-कामना के साथ इस अभिप्राय को जोडकर बहुत ही रोचक परन्तु दुखान्त कथानक की योजना की गई है। पद्मावती के मन मे मन्द मन्द वर्षा में पुरुष-वेश मे हाथी पर चढ़कर नगर की परिक्रमा करने की दोहद-कामना उत्पन्न होती है। रानी की दोहद-कामनापूर्ण करने के लिए धाडीवाहन अपने सर्वश्रेष्ठ गज पर रानी को बैठाकर नगर की परिक्रमा करने निकलते हैं। परन्तु कवि का उद्देश्य नगर-परिक्रमा कराना नहीं, अपितु इस हाथी की सहायता से दोनों को वियुक्त करना तथा वन मे

१—प्रेमविलास प्रेमलता कथा, पृ० २०५।
२—कथाकोश–टानी, ३१-३२।
३—हिन्दू टेल्स–जे० जे० मेयर, पृ० २८२।
४—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यों मे कथानक-रूढ़ियाँ–डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० २०५, २०६।
५—प्रबन्ध चिन्तामणि–टानी का अनुवाद, पृ० ७९।
६—सं० ५४६।

करकंडु को जन्म देना था। अत. सवार होते ही दोनों को लेकर भाग खड़ा होता है। रानी वन मे पहुँच जाती है तथा वही नायक करकंडु का जन्म होता है।

५—विवाह के लिए असामान्य-कार्य-सम्पादन की शर्तें : कुछ कथाओं में नायिकायें रोमाचक तथा साहसपूर्ण कार्य करने वाले व्यक्ति को ही पति के रूप में वरण करने की इच्छा व्यक्त करती हैं। कथासरित्सागर की एक कथा मे गन्धर्वराज शक्तिवेग की पुत्री कनकरेखा की यह शर्त है कि जिसने कनकपुरी नामक नगरी देखी हो उसी के साथ वह विवाह करेगी, चाहे वह ब्राह्मण हो या क्षत्रिय।[१] कथा मे कनकपुरी नगरी सात समुद्रो तथा सात भयानक वनो के पार स्थित है। कथाकार कथा को जो रूप देना चाहता है, उसी के अनुसार इन कल्पनाओ द्वारा विवाह की शर्तें रखवाई जाती हैं। रोमानी तथा रोमाचक कथाओ मे नायिकायें अधिकाश इसी तरह की शर्तें रखती हैं।

उपर्युक्त दृष्टान्त में स्वय नायिका द्वारा अपने विवाह की शर्त रखी गई है। यूरोपीय कथाओ मे भी विवाह के लिये इस तरह के कठिन कार्यो का निर्धारण प्राय. लडकी ही करता है।[२] इससे इस अभिप्रायको प्राचीनता का सकेत मिलता है

एक दूसरे प्रकार का रूपान्तर उन कथाओ मे देखने योग्य है जिनमे शर्तें दुष्कर ही नही होती, अपितु उसकी पूर्ति असभव होती है। उदाहरणार्थ कथासरित्सागर मे शृगभुज तथा रूपशिखा की कथा मे शृंगभुज को सौ खारी तिलो की राशि को एक दिन मे ही बोने का कार्य सौंपा जाता है।[३] इसी तरह थार्प की 'यूल टाइडस्टोरीज' मे शृंगभुज की तरह ही स्वेन्द्र को भी सात खारी राई तथा सात खारी गेहूँ मिलाकर दोनो को अलग करने का कार्य दिया जाता है। उसके पूर्व उपकार का स्मरण करके चीटियाँ उसकी सहायता के लिये आती हैं तथा उनकी सहायता से स्वेन्द्र यह कार्य कर देता है और राजकुमारी के साथ उसका विवाह हो जाता है।[४]

१—यद्येवं तात तद्येन विप्रेण क्षत्रियेण वा।
दृष्टा कनकपुर्याख्या नगरी कृतिना किल॥
तस्मै त्वयाहं दातव्या स मे भर्ता भविष्यति। २४।४२-४३।

2—In European tales it is the girl herself who disposes of her hand and sets the task, her father has nothing to do with it.
The childhood of Fiction. J. A. Macculock, P. 27.

३—आदिस्तरंग, ३९।

४—दि औसेन आव स्टोरी—टानी, भाग १, पृ० ३६१।

फारसी प्रेमाख्यानों का भी यह बहुत प्रिय अभिप्राय है। इन कथाओं के नायकों को प्रायः ही प्रिया-प्राप्ति के लिये कठिन तथा असंभव कार्य करने पड़ते हैं। शीरी के लिये फरहाद ने पूरा पहाड़ ही खोद दिया। ग्रीक कथाओं के विख्यात नायक हरकुलीज को इस प्रकार के अनेक दुष्कर तथा असंभव कार्य दिये गये थे।[1]

इस अभिप्राय का ही एक दूसरा रूप उन कथाओं में मिलता है जहा नायक को संकट मे डालने के लिये अथवा उसका प्राण लेने के लिये इस तरह के असंभव कार्य करने को दिये जाते हैं। अभिप्राय तो एक ही है किन्तु उद्देश्य मे भिन्नता है। अभिप्राय का यह रूप जातक कथाओं में ही मिलने लगता है। धम्मधज जातक (धर्मध्वज जातक) में धर्मध्वज को ऐसे ही कार्य दिये जाते हैं जो किसी सासारिक व्यक्ति की शक्ति के परे हो।

मुनि कनकामर के करकंडचरिउ मे गंधर्व कन्याओ का वस्त्र तथा शेरनी का दूध मागा जाता है। किन्तु एक राक्षसी की सहायता से ब्राह्मणकुमार दोनो कार्य कर देता है।[2] रामचरितमानस तथा महाभारत मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। उपर्युक्त सभी उदाहरणो मे मन्त्र-तन्त्र अथवा अतिप्राकृत शक्तियो की सहायता से नायक द्वारा असंभव कार्य-संपादन का अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।

९–राक्षस-विद्याधर आदि द्वारा नायिका-हरण : नायिकाओ का इस तरह हरण सभी देशो मे आरम्भिक वीरयुग के काव्यो का बहुत महत्वपूर्ण तथा प्रचलित अभिप्राय रहा है। वाल्मीकि तथा होमर के महाकाव्यो मे नायिका-हरण ही कथा का मूल अभिप्राय है। रामायण मे वर्णित सीताहरण की घटना परवर्ती कथाकारो एवं कवियों के लिये नायिका-हरण के कथारूप का आदर्श बन गई है। कथासरित्सागर मे नरवाहन दत्त की प्रधान रानी तथा कथा की नायिका मदनमंचुका का मानसवेग द्वारा उसी तरह हरण होता है, जिसतरह रावण ने सीता का हरण किया था। सीता की भाँति ही माया द्वारा मानसवेग ने मदनमंचुका का हरण किया तथा जिस तरह रावण ने लंका मे अशोक-वाटिका मे सीता को रखा, ठीक उसी तरह मानसवेग ने सेवकों से रक्षित उद्यान मे मदनमंचुका को रखा। जिस प्रकार सीता के वियोग मे दुःखी राम को जटायु द्वारा सीता के अपहरण का विवरण ज्ञात होता है, उसी प्रकार विद्याधरी वेगवती द्वारा मदनमंचुका के हरण का वृत्तान्त ज्ञात होता है। सीता-हरण की घटना से ही नायिका-हरण

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे कथानक रूढ़ियां—डा० व्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० २१२।

२—करकंडचरिउ १०।२०।

का यह अभिप्राय लिया गया है, इसे कथाकार ने वेगवती के माध्यम से स्पष्ट स्वीकार किया है।[१] इसी प्रकार पंचम वेतालकथा में धूमशिख राक्षस द्वारा सोमप्रभा का हरण होता है। सोमप्रभा को भी आकाश-मार्ग से ले जाकर यह राक्षस विन्ध्यवन मे रखता है। सोमप्रभा से विवाह के लिये इच्छुक नायक, राक्षस को मारकर नायिका को प्राप्त करता है। दशकुमारचरित में मित्रगुप्त की प्रिया कन्दुकावती का हरण करके एक राक्षस आकाश-मार्ग से उसे ले जाता है।[२]

प्राकृत-अपभ्रंश के जैन चरितकाव्यो मे भी इस अभिप्राय का अत्यधिक प्रयोग मिलता है। किन्तु यहाँ पर राक्षस का स्थान खेचरो ने ग्रहण किया है। करकंडचरिउ मे नायक करकंड की प्रिय रानी मदनावली का हरण भी छलपूर्वक सीता की तरह ही होता है। जिस प्रकार मारीच मृग बनकर राम को दूर वन मे ले जाता है ठीक उसी प्रकार एक खेचर वन मे करकण्ड से बदला लेने के लिये हाथी का रूप धारण करके आता है तथा जब करकण्ड उसे पकडने जाता है, तो वह अदृश्य हो जाता है। करकण्ड लौटकर जब अपने आवास-स्थान पर आता है, तो वहां भी मदनावली नही दिखाई पड़ती। करकंड विलाप करने लगता है। उसके विलाप को सुनकर एक अन्य खेचर पूर्व-जन्म मे नायक द्वारा किये गये उपकार का स्मरण कर उसे सूचित करता है कि मदनावली को हाथी रूप मे आया हुआ खेचर हरण कर ले गया है।[३] मध्यकालीन प्रबन्धकाव्यो में रामचरितमानस मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है।

६—अभिज्ञान या सहिदानी . करकंडचरिउ मे इस अभिप्राय का सर्वप्रथम प्रयोग पहली सन्धि मे हुआ है। राजा धाडीवाहन माली द्वारा दिखाई गई पेटी के द्वारा ही पद्मावती का राजकन्या समझ पाता है क्योंकि उस पर स्वर्णमयी अंगुली की मोहर लगी है तथा सुन्दर अक्षरों में उसका नाम अंकित है।[४]

> एह बाल राय धूव। काम गेहु जा वि हूव।
> कउसं वियरायहो पसरियछायहो वसुपालहो पउमा वह दुहिय॥

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे रसरतन मे इस कथानक-रूढ़ि का प्रयोग हुआ है। बुद्धि विचित्र नामक चित्रकार वैरागर जाकर सूरसेन को रम्भा का चित्र दिखाता

१—माययापहृता तेन भ्राता मे दयिता तव।
रावणेनेव दुःखार्ता रामभद्रस्य जानकी॥ १०५।७०

२—मित्रगुप्त की आत्मकथा—दशकुमार चरित।

३—करकंडचरिउ, संधि ५।

४—वही, १।७।

है जिसे पहचानकर उसकी विह्वलता दूर हो जाती है, उसी तरह सूरसेन के चित्र को देखकर रम्भा अपने 'स्वप्न मित्र' को पहचान लेती है।[1] करकंडचरिउ में करकंड और उसके पिता धाडीवाहन का युद्ध उसकी माता पद्मावती द्वारा इसी कथानक रूढ़ि का उपयोग करके रोका जाता है। पद्मावती कहती है कि 'हे पुत्र, चाप रोको, यह धाडी-वाहन तुम्हारा पिता है।

सा भणइ पुत्त संवरहि, चाउ एहु धाडीवाहणु तुज्झु ताउ।

क०च० ३।१६

करकंडचरिउ में ही अभिज्ञान या सहिदानी का तीसरा उदाहरण आठवी आवान्तर कथा में प्राप्त होता है। रत्नमाला अपने प्राचीन सूआ को इसी अभिप्राय के द्वारा पहचानती है।

चुणंतइं कीरइं अंसुवमाल पमेल्लिय पेक्खिवि सामिणि बाल।
चिराणउ सूयउ ताएं मुणेवि अणाविउ सो सुयणामु भणेवि।

क० च० ८।१४

इसी अवान्तर कथा के अन्तर्गत इस अभिप्राय का दूसरा उदाहरण भी देखा जा सकता है। रत्नमाला के द्यूत क्रीडा की कीर्ति चारो ओर फैल गई थी। कोकन में अरिदमन ने भी समाचार सुने। वे आये। खेल हुआ और उन्होंने रत्नलेखा को हरा दिया। रत्नलेखा बहुत व्याकुल हुयी, किन्तु इसी क्षण उनकी परस्पर पहचान हो गयी और वे मिलकर बहुत सुखी हुए।[2]

सा जित्तीतेण णराहिवइं जा हुई मणे विहडप्फडिय।
ता ताएं वियाणिवि णियरमणु खणे अंगें अंगु समुब्भिडिय॥

क० च० ८।१५

(२) लोकाश्रित अभिप्राय

१—पंचदिव्याधिवास या राजा का दैवी चुनाव : पंचदिव्याधिवास के अन्तर्गत पाँच राजचिन्ह आते हैं—हाथी, अश्व, चमर, छत्र तथा कुम्भ। किसी देश के निस्संतान राजा की मृत्यु हो जाने पर उत्तराधिकारी के अभाव मे इन्हीं दिव्य पंचकों के द्वारा नये राजा के चुनाव का उल्लेख भारतीय कथा-साहित्य में प्राप्त होता है।

१—रसरतन-डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० ८०।

२—करकंडचरिउ—डा० हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ० २७।

इस अभिप्राय का उपयोग करने वाली कथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दिव्य पंचकों के प्रयोग के विषय में किसी निश्चित नियम का अनुसरण नही किया गया गया है। इन पाँचो में से किसी एक या दो के माध्यम से भी कथाकार के उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है, इसी कारण मंगल कलश देकर केवल हाथी को ही राजा के चुनाव के लिये भेजने का उल्लेख भी प्राप्त होता है। कुछ कथाओ मे पाँचों राजचिन्ह भेजे जाते हैं परन्तु दिव्य शक्ति से प्रेरित होकर अभीष्ट व्यक्ति के मस्तक पर मंगल-कलश का जल गिराकर तथा अपने मस्तक पर बैठाकर उसे राजा चुनने का कार्य मात्र हाथी ही करता है, अन्य वस्तुओ के किसी कार्य का वर्णन नहीं होता है।

कथासरित्सागर मे मंगल कलश भी नही है, केवल हाथी भेजा जाता है तथा वह एक निराश्रित वणिक-पुत्र को अपने मस्तक पर बैठा लेता है और वह राजा बना दिया जाता है।[1] कथाकोश की तीन कथाओ मे यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।[2] विक्रमचरित मे एक नगर के राजा की मृत्यु होने पर हाथी, अश्व, चामर, छत्र, कुम्भ पाँचो को नये राजा के चुनाव के लिये भेजा जाता है, परन्तु विक्रमचरित के दक्षिणी रूपान्तर मे जय-माला देकर केवल हस्तिनी भेजी जाती है। [3]वह नायक को माला पहना देती है तथा उसे मस्तक पर बैठाकर नगर मे ले जाती है।

दशकुमारचरित मे भी केवल हाथी भेजा जाता है तथा वह नायक को अपने मस्तक पर बैठाकर ही उसके राजा चुने जाने की दैवी सूचना देता है।[4] प्रबन्ध-चिन्तामणि मे भी केवल हाथी के द्वारा ही राजा का चुनाव किया जाता है।[5] हेमचन्द्र के परिशिष्ट-पर्वन मे भी इसी तरह दिव्य पंचको को अभिषिक्त करके भेजा जाता है तथा इस दृष्टान्त मे नापित से उत्पन्न वेश्या पुत्र राजा चुना जाता है।[6] पार्श्वनाथ चरित मे निराश्रित राजकुमारो को पुनः राजा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये दो कथाओ मे इस अभि-प्राय का प्रयोग किया गया है।[7]

१— हिन्दी साहित्यसम्मेलन प्रयाग की हस्तलिखित प्रति, पत्र १५ तथा दे० भारतीय प्रेमाख्यान काव्य मे कथा।

२—आदिम्तरंग ६५।

३—विक्रमचरित—चौदहवी कहानी।

४—दशकुमारचरित—मेयर जे० जे० का अनुवाद, पृ० ६४।

५—प्रबन्धचिन्तामणि—टानी का अनुवाद, पृ० १८१।

६—६।२३१।

७—२।८२६, ७११।

अपभ्रंश चरितकाव्य 'करकंडचरिउ' मे नायक करकंड इसी तरह दन्तिपुर का राजा चुना जाता है। राजपुत्र होते हुए भी भाग्य की विडम्बना यह कि वह श्मशान भूमि मे पालित होकर बड़ा होता है। उसके युवक होते ही उस नगर के राजा की मृत्यु हो जाती है। राजा की कोई सन्तान न होने के कारण यहां भी उत्तराधिकारी की समस्या उठती है। इस स्थल पर कनकामर ने प्रजा के विलाप तथा चिन्ता का विस्तृत वर्णन किया है। इसी समय एक मन्त्री का ध्यान राजा सुन्दर तथा विशाल हाथी की ओर जाता है तथा उसे समस्या का हल मिल जाता है। हाथी की पूजा करके तथा उसे कुम्भ समर्पित करके इस विश्वास के साथ छोड दिया जाता है कि वह उसी व्यक्ति के ऊपर कुम्भ का जल गिरायेगा, जिसे यहा का राजा होना दैव द्वारा अभीष्ट होगा।[1] हाथी घूमता हुआ श्मशान भूमि मे जाकर करकण्ड के मस्तक पर कुम्भ का जल गिराता है। मन्त्रीगण और प्रजा बहुत निराश होती है कि इस हाथी ने मातंग-पुत्र को राजा चुना, परन्तु करकण्ड का रक्षक, पिता-सदृश खेचर नायक के जन्म-वंशादि का परिचय देकर उन्हें आश्वस्त करता है। किसी राजा की मृत्यु हो जाने पर उत्तराधिकारी के अभाव मे राजा चुनने की इस प्रथा तथा पद्धति और कथा के महत्वपूर्ण अभिप्राय के रूप में इसके उपयोग का मूल स्रोत जातक कथाओ मे प्राप्त होता है।[2] इन कथाओं मे दिव्य पंचको के स्थान पर मंगल रथ (पुस्सरथ)[3] राजा का चुनाव करने के लिये भेजा जाता है।

कथा के अभिप्राय के रूप मे काश्मीर से लेकर सिंहल तथा बंगाल तक की लोक-कथाओ मे राजा के चुनाव की इस पद्धति के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। परन्तु दिव्य धिवासित पाचो राजचिन्हो मे से सभी को उन लोककथाओ मे स्थान नही मिला है। अधिकाश उदाहरणो मे केवल हाथी के द्वारा ही चुनाव की पद्धति को अपनाया गया है। डे के फोकटेल्स ऑव बंगाल मे[4] हाथी नायक को हौदे पर बैठाकर नगर में ले आता हैं तथा वही वह राजा घोषित किया जाता है। सिंहल कथा मे सौभाग्यशाली

१—तं पुज्जिवि मय गलु मइवरयं परि पुण्णउ कुंभु समप्पियउ।
जो रज्जु करे सइ तहो उवरि ढाले महि एउ वियप्पियउ॥

२—जातक ३७८, ४४५, ४२९, ५३९।

३—एजर्टन के अनुसार पुस्सरथ का अर्थ पुष्प रथ नही, मंगल रथ है—
The word पुस्सरथ does not mean 'flower-chariot as the translator of Jataka 378 wrongly states, but auspicious or festive car or specially the royal chariot' J. A O. S. Vol. 33.

४—पृ० ९९।

व्यक्ति एक किसान है, जिसके सामने आकर हाथी झुककर अभिवादन करता है।[1] काश्मीर की लोककथाओं में यह अभिप्राय विशेष प्रचलित है। नोलेस के संग्रह में इस अभिप्राय के चार दृष्टान्त प्राप्त होते हैं।[2] दो में तो केवल हाथी के द्वारा ही चुनाव होता है, परन्तु दो कथाओं मे हाथी के साथ बाज पक्षी भी भेजा जाता है, जो नायक के हाथ पर बैठ जाता है तथा हाथी सिंहली वर्णन की भांति उसके सामने झुक जाता है। स्टील तथा टेम्पुल के कथासंग्रह 'वाइड अवेक स्टोरीज' में हाथी झुक जाता है तथा अभीष्ट व्यक्ति का अभिवादन करता है[3]। एक बंगाली कथा में हाथी एक स्त्री को चुनता है[4]। यह स्त्री एक चांडाल कन्या है, जो उसी समय एक राजकुमार से विवाह कर लेती है। एक दूसरी बंगाली कथा में हाथी द्वारा ही एक बालक राजा चुना जाता है।[5]

२. रूप-परिवर्तन . लोकाश्रित कथाभिप्रायो में रूप-परिवर्तन बहुत प्रचलित अभिप्राय है। पौराणिक और निजन्धरी सभी प्रकार की कथाओ में इसका समान रूप से प्रयोग किया गया है। अवदानो तथा लोककथाओ के अनेक कथाचक्रो में इतने रूपो में इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है कि इसके रूपान्तरो तथा प्रकारो की सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। कौशल की दृष्टि से भी विभिन्न उद्देश्यो की सिद्धि के लिये इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है, अतएव इस दृष्टि से भी इसके आधार पर निर्मित कथाओ या संयोजित घटनाओ तथा उनके वर्गों को कोई स्पष्ट रुपरेखा नही निर्धारित की जा सकती। मैक्युलाश ने लिखा हे कि यह अभिप्राय आदिम मनोविज्ञान से निसृत विचारो और धारणाओ पर आधारित है और रूप-परिवर्तन का संभावना आदिम विश्वास की एक प्रमुख सामग्री रही है। आदिम जातियो की लोककथाओं में इस अभिप्राय के अनेक उदाहरण इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं।[6]

रूप-परिवर्तन के साधनो के आधार पर इस अभिप्राय को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर विचार करना अधिक उपयुक्त जान पडता है-

१—ओरिएंटल-गून टिलेक-भाग २, पृ० १५१।
२—फोक टेल्स ऑव काश्मीर, पृ० १७, १५६, १६६, ३०६।
३—पृ० १४० (टिप्पणी, पृ० ३२७, ४२६)
४—इंडियन एंटिक्वेरी, ३, पृ० ११।
५—वही, ४ पृ० २६१।
6. It should be noted that the possibility of transformation is one of the chief articles of primitive belief. The examples of the incident from savage folk tales-are more than usually numerous. The childhood of Fiction, page 149.

१—अलौकिक शक्ति या विद्या द्वारा स्वयं रूप-परिवर्तन
२—किसी मंत्रविद्, तान्त्रिक आदि के द्वारा रूप-परिवर्तन
३—किसी सरोवर में स्नान करने या किसी वस्तु के खाने-पीने से रूप-परिवर्तन

दिव्य शक्ति या विद्या के द्वारा रूप-परिवर्तन की कथाओं से सभी देशों का साहित्य ओत-प्रोत है। इसका कारण यह है कि अतिमानव शक्तियों के सम्बन्ध मे एक ही तरह का विश्वास सभी देशों के आदिम मानव समाज मे विद्यमान रहा है तथा इस विश्वास के कारण ही विभिन्न देवी-देवताओ और अतिमानव प्राणियों मे आस्था भी सभी देशों के मनुष्यों में आज भी मिलती है। अलौकिक तथा अतिमानव प्राणी इच्छानुसार जब जो रूप चाहे धारण कर सकते हैं। विद्वानो का मत है कि भारतीय साहित्य में ऐसे प्राणियो की संख्या सम्भवत. सबसे अधिक है।[1]

भारतीय देवताओ मे इन्द्र के रूप-परिवर्तन की कथायें शास्त्रीय महत्व की हो गई हैं। इन्द्र कभी किसी दानी राजा की परीक्षा लेने के लिये ब्राह्मणरूप धारण करते हैं और कभी किसी ऋषि-पत्नी के सौन्दर्य पर मोहित होकर उसके पति का रूप धारण करके उसका सतीत्व नष्ट करते हैं। किसी स्त्री के पास उसके पति का रूप धारण करके जाने के अभिप्राय वाले कथाचक्र में देवताओ का रूप-परिवर्तन कथा की दृष्टि से सर्वाधिक रोचक तथा महत्वपूर्ण है। जालन्धर नामक असुर के अत्याचार से त्रस्त देवताओं की रक्षा के लिये विष्णु जालन्धर का रूप धारण करके उसकी पत्नी वृन्दा के पास जाते हैं तथा उसका पातिव्रत खण्डित करते हैं। इस असुर को यह वरदान था कि जबतक उसकी स्त्री पतिव्रता रहेगी, उसकी मृत्यु नही हो सकती।[2]

मन्त्र-तन्त्र से रूप-परिवर्तन के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। कथासरित्सागर मे सोमस्वामी का रूप-परिवर्तन और भवशर्मा की कथा में सोमदा तथा बन्धमोचनो का मन्त्र युद्ध इसका श्रेष्ठ दृष्टान्त है।[3] कथाकोश में कनकपुर का राजा कनकरथ जो रूप चाहे धारण कर सकता था। इस रूप-परिवर्तन की शक्ति द्वारा उसने सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर लिया था।[4] नेमिचन्द्र के लीलावती प्रबन्ध की नायिका लीलावती विद्या द्वारा लता मे परिवर्तित हो जाती है, साथ ही अपनी सभी सखियो को लता बना देती है, जिससे उसका प्रियतम उसे देख न सके।

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे कथानक-रुढ़ियां—डा० ब्रजबिलास श्रीवास्तव, पृ० ५८।
२—स्टडीज इन आनर आव मारिस ब्लूमफील्ड बय नार्टन, पृ० २१८।
३—आदिस्तरंग ३७।११३,१५३-१६८।
४—कथाकोश-टानी, पृ० १८४।

मन्त्र-तन्त्र द्वारा नायक-नायिका को पशु-पक्षी बना देने की कथायें शिष्ट साहित्य तथा लोककथा दोनो मे पर्याप्त उपलब्ध होती हैं। कथासरित्सागर मे शशिप्रभा तथा उसके पति वामदत्त को उदाहरण के लिये देखा जा सकता है।[१] पार्श्वनाथ चरित मे एक मुनि कुन्तल को भृंगार और वसुमति को शुक के रुप मे बदल देता है।[२] जे० जे० मेयर के हिन्दू टेल्स में वानमन्तर कन्यामाला का रूप बदल देता है, ताकि विद्याधर उसे पहचान न सके।[३] फोक टेल्स ऑव हिन्दुस्तान को एक कहानी मे महाराज विक्रम को एक तांत्रिक कुत्ते के रूप मे बदल देता है और इस रूप मे बहुत कष्ट झेलने के बाद एक अन्य तांत्रिक द्वारा विक्रम को अपना पूर्व रूप प्राप्त होता है।[४]

मन्त्र-तन्त्र द्वारा रूप-परिवर्तन का दूसरा महत्वपूर्ण कथारूप उन कथाओ मे दिखाई पड़ता है, जिनमे गुप्त प्रेम के लिये नायक को पशु-पक्षी के रूप मे बदलकर कोई स्त्री अपने पास रखती है। इन कथाओं मे मन्त्र-सूत्र द्वारा रूप-परिवर्तन होता है। पूर्वी देशों की कथाओ में मन्त्र-सूत्र द्वारा नायक को पशु-पक्षी बनाकर गुप्त रूप से रखने के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।[५]

रूप-परिवर्तन सम्बन्धी कथाओ मे सर्वाधिक रोचक तथा कथा-शिल्प की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण वे कथायें हैं, जिनमे किसी जलाशय मे स्नान करने या किसी वस्तु के खाने-पीने से रूप परिवर्तित हो जाता है। कथाकोश की एक कथा मे एक सरोवर मे स्नान करने से पशु मनुष्य और मनुष्य देवता हो जाते हैं।[६] पार्श्वनाथ चरित मे बन्दर और बन्दरी वृक्ष की शाखा टूट जाने से प्रपात नामक तीर्थसरोवर मे गिर पड़ते हैं। सरोवर से वे अत्यन्त सुन्दर पुरुष-स्त्री के रूप में निकलते हैं।[७]

कुछ खाने या पीने से रूप-परिवर्तन के दृष्टान्त कथाओ मे बहुत मिलते हैं। इन कथाओ मे प्राय· बदले की भावना से छलपूर्वक किसी को कुछ खिलाकर पशु बना दिया

१—आदिस्तरंग ६८।
२—तृतीय सर्ग श्लोक ७०७।
३—पृ० १८२।
४—फोक टेल्स ऑव हिन्दुस्तान, पृ० १३४-३७।
५—कथाकोश-टानी, पृ० ५०।
६—फोक टेल्स ऑव काश्मीर, नोलेस, पृ० ७१।
फोक टेल्स ऑव बर्मा-स्पार्क्स, पृ० ६१।
इस्टर्न रोमान्सेज-क्लाउस्टन, पृ० २९।
७—सर्ग ६ श्लो० ६३५-६४०

जाता है। कथासरित्सागर में इसका उदाहरण मिलता[१]। प्रबन्ध-चिन्तामणि में अपने वेश्यागामी पति को वश मे रखने के लिए गौड देश के एक मान्त्रिक से औषधि लेकर एक स्त्री पती को भोजन के साथ खिला देती है, जिससे वह बैल के रूप मे बदल जाता है। स्त्री की बहुत निन्दा होती है। किन्तु एक दिन शिव-भवानी की वार्ता से उसे एक ऐसी लता की सूचना मिल जाती है, जिसे खिलाकर वह पति को पुन: बैल से आदमी बना देती है।[२]

करकंडचरिउ में रूप परिवर्तन के कई उदाहरण मिलते हैं। एक विद्याधर हाथी का रूप धारण करके करकंडु को भुलाकर मदनावली को हर ले जाता है।[३] अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी के समीप वन में एक विद्याधर ने शुक का रूप धारण किया था।[४] सातवी अवान्तर कथा मे सुदर्शना देवी क्षत्रिय कुमार के साथ स्त्री का रूप धारण कर आती हैं। अन्धकूप के साँप और मेढक मनुष्य का रूप धारण करते हैं।[५] आठवी अवान्तर कथा मे अरिदमन उज्जैन का राजा था एक विद्याधर ने सुआ का रूप धर कर अपने को एक ग्वाल द्वारा उस राजा के हाथ बिकवा दिया।[६] मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यो मे रामचरितमानस, पद्मावत तथा मधुमालती मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है।

३—आकाश-गमन : कथासरित्सागर मे कालरात्रि की सम्पूर्ण कथा इस उड़ने की विद्या को लेकर कही गई है। महाराज आदित्यप्रभ की रानी कुवलयावली, डाकिनी कालरात्रि से उडने की विद्या सीखकर, अपनी सखियों के साथ आकाश मे विहार करती है।[७]

महाराज विक्रमादित्य को एक दुष्ट कापालिक का वध करने के परिणाम-स्वरूप आकाश मे उडने की विद्या अपने आप प्राप्त हो जाती है।[८] कथाकोश मे एक तपस्वी उड़ता है।[९] प्रबन्धचिन्तामणि मे वर्णित एक इतिवृत्त के अनुसार सिद्धराज के राज्य

१—कथासरित्सागर आदिस्तरंग ७१।२६६-२७७।
२—प्रबन्धचिन्तामणि–टानी, पृ० १०६।
३—करकंडचरिउ, ५-१५।
४—वही, ८-३।
५—वही, ७।
६—वही, ८।
७—कथासरित्सागर–आदिस्तरंग २०।
८—कथासरित्सागर–आदिस्तरंग २०।
९—कथाकोश-टानी, पृ० १११।

का एक नापित आकाश में उडने की विद्या जानता था। यह नापित एक राज्याधिकारी को उड़ाकर कालापुर नगर मे ले जाता है।[१]

इस अभिप्राय का विशिष्ट रूप उन कथाओं में दिखाई पड़ता है, जिनमें मन्त्राभिषिक्त वस्तुओ की सहायता से नायक-नायिका आकाश-मार्ग से यात्रा करते हैं। कथासरित्सागर मे जीवदत्त को विन्ध्यदेवी की कृपा से एक ऐसी दिव्य तलवार मिल जाती है, जिसे हाथ मे लिए रहने पर वह आकाश मार्ग से यात्रा कर सकता है।[२] उसी प्रकार त्रिभुवन को एक असुर कन्या से आकाशगतिदायिनी खड्ग प्राप्त होती है।[३] लोककथाओ मे प्राय: ऐसी पादुकाओ का वर्णन मिलता है, जिन्हे धारण करके कोई व्यक्ति आकाश मे उडकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकता है।[४]

करकंडचरिउ मे आकाश-गमन के कई दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। द्वितीय सन्धि में अपने कुल का वर्णन करते हुए मातंग कहता है कि एक बार वह अपनी गृहिणी हेममाला के साथ दक्षिण दिशा में रमण करता हुआ आकाश मार्ग से जा रहा था।[५] आठवी सन्धि मे सुआ राजा को अपना परिचय देते हुए कहा कि 'मैं एक तपस्वियो के आश्रम में जा पहुँचा जहाँ मैंने सब शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया। उसने राजा को मन्त्री के यहाँ उत्पन्न हुए एक तेजस्वी अश्व की भी सूचना दी। राजा ने उसे मँगाकर तोते सहित उसपर सवारी की। अश्व आकाश मे उडकर उन्हे समुद्र पार थौहार द्वीप मे ले गया जहाँ राजा का विवाह कुमारी रत्नलेखा से हुआ।[६] इस प्रकार करकंडचरिउ मे मातंग के साथ ही साथ सुआ भी आकाश मे गमन करता है।[७] रामचरितमानस मे भी इस अभिप्राय का प्रयोग मिलता है।

४—अज्ञान में अपराध और शाप : ऋषि, मुनि, देवी-देवता या किसी अलौकिक-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति का कथन कभी असत्य नही हो सकता, इस विश्वास से भारतीय जीवन बहुत प्राचीन काल से प्रभावित रहा है। इस तरह के व्यक्ति यदि प्रसन्न होकर असम्भव कार्यों की सफलता मे सहायक हो सकते हैं, तो किसी कारण से

१—प्रबन्धचिन्तामणि-टानी, पृ० १११।
२—आदिस्तरंग, ५२।
३—कथासरित्सागर, आदिस्तरंग ५६।२१६।
४—फोक टेल्स ऑव हिन्दुस्तान, पृ० ७६।
५—करकंडचरिउ, २-२।
६—करकंडचरिउ-डा० हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ० २५।
७—करकंडचरिउ, ८-६।

उनके नष्ट होने पर किसी का अनिष्ट हो सकता है। भारतीय ऋषियों, मुनियों और सात्विक ब्राह्मणों का सात्विक रोष ही शाप के रूप में सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में दिखाई पड़ता है। आत्मिक तथा दिव्य शक्ति रखने वाले व्यक्तियों को जान-बूझकर कष्ट पहुँचाने के अपराध मे तो शाप मिलता ही है, अज्ञान मे भी कोई अपराध हो जाने पर उनके क्रोध का भाजन बनना पड़ता है। भारतीय पौराणिक और निजन्धरी कथाएँ इस तरह के शापो से भरी हुई हैं। इस अभिप्राय के दो रूप हो गये हैं—

१—जानबूझकर अपराध और शाप

२—अज्ञान मे अपराध तथा शाप

निजन्धरी कथाओं, कथा-काव्यो, नाटिकाओ आदि मे प्रमुख रूप से 'अज्ञान मे अपराध और शाप' का ही अभिप्राय के रूप मे प्रयोग मिलता है। रामचरितमानस में राजा प्रतापभानु का प्रसंग बिना किसी अपराध के राक्षस-योनि मे जन्म लेने का भयंकर शाप पाने का दृष्टान्त है। अज्ञान मे अपराध हो जाने के फलस्वरूप शाप पाने का दूसरा दृष्टान्त श्रवणकुमार के अन्धे पिता द्वारा दशरथ को दिया गया शाप है। मृग के भ्रम में अनजान में दशरथ के बाण से श्रवणकुमार की मृत्यु हो जाती है, इससे दशरथ को बहुत कष्ट होता है। परन्तु अन्धे पिता द्वारा उन्हे अपनी ही भाँति पुत्र-वियोग में मर जाने का शाप मिलता है। इस शाप के फलस्वरूप दशरथ की राम के वियोग में मृत्यु हो जाती है। तुलसी ने शाप की इस घटना का उल्लेख न करके संक्षेप में इतना ही कहकर काम चलाना श्रेयष्कर समझा है—

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई।

शाप का यही कथारूप विशेष रूप से कथाओं मे अपनाया गया है। पाण्डु को भी इसी तरह शाप मिला था। पाण्डु ने दशरथ की भाति ही आखेट के समय आनन्द केलि करते हुए एक मृग-मिथुन को बाण से मार दिया। परन्तु वास्तव मे वे मृग-मृगी नहीं, अपितु ऋषि तथा उनकी पत्नी मृगरूप में आनन्दकेलि मे लीन थे। ऋषि ने राजा को शाप दे दिया 'जिस अवस्था मे मेरी मृत्यु हो रही है, अपनी पत्नी के साथ सहवास करते हुये उसी अवस्था मे तुम्हारी मृत्यु होगी।' शाप का ऐसा कथारूप दशकुमारचरित में राजा शाम्ब की कथा में भी मिलता है। शाम्ब नामक एक राजा ने अपनी प्रियतमा के साथ जल-विहार करते समय, सरोवर में लाल कमलो के बीच सोये हुये एक हंस को क्रीडा के लिए पकड़कर, कमलनाल के सूत से उसकी टांगें बांध दी। वास्तव में वह हंस नही था, बल्कि हंस के रूप में एक ऋषि एकान्त सेवन कर रहे थे। ऋषि ने तुरंत शाप दे दिया-'जाओ, तुम्हारी स्त्री तुमसे वियुक्त हो जायगी।'[१]

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक-रूढ़ियां—डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ३०१।

कथासरित्सागर में विद्याधर चित्रांगद को इसी तरह शाप मिलता है। अपनी पुत्री मनोवती के साथ आकाश-मार्ग से जाते समय चित्रांगद के हाथ से एक माला गिर पड़ती है। संयोग से वह माला गंगा में स्नान कर रहे नारद मुनि की पीठ पर गिरती है। अज्ञान में हुई इतनी साधारण गलती के लिये महर्षि क्रोधित होकर शाप देते हैं, 'ओ दुष्ट व्यक्ति। सिंह के रूप मे अपनी पीठ पर अपनी पुत्री को तुम तब तक ढोते रहो, जबतक कि तुम्हारी पुत्री का विवाह किसी मनुष्य से नही हो जाता तथा तुम उस विवाह को देख नही लेते।'[१]

कथा-शिल्प के रूप मे इस अभिप्राय का सर्वाधिक सुन्दर उपयोग कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल मे दिखाई पड़ता है। अज्ञान में अपराध के कारण ही शकुन्तला को दुर्वाशा का शाप मिलता है। इससे नायक का धीरोदात्त चरित्र खंडित होने से बच जाता है। महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान मे दुर्वाशा के शाप की घटना नही है, वहा दुष्यन्त पहचान कर भी शकुन्तला को नही पहचानता। कालिदास ने इस शाप की घटना द्वारा दुष्यन्त के चरित्र को निष्कलंक बना दिया है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह अभिप्राय अत्यन्त उपयोगी है। पृथ्वीराजरासो मे भी दुष्यन्त की भाति ही नायक के चरित्र का उत्कर्ष दिखाने के लिये शाप की योजना की गई है। पराजय के पूर्व शाप की घटना जोड दी गयी है। इससे पाठक समझता है कि पृथ्वीराज इस शाप के कारण पराजित होता है, मुहम्मदगोरी की शक्ति के कारण नही। इस तरह पृथ्वीराज का वीरत्व अन्त तक अखंडित रहता है।[२]

करकंडचरिउ मे विद्याधर को सुव्रत मुनिश्वर द्वारा शाप दिया जाता है। यहाँ पर विद्याधर आकाश मार्ग से अपनी गृहिणी के साथ विमान द्वारा जा रहा था। सहसा उस दिव्य विमान का चलना बंद हो गया। वह विद्याधर हाथ मे तलवार लेकर क्रोध-पूर्वक हनन करने के लिए वहां पहुँच गया जहाँ मुनिराज ध्यान लगाये बैठे थे। वहाँ जाते ही मुनि ने क्रोधित होकर उसे शाप दे दिया जिससे उसकी सभी विद्याएं नष्ट हो गई—

१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे कथानक-रूढ़िया—डा० व्रजविलास श्रीवास्तव पृ० ३०१।

२—जिहि मो दिम्न दुष्ष ए। निरापराध आय अंब।
ता जुग लोचन जोनु अयन जुग बीतत कढ़्ढय।
जितिक पीर हम भोग्यें भूमिलोक अवलोक इहि।
सतगुनी विरथता होइ चष चल्यो चाह मुनि ईस कहि।
—आखेटक शाप प्रस्ताव।

तें रुसिवि पुणु महो दिण्णु साउ।
णउ भग्ग लहेसहि विज्जयाउ।
तें सावें विज्जउ गउ खणेण।
क० च० २।४

मातंग के बहुत अनुनय-विनय करने पर उस मुनि ने उस शाप का प्रतिकार इस प्रकार से किया कि जब करकंडु का दन्तिपुर के श्मशान मे जन्म हो तब उसे बालक को ले जाकर उसका लालन-पालन करना चाहिए। बड़ा होने पर जब उसे उस नगर का राज्य मिल जायेगा तब वह मातंग पुनः विद्याधर हो जायगा।[1]

करकंडचरिउ मे शाप का दूसरा उदाहरण पाचवी अवान्तर कथा के अन्तर्गत मिलता है। एक बार नरवाहनदत्त की रानी मदनमंजूषा को हंसरथ नामक विद्याधर हर ले गया। शोक से विह्वल होकर राजा ने आत्मघात करने को ठान ली तथा वह पास ही के वन मे गया। वहा उसकी भेंट एक विद्याधरी से हुई जिसका प्रेमी विद्याधर एक ऋषि कन्या के शाप से सुआ बन गया था। उस ऋषि कन्या ने दयालु होकर यह भी बतला दिया था कि जब नरवाहन दत्त का विवाह रति विभ्रमा नाम की विद्याधर पुत्री से हो जायगा तब वह पुन विद्याधर का रूप प्राप्त करेगा।

ता तुरिउ विलक्खी हूइयाए ! मयणामरु सूयउ कियउ ताए ।
तहें सहियए धम्में तरलियाए । सा भणिय तुरंतिय करुणियाए ।
तुहुँ देवि अणुग्गहु करहि तेव । णियभज्ज हे सहुँ कीलेइ जेव ।
घत्ता— ता भणियउ ताए महासइए णरवाहणदत्तइं जं दिवसि ।
परिणेवउ रूउ मणोहरउ रइविब्भमणामउ लद्धजसि ।।
हे सहियरे सुंदरु ललियदेहु । णरु हो सइ तइयहुँ पुणु वि एहु ।।
क०च० ६।१२, १३

(उस कन्या ने तुरन्त घबराकर (अपने शाप-द्वारा) मदनामर को सूआ बना दिया। तब उसकी सखी ने धर्म से तरलित होकर तुरन्त करुणा पूर्वक ऋषि-कन्या से कहा-हे देवि तुम इतना तो अनुग्रह करो कि यह अपनी भार्या से क्रीडा कर सके। तब उस महासती ने कहा कि जिस दिन नरवाहनदत्त से मनोहर रूपवती व यशः प्राप्त रति विभ्रमा नाम की कन्या से विवाह होगा-हे सखि, तब यह पुनः सुन्दर और ललित देह मनुष्य हो जावेगा)[2]

१—करकंडचरिउ २।५।

२—करकंडचरिउ—डा० हीरालाल जैन, हिन्दी अनुवाद, पृ० ८७।

पेंजर ने कथासरित्सागर की पाद-टिप्पणी में इस अभिप्राय को लेकर लिखी गई पाश्चात्य कथाओं के कुछ दृष्टान्त दिये हैं। हैलिडे ने इस अभिप्राय पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए लिखा है कि अज्ञान मे अपराध (अनइन्टेशनल इन्जरी) का अभिप्राय भारत और अरब की कहानियों मे विशेष रूप से प्रचलित है किन्तु इसका मूल आधार अदृश्य शक्तियों मे विश्वास है, जो भारत तक ही सीमित नही है। पेंजर के इस मत को कि भारत से ही यह अभिप्राय दूसरे देशो में गया है, वे असंदिग्ध मानने को तैयार नही हैं। उनके मतानुसार नायक द्वारा अज्ञान में दिये गये कष्ट से रुष्ट किसी दैवी या लौकिक व्यक्ति के शाप से कथा मे अनेक रोमाचक घटनाओं की योजना की जा सकती है, यह बात इस प्रकार की शक्तियो मे विश्वास रखने वाले किसी भी व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप से सूझ सकती है।[1]

५—भविष्यवाणी : मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे पुहुपावती, मृगावती, पद्मावती, मधमालती, चित्रावली, रसरतन, इन्द्रावती, आदि मे नायिकाओ के भावी प्रेम तथा जन्म के विषय मे ज्योतिषियो द्वारा पूर्व से ही सूचना दो गयी है। करकंडचरिउ मे भी इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। पाचवी संधि मे विद्याधरो के समक्ष भविष्य वाणी करते हुए मुनिराज कहते हैं कि—'यहाँ एक बड़ा तीर्थ बनेगा और तुम्हारा यह भाई अन्य भव मे यहा बहुगुण युक्त सम्यक्त्व प्राप्त करेगा।'

तं सुणिवि भणइ तहं मुणिपवरू। इत्थम्मि हवेसइ तित्थवरु।
अण्णहिं भवि भायरु तुह तणउ। सम्मंत्तु लएसइ बहुगुणउ॥
क० च० ५।६

इसी प्रकार छठी संधि मे ऋषि कन्या भविष्यवाणी करती हुयी कहती है कि जिस दिन नरवाहनदत्त से मनोहर रूपवती व यश.प्राप्त रतिविभ्रमा नाम की कन्या से विवाह होगा—'हे सखि, तब यह पुन: सुन्दर और ललित देह मनुष्य हो जावेगा।'

ता भणियउ ताएं महासइएं णरवाहणदत्तइं जं दिवसि।
परिणेवउ रुउ मणोहरउ रइ विब्भमणामउ लद्धजसि।
हे सहियरेउ सुन्दर ललियदेहु, णरु होसइ तइयहुं पुणु वि एहु।
क० च० ६।१२, १३

1—Clearly the idea that a series of adventures may be percipated by the curse of a spirit or person endowed with magical powers, who is unintentionally injured by the hero, is one which might independently occur to any people who believe in the proximity of such powerful or holy person.

—Halliday-Foreword-The ocean of Story—Volume 8, P. 12·

सातवीं संधि मे पद्मावती देवी और रतिवेगा के प्रसंग में भी इस अभिप्राय को देखा जा सकता है—

कणयप्पहवइरिउ हयउ जेण । सो साभिउ होसइ किं परेण ।
क० च० ७।१५

(जो कोई कनकप्रभ के बैरी को मारेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा, अन्य किसी से क्या ?) पद्मावती देवी रतिवेगा से आगे कहती हैं—

तउ रमणइं कीयइं साहसाइं । को वण्णहुं सक्कइ बहिणि ताइं ।
वेवाहिय तेण अणंगलेह । णं कामकिरायहो तणिय रेह ।
पुणु लीलए परिणिय चंदलेह । णं मयणसहोयरि दिव्वदेह ।
कुसमावलि चारु चरित्तचित्त । रयणावलि परिणिय कणयदित्त ।
अवराइं मि कण्णह सयइं सत्त । परिणीयइं मइ तुह कहिय वत्त ।
ता सोउ णिवारिवि करहि धम्मु । करकंडु मिलेसइ गलियछम्मु ।
क० च० ७।१६

(हे बहन, तेरे रमण ने जो साहस किये हैं, उनका वर्णन कौन कर सकता है ? उसने अनंगलेखा को भी विवाह लिया है, जो मानो कामरूपी किरात की रेखा (शोभा) ही है । फिर उसने लीलापूर्वक चन्द्रलेखा का भी परिणय किया है, जो मदन की सहोदरी के समान दिव्यदेह है । उसने सुन्दर चरित्र और चित्तवती कुसुमावली तथा सुवर्णकान्ति रत्नावली का भी परिणय किया है । और भी सात-सौ कन्याएँ उसने विवाह ली हैं । मैंने तुझे बात कह दी । अतः अब तू शोक का निवारण करके धर्म का पालन कर । तुझे निर्दोष रूप से करकण्ड मिलेगा)[१]

६—अपशकुन : मनुष्य नाना प्रकार के ऐसे गलत तथा सही विश्वासो का समूह है जो उसे परम्परा से संस्कार रूप से प्राप्त होते हैं तथा जिन्हें वह अपनी विवेक-बुद्धि से युग-युग मे बनाता-बिगाड़ता चलता है । एक युग के विश्वास दूसरे युग में भ्रम सिद्ध हो जाया करते हैं तथा यदि तब भी मनुष्य उनसे जकड़ा रहता है तो वे ही रूढ़ि कहलाते हैं । निषेध और शकुन (Taboo and omen) ऐसे विश्वास होते हैं जिनका बौद्धिक आधार नहीं होता तथा जो मनोवैज्ञानिक अर्थात् भ्रम पर आधृत होते हैं । निषेधों का आरम्भ आदिम मानव समाज में बहुत संभव है लांछन (Totem) से हुआ । प्रत्येक कबीले के कुछ लांछन होते थे अर्थात् किसी पशु-पक्षी अथवा वस्तु को कबीले का जन्मदाता अथवा देवता का रूप माना जाता था । उसकी पूजा की जाती थी तथा उसे

१—करकंडचरिउ—हीरालाल जैन, हिन्दी अनुवाद, पृ० १०३ ।

किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जाती थी। इस नियम का उल्लंघन निषिद्ध था। ज्यों-ज्यों सामाजिक रीति-रिवाजों मे अभिवृद्धि होती गई, उनका उल्लंघन भी सामाजिक अपराध बनता गया, क्योंकि उससे देवता या पूज्य शक्ति के क्रुद्ध होकर पूरे समाज को कष्ट पहुँचाने की आशंका रहती थी। इस प्रकार निषेधो का सम्बन्ध सामाजिक रीति-रिवाजो या नैतिक विश्वासो से है।[1] उदाहरण के लिये बहुत सी जातियों मे पत्नी पति को अपना मुँह नही दिखाती अथवा पति-पत्नी दूसरो के सामने न परस्पर मिलते-जुलते हैं तथा न एक दूसरे का नाम ही लेते हैं। हिन्दू धर्म मे रीति-रिवाजो, खान-पान, गमनागमन, आचार-विचार आदि विभिन्न प्रकार के निषेध बताये गये हैं जैसे किस दिन किस दिशा मे नही जाना चाहिए, समुद्र पार देशो की यात्रा नही करनी चहिए आदि।[2]

निषेध के समान ही विश्व भर में शुभ शकुन तथा अपशकुन के घटित होने मे भी आदि काल से विश्वास किया जाता रहा है। शकुन मनोवैज्ञानिक वस्तु हे अर्थात् उसमे आशा अथवा आशंका का उद्रेक तथा प्रसार करके कार्य के सम्बन्ध में उत्साह-वृद्धि अथवा इसका निषेध किया जाता है, परन्तु इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को न समझकर सब लोग उसे अन्ध-विश्वास अथवा रूढ़ि के रूप मे ही अधिक स्वीकार करते हैं। यात्रा आरम्भ करते समय छीक अपशकुन है, किन्तु क्यो है, इसके विषय मे जानने तथा समझाने की आवश्यकता कम समझी जाती है।[3]

करकंडचरिउ मे राजा वाडीवाहन को माली द्वारा यह ज्ञात होता है कि पद्मावती कौशाम्बी के राजा वसुपाल की पुत्री थी। जन्म समय के अपशकुन के कारण पिता ने उसे जमुना नदी मे बहा दिया था।[4] यहाँ पर अपशकुन नामक अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।

1—"It is in the custom of a community thotmovality manifest itself, but custom sanctions at first many things, by means of taboo, which later are dropped or are forbidden by morality. The violation of custom and of the customary morality of the community is interpreted and is felt to be an offence against the being to whom the community turns in its attempt to escape from calamity or to avert it". Comparative Religion, P. 19-20, F. B. Jevons, Cambridge, 1913.

२—पृथ्वीराजरासो में कथानक-रूढ़ियाँ—डा० व्रजविलास श्रीवास्तव पृ० ७४।

३—पृथ्वीराजरासो मे कथानक-रूढ़ियाँ—डा० व्रजविलास श्रीवास्तव, पृ० ७५।

४—करकंडचरिउ—डा० हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ० १३।

मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक-रूढ़ियाँ

(१) कवि कल्पित

(क) प्रेममूलक अभिप्राय

१—चित्र-दर्शन-जन्य प्रेम : मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों मे इंद्रावती मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। यद्यपि इंद्रावती की आधिकारिक प्रेम-कथा स्वप्न-दर्शन पर आधृत है, परन्तु एक अवान्तरकथा मे मानिक तथा हीरा का प्रेम चित्र-दर्शन से उत्पन्न बताया गया है। इतना अवश्य है कि यह एक विशुद्ध रूपकात्मक कथा है जिसमे चित्त, आत्मा तथा पवन को पात्र के रूप मे चित्रित किया गया है किन्तु इसमें रोमानी कथाओं का यह अभिप्राय अनायास ही आ गया है।[1] करकंडचरिउ मे भी यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।

२—रूप-गुण-श्रवण-जन्य आकर्षण : चन्दायन में बाजिर के मुख से चाँद की रूप-प्रशंसा सुनकर रूपचन्द विह्वल हो जाता है तथा उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। जायसी के पद्मावत मे रत्नसेन तथा पद्मावती का प्रेम-प्रसंग आरम्भ करने के लिये इस अभिप्राय का उपयोग किया गया है। शुक द्वारा पद्मावती के रूप-गुण का वर्णन सुनकर रत्नसेन के मन मे पद्मावती के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। 'माधवानल काम-कंदला' मे पुर की चेरियाँ तथा अन्य नारियाँ माधवानल की वीणा और गीत सुनकर ही उसपर आसक्त हो जाती हैं। पक्षियों द्वारा रूप-गुण की प्रशंसा सुनकर प्रेमी-प्रेमिका के परस्पर आकर्षित होने की यह कल्पना हिन्दी कवियों के लिये विशेष आकर्षण का विषय रही है। नूरमुहम्मद ने इन्द्रावती मे मधुकर तथा मालती की प्रासंगिक प्रेम-कथा का आरम्भ इसी अभिप्राय से किया है। नूरमुहम्मद ने सहायक अभिप्राय के रूप मे दो शुकों की वार्ता तथा नायक द्वारा उसकी उपश्रुति का प्रयोग करके इस रूप-वर्णन तथा श्रवण-जन्य आकर्षण को अत्यन्त कुतूहलपूर्ण एवं चामत्कारिक बना दिया है। इन्द्रावती में मधुकर इस कथा-वार्ता मे परोक्ष रूप से मालती के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उसके प्रति आकर्षित होता है तथा मिलन की इच्छा से विह्वल हो जाता है।[2] 'करकंडचरिउ' में मदनावली खेचरो के मुंख से करकण्ड सम्बन्धी गीतो को सुनकर ही प्रेम-व्यथा से मूर्छित हो जाती है।

१—इन्द्रावती, मानिक खंड, दो० १०६।

२—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे कथानक रूढियाँ—डॉ० ब्रजबिलास श्रीवास्तव, पृ० १३२।

३—स्थानान्तरण द्वारा प्रेम-संघटन : मंझन ने 'मधुमालती' में नायक-नायिका के परस्पर आकर्षण तथा प्रेम के लिये इसी अभिप्राय का सहारा लिया है।[१] यद्यपि रसरतन की आधिकारिक कथा स्वप्न-दर्शन जन्य प्रेम से आरम्भ होती है, परन्तु उपनायिका कल्पलता से नायक के प्रणय-सम्बन्ध की प्रासंगिक कथा इसी अभिप्राय को आधार बनाकर निर्मित हुई है।[२] अपने शिविर मे सोये हुये कुमार को अप्सरायें सशय्या कल्पलता के पास पहुँचा देती हैं। 'इन्द्रावती' मे माणिक की अवान्तर कथा मे नायक के अज्ञान मे स्थानान्तरण द्वारा नायिका से मिलन एवं प्रेम का आरम्भ होता है। इन्द्रावती में माणिक राक्षसों द्वारा नायिका की फुलवारी मे पहुँचा दिया जाता है। करकंडचरिउ मे एक खेचरी करकंड को उडा ले जाती है।

४—**शुक-शुकी :** 'पद्मावत' मे शुक प्रेम-संघटक तथा कथा के मुख्य पात्र के रूप में आया है। हीरामन शुक रूप-गुण-वर्णन द्वारा रत्नसेन के मन मे पद्मावती के प्रति प्रेम पैदा करता है। 'रसरतन' मे विद्यापति शुक वियोगिनी कल्पलता का संदेश लेकर चम्पावती जाता है तथा एक वृक्ष पर, जिसके नीचे नायिका रम्भा बैठी हुई है, बैठकर यह गाथा पढता है, 'विरहिनी विरह विकार न जानति नारि संयोगिनी।' रंभा के मन मे संदेह होता है तथा वह नायक कुँवर से इस विषय में पूछती है। कुँवर से उसकी पूर्व परिणीता पत्नी कल्पलता का समाचार मिलता है तथा रम्भा के आग्रह करने पर दोनो कल्पलता से मिलने जाते हैं। 'इन्द्रावती' मे ज्ञानी शुक बन्दी राजकुमार का संदेश लेकर इन्द्रावती के पास जाता है, इन्द्रावती उसे पकडकर पिजडे मे रख लेती है तथा वह उसे कुमार का सन्देश सुनाता है।[३] 'विरह वारीश' मे शुक माधवानल को उपदेश और आश्वासन देता है। करकंडचरिउ मे भी इस कथानक-रूढ़ि का प्रयोग हुआ है।

५—सिंहलद्वीप की कन्या से विवाह : सिंहल देश की कन्या से प्रेम तथा विवाह पद्मावत का अत्यन्त प्रसिद्ध अभिप्राय है। करकंडचरिउ मे नायक करकंड सिंहल की राजकुमारी रतिवेगा से विवाह करता है।

६—किसी स्त्री के प्रेम का तिरस्कार और मिथ्या लांछन : गणपति मित्र कृत माधवानल-कामकंदला मे नायक माधव का देश-निष्कासन इसी तरह होता है। माधव पुष्पावती के महाराज गोविन्दचन्द्र का रक्षित पुत्र था, उस पर महाराज की प्रधान रानी रुद्रदेवी आसक्त हो गई। एक दिन उन्होंने माधव पर अपना प्रेम प्रकट

१—वही, पृ० २५०—५१।

२—रसरतन, पृ० ४०।

३—इन्द्रावती, पृ० ८५-८६।

किया परन्तु माधव ने उन्हें माँ कहकर सम्बोधित किया तथा इस तरह के प्रेम को अनुचित बतलाया। रुद्र देवी ने माधव के इस व्यवहार पर क्रुद्ध होकर प्रतिशोध लेने का निश्चय किया तथा कोप भवन मे पहुँची। राजा के पूछने पर उन्होंने बताया कि माधव बड़ा कामी है तथा उसकी दृष्टि रनिवास की प्रत्येक नारी पर है। आज उसने मेरे साथ कुत्सित व्यवहार करना चाहा था। इस पर राजा ने माधव को अपने राज्य से निष्कासित कर दिया।[1] करकंडचरिउ मे भी यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।

७—वन में सरोवर के पास सुन्दरी कन्या का दर्शन : लोक तथा शिष्ट दोनों कथाओं में नायक-नायिका के मिलन तथा प्रेम के लिये ज्यादातर इस अभिप्राय का प्रयोग किया गया है। वन मे मार्ग भूलकर अथवा जल की तलाश मे जाकर नायक अवश्य ही किसी ऐसे सरोवर के समीप पहुँचता है, जहाँ वह किसी सुन्दरी कन्या (नायिका) का दर्शन करता है। ईश्वरदास ने सत्यवती कथा मे एवं कुतुबन मे मृगावती मे नायक-नायिका के प्रथम दर्शन द्वारा कथा का आरम्भ करने के लिये इसी घटना को मुख्य आधार बनाया है। नायक ऋतुवर्ण तथा नायिका सत्यवती का प्रथम मिलन वन मे सरोवर के निकट होता है। नायिका सरोवर मे स्नानार्थ आती है तथा नायक आखेट के समय मार्ग भूलकर वहाँ पहुँच जाता है।[2] ठीक इसी तरह मृगावती मे भी राजकुँवर आखेट के समय हरिणी का पीछा करते हुये एक सरोवर तक पहुँच जाता है। हरिणी उसमे कूदकर अदृश्य हो जाती है। एक साल तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् राजकुँवर इसी सरोवर मे स्नान के निमित्त आई मृगावती को वस्त्र-हरण कर प्राप्त करता है।[3] करकंडचरिउ मे भी इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है।

(ख) रोमांचक अभिप्राय

१—समुद्र-यात्रा के समय जलपोत का टूटना : समुद्र-यात्रा के समय जलपोत के टूटने तथा काष्ठफलक के सहारे नायक-नायिका की रक्षा का उल्लेख सामान्यतः सभी मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे उपलब्ध होता है। 'पद्मावत' मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। 'मधुमालती' मे यह अभिप्राय प्रिया-प्राप्ति के लिये योगी रूप मे यात्रा करते समय ही आया है। चार मास तक जल मे यात्रा करने के बाद सहसा एक दिन समुद्र मे भयंकर तूफान आता है। चारो तरफ अन्धकार छा जाता है, दिशा

१—तृतीय अंक (रुद्र महादेवी प्रसंग), गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, जिल्द ९३।

२—सत्यवती-कथा, दो० २१–२७।

३—हिन्दी अनुशीलन-अंक ३ जुलाई-सितम्बर १९५७ भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, ग्रन्थानुसंधान, पृ० ५१।

का ज्ञान नहीं रह जाता तथा अन्त में लहरों के आघात से बोहित टूट जाता है। नायक के अलावा अन्य सभी मित्र, परिजन समुद्र में डूब जाते हैं।[1] परन्तु विधि की कृपा से नायक को सम्मुख काष्ठफलक दिखाई पड़ता है तथा उस काठ के सहारे कुमार बेहोश स्थिति में एक निर्जन तट पर पहुँचता है। 'इन्द्रावती' मे मधुमाल्ती की प्रासंगिक कथा मे प्रथम यात्रा मे ही समुद्र मे जलपोत टूट जाता है। नायक के दूसरे सभी मित्र जल मे डूब जाते हैं। परन्तु किसी तरह मार्ग-दर्शक-शुक तथा नायक बच जाते हैं। जलपोत के टूटते ही शुक उड जाता है तथा मालती के नगर शृंगपुर मे जाकर उसे इसकी सूचना देता है। मधुकर लहरो मे बहता हुआ समुद्र-तट पर पहुँचता है। कवि ने काष्ठ-फलक के स्थान पर देवी चमत्कार को नायक की रक्षा का कारण बताया है।[2] करकंड-चरिउ मे भी इस कथानक-रूढि का प्रयोग हुआ है।

२—वन में मार्ग भूलना : 'इन्द्रावती' के 'मधुकर-खण्ड' मे उपश्रुति के सहायक के रूप मे इसका उपयोग हुआ है। वन मे मार्ग भूलने से मधुकर के दो पक्षियो की बातचीत सुनने का मौका मिलता है तथा उस बातचीत मे मालती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर नायिका-प्राप्ति का प्रयास आरम्भ होता है।[3] करकंड-चरिउ मे बिना किसी उद्देश्य के ही कवि ने वन मे नायक को मार्ग-भ्रम मे डाल दिया है।[4]

३—विवाह के लिये असामान्य कार्य सम्पादन की शर्तें : रामचरितमानस में सीता के विवाह के लिये कठिन कार्य-संपादन की शर्तें इस रूप मे रखी गई है।

> नृप भुज बल बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू।
> रावनु बान महाभट हारे। देखि सरासन गवँहि सिधारे॥
> सोइ पुरारि को दण्ड कठोरा। राज समाज आजु जेइ तोरा॥
> त्रिभुवन जय समेत बैदही। बिनहि बिचार बरे हठि तेही॥
>
> बालकाण्ड दो० २४९

सीता के विवाह के लिये शर्त है—शिव के धनुष को तोडना। महाभारत मे द्रौपदी के विवाह के लिये इसी तरह मत्स्य-वेध की शर्त है। धनुर्विद्या मे सर्वाधिक निपुण होने के कारण अर्जुन इस शर्त को पूर्ण करते हैं। करकंडचरिउ मे गधर्व कन्याओं का वस्त्र तथा शेरनी का दूध मागा जाता है।

१—बोहित खण्ड।
२—पृ० १००-१०१।
३—इन्द्रावती-सं० श्यामसुन्दर दास, मालिन खण्ड।
४—करकंडचरिउ, १।१६।

४—राक्षस-विद्याधर आदि द्वारा नायिका-हरण : रामचरितमानस मे सीता हरण की घटना इसका उदाहरण है। करकंडचरिउ मे नायक करकंड की रानी मदनावली का भी सीता की भाँति ही छलपूर्वक हरण होता है।

५—अभिज्ञान या सहिदानी : मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो में 'रसरतन' मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। बुद्धि विचित्र नामक चित्रकार वैरागर जाकर सूरसेन को रम्भा का चित्र दिखाता है जिसे पहचान कर उसकी विह्वलता दूर हो जाती है, उसी सूरसेन के चित्र को देखकर रंभा अपने स्वप्न मित्र को पहचान लेती है। करकंडचरिउ मे भी इस कथानक-रूढि का प्रयोग मिलता है।

(२) लोकाश्रित अभिप्राय

१—रूप-परिवर्तन : मानस मे शिव के कथन पर अविश्वास होने के कारण पार्वती सीता का रूप धारण करके वन मे राम की परीक्षा लेती हैं।[1] मानस मे सीता-हरण के लिये एक तरफ मारीच कंचन मृग बनकर राम को वन मे दूर ले जाता है तथा दूसरी तरफ रावण ब्राह्मण-रूप मे छलपूर्वक सीता का हरण करता है। मानस इन प्राणियो के रूप परिवर्तन की घटनाओ से परिपूर्ण है। सूर्पणखा का रूप-परिवर्तन इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। मानस मे राक्षस तो रूप-परिवर्तन की शक्ति रखते ही हैं, किन्तु हनुमान भी इच्छानुसार रूप धारण करते हैं।[2] सुरसा के साथ हनुमान का रूप-परिवर्तन का युद्ध इस अभिप्राय के लोकरूप का श्रेष्ठ दृष्टान्त है। पद्मावत मे लक्ष्मी पद्मावती का रूप धारण करके रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेती है।[3] 'मधुमालती' मे नायक-नायिका को वियुक्त करने के लिये इसी अभिप्राय का सहारा लिया गया है। विरह वारीश मे राजा विक्रमादित्य छद्मवेशी वैद्य का रूप धारण कर कंदला के प्रेम की परीक्षा लेता है। करकंडचरिउ मे भी इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है।

२—आकाश-गमन : मानस मे अतिप्राकृत प्राणी होने के कारण राक्षस आकाश मे उडते हैं, परन्तु हनुमान भी आकाश मार्ग से उडकर सुबह होने के पहले ही संजीवनी जडी ला देते हैं। करकंडचरिउ मे इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है।

१—प्रथम सोपान।

२—मोरे हृदय परम सदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा।
कनक भूधरा कार शरीरा।

पंचम सोपान दो० १६।

३—लक्ष्मी समुद्र खण्ड।

३—अज्ञान में अपराध और शाप : इस अभिप्राय के दो रूप हैं—(१) जान-बूझकर अपराध तथा शाप, (२) अज्ञान में अपराध एवं शाप।

मानस मे रामअवतार की प्रस्तावना इसी शाप को पौराणिक कल्पना को आधार बनाकर निर्मित हुई है। मानस मे राजा प्रतापभानु का प्रसंग बिना अपराध के राक्षस-योनि मे जन्म लेने का भयंकर शाप पाने का दृष्टान्त है। करकंडचरिउ मे यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है।

सम्पूर्ण उपलब्ध अपभ्रंश चरित काव्यो मे मुनि कनकामर कृत करकंडचरिउ कथानक-रूढियो की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध एवं महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे प्रयुक्त प्रायः अधिकांश कथानक-रूढ़ियो का प्रयोग मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो मे हुआ है। यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। इस प्रकार कथानक-रूढियो की दृष्टि से भी करकंडचरिउ का गहरा प्रभाव मध्ययुगीन हिन्दी प्रबन्ध-काव्यो पर पड़ा है। करकंडचरिउ मे ऐसा वर्णन मिलता है कि पद्मावती के वन मे प्रवेश करते ही वह सूखा हुआ वन हरा-भरा हो गया।[१] इस प्रकार के वर्णन लोक-साहित्य या लोक-कथाओ मे पर्याप्त मिलते हैं। लोक जीवन में प्रायः ऐसा सुनने को मिलता है कि शंकर-पार्वती या किसी राजा-रानी के प्रवेश करते ही वन के पत्ते झड़ने लगे अथवा सूखा हुआ वन हरा-भरा हो गया। इससे स्पष्ट है कि करकंडचरिउ लोक-जीवन के पर्याप्त निकट है।

१—करकंडचरिउ–डा० हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ० १४।

★

आठवां अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी साहित्य मे अपभ्रंश की सम्पूर्ण परम्परा विद्यमान है। उसका जितना प्रत्यक्ष सम्बन्ध अपभ्रंश साहित्य से है उतना किसी दूसरी प्रान्तीय भाषा से नही। हिन्दी के प्रायः सभी कवियो ने कुछ न कुछ अपभ्रंश से लिया है इसे इनकार नहीं किया जा सकता। मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों यथा-चंदायन, मृगावती, पद्मावती, मधुमालती, रामचरितमानस, माधवानल कामकंदला, रसरतन, इन्द्रावती, विरह-वारीश आदि पर भाव, भाषा, रस, छंद, अलकार सभी दृष्टियो से अपभ्रंश चरित काव्यों का बहुत गहरा प्रभाव पडा है इसका उल्लेख किया जा चुका है। इन प्रबन्ध काव्यो मे प्रयुक्त निजन्धरी एवं कल्पित घटनाओ तथा रोमाचक और कौतूहल जनक प्रसंगो के बीज हमे अपभ्रंश चरित काव्यो यथा—णायकुमारचरिउ, जसहरचरिउ, भविसयत्तकहा, करकंड-चरिउ आदि मे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इन प्रबन्ध काव्यों मे जिस प्रकार के रीति-रिवाज, सामाजिक आचार-विचार, पारिवारिक ईर्ष्या-कलह एवं रूढ़ियो का चित्रण हुआ है उनका मूल भी अपभ्रंश के इन चरित काव्यो मे देखा जा सकता है। मध्यका-लीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो का उत्स इन चरित काव्यो मे ढूंढा जा सकता है। मध्यका-लीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो के सही-सही मूल्याकन एवं अध्ययन के लिये अपभ्रंश के इन चरित काव्यो का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। इन चरित काव्यो के अध्ययन के बिना मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो को ठीक तरह से समझा नही जा सकता क्योकि इन प्रबन्ध काव्यो मे प्रयुक्त प्राय सभी निजधरी घटनाओ एवं कथानक-रूढियो का बीज हमे इन चरित काव्यो मे उपलब्ध होता है। ये चरित काव्य लोकजीवन के अत्यन्त निकट हैं। अत इनमे प्रयुक्त निजन्धरी घटनाओ और कथानक-रूढ़ियों के अध्ययन से तत्कालीन समाज की जानकारी बहुत अच्छी प्रकार हो सकती है। ये अपभ्रंश चरित काव्य लोकाश्रित धारा के अन्तर्गत आते हैं जिनमे करकंडचरिउ का स्थान सर्वोपरि है। करकंडचरिउ का अध्ययन केवल इसलिये आवश्यक नहीं है कि वह एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण अपभ्रंश चरित काव्य है अपितु इसलिये आवश्यक है कि वह लोकाश्रित परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। केवल उदाहरण के लिये इस चरित काव्य का चयन किया गया है क्योकि कथानक-रूढियो की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यो को समझने के लिए इसका अध्ययन बहुत आवश्यक है। इसमे प्रयुक्त अधिकांश कथानक-रूढ़ियो का प्रयोग मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्धकाव्यो मे हुआ है।

———

सहायक ग्रन्थ-सूची

१—अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति डा० अंबादत्त पंत, प्रथम संस्करण।

२—अपभ्रंश भाषा और साहित्य . डा० देवेन्द्रकुमार जैन, प्रथम संस्करण।

३—अपभ्रंश भाषा का अध्ययन डा० वीरेन्द्र श्रीवास्तव, १९६५।

४—अपभ्रंश-साहित्य . डा० हरिवंश कोछड़।

५—अपरा : निराला छठा संस्करण।

६—अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास।

७—आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का शिल्प-विधान · डा० श्यामनन्दन किशोर, दिसम्बर १९६३।

८—आलमकेलि . आलम कृत, सं० लाला भगवानदीन।

९—इन्द्रावती : संपादक, श्यामसुन्दरदास।

१०—इश्कनामा . बोधाकृत, सं० नकछेदी तिवारी।

११—कथासरित्सागर : सोमदेव।

१२—करकंडचरिउ संपादक—डा० हीरालाल जैन, द्वितीय संस्करण।

१३—कादम्बरी : बाणभट्ट।

१४—काव्यरूपो के मूल स्रोत और उनका विकास . डा० शकुन्तला दूबे, प्रथम संस्करण।

१५—काव्यादर्श दण्डी।

१६—काव्यानुशासन : हेमचन्द्र।

१७—काव्यालंकार : रुद्रट।

१८—कुमारसंभव : कालिदास।

१९—गोस्वामी तुलसीदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नवम संस्करण।

२०—घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा : डा० मनोहरलाल गौड, प्रथम संस्करण।

२१—चंदायन : संपादक डा० परमेश्वरीलाल गुप्त, प्रथम संस्करण।

२२—चंदायन : संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथम संस्करण।

२३—छिताईवार्ता : संपादक—डा० माताप्रसाद गुप्त, प्रथम संस्करण।

२४—जसहर चरिउ · संपादक—डा० पी० एल० वैद्य, प्रथम संस्करण।

२५—जायसी के परवर्ती हिन्दी-सूफी कवि और काव्य . डा० सरला शुक्ल, सम्बत् २०१३ वि०।

२६—जायसी ग्रन्थावली : संपादक-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अष्टम संस्करण।

२७—जायसी ग्रन्थावली : संपादक–डा० माताप्रसाद गुप्त।
२८—जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी।
२९—ढोला मारूरा दूहा मे काव्य-सौष्ठव, संस्कृति एवं इतिहास : डा० भगवतीलाल शर्मा, प्रथम संस्करण।
३०—णायकुमार चरिउ : संपादक–डा० हीरालाल जैन प्रथम संस्करण।
३१—दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक : डा० त्रिभुवन सिंह, द्वितीय संस्करण।
३२—दशकुमारचरित : दण्डी।
३३—पउमचरिउ (भाग १,२,३). संपादक–डा० हरिवल्लभ चुन्नीलाल भायाणी, प्रथम संस्करण।
३४—पउमसिरि चरिउ : संपादक–श्री मधुसूदन चि० मोदी, श्री हरिवल्लभ चु० भायाणी, प्रथम संस्करण।
३५—परशिष्ट पर्वन : हेमचन्द्र।
३६—पार्श्वनाथ चरित : भवदेव सूरि।
३७—प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य तथा उनका हिन्दी साहित्य पर प्रभाव : डा० राम सिंह तोमर, प्रथम संस्करण।
३८—प्राकृत और उसका साहित्य डा० हरदेव बाहरी, प्रथम संस्करण।
३९—प्राकृत साहित्य का इतिहास . डा० जगदीश चन्द्र जैन, प्रथम संस्करण।
४०—पृथ्वीराज रासो मे कथानक-रूढ़ियाँ · डा० ब्रजविलास श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण।
४१—ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन . डा० सत्येन्द्र, प्रथम संस्करण।
४२—बीसलदेव रास : संपादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचन्दनाहटा, द्वितीय संस्करण।
४३—भविसयत्तकहा : संपादक, स्व० सी० डी० दलाल, स्व० पाडुरंग दामोदर गुणे, प्रथम संस्करण।
४४—भारतीय प्रेमाख्यान काव्य · डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, द्वितीय संस्करण।
४५—भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा : परशुराम चतुर्वेदी, द्वितीय संस्करण।
४६—मधुमालती : संपादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, १९६१।
४७—मधुमालती : संपादक, डॉ० शिवगोपाल मिश्र, प्रथम संस्करण।
४८—मध्यकालीन प्रेम-साधना : परशुराम चतुर्वेदी, परिवर्द्धित नवीन सस्करण।
४९—मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ : परशुराम चतुर्वेदी, प्रथम संस्करण।
५०—मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति : डॉ० मदनगोपाल गुप्त, प्रथम संस्करण।

५१—मध्यकालीन हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में कथानक-रूढ़ियाँ : डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण।
५२—मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : डॉ० श्याम मनोहर पांडेय।
५३—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन : डॉ० सत्येन्द्र, प्रथम संस्करण।
५४—मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य : डॉ० शिवसहाय पाठक, नवम्बर १९६४।
५५—महाकवि पुष्पदन्त : डॉ० राजनारायण पाण्डेय, प्रथम संस्करण।
५६—महाकवि मतिराम और मध्यकालीन हिन्दी कविता मे अलंकरण वृत्ति : डॉ० त्रिभुवन सिंह, द्वितीय संस्करण।
५७—महापुराण (भाग १, २, ३) : सपादक, डॉ० पी० एल० वैद्य, प्रथम संस्करण।
५८—मानस का कथा-शिल्प : डॉ० श्रीधर सिंह, प्रथम संस्करण।
५९—मानस-दर्शन : डॉ० श्रीकृष्णलाल, संशोधित और परिवर्द्धित सस्कण, १९६२।
६०—मिरगावती : संपादक, डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, प्रथम सस्करण।
६१—मृगावती : संपादक, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प्रथम सस्करण।
६२—मृगावती : सपादक, डॉ० शिवगोपाल मिश्र, प्रथम सस्करण।
६३—मिश्रबन्धु विनोद . मिश्रबधु।
६४—रसरतन : संपादक, डॉ० शिवप्रसाद सिंह प्रथम सस्करण।
६५—राजस्थानी के प्रेमाख्यान परपरा और प्रगति—डॉ० रामगोपाल गोयल, प्रथम संस्करण।
६६—रीतिकालीन कवियो की प्रेमव्यंजना : डॉ० बच्चन सिंह, प्रथम सस्करण।
६७—रीतिकाव्य : डॉ० जगदीश गुप्त, प्रथम संस्करण।
६८—रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा : डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण।
६९—लीलावईकहा : कुतूहल।
७०—लोकसाहित्य विज्ञान डॉ० सत्येन्द्र, प्रथम सस्करण।
७१—वासवदत्ता . सुबन्धु।
७२—वीरकाव्य : डॉ० उदयनारायण तिवारी।
७३—संदेशरासक . अब्दुल रहमान।
७४—संस्कृत-कवि दर्शन . डॉ० भोलाशंकर व्यास, तृतीय संस्करण।
७५—संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय, परिवर्द्धित चतुर्थ संस्करण।
७६—संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, प्रथम संस्करण।
७७—साहित्यदर्पण : विश्वनाथ।

७८—सूफी-काव्य-संग्रह परशुराम चतुर्वेदी, संशोधित एवं परिवर्द्धित तृतीय संस्करण।
७९—सूफी मत और हिन्दी साहित्य डॉ० विमलकुमार जैन, प्रथम संस्करण।
८०—सूरदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चतुर्थ परिवर्द्धित संस्करण।
८१—सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य डॉ० शिवप्रसाद सिंह, प्रथम संस्करण।
८२—हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, सन् १९५३।
८३—हिन्दी काव्यधारा राहुल सांकृत्यायन।
८४—हिन्दी-काव्यधारा मे प्रेम प्रवाह परशुराम चतुर्वेदी, द्वितीय संस्करण।
८५—हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग डा० नामवर सिंह, तृतीय परिवर्द्धित संस्करण।
८६—हिन्दी प्रेम गाथा काव्य-संग्रह संपादक गणेशप्रसाद द्विवेदी, श्रीगुलाब राय द्वारा संशोधित तथा परिवर्द्धित।
८७—हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य डा० कमल कुलश्रेष्ठ, नवीन संस्करण १९६२ ई०।
८८—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास डॉ० शम्भूनाथ सिंह, द्वितीय संस्करण।
८९—हिन्दी साहित्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, १९५२।
९०—हिन्दी साहित्य एक परिचय—डा० त्रिभुवन सिंह मार्च १९६८।
९१—हिन्दी साहित्य का अतीत आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
९२—हिन्दी साहित्य का आदिकाल आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तृतीय संस्करण।
९३—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा, चतुर्थ संस्करण।
९४—हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, परिवर्द्धित संस्करण।
९५—हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, छठा संस्करण।
९६—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—प्रथम भाग : संपादक डॉ० राजबली पांडेय, प्रथम संस्करण।
९७—हिन्दी साहित्य की भूमिका आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रथम संस्करण।
९८—हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका रामपूजन तिवारी प्रथम संस्करण।

पत्र-पत्रिकायें

१—नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वाराणसी)।
२—हिन्दी अनुशीलन भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग अंक ३।

English Books

1 A History of Sanskrit Literature A. B. Keith.
2. Arabian Nights Dr. Rost.

3. Dictionary of World Literature : Shipley.
4. Dravidian Nights : N. Shastri.
5. Folk Tales of Bengal : Lal Behari Day.
6. Folk Tales of Hindustan : Shaik Chilli.
7. Folk Tales of Kasmir : J. H. Knowles.
8. Hindu Tales : J. J. Meyer.
9. Indian Antiquary, Vol. 1, 3, 4, 15, 16, 21, 22.
10. Kadambari 2 Vols. Peterson.
11. Kathakosa : C. H. Tawney.
12. Life and Stories of Jain Saviour Parsvanath : M. Bloomfield.
13. The Childhood of Fiction : J. A. Macculoch.
14. The Ocean of Story : C. H. Tawney.

★